# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जनवरी, १९४०

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जनवरी, १९४०

संपादक—रामचंद्र टंडन



## लेख-सूची



वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग १० } जनवरी, १९४० { अंक १

# गुसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावलि

[ लेखक—श्रीयुत दीनदयालु गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ]

गुसाईं तुलसीदास की कविता में भगवद्भक्ति, लोकोपकारिता और काव्यरस तीनों का सामंजस्य है। इन भावों की त्रिवेणी में मज्जन कर लोग एक अपूर्व आनंद का अनुभव करते हैं। उन के काव्य में एक विलक्षण प्रतिभा है। तुलसीदास की कथनी और करनी एक थी। उन्हों ने अपने समय की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का खूब अध्ययन किया था। उस समय के संकट-पीड़ित समाज की दयनीय दशा से उन का हृदय व्यथित हो उठा था। लोक और आत्म-उद्धार की भावना ने उन के चित्त में गृहस्थ जीवन के प्रति विरक्ति पैदा की, और उन्हों ने घर छोड़ कर वैराग्य ले लिया। अखंड वैराग्य, भगवद्भक्ति और तप—इन के अभ्यास ने उन की आत्मा को ज्योति दी। उन की अमर वाणी एक विशुद्ध आत्मा की आंतरिक प्रेरणा का प्रतिफल है। भारत-रमणी-रत्न परम विदुषी तपस्विनी तथा कवयित्री रत्नावलि इन्हीं महात्मा की धर्मपत्नी थी, जिन्हों ने परंपरागत भारतीय स्त्री-धर्म का पालन कर अपने सद्‌गुण, सतीत्व और उपदेशों से पवित्र आचरण का आदर्श उपस्थित किया। भारतीय आदर्श रमणियों के चरित्र में कष्ट-सहिष्णुता, स्वार्थत्याग, सेवा और चरित्र की पवित्रता ये प्रधान सद्‌गुण रहे हैं। रत्नावलि का चरित्र भी उसी प्राचीन आदर्श का मंजु मुकुर है।

हिंदी साहित्य के इतिहासों मे रत्नावलि का कोई चरित्र नही दिया गया है। इस का कारण यही था कि अब तक हिंदी जनता को इस कवयित्री की रचनाओं का न ता इस के चरित्र का वृत्तांत ज्ञात नही था। हा, कुछ विद्वानो ने इस विदुषी का जिक्र गुसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी के नाते से अवश्य किया है। गुसाईं तुलसीदास की जन्मभूमि, जाति आदि के विषय मे जितने विवाद प्रचलित है, उतने ही भिन्न मत तुलसीदास की धर्म-पत्नी के बारे में भी है। बाबा बेणीमाधवदास के 'मूल गोसाईंचरित्र' मे (जिस के आधार पर रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास जी तथा डाक्टर बड़थ्वाल ने 'तुलसीदास' नामक ग्रंथ मे गुसाईं तुलसीदास का वृत्तांत दिया है) उन के ससुर और धर्मपत्नी के नाम नहीं दिए गए। उन की स्त्री के विषय में इतना ही कहा है कि तुलसीदास के वैराग्य लेने के बाद ही उस का देहांत हो गया। इस विषय मे परंपरागत जनश्रुति कहती है कि तुलसीदास के ससुर का नाम आत्माराम और स्त्री का नाम रत्नावलि था, और रत्नावलि पति के वैराग्य के बाद बहुत काल तक वियोग मे जीवित रही। यह भी कहा जाता है कि एक बार अपनी वृद्धावस्था मे महात्मा तुलसीदास घूमते-घूमते अपने ससुर के घर पर अनजाने में आ निकले। वहा तुलसीदास ने अपनी स्त्री को नही पहचाना परंतु उन की स्त्री ने उन्हें पहचान लिया। जब उस ने अपने को प्रगट किया और उन के साथ चलने का आग्रह किया, तो तुलसीदास ने उसे अपने साथ ले चलने से इन्कार कर दिया। कहा जाता है कि उस ने उस समय एक दोहा कहा जो तुलसी-कृत दोहावली मे इस प्रकार है—

> खरिया खरी, कपूर सब, उचित न पिय तिय त्याग।
> कै खरिया मोहि मेलि कै, बिमल बिवेक बिराग॥

जनश्रुति यह भी कहती है कि तुलसीदास की स्त्री रत्नावलि परम विदुषी थी, और उस ने भी कुछ दोहों की रचना की थी।

अभी हाल मे कुछ प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ सोरों, जिला एटा, मे मिले है, जिन मे से दो रत्नावलि के बनाए दोहो के संग्रह है, और एक मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत 'रत्नावलि-चरित्र' है। इस चरित्र का रचना-काल हस्तलिखित प्रति में संवत् १८२९ दिया हुआ है। रत्नावलि दोहा-संग्रहों में से एक संग्रह में १११ दोहे है, और दूसरे मे २०१ दोहे है। इन्हों ने महात्मा तुलसीदास के जीवन पर भी एक नया प्रकाश डाला है।

इन ग्रंथों की प्रामाणिकता की मैं ने सोरों जाकर जाँच की है, और मुझे इन ग्रंथो

की प्रामाणिकता पर संदेह करने का विशेष कारण नही ज्ञात होता है। हिंदी के विद्वानो से निवेदन है कि वे इस सामग्री की निष्पक्ष रूप से जाँच करे। मैं ने 'महात्मा तुलसीदास और नंददास' शीर्षक लेख मे,[1] इन ग्रंथो का परिचय दिया है। इन दोहो की जो प्रति-लिपियां सोरों मे मिली है उन मे से १११ दोहो वाली प्रति स० १८७५ की है और दूसरी स० १८२६ की। यद्यपि ये प्रतियां रत्नावलि के समय से बहुत बाद की है, फिर भी इन के कुछ दोहो मे ऐसे भाव व्यक्त हुए हैं, जिन तक इन दोहो को वर्तमान काल में रचने वाले कवि की पहुँच बहुत कठिन जान पडती है। उदाहरण के लिए इस संग्रह मे निम्न-लिखित दोहा है—

अगिनि तूल चकमक दिया, निसि मँह धरहु सम्हारि।
'रतनावलि' जनु का समय, काज परै लेउ जारि॥

इस दोहे मे नीति और शिक्षा का भाव है। रत्नावलि के समय में दियासलाई नही थी। चकमक पत्थर के टुकड़े घर-घर रहा करते थे। यहा 'चकमक' शब्द का प्रयोग इस बात का प्रमाण दे रहा है कि दोहा कम से कम दियासलाई के आविष्कार से पहले का रचा हुआ है। इसी प्रकार इन दोहो की भाषा का ब्रजभाषा रूप भी प्राचीन ब्रजभाषा रचनाओ के माधुर्य को लिए हुए है।

रत्नावलि ने दोहों मे अपना, अपने पति तुलसीदास का, तथा उन के चचेरे भाई नंददास का कई जगह परिचय दिया है। उस की जीवनी देने से पहले हम उस की रचनाओ में आत्मचरित-विषयक उल्लेखो का विवरण देना उचित समझते है। निम्न-लिखित दोहों मे कवयित्री ने अपने और गोस्वामी तुलसीदास के संबंध मे भाव प्रकट किए हैं।

जनम बदरिका कुल भई, हो पिय कंटक रूप।
बिंधत दुखित ह्वै चलि गए, रतनावलि उर भूप॥

इस से ज्ञात होता है कि रत्नावलि का जन्म 'बदरिका' स्थान में हुआ था।

दीन बन्धु कर घर पली, दीनबन्धु कर छाँह।
तौउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बाँह॥

---

[1] 'हिंदुस्तानी', जूलाई १९३९

इस से ज्ञात होता है कि रत्नावलि दीनबंधु नामक व्यक्ति के घर पली थी, और उस को पति ने त्याग दिया था।

सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय श्याम।
रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन सम गांम॥

इस से मालूम होता है कि वह सनक सनातन के शुक्ल ब्राह्मण कुल में ब्याही थी।

तीरथ आदि बराह जे, तीरथ सुरसरि धार।
या ही तीरथ आइ पिय, भजहु जगत करतार॥
प्रभु बराह पद पूत महि, जनम-मही पुनि एहि।
सुरसरि तट महि, त्याग अस, गए धाम पिय केहि॥
सबहि तीरथनु रमि रह्यो, राम अनेकन रूप।
जहाँ नाथ आओ चले, ध्याओ त्रिभुवन भूप॥
राम भगति भूषित भयो, पिय हिय निपट निकाम।
अब किमि भूषित होहिहै, तहँ रतनावलि बाम॥

इस से ज्ञात होता है आदि तीर्थ सूकरक्षेत्र, सोरों, तुलसीदास की जन्मभूमि थी। और तुलसीदास ने रामभक्ति में वैराग्य लिया था। निम्न-लिखित दोहे में वह अपने पति का नाम भी लेती है—

जासु दलहि लहि हरषि हरि, हरत भगत भव रोग।
तासु दास पद दासि ह्वै, रतन लहत कत सोग॥
कर गहि लाए नाथ तुम, बादन बहु बजवाय।
पदहु न परसाये तजत, रतनावलिहिं जगाय॥

इस से विदित होता है कि तुलसीदास ने रत्नावलि को सोता छोड़ कर गृहत्याग किया था।

बैस बारही कर गह्यो सोरह गौन कराय।
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन असहाय॥
सागर[7] कर[2] रस[6] ससि[1] रतन, संवत भो दुखदाय।
पिय वियोग जननी मरन, करन न भूल्यो जाय॥

इन दोहों से विदित होता है कि १२ वर्ष की अवस्था मे रत्नावलि का ब्याह हुआ, सोलह मे गौना, और २७ वर्ष में पति-वियोग हुआ। यह घटना सं० १६२७ की थी। उसी

साल उस की माता का देहात हुआ। रत्नावलि को तुलसीदास ने उस के किसी अपराध के ऊपर नहीं त्यागा था, इस बात का रत्नावलि स्वयं एक दोहे में उल्लेख करती है। परन्तु वह यह भी कहती है कि मैं ने इस प्रेम मे कुछ साहस किया जिस का मुझे पश्चात्ताप है। वह साहस कदाचित् तुलसीदास की अनुपस्थिति में अपने माइके बिना पूछे चला जाना था। उस ने भगवत-प्रेम से भवसागर पार करने की जो बात कही थी, वह भी किसी क्रोध मे नही कही थी। परन्तु उसे इस का पश्चात्ताप था।

**हौं न नाथ अपराधिनी, तऊ छमा करि देउ।**
**चरनन दासी जानि निज, बेगि मोरि सुध लेउ॥**
**धिक मो कहँ मो बचन लगि, मोपति लह्यो बिराग।**
**भई बियोगिनि निज करनि, रहूँ उड़ावति काग॥**
**हास्य सहज ही हौ कही, लह्यो बोध हिरदेस।**
**हौ रतनावलि जँचि गई, पिय हिय काँच बिसेस॥**

नीचे लिखे दोहे मे रत्नावलि ने अपने पति तुलसीदास के चचेरे छोटे भाई नंददास का अथवा उन के पुत्र का भी जिक्र किया है—

**मोइ दीनों संदेश पिय, अनुज नन्द के हाथ।**
**रतन समुझि जनि पृथक मोइ, जो सुमिरति रघुनाथ॥**

मुरलीधर ने रत्नावलि और उस के पति तुलसीदास के जो चरित्र अंकित किए हैं उन का आधार उस ने परंपरागत जनश्रुति बताया है। वह कहता है—

**नव[९] कर[२] वसु[८] भू[१] बिक्रमीय। सूकर तीरथ बन्दनीय॥**
**साध्वी रत्नावलि कहानि। बिरधन मुख जस परी जानि॥**
**द्विज मुरलीधर चतुरवेद। लिखि, प्रगटी जगहित सभेद॥**

कवि ने इस कहानी को जैसे अपने वृद्ध जनों से सुना था वैसे ही संवत् १८२९ मे, 'जगहित' के लिए लिख कर प्रकाशित किया। रत्नावलि की कहानी सोरों जिला एटा तथा वहां के आस पास के स्थानों मे प्रसिद्ध है। उस के बनाए हुए दोहे भी वहां कुछ बड़े-बूढ़ों को कंठ हैं। 'रत्नावलि-चरित' मे दिए हुए वृत्तांत की पुष्टि रत्नावलि द्वारा रचित दोहों से बहुत अंश में होती है। इस लेख मे मैं ने इन्हीं ग्रंथों के आधार पर रत्नावलि का चरित्र लिखा है। कवि मुरलीधर इस चरित्र को इस प्रकार आरंभ करता है—

सती भारतहिं सील नाथ। सावित्री सिय सुजन [illegible]॥
अरुन्धती दमयन्ति नारि। अनुसूया पुनि [illegible]॥
सती भई जे जगत धाम। तिन्हिं [illegible] कहँ करि [illegible]॥
रत्नावलि की लिखहुँ गाथ। तेहिं [illegible] महँ [illegible]॥
जासु चरित है अति गंभीर। तदपि लिखहुँ कछु धारि धीर॥

सोरों के निकट बहने वाली भागीरथी गंगा की धारा के पश्चिम 'बदरिका' नाम [illegible] छोटा सा गाँव है। इस गाँव में पंडित दीनबंधु पाठक नाम के एक परम [illegible] रहते थे। इन की धर्मपत्नी का नाम दयावती था। कवि मुरलीधर ने इस स्थान [illegible] रमणीयता और शांतिपूर्ण वातावरण का सुंदर वर्णन किया है। दीनबंधु पाठक के [illegible] पुत्र और एक पुत्री थी। कन्या का नाम रत्नावलि था। वह कन्या अपनी [illegible] ही से तीव्र बुद्धिवाली, रूपवती और सरल स्वभाव की थी। पिता ने उसे शास्त्र, [illegible] तथा पिंगल आदि का अध्ययन, बचपन से ही कराया था। बारह वर्ष की अवस्था आते-आते ही रत्नावलि एक विदुषी बन गई। वह घर के काम-काज में भी निपुण थी। मुरली-धर के शब्दों में—

तनया रत्नावलि कलीन। पति पितु कुल जिन पूत कीन॥
जासु रूप अति मनोहारि। जनुविरञ्चि विरची सम्हारि॥
जनक जननि की अति दुलारि। परिजन पुरजन सबै प्यारि॥
जासु हँसनि चितवनि अनूप। सांति सील सुख नेह रूप॥
गूढ़ ज्ञान की कहति बात। बड़ी बात लघु मुख दिखात॥
बालक पन सों गेह काज। सीखि गई सब पाक साज॥
कछुक दिनन में भई जोग। कहहिं सरसुती ताहि लोग॥
बाल्मीकि पुनि पढ़न लागि। गई भारती तासु जागि॥
पिंगल के कछु अंग जानि। काव्य करन की परी बानि॥
शिव गौरी को धरति ध्यान। पूजति बहु बिधि सहित मान॥

पिता ने कन्या को ब्याह योग्य समझ कर वर की खोज की। इधर तुलसीदास, उपनाम रामोला सोरों में नृसिंह पंडित के यहां विद्याध्ययन करते थे। तुलसीदास के बाल्यकाल ही में उन के माता-पिता का देहांत हो चुका था, और उन की वृद्धा दादी ने उन का पालन

किया था। दीनबंधु पाठक के एक मित्र ने सलाह दी कि नृसिंह की पाठशाला में पढ़ने-वाला तुलसी नामक लड़का बहुत सुंदर और होनहार है। वह कन्या के लिए बहुत उपयुक्त वर रहेगा। इस सलाह को पाकर पाठक जी ने अपनी कन्या का विवाह तुलसीदास के साथ कर दिया। दादी ने तुलसीदास को बड़ी गरीबी और कष्ट से पाला था। एक सुशीला, रूपवती, और सेवा-परायणा पौत्रबधू को पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई। परंतु इस सुख को वह बहुत काल तक न देख सकी—कुछ दिन बाद उस का देहांत हो गया।

तुलसीदास और रत्नावलि का प्रेम-बंधन दिन-दिन दृढ़ होने लगा। दोनों सोरों में ही रहने लगे। तुलसीदास जी बाल्यकाल ही से राम के उपासक थे। और गृहस्थ जीवन के सुखों के बीच भी उन की रामभक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। पुराण आदि की कथा कह कर जीवन निर्वाह करते थे। उन के एक तारा नाम का पुत्र भी हुआ, परंतु वह बचपन में ही इस संसार से चल बसा। रत्नावलि को इस का बहुत दुःख हुआ। परंतु पति के दुलार ने रत्नावलि के इस संतति-दुःख को भुला दिया। कवि मुरलीधर कहता है—

> दम्पति बस बाराह धाम। लहत मोद आठोहु याम॥
> कबहु करत विद्या बिनोद। लहत सबद चातुरि प्रमोद॥
> भक्तनु घर बांचहिं पुरान। तुलसि लहहिं धन और मान॥
> रतनावलि तिहिं चख चकोरि। मधुर बचन बोलत निहोरि॥
> कबहु न अप्रिय कहति बात। कबहु न सो पति सों रिसात॥
> करति सोइ जो पतिहि चाह। पति सेवन मन अति उछाह॥
> तारा पति नामक सपूत। भयो तासु बुधिबल अकूत॥
> गयौ, दैव गति! सुरग धाम। बिलपति रत्नावली बाम॥
> भयो पुत्र को अधिक सोक। धरो धीर मुख पति बिलोक॥
> ब्याह भये दस पंच वर्ष। इक दुख तजि बीते सहर्ष॥

विवाह के पंद्रह वर्ष बाद रत्नावलि एक दिन श्रावण के महीने में राखी बाँधने अपने मायके गईं। तुलसीदास जी कहीं पुराण की कथा कहने गए थे। जब ग्यारह दिन बाद वापस आए तो उन का बिना पत्नी के, अकेले, सूने घर में जी न लगा। स्त्री की याद में रात को ही ससुराल चल दिए। भादों की काली रात थी। गंगा चढ़ी हुई थी। इस भयंकर

काली रात म गगा को पार करके ससुर के घर पहुँचे रत्नावलि को ज्ञात हुआ कि उस के पति आए है, तो उसे बडा विस्मय हुआ, परतु साथ मे हर्ष भी हुआ। जब वे मिले तो रत्नावलि ने पूछा, प्राणनाथ ! इस काली अँधेरी रात मे भादो की उमड़ती गगा को पार कर आप के आने का क्या कारण, और आप ने गगा को कैसे पार किया ? तुलसीदास ने उत्तर दिया 'तुम्हारे प्रेम के सहारे'। रत्नावलि इस पति-प्रेम की प्रतीति से बड़ी प्रसन्न हुई और कहने लगी, 'स्वामिन ! मैं बडी भाग्यशालिनी हू कि मुझे पति का इतना अगाध प्रेम मिला है। धन्य है प्रेम की महिमा ! मेरे प्रेम मे आप ने गगा की धार पार की, जगदा-धार के प्रेम से मनुष्य ससार-सागर से पार हो जाते है।' रत्नावलि पंडिता थी, काव्य-मर्मज्ञा थी। उस के मुख से इस प्रकार प्रेम-महिमा के शब्दो का निकलना स्वाभाविक था। तुलसीदास का भगवद्-प्रेमी हृदय स्त्री के मुख से इस ईश्वरोन्मुख प्रेम का संकेत पाकर राम-प्रेम से उमडने लगा। प्रेम के सहारे चढी गगा को पार करने के बाद, ससार-सागर पार करने का साहस प्रबल हुआ। स्त्री का प्रेम भगवद्-प्रेम मे बदल गया। रत्नावलि सो गई। उसी रात को तुलसीदास सब को सोता छोड न जाने कहा चले गए। प्रात काल उन की खोज की गई परंतु कही पता न चला। इसी वियोग मे साध्वी रत्नावलि सब शृंगारों का त्याग कर बहुत काल तक पति की पादुकाओं की पूजा करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी।

> **पति पद सेवा सों रहित, रतन पादुका सेइ।**
> **गिरत नाव सों रज्जु तिहि, सरित पार करि देइ॥**

कवयित्री ने जैसा कि हम पीछे कह आए है इस घटना के सबध मे सवत् आदि का उल्लेख भी किया है। वह कहती है—

> **सागर[७] कर[२] रस[६] ससि[१] रतन, संवत भो दुख दाय।**
> **प्रिय वियोग जननी मरन, करन न भूल्यो जाइ॥**

सवत् १६२७ मे महात्मा तुलसीदास ने वैराग्य लिया, और रत्नावलि का वियोग हुआ। रत्नावलि पर एक के बाद एक दु ख के प्रहार हुए, इसी वर्ष उस की माता का देहान्त हो गया। इस समय रत्नावलि की आयु सत्ताईस वर्ष की थी। जिस का उल्लेख उस ने इस प्रकार किया है—

बैस बारहीं कर गह्यो, सोरहिं गौन कराय।
सत्ताइस लागत करी, नाथ रतन असहाय॥

एक और दोहे में वह कहती है कि हे स्वामी आप मुझे बड़े गाजे-बाजे के साथ व्याह कर लाए थे परन्तु मुझे त्यागते समय, मुझ को जगा कर आप ने अपने पैर भी स्पर्श नहीं करने दिए।

कर गहि लाये नाथ तुम, बादन बहुत बजवाय।
पदहु न परसाये तजत, रतनावलिहि जगाय॥

कवि मुरलीधर इस घटना का इस प्रकार वर्णन करता है।

दैव मिलन को करच्यो अन्त। कहं नारि अब कहं कन्त॥
जहां योग तहं है वियोग। धरत भोग सो लहत सोग॥
काल कर्म गति है बिचित्र। बनत सत्रु जो रहे मित्र॥
आजु करत नर कछु विचार। कालि होत कुछ होनहार॥
राम लैन कहं यौवराज। बन गे तजि सो राज साज॥
जो तुलसिहि प्रानन पियारि। सो रतनावलि दइ बिसारि॥
गृहजन सोवत करि प्रमान। अचक कियो तुलसी पयान॥

× × ×

पति बिनु रत्नावली दीन। बिलपति जल बिनु जथा मीन॥
उत्तम भोजन बसन त्यागि। सुलगति प्रिय पति बिरह आगि॥
तुलसि पादुका उर लगाय। सोवति तून आसन बिछाय॥

रत्नावलि कभी अपने मायके मे रहती और कभी अपनी ससुराल के सबधियो मे रह आती थी। उस का जीवन केवल प्रिय-वियोग वेदना और रुदन मे ही नही बीता। वह पति-व्रत धर्म को धारण कर ईश्वर पूजन करती थी। उस का जीवन परोपकार और स्त्री-शिक्षा मे व्यतीत होता था। उस ने स्त्रियों को उपदेश दिए। उस ने अपने चरित्र को उस उपदेश को चरितार्थ करने वाला बनाया; उस के नीति, उपदेश और आत्म-अभिव्यजना से पूर्ण दोहो के मिलने मे हिंदी साहित्य-निधि मे अमूल्य रत्नो की वृद्धि हुई है। इन दोहो मे जो कवित्व है और निष्कपट भाव और आत्मानुभूति मे पगी सद्शिक्षाए है उन का वर्णन हम आगे की पंक्तियो मे करेंगे।

महात्मा तुलसीदास को रत्नावलि के इस तप और प्रेम[illegible] के द्वारा मिल चुका था

तुलसीदास ने रत्नावलि के लिए एक उपदेशात्मक संदेश भेजा जिस [illegible] कवयित्री अपने एक दोहे मे इस प्रकार करती है—

**सोइ दीनो संदेस पिय, अनुज नन्द के हाथ।**
**रतन समुझि जनि पृथक सोइ, जो सुमिरति रघुनाथ॥**

एक कथा यह भी प्रसिद्ध है कि एक बार तुलसीदास के चचेरे भाई नंददास के [illegible] अपने ताऊ तुलसीदास को लिवाने के लिए काशी गए। यह घटना [illegible] 'राम चरितमानस' की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर संवत् १६[illegible] वि० [illegible] ठहरती है। सभव है उसी समय महात्मा तुलसीदास ने उस संदेश को अपने [illegible] 'अनुज नंद' कृष्णदास के हाथ रत्नावलि के पास भेजा हो। "दो सौ बावन वैष्णवन [illegible] से यह भी मालूम होता है, कि तुलसीदास ने एक बार अपने चचेरे भाई नंददास को [illegible] पत्र लिखा था, और एक बार वे उन से मिलने वृंदावन भी आए थे। मुमकिन है [illegible] सदेश रत्नावलि के पास नंददास द्वारा ही भेजा गया हो। पति-परायणा, सती, रत्नावलि ने अपना देह-त्याग संवत् १६५१ वि० में किया। यह सवत् 'रत्नावलि-चरित' में [illegible] प्रकार दिया हुआ है।

**भू[1] सर[5] रस[6] भू[1] बरस पूरि। सुरग गई लहि सुजस भूरि।**
**धनि रत्नावलि मात धन्य। तुम सम अब कहु जगत अन्य॥**

इस प्रकार रत्नावलि का जन्म सवत् १६०० और मृत्यु सवत् १६५१ ठहरता है।

## रत्नावलि का काव्य

जैसा कि मै ने पीछे बताया है, रत्नावलि एक कवयित्री थी। वह अपने पति की याद मे हृदय के उद्‌गारों को समय-समय पर प्रकट किया करती थी। पति-मिलन की लालसा, उस के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा, अपना पश्चात्ताप, पति-भक्ति से अनुभव-जन्य उपदेश आदि भावो को उस ने अपने काव्य में प्रकट किया है। ये भाव मुक्तक रूप मे व्यक्त हुए हैं।

श्रेष्ठ कविता, स्वाभाविक भावावेश का सहज उद्‌गार रूप हुआ करती है; और

इस हृदय-प्रसूत भावावेग की गहराई जिस कविता में जितनी अधिक होगी वह कविता उतनी ही अधिक प्रभाव डालने वाली होगी। रत्नावलि के अनेक दोहों ने वियोग वेदना की स्वाभाविक व्यंजना है। उस की कविता में कल्पना की बेसिर-पैर की उड़ान और अत्युक्तियां नहीं हैं। उस में सत्यता है, उस में शिवता है। वियोग में पति प्रेमयोग की साधना करती हुई रत्नावलि कभी पश्चात्ताप करती है, तो कभी अपने को धिक्कारती है, कभी आत्म-प्रबोधन से अपने मन में सन्तोष और साहस भरती है। इस प्रबोधन में उस ने मनुष्य जीवन के अनेक साधारण अनुभवों को व्यक्त किया है। जिन को पढ़ कर हम समवेदना और सहानुभूति के साथ यह महसूस करने लगते हैं, कि इन भावों को वास्तव—में हम भी ऐसे ही अनुभव किया करते हैं। निम्न-लिखित दोहों में उस ने अपना पश्चात्ताप प्रकट किया है—

धिक मोकहं मो बचन लगि, मो पति लह्यौ विराग।
भई वियोगिनि निज करनि, रहूं उड़ावति काग॥
भल चाहत रत्नावली, विधि बस अनभल होइ।
हों पिय प्रेम बढ़्यो चह्यो, दयो मूल तें खोइ॥
जनम बदरिका कुल भई, हों पिय कंटक रूप।
बिंधत दुखित ह्वै चलि गए, रत्नावलि उर भूप॥

इस आत्मग्लानि ने रत्नावलि के दैन्य-भाव को और भी जगा दिया। वह अनुनय-विनय करती है कि, 'नाथ! बुरी भली मैं सब प्रकार से आप की ही हूं। तो फिर आप क्यों नहीं मेरे ऊपर दया करके यहां आते हैं।'

क्षमा करहु अपराध सब, अपराधिनि के आय।
बुरी भली हों आप की, तजौ न लेउ निभाय॥
हौं न नाथ अपराधिनी, तौउ छमा करि देउ।
चरननि दासी जानि निज, वेगि मोरि सुधि लेउ॥

भिन्न-भिन्न दशाओं में प्रेमभाव के जो सचारी भाव हुआ करते हैं, उन में से अनेक भावों का हम रत्नावलि के काव्य में चित्रण पाते हैं। सब से बड़ी बात तो इस काव्य में यह है, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कि ये भाव कवि की कल्पना नहीं हैं, ये कवि की आपबीती बातें हैं। इसी लिए इन शब्द-चित्रों में सच्ची वेदना है, जो पाठक के हृदय

पर गहरी छाप छोड़ती है का वर्णन करते हुए वह अभिलाषा करती है कि क्या प्रिय की प्रेममयी दृष्टि फिर मुझे नहीं मिलेगी।

कहाँ हमारे भाग अस, जो पिय दरशन देयँ।
वाहि पाछिली दीठि सों, एक बार लखि लेयँ॥

वह सोचती है कि क्या मेरे मुरझाए हुए हृदय-कमल को विकसित करने के लिए प्रभात कभी नहीं होगा? इस दुःख और वियोग-रात्रि को ध्वस्त कर कब मेरा भाग्य-रूपी सूर्य उदित होगा?

कबहुँ कि ऊगे भाग रवि, कबहुँ कि होइ बिहान।
कबहु कि बिकसै उर कमल, रतनावलि सकुचान॥

इन्हीं अभिलाषाओं मे कभी निराशा आकर उस के हृदय को मसोसने लगती है, कभी फिर दीनता ग्रहण कर प्रिय को बुलाने की प्रार्थना करती है।

राम भगति भूषित भयो, पिय हिय निपट निकाम।
अब किमि भूषित होहिं हैं, तहँ रतनावलि बाम॥
सबहि तीरथनु रमि रह्यो, राम अनेकन रूप।
जहाँ नाथ आओ चले, ध्याओ त्रिभुवन भूप॥
प्रभु बराह पद पूत महि, जनम मही पुनि एहि।
सुरसर तट महि त्याग अस, गये धाम प्रिय केहि॥

इस कामना के बीच रत्नावलि ने आत्मदशा का निवेदन भी किया है जो वास्तव में बड़ा हृदयद्रावी और कवित्वमय है।

सोवत सों पिय जगि गये, जगिहु गई हों सोइ।
कबहुं कि अब रत्नावलिहिं, आय जगावें मोइ॥
सुबरन संग प्रिय हों लसी, रत्नावलि सम कांचु।
तिहि बिछुरत रतनावली, रही कांचु अब सांचु॥
मलिया सींचो विविध विधि, रतन लता करि प्यार।
नहिं बसन्त आगम भयो, तब लगि परचो तुसार॥
सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय श्याम।
रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन सब गाम॥

एक दोहे में रत्नावलि आत्मदशा को प्रकट करती है कि 'तुलसी' का इतना बड़ा माहात्म्य है कि उस के एक पत्ते को पाकर विष्णु भगवान् भक्तों के संसार-रोग को हर लेते हैं, उसी 'तुलसी' के दास की मैं दासी होकर क्यों इतना दुःख सह रही हूं। भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न क्यों नहीं होते!

जासु दलहिं लहि हरषि हरि, हरत भगत भव रोग।
तासु दास पद दासि ह्वै, रतन लहत कत सोग॥

कितना प्रभावशाली भाव है! कवयित्री की काव्य-प्रतिभा उस के हृदय की अनुभूति से मिल कर कितनी समवेदना और काव्यानुभूति प्रकट कर रही है! प्रिय के बिछुड़ने की वेदना और याद में हृदय की मसोस को वही हृदय जान सकता है जिस ने प्रेम किया है, वह भी साधारण प्रेम नहीं, वह प्रेम, जिस में आत्मसमर्पण और प्रियभक्ति की गहनता हो। रत्नावलि कहती है—

को जानै रतनावली, पिय बियोग दुख बात।
पिय बिछुरन दुख जानती, सीय दमैंती मात॥

इसी वियोग-दुःख अवस्था में रत्नावलि को अपना काल निकट आया दीखता है, परन्तु फिर भी इस 'दशम अवस्था' के बाद, उस की कामना है कि प्रिय ही आकर अपने हाथों से इस तन का दाह करे—

प्रिय वियोग दावा दही, रतन काल नगिच्याय।
निज कर दाहैं आइ तन, तौ मन अबहुं सिराय॥

प्रेमी का वियोगी हृदय जब विरह की समस्त दशाओं में होकर बीत लेता है, तब वह स्वयं प्रियमय हो जाता है। उस समय आत्म-विस्मृति में, वह बिरह-दुःख के भीतर एक संतोष और चित्त की दृढ़ता को पा लेता है। इस का सब से बड़ा उदाहरण कृष्णभक्तों की गोपिकाएं हैं। आत्म-प्रबोधन के बाद मिलन की चाह दब जाती है, और सर्वत्र प्रिय की मूर्ति ही दिखाई देने लगती है। यह यद्यपि काल्पनिक संयोग है परन्तु प्रेमी इसी संयोग में मग्नता और आनंद का अनुभव करने लगता है। भक्त सूरदास ने इसी अवस्था को "विरह स्वरूप परमार्थ" कहा है। रत्नावलि का वियोग भी योग में परिणत हो गया था। उस के चित में दृढ़ता आई, आत्म-प्रबोधन ने विरह-वेदना का स्थान धैर्य और लोकोपकार को दे दिया। वह अपने मन को समझाती है—

बुखन भोगि रतनावली मन मह् जनि दुखियाइ ।
पापनु फल दुख भोगि तू, पुनि निर्मल ह्वै जाइ ॥

पति-वियोग के बाद रत्नावलि की माता का भी देहांत हो गया । यह बात हम रत्नावलि के एक दोहे के आधार पर कह चुके है। धन का अभाव, माता का विछोह आदि दुःखों के अतिरिक्त सब से बडा दुःख पति का अज्ञात-प्रवास था। पति के न होने पर हिंदू नारी की क्या गति होती है, यह सभी हिंदू जानते है। रत्नावलि ने यह सब यातनाएं भोगीं। इन यातनाओं के ताप ने उसे शुद्ध सोने के समान बना दिया ।

ज्यों ज्यों दुख भोगति तरुहिं, दूरि होत तब पाप ।
रतनावलि निर्मल बनत, जिमि सुबरन सहि ताप ॥

और वह प्राचीन भारतीय देवियो के पतिव्रत-धर्म का आदर्श अपने सामने रख, पति-भक्ति में ही जीवन बिताने लगी ।

रतनावलि जिय जानि लिय, पतिव्रत सकति महान ।
मृत पति हू जीवित कर्‌यौ, सावित्री सतिवान ॥
पति पद सेवा सों रहित, रतन पादुका सेइ ।
गिरत नाव सों रज्जु तिहि, सरित पार करि देइ ॥

रत्नावलि के ऊपर तुलसीदास जी के इस सदेश का—"रतन समुझि जनि पृथक मोहि, जो सुमिरति रघुनाथ"—प्रभाव उस के निम्न-लिखित दोहे से प्रकट होता है । जिस मे उस ने अपने हृदय की धीरता का परिचय दिया है ।

राम जासु हिरदे बसत, सो पिय मम उरधाम ।
एक बसत दोऊ बसें, रतन भाग अभिराम ॥

आत्मचारित्रिक भावात्मक काव्य के अतिरिक्त रत्नावलि ने, जैसा कि हम ने पीछे बताया है, नीति और उपदेशात्मक काव्य की रचना भी की है । उस ने अपने अनुभव से स्त्रियो को बहुत-सी सद्शिक्षाएं दी हैं, जो भारतीय नारी-धर्म के आदर्शों को सामने रखती है । ये शिक्षाएं भारतीय सस्कृति की संरक्षिका युवतियो को धारण करने योग्य हैं । पति-प्रेम और पति भक्ति की उस ने बड़ी प्रशंसा की है ।

उदाहरण—

सब रस रस इक ब्रह्मरस, रतन कहत बुध लोय ।
पै तिय कहं पिय प्रेम रस, बिन्दु सरिस नहिं सोय ।।
रत्नावलि पति राग रँगि, वै बिराग में आगि ।
उमा रमा बड़भागिनी, नित पति पद अनुराग ।।
पति गति, पति वित, मीति पति, पति गुरु सुर भरतार ।
रतनावलि सरबस पतिहि, बंधु बंद्य जगसार ।।

सती स्त्री के प्रति—

वन बाघिन आमिष भकति, भूखी घासु न खाइ ।
रतन सती तिमि दुख सहति, सुख हित अघ न कमाइ ।।
विपति कसौटी पै विमल, जासु चरित दुति होइ ।
जगत सराहन जोग तिय, रतन सती है सोइ ।।

बालिकाओं को शील की शिक्षा—

बाल बैस ही सों धरो, दया धरम कुल कानि ।
बड़े भये रतनावली, कठिन परैगी बानि ।।
नयन बचन तिय बसन निज, निर्मल नीचे धारि ।
करतब रतन बिचार तिनि, ऊंचे राखि उदार ।।
ऊंचे कुल जन्में रतन, रूपवती पुनि होय ।
धरम दया गुन सील बिनु, ताहि सराह न कोय ।।

युवतियों को उपदेश—

सत्य सरस बानी रतन, सील लाज जे तीन ।
भूषन साजति जो सती, सोभा तासु अधीन ।।
घर घर घूमनि नारि सों, रतनावलि मति बोलि ।
इनसों प्रीति न जोरि बहु, जनि गृह भेद न खोलि ।।
रतन उमा सी सुख सदन, बनि सारद धरि ज्ञान ।
खलन दलन हित कालिका, बन कर धारि कृपान ।।

रत्नावलि स्त्रियों को उमा के समान गृहणी, शारदा के समान ज्ञान-पंडिता और दुष्चारियों के दमन के लिए कृपाण-धारिणी कालिका के समान वीरांगना देखना

है स्त्रियो के लिए कितना उच्च साथ ही सुलभ आदर्श स्थापित किया है

पति के अतिरिक्त अन्यजनो को स्त्री किस रूप से देखे, यह उपदेश नीचे के दोहे मे कवयित्री देती है।

रतनावलि पति छांड़ि इक, जेते नर जग माहिं।
पिता भ्रात सुत सम लखहु, दीरघ सम लघु आहिं॥

जो स्त्री अपने तन, मन, अन्न वस्त्र, भोजन और भवन को पवित्र रखती है वह प्रशसनीय है।

तन मन अन भाजन बसन, भोजन भवन पुनीत।
जो राखति रतनावली, तेहि गावत सुर गीत॥

कैसी हितकारिणी शिक्षा है!

परोपकार—

परहित जीवन जासु जग, रतन सफल है सोइ।
निजहित कूकर काक कपि, जीवहिं का फल होइ॥
जे निज जे पर भेद इमि, लघु जन करत विचार।
चरित उदारन को रतन, सकल जगत परिवार॥
अस करनी करि तू रतन, सुजन सराहैं तोइ।
तुव जीवन लखि मुद लहैं, मरे करैं सुधि रोइ॥

वास्तव में उपर्युक्त दोहे की बाते रत्नावलि के चरित्र पर ज्यो की त्यो चरितार्थ होती है। ऐसी सती साध्वी का कौन स्मरण न करेगा?

मिष्ठभाषण—

मधुर असन जनि देउ कोउ, बोलो मधुरे बैन।
मधु भोजन छिन देत सुख, बैन जन्म भरि चैन॥
रतनावलि काँटो लग्यो, बैदनु दयो निकारि।
वचन लग्यौ निकस्यौ न कहुँ, उन डारो हिय फारि॥
रतन भाव भरि भूरि जिमि, कवि पद भरत समास।
तिमि उचरहु लघु पद करहि, अरथ गंभीर बिकास॥

स्त्रियो का बाल-पोषण—

बालहिं लालहु अस रतन, जो न औगुनी होइ ।
दिन दिन गुन गुरुता गहैं, साँचो लालन सोइ ।
बालहिं सीख सिखाय अस, लखि लखि लोग सिहाँय ।
आसिष दें हरषें रतन, नेह करें पुलकाय ॥

साधारण शिक्षा—

रतन न पर दूषन उगटि, आपुन दोष निवारि ।
तोहि लखें निरदोष वे, दें निज दोष बिसारि ॥
करहु दुखी जनि काहु को, निंदरहु काहु न कोय ।
को जानै रतनावली, आपनि का गति होय ॥
श्रम सों बाढ़त देह बल, सुध संपति धन कोष ।
बिनु श्रम बाढ़त रोग तन, रतन दरिद दुष दोष ॥
जो जाको करतब सहज, रतन करि सकै सोइ ।
बाबा उच्चरतु ओठहीं, हा हा गल सों होय ॥

उपर्युक्त विवरण से हम ने देखा कि रत्नावलि ने दो प्रकार की रचनाएं की हैं । एक आत्मचरित-संबधी, जिस में उस ने प्रेम की वियोग अवस्था का चित्रण किया है, दूसरे नीति और उपदेश सबधी । उपदेशात्मक काव्य मे उस ने स्त्री-शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया है। तुलसीदास, रहीम, वृंद, गिरधर कविराय, दीनदयाल गिरि आदि नीति और उपदेशात्मक काव्य-लेखकों ने साधारण अनुभव और सद्शिक्षा के लोकोपकारी भावों का चित्रण किया है, परतु स्त्री-शिक्षा की ओर इन कवियों ने बहुत कम ध्यान दिया है। इस कार्य की पूर्ति रत्नावलि के काव्य से होती है। प्राचीन हिंदी काव्य की कवयित्रियों मे मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई, ताज और शेख विशेष उल्लेखनीय हैं। इन मे मीरा का काव्य सर्वश्रेष्ठ है। उस ने प्रेमकाव्य की एक अपूर्व मदाकिनी बहाई है। उस का वह प्रेम आध्यात्मिक है, जो अति पवित्र, मधुर और सुखद है। उस के हृदय की भावुकता और अपने इष्ट परमार्थिक पति कृष्ण के साथ मिलन की लालसा और अनुभूति तुलसी, सूर जैसे सत भक्तों से कहीं अधिक गहरी है। माधुर्य भाव से भक्ति करने वाले संतों ने स्त्री-सुलभ प्रकृति में अपनी मनोवृत्ति को रख कर अपने परम आराध्य नायक के प्रति भाव प्रकट किए हैं। मीरा के पास प्रेमाकुल नारी-हृदय स्वाभाविक था। इसी से उस

की प्रेम-पीर में गहराई है और मर्मस्पर्शता है। मीरा का प्रेम गोपिकाओं के प्रेम की अनुरूपता के बहुत निकट पहुँच गया है, परन्तु एक बात हमे अवश्य माननी पड़ेगी कि मीरा का काव्य यद्यपि अत्यंत भावपूर्ण है और संगीतमय होने से मधुर है, परन्तु उस में काव्य-कला के बाह्य उपकरण, जैसे भाषा, शैली, अलंकार आदि के सौन्दर्य की कमी है, और उस मे लोकरक्षा के प्रति उदासीनता है। रत्नावलि के काव्य की तुलना केवल मीरा के काव्य से ही की जा सकती है। अन्य कवयित्रियो का जैसे दयाबाई, सहजोबाई, [illegible] आदि के काव्य उस के काव्य की तुलना मे बहुत साधारण दर्जे के है। मीरा का प्रेम आध्यात्मिक था और रत्नावलि का लौकिक। लेकिन जो गहराई और पवित्रता हम मीरा के प्रेम मे पाते है, वही गभीरता और पुनीतता रत्नावलि के प्रेम मे है। मीरा के उपास्य इष्टदेव भगवान् कृष्ण हैं। रत्नावलि के उपास्य उस के पति महात्मा तुलसीदास हैं। मीरा प्रेम-योगिनी है। रत्नावलि के हृदय में राम का निवास है परन्तु राम को यह स्थान तुलसी के हृदय के द्वारा मिला है।

> राम जासु हिरदे बसत, सो पिय मम उर धाम।
> एक बसत दोऊ बसैं, रतन भाग अभिराम॥

रत्नावलि की भक्ति ईश्वर के प्रति न होकर अपने लौकिक पति तुलसीदास की ओर ही थी, परन्तु उस की भावुकता और विरह-वेदना मीरा की 'प्रेम पीर' के समान गभीर थी। मीरा का प्रेम आध्यात्मिक होने के कारण लोक-लाज की शृंखला का अतिक्रमण कर गया था। उस ने संसार का त्याग किया, इसी से हम देखते है कि उस ने लोकोपकारी सांसारिक भावो की ओर जिन को कबीर, तुलसी, आदि संतो ने तथा रत्नावलि ने संसार हित के लिए व्यक्त किया है, ध्यान नही दिया। तुलसीदास आज हिंदी भाषा-भाषी प्रांत मे सब से अधिक मान्य कवि है, इस का कारण उन की केवल अनन्य रामभक्ति ही नही है, किंतु उन की रचनाओ मे जो लोकोपकारी भाव विद्यमान हैं, वे भी उन्हे इतना लोकप्रिय बना रहे है। उन के 'रामचरितमानस' मे हम लोक-अनुभूति, पथ-प्रदर्शन और मानवता का एक उच्च आदर्श पाते है। उन की पत्नी रत्नावलि की सद्शिक्षाएं भी स्त्रियो के लिए उसी प्रकार हितकारिणी है। भक्तिनी मीरा और पतिपरायणा रत्नावलि के काव्य मे यही उपर्युक्त अतर है।

## रत्नावलि के काव्य की भाषा शैली

रत्नावलि के काव्य में भावों की गंभीरता के साथ भाषा-शैली का भी सौंदर्य है, यह हम पहले कह चुके हैं। उस की भाषा ब्रजभाषा है। इस भाषा में प्रसाद और माधुर्य-गुण सर्वत्र मिलेंगे। जैसी उस समय की सरल साहित्यिक ब्रजभाषा थी, उसी प्रकार की भाषा का रूप इस कवयित्री के दोहों में मिलता है। भाषा के तत्सम रूप की अपेक्षा तद्भव रूपों का अधिक प्रयोग किया गया है। जैसे, 'तिय', 'सरबस', 'भगति', 'बिपति', 'करतब' आदि। रत्नावलि के समकालीन कवि सूर, तुलसी, नंददास आदि कवियों की ब्रजभाषा में कहीं-कहीं हिंदी शब्दों के पूर्वी रूपों का भी प्रयोग पाया जाता है। जैसे, 'अहै', 'आहि' "एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै" (कवितावली—तुलसीदास), "निपट ठगोरी आहि मंद मुसकानि", (रासपंचाध्यायी—नंददास)। परंतु रत्नावलि की भाषा ठेठ ब्रजभाषा रूप में है। ब्रजभाषा में क्रिया से भाव-वाचक संज्ञाएं तीन प्रकार से बनती हैं। एक तो व्यंजनांत धातुओं में 'अनो', या 'अनौ' और स्वरांत धातुओं में 'नो' या 'नौ' लगा कर बनती है। जैसे, 'चलनो' 'मारनो', 'लैनो', दूसरे 'अन', या 'अनि' और 'न', या 'नि' लगा कर जैसे 'फरकन' या 'फरकनि', 'चलन' या 'चलनि', तीसरे 'न' अंतवाली क्रियाओं में 'न' के स्थान पर 'इबो' या 'इबौ' लगा देते हैं। जैसे, 'मारना' से 'मारिबौ', 'चलिबौ'। रत्नावलि की कविता में भाववाचक संज्ञा के ब्रजभाषा के इन तीनों रूपों का प्रयोग मिलता है। जैसे, "पिय बिछुरन दुख जानती", 'दऊँ उराहनौ', "चढ़िबौ कठिन सुमेर", "लरिकन संग, खेलनि, हँसनि, बैठनि रतन इकन्त", 'बतरानि'। इसी प्रकार संज्ञा, सर्वनाम, अव्ययादि व्याकरण के रूपों में रत्नावलि की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा का रूप प्रकट कर रही है। इस भाषा में मुहाविरों का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया गया है। जैसे 'राग में रंगना' 'विराग में आग देना', 'मन सिराना' आदि। प्रचलित कहावतों का प्रयोग बहुत नहीं है। कहीं-कहीं दो चार कहावतें प्रयुक्त हैं। जैसे—"पाँच पैंड आगे चले, होनहार सब ठौर"। स्थान-स्थान पर स्वाभाविक अनुप्रासों के प्रयोग ने इन दोहों की भाषा को और भी मधुर बना दिया है। जैसे—

(१) लखि लखि चप सीतल करैं, हीतल लहैं हुलास।

(२) राम भगति भूषित भयो, पिय हिय निपट निकाम॥

(३) रतन रमा सी सुख सदन बनि सारद धरि ज्ञान ।
　　खलन दलन हित कालका, बन कर धारि कृपान ॥

(४) सील सनेह समेत तौ, सुरभित सुवरन सोन ।

इस प्रकार भाषा का माधुर्य रत्नावलि के लगभग सभी दोहों में मिलता है ।

अलंकार और उक्ति-वैचित्र्य के उदाहरण भी अनेक हैं ।

रत्नावलि के काव्य में उपमा, रूपक, दृष्टांत आदि सादृश्य-मूलक तथा पर्या-योक्ति श्लेष, अनुप्रास आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग मिलता है । परन्तु उन अलंकारों का प्रयोग व्यक्त भाव के प्रभाव को वेगवान् बनाने के लिए ही किया गया है । चमत्कार-उत्पादन और उक्ति-वैचित्र्य प्रदर्शन के लिए नहीं । ये उक्तियाँ भावों को अनुरंजित करती हुई, पाठक के हृदय में एक अपूर्व काव्यानंद की सृष्टि करती हैं ।

उपमा—

(१) कबहुँ रह्यो नवनीत सो, पिय हिय भयो कठोर ।
　　किमि न द्रवहि हिम उपल सम, रतन फिरें दिन मोर ॥

(२) रतन रमा सी सुख सदन, बनि सारद धरि ज्ञान ॥

इस प्रकार अनेक दोहो मे उपमा के सुंदर-सुंदर उदाहरण मिलेंगे । रूपक का व्यवहार भी कवयित्री ने बहुत जगह किया है । उन मे से कुछ नमूने नीचे दिए जाते है—

(१) प्रिय 'वियोग दावा' दही ।

(२) 'रतन प्रेम डंडी तुला,' पला जुटे इक सार ।
　　एक बाँट पीड़ा सहै, एक गेह संभार ॥

(३) 'विपति कसौटी' पै विमल, जासु चरित दुति होइ ।

(४) रत्नावलि 'भव-सिन्धु' मधि, तिय 'जीवन की नाव' ।
　　'पिय केवट' बिनु कौन जग, खेय किनारे लाव ॥

(५) ऊपर सों हरि लेत मन, 'गाठि-कपट' उर माँहि ।

रूपकातिशयोक्ति—

पांच तुरग तन रथ जुरे, चपल कुपथ लै जात ।
रतनावलि मन सारथिहि, रोकि सकें उत्पात ॥

उदाहरण और अर्थांतरन्यास अलकारो का तो कवयित्री ने बहुत अधिक व्यवहार किया है।

उदाहरण—

(१) पति पद सेवा सों रहित, रतन पादुका सेइ।
गिरत नाव सों रज्जु तिहि, सरित पार करि देइ॥

दृष्टात—

(१) छनहुँ न करि रतनावली, कुलटा तिय को संग।
लनक सुधाकर संग सों, पलटति रजनी रंग॥

(२) वन बाधिनि आमिष भकसि, भूखो घासु न खाइ।
रतन सती तिमि दुख सहत, तुच्छ हित अघ न कमाइ।

(३) नर अधार बिनु नारि तिमि, जिमि स्वर बिनु हल होत।
करन धार बिनु उदधि जिमि, रतनावलि गति पोत॥

पर्यायोक्ति—

जासु दलहिं लहिं हरषि हरि, हरत भगत भवरोग।
तासु दास पद दासि ह्वै, रतन सहत कत सोग॥

कवयित्री ने "तुलसीदास" के नाम को कैसे सुदर कूट द्वारा लिया है!

श्लेष—

सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय श्याम।
रतनावलि आभा गई, तुम बिनु बन सम गाम॥

इस मे "सुकुल" शब्द, दो अर्थ रखने से श्लिष्ट है। सुकुल का अर्थ शुक्ल आस्पद वाले ब्राह्मण और दूसरे अर्थ मे उज्ज्वल। इसी प्रकार 'रत्नावलि' पर श्लेष दिया है। रत्नों की माला तथा स्वय कवयित्री का नाम।

अनुप्रास के उदाहरण तो भाषा के विवेचन मे हम दे चुके है। अनुप्रास का माधुर्य रत्नावलि के लगभग सभी छदों मे मिलेगा।

भाव के उत्कर्ष को बढाने वाले अलकारो के व्यवहार के अतिरिक्त कुछ दोहों मे काव्य-उक्तिया भी बड़ी सुदर बन पड़ी है। जिन मे उत्कृष्ट कवि-कल्पना का परिचय मिलता है। जैसे—उपर्युक्त इस दोहे में—

**मलिया सींची विविध विधि रतन लता करि प्यार ।**

**नहिं बसन्त आगम भयो, तब लगि परचो तुसार ॥**

तथा—

**सुजन बचन सरिता समथ, रतन बान अरु प्रान ।**

**गति गहि जे नहिं बाहुरत, तुपक गुटी परिमान ॥**

रत्नावलि की जीवनी के प्रसग मे हम कह आए हैं कि कवि मुरलीधर के कथनानुसार रत्नावलि एक परम पडिता थी । उस को सब प्रकार के शास्त्रों का ज्ञान था । उस बात की पुष्टि उस के दोहो से होती है । ससार का व्यापक ज्ञान और अनुभव उस को बहुत था, यह भी उस के दोहो मे प्रकट है । परन्तु कुछ दोहों में कुछ विषयों के विशेष ज्ञान का परिचय भी मिलता है । जैसे—

**नर अधार बिनु नारि तिमि, जिमि स्वर बिनु हल होत ।**

**करनधार बिनु उदधि जिमि, रतनावलि गति पोत ॥**

जैसे स्वर के बिना किसी हलत अक्षर की स्थिति और उस का उच्चारण कठिन होता है, और जैसे समुद्र मे बिना खेवक के जहाज की हालत होती है, वही दशा पुरुष बिना स्त्री की है । इस में रत्नावलि के 'स्वर' 'व्यजन', आदि भाषा-विज्ञान के विषय का परिचय विशिष्ट है ।

**रतन भाव भरि भूरि जिमि, कवि पद भरत समास ।**

**तिमि उचरहु लघु पद करहि, अरथ गंभीर बिकास ॥**

इस मे उस के पिंगल और कविता-ज्ञान का परिचय मिलता है ।

**सवरन स्वर लघु द्वै मिलत, दीरघ रूप लखात ।**

**रतनावलि असवरन द्वै, मिलि निज रूप नसात ॥**

**जो जाको करतब सहज, रतन करि सकै सोय ।**

**बाबा उच्चरतु ओठही, हा हा गल सों होय ॥**

इस दोहे से भी कवयित्री के व्याकरण-ज्ञान का परिचय मिलता है ।

अंत में यह कहा जा सकता है कि कवि तुलसीदास की धर्मपत्नी होने के कारण रत्नावलि के चरित्र का बड़ा महत्व है । इस के अतिरिक्त साहित्य और रचना-दृष्टि से भी रत्नावलि के दोहो को आदर मिलना चाहिए ।

---

# उर्मिला की नींद

## एक आंध्र लोक-गीत

[ लेखक—श्रीयुत देवेंद्र सत्यार्थी ]

वही सीता की बहन, लक्ष्मण की पत्नी, उर्मिला अपराधिनी-सी खड़ी है—रामायण के एक कोने में। वाल्मीकि ने उसे अपनाया नहीं, वरदान देना तो दूर रहा। न जाने कितनी स्मृतियां सोई पड़ी है इस उपेक्षिता की पलको में! उड़ते मेघों-मे उस के स्वप्न अमर रहने की ठान चुके है। उस की कहानी एक करुण कविता ही तो है!

यह देखिए। भवभूति अपनी अमर रचना लिए हाज़िर है। 'रस एक ही है, और वह है करुण',[१] यह उन का आदर्श है। 'उत्तररामचरित' का पहला अक है। लो, लक्ष्मण आ गए; वह राम से कह रहे है कि चित्रकार ने निर्देश के अनुसार उन का चरित चित्र-वीथिका मे चित्रित कर दिया है। 'आओ, आर्य, उन चित्रों को देखो!' राम और सीता चित्र देख रहे है। लक्ष्मण अर्वाचीन 'क्यूरेटर' की भाँति चित्रों का परिचय देते जा रहे है। सीता को सबोधन करके वह कह रहे है—'इयमार्या' (यह आप है), 'इयमार्या मांडवी' (यह आर्या माडवी है); 'इयमपि वधू. श्रुतकीर्ति' (यह वधू श्रुतकीर्ति भी है)। लो अब एक चित्र की ओर सकेत करती स्वय सीता पूछ रही है—'वत्स इयमप्यपरा का' (वत्स, यह और कौन है?) इस पर लक्ष्मण लजा गए है। उन के हृदय मे जो एक लहर-सी उठ खड़ी होती है, वह कितनी मार्मिक है—'अये ऊर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यत संचारयामि' (अहो! उर्मिला को सीता जी पूछ रही है। तो दूसरी वस्तु इन्हे दिखाऊ)। मन मे यह भाव है। लो, वह चित्र मे परशुराम को दिखला रहे है।

---

[१] 'एको रसः करुण एव।'

उर्मिला के लिए 'उत्तररामचरित' के लेखक का यह बड़ा गूढ़, साहित्यिक संकेत है।

'वाणी'[1] की रूप-रेखा में मुझे उर्मिला का व्यक्तित्व दिखाई दिया है—"कहीं से वर्षा के रूप में आकाश के बादल धरती पर उतरते हैं—धरती को पकड़ाई देने के लिए। ऐसे ही कहीं से स्त्रियाँ आती हैं, पृथ्वी पर—बंधनों में बँधने के लिए। इन के लिए थोड़ी जगह की तंग दुनिया है—थोड़े आदमियों की। उतने ही में उन का अपना सब कुछ धर जाना चाहिए—उन की अपनी सब बातें, सब व्यथाएँ सब चिन्ताएँ। इसी से इन के सिर पर घूँघट है, हाथों में कंकण है, घर में आँगन का घेरा है। स्त्रियाँ सीमा-स्वर्ग की इन्द्राणी हैं। . . . भला, किस देवता के कौतुक-हास्य की तरह अपरिमित चंचलता लिए हुए, हमारे मुहल्ले में, उस छोटी-सी लड़की का जन्म हुआ? . . . वह मानो पहाड़ी झरने का पानी है, शासन के कंकड़-पत्थरों को लाँघ-लाँघ कर चलती है। उस का मन मानो वेणु वृक्ष की ऊपर की डाली का पत्ता है, हमेशा फर-फर काँपता रहता है। आज देखूँ तो वह लड़की छज्जे की मुँडेर पर झुक कर चुपचाप खड़ी है—वर्षा शेष के इंद्रधनुष की तरह। . . . नहीं मानो चलते-चलते एक जगह ठिठक कर सरोवर हो गई है। . . . आदि युग में सृष्टि के मुँह से पहली बात निकली थी जल की भाषा में, हवा के कंठ से। लाखों करोड़ों युग पार हो कर उस स्मरण-विस्मरण की अतीत वाणी ने आज वर्षा बादल के कल-स्वर में उस लड़की को गाकर पुकारा। . . . इसी से वह बड़ी-बड़ी आँखें खोल कर निस्तब्ध खड़ी रही,—मानो अनंत काल ही की प्रतिमा है वह।" इस अर्वाचीन, गुमसुम वाणी की भाँति ही रघुकुल की कुलवधू उर्मिला रामायण के एक कोने में सदियों से खड़ी है।

अत्यंत निकट हो कर इस उपेक्षिता को देखने से हमारे कुतूहल की हद नहीं रहती। इस देवी की अपरिमेय और अनिर्वचनीय करुणा को आदि-कवि की अनुष्टुप्-धारा में मुनासिब स्थान क्यों न मिल सका, यह सोचते हम मन मसोस कर रह जाते हैं। बहेलिये के तीखे तीर द्वारा घायल क्रौंच पक्षी, जो अपनी प्रेयसी से दूर पथ पर पड़ा दम तोड़ रहा था, वाल्मीकि को एक संक्षिप्त, मार्मिक रूपक दे गया था। और विद्वानों का मत है कि कैकेयी की ज़िद, रावण द्वारा सीता-हरण और फिर राम और सीता के मिलने के कुछ

---

[1] रवींद्रनाथ ठाकुर, 'वाणी', 'विशाल-भारत', जुलाई १९३२

ही दिन बाद राम द्वारा सीता का परित्याग, जिस का कारण यह बतलाया जाता है कि प्रजा में ऐसा कुछ अनुरोध उठ खड़ा हुआ था, भाग्य के बहेलिये सरीखे तीखे तीरों के प्रतीक भर हैं। यह ठीक है कि कवि की प्रतिभा राम के विराट् रूप का अभिनंदन करने के लिए ही अग्रसर हुई थी। नारद से कवि ने पूछा था—'समग्र मूर्तिमती लक्ष्मी ने किस एक आदमी की पनाह ली है?'[1] तब नारद ने इस के जवाब में कहा था—'देवताओं में भी ऐसा गुणी आदमी मुझे नजर नहीं आ रहा, चाँद सरीखा जो आदमी है, जिस में ये सब गुण भरे पड़े हैं, लो उसी का हाल सुनो।'[2] चिर-परीक्षित और परिचित राम आदमी ही तो हैं, और गंभीर भाषा में कवि ने राम को पुत्र, पति, भाई, मित्र और सम्राट्, सभी रूपों में सुसंगति, आकर्षण और अनुकूलता की मूर्ति सिद्ध करते-करते आदमी से देवता बना दिया है। पर हम तो इस सागर सरीखे महाकाव्य में, जिस में अनेक व्यक्तित्वों पर प्रकाश पड़ा है, उर्मिला के प्रति उपेक्षा का भाव देख कर ही रंजीदा हैं। एक महाकवि, जो क्रौंच पक्षी के दुःख में शरीक हुआ था, उर्मिला की परवाह क्यों न कर सका? लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति का गान किया गया; फिर उस की विरहिणी पत्नी का चित्र क्यों नहीं खींचा गया? क्यों इस देवी के प्रति कवि-हृदय में इतनी कंजूसी आ गई? पूजा का अर्घ्य तो इस साध्वी को नहीं चाहिए था। पर कवि ने इस ओर उदार होकर देखा तो होता। सजीव स्त्रीत्व की यह मूर्ति, जिसे चौदह वर्ष के लिए पति-वियोग की व्यथा सहनी पड़ी, अपने सहज- सरल और घरेलू रूप में किसी आडंबर की मुहताज तो न थी। इस की लंबी तपस्या—संयत सौंदर्य की मातृभाषा सरीखी धरती पर स्वर्ग से कहीं ऊँचा आदर्श स्थापित कर सकने की क्षमता, काव्य-लक्ष्मी के शयन-गृह की दीपशिखा से होड़ कर रही है।

रामायण की कविता-धारा, जो कभी सूखने की नहीं, भारत के प्रत्येक प्रांत में,[3] ग्राम-ग्राम में, मौजूद है। हिंदी की कोख तुलसीदास को पाकर धन्य हुई है; बंगाल में

---

[1] 'समग्रा रूपिणी लक्ष्मी कमेकं संश्रितं नरं', वाल्मीकि रामायण, बालकांड, प्रथम सर्ग।

[2] 'देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतम्।
श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तो नरचंद्रमाः॥' वही।

[3] 'विशाल-भारत', दिसंबर १९३४ में 'नेपाल का तुलसीदास भानुभक्त', शीर्षक मेरा लेख देखिए।

कृत्तिवास की प्रतिभा द्वारा राम का रूप गाया गया है। प्रांत प्रांत के लोक गीतों में भी राम विराजमान हैं।[1]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है—"किसी समय रामायण और महाभारत इतिहास थे, किंतु आधुनिक इतिहास उस की कुटुंबिता को स्वीकार करने में अत्यन्त म... है। वह कहता है कि काव्य के साथ परिणीत हो जाने से उस का (इतिहास का) ... नष्ट हो गया है। अब उस के कुल का उद्धार करना इतना कठिन हो गया है कि इतिहास काव्य के रूप में ही उस का परिचय कराना चाहता है। काव्य कहता है—'भाई इतिहास, तुम्हारे अंदर भी बहुत कुछ मिथ्या है, और मेरे अंदर भी बहुत सी ... है, ... हम दोनों पहले के समान मेल-मिलाप कर लें।' इतिहास कहता है कि—'ना भाई, ... अपने हिस्से का बँटवारा कर लेना ही अच्छा है।' ज्ञान नामक प्रवीण ने सर्वत्र ... वारा के कार्य को प्रारंभ कर दिया है। सत्य के राज्य और कल्पना के राज्य में ... की रेखा खींचने के लिए उस ने कमर बाँध ली है।"[2] जीवन का ..., साहित्य के उषाकाल में जब कि देवताओं की कल्पना से सट कर लोक-मानस देश के ... में अग्रसर होता है, फिरंदर गायकों द्वारा, जो द्वार-द्वार पर गश्त लगाते तथा ... थकते नहीं, काव्य, संगीत और इतिहास की त्रिवेणी प्रसारित होती है। जीवन-... की नाना तुलनाएं और उपमाएं, नाना रूपक और अलंकार, नाना छंद, अभिव्यक्ति द्वारा देश के अमर संस्मरणों में जीवित रह सकने की चेष्टा, देवताओं के सम्मुख अपार ... के प्रतीक वीर नायक को खड़ा करने का साहस, लोक-मानस की यह सब ... पर की वनस्पति की भाँति ही फलती-फूलती है। "इतिहास लोगों के अंदर जनश्रुति के रूप में बिखरा हुआ होता है, किसी ऐतिहासिक की प्रतिभा जब उसे एक सूत्र में ... ओर से बाँध लेती है, तब बहुत समय के अव्यक्त इतिहास की मूर्ति हमारे सम्मुख प्रकाशित हो जाती है।"[3]

और जैसा कि अनातोले फ्रांस ने अपनी मातृ-भूमि के लोकगीतों की आलोचना

---

[1] 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', भाग १५, संवत् १९९१ में 'उड़िया ग्राम-साहित्य में राम-चरित्र', शीर्षक मेरा लेख देखिए।

[2] 'साहित्य', १९२९, (बंबई, हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय), पृ० १००

[3] वही, पृ० ८९

करते हुए लिखा था—"जिसे खोने के भय से हम भीत हो उठते है, हम उसी की परवाह किया करते है, क्योंकि, आह, अतीत से बढ कर काव्य की वस्तु दूसरी नही।"

यूनान मे जब होमर का जन्म हुआ था, सदियो से पीढी-दर-पीढी चले आने वाले गीत—यूनान की जनता की कविता के वे जगमगाते हीरे, ठीक उन झरनो और पहाडी नालो की भाँति ही जो एक बड़ी नदी मे समा कर सुसगति लाभ करने दौडे चले आते है, इलियड और ओडेसी की रचना के निमित्त अपार सामग्री दे सके थे, ऐसी यूनानी साहित्य के विद्वानो की राय है।

इलियड और ओडेसी की भाँति ही, भारत मे, रामायण की रचना करते समय आदि-कवि वाल्मीकि को भी राम-संबंधी नाना लोकगीतो का सहारा मिला होगा। रवींद्र-नाथ ठाकुर इस से सहमत है—"देश के साधारण लोगो के अदर पहले-पहल कई भाव छोटे-छोटे काव्य बन कर चारों ओर एकत्रित हो कर चक्कर लगाते रहते है, उस के बाद कोई कवि उन्ही छोटे-छोटे काव्यो को एक बड़े काव्य के सूत्र में बाँध कर उसे बृहद्रूप दे देता है। महादेव-पार्वती की कई कथाए जो किसी भी पुराण में नहीं है, राम और सीता की कई कहानिया जो मूल रामायण मे नही मिलती—ग्रामों के गायकों और कथक्कड़ो के मुखों से गाँवों के आँगनो मे टूटे-फूटे छदों और ग्राम्य भाषा के द्वारा न जाने कितने काल पर्यंत प्रचारित होती रही है। ऐसे समय जब कोई राजसभा का कवि किसी कुटिया के प्रागण मे नही, अपितु किसी बृहत् विशिष्ट सभा मे गान गाने के लिए निमन्त्रित होता है, तो वह उन्ही ग्राम्य कथाओ को आत्मसात् करके सुदर मार्जित छदो मे और गभीर भाषा मे बड़े रूप मे खडा कर देता है। प्राचीन को नवीन बना कर, विच्छिन्न को एकत्रित करके दिखाने से समस्त देश मानो अपने हृदय को स्पष्ट और प्रशस्त रूप से देख कर प्रसन्न हो जाता है। इस के द्वारा वह अपने जीवन के मार्ग में एक कदम और आगे बढ़ जाता है। . . इस प्रकार एक बड़े रूप मे एक ही जगह अपने प्राणों को मिला कर ग्राम-साहित्य फल बनते ही फूल की पखडियो के समान झड़ कर गिर जाता है।. . . . अलग-अलग बिखरे भावो का एक बडे रूप मे बन उठने का प्रयत्न मानव-साहित्य में कई स्थानों मे अत्यत आश्चर्यमय विकास को प्राप्त हुआ है। . . ग्रीस मे होमर का काव्य और भारत-वर्ष मे रामायण और महाभारत। इलियड और ओडेसी मे बहुत सी कथाएं क्रमश. आपस मे मिल कर एक हो गई है।. किंतु जिस चौखट के अदर इन काव्यों को जड़ा गया

है, वह एक ही महाकवि के द्वारा बनाया हुआ है, क्योंकि इस चौपट की गठन का अनुसरण कर के नए-नए जोडे ऐक्य की परिधि से बाहर नही निकलने पाए हैं।"[१]

पर क्या राम और सीता संबंधी कहानियो मे, जो रामायण की रचना के पूर्व लोकगीतो में गाई जा रही थी, उर्मिला को कोई स्थान नहीं मिला था? क्या लोक-मानस ने भी उर्मिला का व्यक्तित्व नही पहचाना था? उर्मिला की चौदह वर्षों की भावना-वेदना क्या किसी एक भी गीत में मूर्तिमान नही हो पाई थी? [illegible], उर्मिला का हृदय अवश्य बरसा होगा। स्त्री-गीतो मे उस अवसर [illegible] गाया गया होगा। उस की विरह-वार्ता को कुछ एक ध्वनियों का [illegible] भी न मिला होगा क्या? दो चार टिकाऊ गीत तो उस के संबंध में बने ही होंगे। पर [illegible] हुआ?

मुझे ठीक याद है, बचपन में, परी-कथा की भाँति, रामायण की कथा का मेरे हृदय पर आधिपत्य जम गया था। ग्राम के अन्य बीसियों बालकों [illegible], प्रति वर्ष रामलीला में, राम-वनवास की सुगठित, मार्मिक झाँकी के [illegible] जागरूक हो उठता था। वनवास खाली राम के लिए था। सीता आदर्श पत्नी थी, वह भी साथ हो ली। लक्ष्मण का आदर्श था भ्रातृ-भक्ति, वह भी साथ हो लिया। पर लक्ष्मण की पत्नी क्या आदर्श पत्नी न थी? वह पति के साथ क्यो न गई? वयोवृद्ध कथा-वाचक भी मेरा समाधान न कर सका। 'ओ भोले, उर्मिला का यहाँ अधिक [illegible] नही। सीता का बखान सुनो। राम की महिमा सुनो।' ठीक समय से पूर्व ही बेर [illegible] ही पक जायँ, शीघ्र परिपक्व हो रही हमारी सूझ कथा-वाचक महोदय को पसंद न था। भीतर से मुझे एक संकेत मिल गया। हवा मे उड़ते पानी के कण, जैसे पुष्प की पंखड़ियों का स्पर्श करते ही ओस के मोतियो मे बदल जाते हैं; मेरे भाव भी एक पूरा दृश्य [illegible] करने मे समर्थ निकले। राम वन को चल पडे; लक्ष्मण और सीता भी। इधर उर्मिला को मूर्च्छा आ गई। माडवी दौडी आ रही है, पंखा करने; श्रुतकीर्ति उस के मुख में पानी की बूंदें टपका रही है। लो धीरे-धीरे मूर्च्छा टूटी; रघुकुल की यह कुलवधू, जिस के लाल लिबास पर स्वर्ण दीप्तिमान है, वियोग के आगामी चौदह वर्षों की वेदना का ध्यान [illegible]

[१] 'साहित्य', पृ० ८८–९

तडपा रहा ह। इस के बाद क्या उर्मिला न एकातवास की पनाह ली थी ? दृश्य आगे नही बढ़ रहा था; और वय.सधि समय की मेरी भावुकता लापरवाह होना भी पसद न करती थी।

बाद मे, मै ने रवीद्रनाथ ठाकुर का उर्मिला-संबधी लेख पढ़ा। मेरे लिए यह देववाणी से भी बढ़ कर था।

( २ )

उर्मिला-सबधी रवीद्रनाथ ठाकुर के विचार अत्यत मार्मिक तथा जागरूक है —

"कवि ने अपने कल्पना-निर्झर का जितना करुण जल है, वह सब केवल जनक-नदिनी के पुण्याभिषेक मे ही समाप्त कर दिया है। किंतु एक ओर जो म्लानमुखी तथा ससार के सारे सुखो से वचित राजवधू सीता के पास घूँघट डाले खडी हुई है, उस के चिर सतप्त नम्र ललाट पर न जाने कवि के कमडल मे एक बूँद भी अभिषेक का जल क्यों नही पडा ! हाय अव्यक्त-वेदना की देवी उर्मिला, प्रात कालीन तारा की भाँति महाकाव्य के सुमेरु शिखर पर एक बार तुम्हारा उदय हुआ था। उस के बाद अरुणालोक मे तुम्हारे दर्शन नही हुए ! कहा तुम्हारा उदयाचल है और कहां अस्ताचल, यह प्रश्न करना भी सब लोग भूल ही गए।

"काव्य-संसार मे ऐसी दो-चार स्त्रिया है जिन की कवियों ने अत्यत उपेक्षा कर दी है, पर वे अमरलोक से भ्रष्ट नहीं हुई है। पक्षपात-कृपण काव्यो ने उन के लिए स्थान-दान मे सकोच किया है, इसी से पाठको के हृदय अग्रसर हो कर आसन बिछा देते है।

"किंतु इन कवि-परित्यक्ता ललनाओं मे से किस को कौन अपने हृदय मे आसन देगा, यह भिन्न-भिन्न पाठको की प्रकृति और अभिरुचि पर निर्भर है। हम यह कह सकते है कि सस्कृत साहित्य में काव्य-यज्ञशाला की प्रांत-भूमि मे जो दो-चार अनादृत होकर खडी हैं, उन मे उर्मिला का ही प्रधान स्थान है।

"हो सकता है, इस का एक मुख्य कारण यह हो कि सस्कृत साहित्य मे ऐसा मधुर नाम कोई दूसरा नही है। नाम को जो लोग केवल नाममात्र मानते है, उन के दल मे मै शामिल नही हू। शेक्सपियर कह गए है कि गुलाब का भले ही कोई दूसरा नाम रख लिया जाय, पर उस के माधुर्य का तारतम्य नही हो सकता। गुलाब के संबंध मे, हो सकता है, यह बात सघटित हो भी सके, क्योंकि गुलाब का माधुर्य संकीर्ण और सीमा-

बद्ध है। वह केवल कुछ स्पष्ट तथा प्रत्यक्षगम्य गुणों के ऊपर ही [illegible] है। किंतु मनुष्यों का माधुर्य सर्वांश में ऐसा सुगोचर नहीं है। उन में से अनेक [illegible] हैं जो [illegible] सुकुमार भाव से अनिर्वचनीयता का उद्रेक करते है। वह केवल [illegible] गोचर नहीं है, उस की सृष्टि कल्पना द्वारा होती है। नाम उस [illegible] में [illegible] करते हैं। खयाल कीजिए कि यदि द्रौपदी का नाम उर्मिला रख दिया जाता, [illegible] वीरपतिगर्विता क्षत्रिय नारी का दीप्त तेज इस तरुण कोमल नाम से [illegible] होता रहता।

"अतएव इस नाम के लिए हम वाल्मीकि के कृतज्ञ हैं। [illegible] ने उर्मिला के प्रति अनेक अविचार के काम किए हैं, किंतु भाग्य से [illegible] और अथवा श्रुतकीर्ति नहीं रखा। मांडवी और श्रुतकीर्ति के [illegible] में हम कुछ भी [illegible] जानते, और हमें जानने का विशेष कुतूहल भी नहीं होता।

"हम ने जनकपुर की विवाह-सभा में केवल वधूवेश में उर्मिला को देखा है। उस के बाद जब से वह रघुकुल के विशाल अंत पुर मे पैठी, तब से एक बार भी उस [illegible] नही किए। वही विवाह-सभा वाली वधूवेश की मूर्ति ही हमारे हृदय में [illegible] गई। उर्मिला निर्वाक् कुंठिता और निःशब्दचारिणी होकर वधू की वधू ही रह गई। [illegible] के काव्य में भी उस की वही मूर्ति कुछ काल के लिए झलका गई थी। . . रामचंद्र [illegible] इतनी विचित्र सुख-दुख की चित्रावली मे फिर कभी किसी की कुतूहल की [illegible] इस मूर्ति के ऊपर नही पड़ी। वह तो थी वधू उर्मिला मात्र।

"जिस दिन उर्मिला ने अपने उज्वल ललाट मे सिंदूरबिंदु धारण किया था, [illegible] उसी दिन की नववधू सदा बनी रही। किंतु जिस दिन रामराज्याभिषेक के [illegible] का आयोजन करने मे अंत:पुरवासिनी ललनाएं लगी हुई थी, उस दिन [illegible] अपना घूँघट ऊपर उठा कर रघुकुल की लक्ष्मियों के साथ प्रसन्न मुख से [illegible] अस्तव्यस्त नही थी? और जिस दिन अयोध्या में अँधेरा करके दोनों राजकुमार सीता को साथ लेकर तपस्वियों-सा वेश बनाए वनवास के लिए बाहर हुए, उस दिन वधू [illegible] प्रासाद के किस एकांत कक्ष मे वृंतच्युत कुसुमकलिका की भाँति धूल में लोट रही थी, [illegible] क्या कोई जानता है? उस दिन के उस विश्व-व्यापी विलाप के भीतर इस विदीर्यमाण, क्षुद्र तथा कोमल हृदय के असह्य शोक को किस ने देखा था? जो ऋषि-कवि क्रौंचविर-

हिणी के वैधव्य दु ख को क्षण भर भी नही सह सके, उन्हों ने भी उस की ओर एक आँख नही उठाई।

"लक्ष्मण ने राम के लिए अपना अस्तित्व खो दिया था। यह गौरव-कथा आज भी भारत मे घर-घर कही जाती है। किंतु सीता के लिए उर्मिला का अपना अस्तित्व खोना ससार मे ही नही, काव्य मे भी घोपित हो रहा है। लक्ष्मण ने अपने दोनो देवताओ—सीता और राम, के लिए अपने को उत्सर्ग कर दिया था और उर्मिला ने अपनी अपेक्षा अधिक अपने स्वामी को दान कर दिया था। यह कथा काव्य मे लिखी नही गई। सीता के आँसुओ से उर्मिला एक दम बह गई।

"लक्ष्मण ने तो बारह वर्ष अपने उपास्य प्रियजनो के प्रिय कार्य करने मे बिताए, पर नारी-जीवन के ये श्रेष्ठ बारहो वर्ष उर्मिला ने कैसे बिताए ? सलज्ज, नवप्रेमामोदित और विकासोन्मुख हृदयमुकुल लेकर जब स्वामी के साथ प्रथमतम तथा मधुरतम परिचय आरभ हुआ, तभी सीता देवी के अरुण-चरण-विक्षेप की ओर नम्र दृष्टि . लक्ष्य रखते हुए लक्ष्मण वन चले गए। जब वे फिरे तब वधू के चिरतन प्रणयालोक-विरहित हृदय मे क्या वह पहली नूतनता थी ? पीछे सीता के सहित उर्मिला के दु ख की कोई तुलना करने लगे, इसी से क्या कवि ने इस शोकोज्वला महादु खिनी को सीता के स्वर्ण-मदिर से बाहर कर दिया—जानकी के पादपीठ के पास भी उसे स्थान देने का साहस नही किया ?"[१]

मुझे याद है, एक बार लाहौर मे स्व० कविवर इक़बाल के साथ भारतीय साहित्य पर वार्तालाप करते हुए मै ने कहा था—"जान पड़ता है उर्मिला निरी छुई-मुई ही थी। और शायद वाल्मीकि ने जान-बूझ कर अपने उदास दिल को उसे छूने से रोक रक्खा था। वरना और क्या वजह हो सकती है। जगह की कमी तो न थी। इतनी बडी रामायण मे उस औरत की तसवीर मौजूद न हो जिस के खाविंद ने राम के हुक्म को, उन की खिदमत को अपनी जिंदगी का मकसद समझा हो, सचमुच यह एक भारी बेइंसाफी है। और फिर हम यह नही जानना चाहते कि उर्मिला किस रग की साडी अधिक पसद करती थी, माथे

---

[१] रवींद्रनाथ ठाकुर, 'प्राचीन साहित्य', १९२३ (बंबई, हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर) पृ० ८९–९३

पर खुश होकर कौन सा जेवर पहनती थी. रंग की वह गोरी थी या ज़रा साँवली, हम तो जानना चाहते हैं उस के दिल का हाल, चौदह साल की उम्र की आपबीती। आँसू बन बन बहते अपने दिल का मिलान सरयू से न किया होगा उस ने ? गंगा क्या ? पामाल अरमानों के बावजूद किस तरह दिल कड़ा कर लिया था उस ने ? या क्या उस का दिल एकबारगी बुझ गया होगा ? यह सब हम, न जाने क्यों, पता न चलने पर भी पूछते चलते हैं। खाविंद की याद ने उसे झँझला दिया होगा, हम सोचने लगते हैं। रोते-रोते कभी कलेजा मुँह को आ जाता होगा, तो कौन उस को ढारस बंधाता था ? घर में किसी के मुँह से लक्ष्मण का नाम सुन कर वह क्या सोचने लगती थी ? [illegible] की देवी बनी वह क्या-क्या गीत गा उठती थी ? बरसात में, हाँ, हर साल अगस्त में, क्या-क्या मल्हार गाती थी ? और सरयू के बहते पानी में उमड़ते बादलों के साये देख कर खाविंद की याद में दिन गिनती उस दुलहन के दिल में कौन सी पुरानी याद नई हो उठती थी ? और फिर हैरानी की हद नहीं रह जाती, जब चौदहवाँ साल खतम होने पर राम लक्ष्मण सीता और उन के कई नए दोस्त अयोध्या में लौटे वाल्मीकि हमें लक्ष्मण और उर्मिला की मुलाकात का बेहद जरूरी नज़ारा भी हमें नहीं दिखाते।'' कविवर [illegible]-वाल इस पर कह उठे थे—''यह मैं भी कहूँगा कि उर्मिला के साथ वाल्मीकि की कलम से भारी बेइन्साफी हुई है। और मैं समझता हू उर्मिला का हक उसे मिल कर रहेगा। मान लीजिए मैं आज रामायण नई रौशनी में लिखू—और ऐसी जिंदा कहानियाँ जो एक तरह से मुल्क की तवारीख से पनपती है हमेशा से शायरी की नई से नई पोशाक पहनने की आदी रही हैं, तो मै जरूर उर्मिला को उस का हक दू, जितनी जगह वह मांगे (और वह देवी भला मांगेगी क्यो, मतलब, जितनी मैं समझू कि उसे मिलनी ही चाहिए) उतनी जगह मै उसे खुशी से दूं।''

( २ )

ससार की बहुत-सारी कविता विरह का गान है। अनगिनत हृदयों को लांघता हुआ विरह का गान, स्थान-स्थान पर निमंत्रण पाता हुआ, अपनी तलाश में अग्रसर होता रहता है। और जैसा कि एक अंग्रेज साहित्य-सेवी ने कहा है—'एक-एक आदमी एक-एक विच्छिन्न द्वीप ही तो है; आदमी-आदमी के बीच में बेअंदाज नमकीन आँसुओं का सागर मौजूद है। दूर से जब एक-दूसरे की ओर निहारता है, तो सोचता है, अहो हम

तो एक ही बड़े मुल्क के निवासी हैं, बीच में का यह समस्त रुदन किसी की बददुआ से भाग बन कर उमड पड़ा है ।' प्रत्येक देश में, एक-एक भाषा मे, स्त्री और पुरुष अपने बीच मे एक बेरोक खिचाव महसूस करते जीवन की सडक पर चले जा रहे हैं । कवि के शब्दो मे, 'पक्षी-सी आँख देखने के लिए दौडती है';[१] फिर कभी-कभी एक हृदय दूसरे को पुकार कर कहता है—'किस ने निकाल बाहर किया मुझे तुम्हारे हृदय के भीतर से ?'[२] एक हृदय दूसरे हृदय का चित्र अपने भीतर की चित्रशाला मे स्थापित करने का चिर अभ्यस्त है; पक्षी-सी उडती आँख अपनी प्रिय वस्तु का प्रतिरूप उतार लाती है । और यह प्रतिरूप असल वस्तु से भी प्रिय हो उठता है । स्त्री का हृदय पुरुष की मूर्ति को स्थापित कर के एक अनुपम पूर्णता को प्राप्त करता है । और पुरुष भी, शायद, अपने शरीर से बढ़ कर अपने हृदय को ही, जो प्रेयसी के भीतर बसता है, अपना सत्य रूप मानता है ।

यह ठीक है कि लक्ष्मण चौदह साल उर्मिला से दूर रहे, पर उर्मिला के हृदय मे उन की जो मूर्ति बन गई थी उसे तो वह अपने साथ नही लेते गए थे । उन का यह प्रतिरूप उसे ज़िदा रख सका था, बार-बार वह इस पर प्रेम का रग मलती थी और हर बार वह यह देख कर हैरान रह जाती थी—यह कल्पना से परे की वस्तु नही, कि उस के आँसुओ ने सब रग बहा डाला है । फिर भी वह एकदम उदासीन हो गई थी, यह बात नही । प्रतिरूप मे जान डालने की क्रिया ने ही तो उस चिर-विरहिणी को, एक तरह से, अपना दर्द भूल-भूल कर जीवित रह सकने में समर्थ किया था ।

स्त्री और पुरुष के बीच का यह विरह कल्पना को नए-नए पख दिया करता है । जीवन मरण की द्रुतगामिनी धारा मे बहता हुआ मनुष्य इसी विरह का अमर इतिहास कहता जाता है । संसार की कविता, जहा देखो वही, आँसुओ से भीगी पडी है । सुख भी है, पर थोडा । देखे अनदेखे दुःख के आँसू कितने बेअदाज़ है ! मिलन अति थोड़ा है । विरह एकदम विराट् । विरह का एकतारा तो बजेगा ही । मिलन लाख बार विरह की भाव-रचना का द्वार बद करे, विरह की देववाणी तो बार-बार सिर उठाएगी ही । विरह

---

[१] बंग-कवि बलरामदास की एक कविता से: 'देखिवारे आँखि-पाखि धाय !'
[२] बलरामदास की एक दूसरी उक्ति: 'तोमार हियार भितर हैते के कैल बाहिर ?'

में ही प्रेम की शत-प्रतिशत सत्य उपलब्धि होती है इसी अनुभूति को मनुष्य ने प्रत्येक देश में, प्रत्येक भाषा मे, गाया है। "रास्ते के दोनो ओर प्रत्येक घर में", रवीन्द्रनाथ ठाकुर का अनुभव है, ". बिल्कुल तुच्छ लोगो के छोटे-छोटे कार्यों के पीछे राम लक्ष्मण आ कर खड़े रहते है, अंधकार भरे घर के अंदर पचवटी की करुणा-मिश्रित हवा बहती है। ..मनुष्य अपनी वास्तविक सत्ता को भावो की सत्ता के द्वारा अपने चारो ओर और भी बहुत दूर तक बढ़ा कर ले गया है। उस की वर्षा के चारो ओर कितनी गानो की वर्षा, काव्यो की वर्षा, कितने मेघदूत और कितने विद्यापति विस्तीर्ण हो रहे है, अपने छोटे से घर के सुख-दुखों को उस ने कितने चद्र-सूर्यवंशीय राजाओ की सुख-दु:खों की कहानी के अंदर बड़ा बना लिया है; उस की लड़की के चारों तरफ़ पार्वती की करुणा सर्वदा संचरण करती रहती है, ....इस प्रकार लगातार मनुष्य अपने चारों ओर जिस विस्तार की सृष्टि करता है, उस के द्वारा बाहर मानो अपने को स्वय फैला कर, अपने आप को स्वय बढाता जा रहा है।"[१] "प्रत्येक मनुष्य के बीच मे अनत विरह है। हम लोग जिस से मिलना चाहते है, वह अपने मानस-सरोवर के अगम तीर पर निवास कर रहा है। वहा केवल कल्पना पहुँच सकती है।....हे निर्जन गिरिशिखर के विरही, स्वप्न मे जिस को आलिगन करते हो, मेघ द्वारा जिसे सवाद भेजते हो, उस से तुम्हारा सगम शारदीय पूर्णिमा की रात मे होगा—ऐसा आश्वासन तुम्हें किस ने दिया? तुम्हे चेतना-चेत का कुछ ज्ञान नही है। हो सकता है कि सत्य और कल्पना का भेद भी भूल गए हो।"[२]

एक विरहिणी विलाप ही करे, यह ज़रूरी नही है। हो सकता है वह अपने गम को अंदर ही अदर पी जाय, यह समझ कर कि रोने से भी आखिर कौन उस के मर्म को देखेगा, कौन इसे सांत्वना देने की क्षमता पाएगा। उर्मिला की नींद,[३] एक आंध्र लोक-गीत, जिस की आतरिक महत्ता समझने के लिए इतनी बड़ी पृष्ठभूमि तैयार करनी पड़ी

---

[१] 'साहित्य', पृ० ६३-४

[२] 'प्राचीन साहित्य', पृ० ६८-७०

[३] 'ऊर्मिलादेवी निद्रा' (ऊर्मिलादेवी की निद्रा) के नाम से यह गीत आंध्रदेश में एक असीम आस्था सहित गाया जाता है। हिंदी उर्मिला के स्थान पर सस्कृत 'ऊर्मिला' ही तेलुगू भाषा को प्रिय है, यह प्रत्यक्ष है; और इस का "ल" भी कोमल उच्चारण वाला है, जैसा कि प्रायः मराठी और पंजाबी आदि भाषाओं में अनेक शब्दों के उच्चारण में शामिल है।

है, उर्मिला की चौदह वर्ष की अटूट नीद का गान है। यहा उर्मिला रोई नही; चौदह वर्ष का दुरूह पति-विच्छेद उस ने निद्रा देवी की गोद मे ही काट लिया; अपनी इस तपस्या से ही उस ने आन्ध्र देश की नारी से इतनी श्रद्धा पाई है, इसी से वह खाली उर्मिला न रह कर सचमुच की देवी बन गई है। आँसू उस की आँखो में उस समय आए थे जब लक्ष्मण ने उसे जगाया था। मागलिक सयम की प्रतीक, उस की नीद उस के आँसुओ की पृष्ठभूमि मे भरे हृदय के वेग को कितना गौरवमय बना डालती है! आँसुओ का सत्यतम रूप ही एक सती की आँखों मे तैर सकता है।

युक्तप्रात के एक लोकगीत मे भी मै ने उर्मिला की आँखो मे आँसू देखे है। उर्मिला का नाम उस गीत मे मौजूद नही, वहा वह केवल लक्ष्मण की पत्नी के रूप में ही चक्की पीसती हमे दिखाई दे गई है। जाँत (चक्की) पर आटा पीसते या दाल दलते समय स्त्री ने उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन का ध्यान कर के एक सुदर चित्र अकित कर दिया है। किसी स्वप्न-जगत् मे विचरते, देववाणी की स्पर्द्धा से गाए हुए भावचित्र-सा यह गीत साहित्य की एक अनूठी वस्तु है। जाँत-घर के साथ उर्मिला के आँसुओ का जो चिरस्थाई मेल यहा दिखाई पड़ रहा है उस से जाँत का इतिहास अतीत को छूने में समर्थ हुआ है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि गाँव की नारी ने लक्ष्मण-पत्नी को गीत मे उतारते समय अपने निजी दुख की ही अभिव्यक्ति की है। मन की परतो मे समा जाने वाले, इस गीत के करुण रस का आस्वादन कर के ही हम आगे बढ़ेगे—

केरे देले गोहुमां हो रामा, केरे देले चँगेरिया ?
कउनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिआ ?
सासु देले गोहुमां हो रामा, ननदी चँगेरिया !
गोतनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिया !
जँतवो न चलई हो रामा, मकरी न डोलइ !
जाँता के धइले हो रामा, रोवइ जँतसरिआ !
घोड़वा चढ़ल हो लछुमन करइ पुछसरिआ—
केकरी तिरिअवा हो रामा, रोवइ जँतसरिआ ?
तोहूं नएं जानल हो लछुमन, तोहरे तिरिअवा ?
जँतवा के दूखे हो रामा, रोवइ जँतसरिआ !

घोड़वा जे बँधलन हो लछुमन, बर रे बरनिश्रा—
झपसि पइसल हो लछुमन, नैना पोंछे लोरवा !
केरे देले गोहुमां हो साँमर, केरे देले चँगेरिश्रा ?
कउनी बइरिनिश्रा हो रामा, भेजल जँतसरिश्रा ?
सासु देले गोहुमां जी परभू, ननदी चँगेरिश्रा !
गोतनी बइरिनिश्रा जी परभू, भेजले जँतसरिश्रा !
जँतवो न चलइ जी परभू, मकरी न डोलइ !
जाँता के धइले जी परभू, रोवौ जँतसरिश्रा !
बहिश्रां पकरलन लछुमन, जँघिया बइठश्रोलन !
श्रपने गँमछवे हो लछुमन, पोंछे नैना लोरवा ![1]

"'अहो राम ! किस ने दिया गेहूं ? किस ने दी डलिया ?
किस बैरिन ने, अहो राम, (तुझे) जाँत-घर मे भेजा ?'
'अहो राम ! सास ने गेहू दिया, ननद ने दी डलिया !
अहो राम ! जेठानी बैरिन ने (मुझे) जाँत घर में भेजा !
अहो राम ! जाँत नही चल रहा, न हिलती है मकरी !
जाँत पकड कर, अहो राम, (पिसनहारी) जाँत-घर में रो रही है !'
अहो राम ! घोड़े पर चढ़ा लक्ष्मण पूछताछ कर रहा है—
'किस की स्त्री, अहो राम, जाँत-घर में रो रही है ?'
'तुम नही जानते, ओ लक्ष्मण, तुम्हारी ही स्त्री तो है !
जाँत के दुख से, अहो राम, वह जाँत-घर में रो रही है !'
घोडे को लक्ष्मण ने बड की जटा से बाँध दिया है

[1] रामनरेश त्रिपाठी, 'कविता-कौमुदी', पाँचवा भाग, (ग्राम-गीत), सवत् १९८६, (प्रयाग, हिंदी-मंदिर), पृ० ३३०–१। गीत का अनुवाद मैं ने, बहुत कुछ नए सिरे से किया है। समस्त पुस्तक में उर्मिला पर एक ही गीत रहने पर भी (यह बात शिकायत के रूप में न समझी जाय), त्रिपाठी जी ने इसे भूमिका के विशेष प्रकाश में रख कर उर्मिला की याद में दो शब्द लिखने का कष्ट नहीं किया। उर्मिला के हिमायतियों को क्या यह उर्मिला के प्रति उपेक्षा का भाव लगेगा ? ऐसा सुंदर गीत हमारे लिए ढूंढ़ निकालने का श्रेय तो उन्हें प्राप्त रहेगा ही।

झपट कर लक्ष्मण भीतर चला गया, (पिसनहारी) के आँसू पोंछ रहा है।
'किस ने गेहू दिया, ओ साँवली, किस ने दी डलिया ?
किस बैरिन ने, अहो राम, तुझे जाँत-घर में भेजा ?'
'ओ स्वामी, सास ने गेहूं दिया, ननद ने दी डलिया !
जेठानी बैरिन ने, ओ स्वामी, मुझे जाँत-घर मे भेजा !
जाँत चलता नही, ओ स्वामी, न हिलती है मकरी !
ओ स्वामी, जाँत पकड़ कर मै जाँत-घर मे रो रही हूं !'
बाँह पकड लक्ष्मण ने उसे अपनी जाँघ पर बिठा लिया,
अपने गमछे से लक्ष्मण उस की आँखो के आँसू पोंछ रहे है !"

सास, ननद तथा जेठानी की ओर जो सकेत यहा दीख रहा है, गाँवो के सम्मलित कुटुब मे अनादृता वधू की करुण कहानी भरसक कह सका है। मूर्तिमती उर्मिला, आज हजारो वर्ष बाद भी, पिसनहारियो की सखी है। अतीत के घनीभूत भाव, आज भी, आँसुओ में तैर रहे है ! साँवली, छुईमुई-सी उर्मिला को स्वय लक्ष्मण ही नहीं पहचान सके थे! इस का कारण शायद यह हो कि जाँत-घर के बाहर से लक्ष्मण उसे ठीक-से देख नही पाए थे, पर उन्हे उस की आँखो के आँसू कैसे नजर आ गए थे ? या क्या उर्मिला जोर से विलाप कर रही थी ? गीत का लक्ष्मण भी निरा गाँव का आदमी ही तो है; गमछे का शौकीन; अब वह इसी से नारी के आँसू पोंछ रहा है। इस से क्या उर्मिला के आँसू झट रुक गए होगे ? लक्ष्मण भी चुप रहे; उर्मिला भी। उपमाए यहा नहीं, न अलकार। पर रस तो है इस चित्र-सुलभ गीत में। और रस भी अति स्वाभाविक। शुरू मे प्रश्नोत्तर का जो क्रम बँधा था उस मे फिर मूकता आ गई। हृदय की बात जैसे गमछे के सपुर्द की गई हो। मूक सही, गमछा अपने काम मे लगा है, पर उस की गति भी तो मूक हाथ पर निर्भर है। उर्मिला अब भी रो रही है ! जाँत का गीत आज भी उस के आँसुओं से भीग रहा है।

( ४ )

'उर्मिला की नीद' अब हमारे सामने है।

आंध्र देश की निष्ठावती स्त्रियां इसे रस लेकर गाती है। सैंकड़ो वर्षों को पार करके यह गीत विकसित हुआ है; इसे स्त्रियो के हृदय में एक अपूर्व गौरव मिला है।

पर जैसा कि कालिदास ने अपनी कविता संसार के सम्मुख रखते हुए कहा था 'कोई कविता न पुरानी होने से प्रशंसनीय हो सकती है, न नई होने से निंदनीय, सतजन उस की परीक्षा करके उसे ग्रहण करते है, और कम समझ दूसरो के कहे पर विश्वास कर लेते है', इस गीत के वास्तविक मूल्य की परीक्षा करने के बाद ही इसे उत्तमतम भारतीय लोकगीतो मे स्थान दिया जाना चाहिए।

शब्दो की अपार शक्ति, जो विकसित आत्मा की प्रतीक होने पर, बिना किसी मस्तिष्क-चमत्कार के, बिना पिंगल-ज्ञान के, सदा से हृदय की मातृ-भाषा का आशीर्वाद प्राप्त करती आई है, 'उर्मिला की नीद' मे प्रत्यक्ष है। यह एक झरना है; पहाड़ चीर कर फूट पड़ा है। मस्तिष्क की भाषा इस के पास नही मिलने की, हृदय के बोल—सहानुभूति के चिर सखा, इस का सर्वस्व है। उर्मिला का विश्वास था कि भले ही लक्ष्मण उसे छोड कर वन को चले गए, एक दिन वह लौट कर उस से मिलेगे ही, पर विरह की पीड़ा को सुलाती वह स्वय सो गई; उसे आशा थी कि लक्ष्मण स्वयं आकर उसे जगाएगा, इस बात को खोल कर, गीत मे प्रधानता नही दी गई। पर, इस से क्या, स्त्रिया इसे जानती है।

शब्द आदमी खुद बनाता है; हृदय के जादू से वह एक-एक शब्द के पीछे खुद मौजूद रहता है। सुख-दुःख की बाह्य परतो के भीतर लहू जिस चाल से बहता है, वही शब्दो को आगे-पीछे करने मे जुटी रहती है; इन्ही शब्दो मे थिरकन का समावेश होता है, रस का जन्म होता है। हृदय और भाषा के पूर्ण सहयोग से—शब्दों की साधना से, लोक-जीवन की कोख से अनेक ऐसे गीतो के बीच मे जिन्हे अक्षय आयु नसीब नही होती, कभी-कभी ऐसे गौरव-पूर्ण गीत का जन्म भी हो जाता है, जो युगो को पार करता, मृत्यु से होड़ लेता, अग्रसर होता है। 'उर्मिला की नीद' ऐसा ही चिरस्थाई गीत है।

चौदह वर्ष अयोध्या से दूर रहने के बाद, राम दरबार मे बैठे है। यही से गीत शुरू होता है—

**श्री राम भूपालडू, पट्टाभिषिक्तुडइ कोलुवुण्डगा,**
**भरत शत्रुघ्नुलपुडू, सौमित्री वरुसा सेवलु सेयगा;**
**मारुतात्मजुलप्पुडू, राघवुला जेरिपादमु लोत्तगा,**
**सुग्रीवुड़ा कोलुवुलो, कूर्मितो नम्मुडइ कोलुवुण्डगा;**

तुम्बुरुलु नारदुलुनू, ऐतेञ्ची निलचि गानमु सेयगा,
रम्भादुला सभाललो, इन्ति शुभ रम्यमुना नाट्यमाड़ा ;
सनकादि मौनीन्द्रुलू, कोलुवुलो शास्त्रमुलु तर्किञ्चगा,
सकला देवतलु गोलुवा, उदयाना पुष्पवर्षमु गुरिसेनू !

"सम्राट् श्री राम, अभिषेक के पश्चात्, दरबार मे बैठे थे।
भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण[1] समुचित रूप से (राम की) सेवा मे लगे थे,
हनुमान[2] तब राघव के पैर दबाने लगा;
सुग्रीव इस दरबार मे प्रेम से नम्र हुआ खड़ा था;
तुंबुरु और नारद वहा पर उपस्थित हो कर खडे-खड़े गान कर रहे थे;
रभा और अन्य अप्सराए—शुभ सुदरियां, नृत्य कर रही थी;
सनक तथा अन्य श्रेष्ठ मुनि-गण उस दरबार में शास्त्रीय तर्क कर रहे थे;
जब सब देवता-गण सेवा मे लगे थे, उस सुबह वहा पुष्प-वर्षा हुई !"

यह दृश्य रूढ़ि पर आश्रित है। इस में काफी खींचतान आ गई है, यह प्रत्यक्ष है। यह ठीक है कि रूढि अनेक बार कल्पना के बचपन मे उस की धात्री-रूप से सेवा किया करती है, पर जिस देव-अश का प्रवेश, इस के द्वारा, रघुबर राम के दरबार में हुआ है, उस ने उन के मानव-अतस्तल को तो हमारे सम्मुख आने ही नहीं दिया। तुंबुरु और नारद अलग गान कर रहे है। रभा और उस की हमजोलियो ने अलग सौदर्य और नृत्य का सामान बना रक्खा है। सब देवता भी सेवा में हाजिर है। इस पर भी मुनियो की शास्त्रचर्चा में विघ्न नही पड़ा ! हमारा खयाल था राम मुस्कराएगे, दो-एक शब्द कहेंगे; पर वह कुछ नही बोले; उन के दरबार पर स्वर्ग से पुष्प-वर्षा होते देर न लगी !

लो, जनकनंदिनी आ रही है:—

सभयन्ता कलय जूचि, येतेञ्चे सन्तोषमुना जानकी,
पतिमुखमु जूचि निलची, विनयमुन पट्टी अञ्जली ग्रक्कुना ;

[1] मूल में लक्ष्मण के लिए 'सौमित्री' आया है।
[2] हनुमान को मूल में 'मारुतात्मज' कहा गया है।

**देवदेवेन्द्र विनुमा, विन्नपमु तेलिपेनु चितगिम्पु,**
**धराशेषुड्वध रिञ्चा, ओक चिन्न मनवि गद्दनि पलिकेनु ;**
**मुन्दु मन मड़वु लकुनू, पोगानु मुद्दु मरदी वेन्टनू,**
**पयन मइरागा जूची, तन चेलिय पयनमायेनु ऊर्मिला ;**
**वद्दुनी वुण्डु मनुनू, सौमित्री मनला सेविम्पा वच्चे,**
**नाडु मोदलुगा शय्यपइ, कनुमूसि नाति पवलिञ्चु चुण्डे !**

"समस्त दरबार की ओर देख कर इतमीनान से सीता अदर आई।

पति के मुख की तरफ देख कर, खडी हो कर, विनयपूर्वक शीघ्र अजली बना कर वह बोली—

'हे देव, हे देवेंद्र, सुनो, मैं अपनी विनती करूँगी, विचार करना,

(जैसे कि) धरा को थामनेवाला शेषनाग भी सुनेगा, मेरी एक छोटी-सी विनती है।

तब जब हम वन को गए थे, प्रिय देवर के साथ,

उसे चलते देख उस की पत्नी उर्मिला भी चलपडी थी।

नहीं, तुम यही रहो, उसे यह कह लक्ष्मण हमारी सेवा मे आ गया था।

उस दिन से वह नारी, आँखें मीचे अपने पलग पर सोई पड़ी है !"

सीता के शब्दो में हम ने सीता का हृदय देख लिया है। गीत मे यह नहीं बताया गया कि जनकनंदिनी ने किस वर्ण की साड़ी पहन रक्खी थी, कौन-कौन आभूषण सुदरता बढा रहे थे, कैसा केश-विन्यास किया गया था; नपा-नपाया, सरल, सीधा वर्णन गीत की स्वाभाविकता का परिचायक है।

सीता के शब्दों का राम पर बहुत असर होता है। और वह लक्ष्मण को उर्मिला के पास जाने की आज्ञा देते है.—

**यिकनद्दना यानतिच्ची, तम्मुनी इन्दुभुक्षिकडकम्पुड़ी,**
**प्राण सति ईलागुना, कूमितो पलुकङ्गा विनिरामुड़ू ;**
**तलपोसी चूड़ानेन्ते, तन मदिकि तगुविचारमु बुट्टेनू,**
**आश्चर्य पड़ि रामुडू, अक्कुना अन्ना लक्ष्मणा रम्मने ;**
**रम्मि लक्ष्मण अक्कुना, मुचितमा रमणि मेड़बासियुन्टा,**

तड्ु वाये यिकनैननू, प्रियुरालि धग्गरकु नीवुबोई ;
सरस सल्लाप मुलचे, दुःखोप श्रमलेल्ला मान्पवइया !

" 'अब भी हुक्म दे कर अपने भाई को कृपया उस चद्रमुखी के पास भेज दो !'
पत्नी प्रेमपूर्वक जब यो बोली, सुन कर,
इस पर विचार कर, राम के हृदय मे यथेष्ट दुःख पैदा हुआ ।
दग होकर राम लक्ष्मण से बोले—'आओ तो, भइया लक्ष्मण,
जल्द आओ, लक्ष्मण, उस सुंदरी से परे रहना वाजिब है क्या ?
बहुत समय हो गया ! अब भी अपनी प्रेयसी के पास जाकर,
रसीली बातचीत से उस की विरह-पीड़ाएं शात करो, जाओ !' "

लक्ष्मण एक खामोश आदमी है, चुपचाप भाई के वचन सुनता है, अपनी करनी पर वह पछताता नही । लौट कर उस ने उर्मिला की खबर-सार तो ली होती ! जैसे वह केवल भाई भर हो, पति नही ! अब भाई का हुक्म हुआ, वह चल पड़ा .

अन्ना भाटलकु रामा अनुजड्ू महाप्रसादमनुचू ;
अनिपिञ्चुकुनि अक्कुना, सभाविड़िचि चनुदेञ्चे तन गृहमुकू ।

—"भाई के शब्द सुन राम का भइया 'महाप्रसादम्'[1] कह कर,
अब जब कि उन से यो कहलवा लिया, दरबार से विदा ले कर महल की ओर चला ।"

हम भी लक्ष्मण के साथ चल पडते है । अब उस चिर-विरहिणी, चद्रमुखी उर्मिला को देखने का समय करीब है । हमारा कुतूहल जाग उठा है:—

वच्चे लक्ष्मणुड्ु चलवा, सत्रम्पु वाकिल्लु गड़चिवच्ची ,
केलि गृहमु जोच्चियू, लक्ष्मणा कीरवाणिनि जूचेनू;
कोमली पान्पु पइना, तोड़ाबत्ति कोका सवरिञ्चि वेगा ,
तोड्ुगुला धरिञ्चि, वेगा चल्लनी तल्लु पूरिञ्चि मेना ;
प्राणनायिकि पान्पुना, कूर्चुण्डि भाषिञ्चे विरहम्मुना ,

---

[1] आजकल जैसे आज्ञा पाते समय सम्मानपूर्वक 'बहुत ठीक' कहते है; यहां बड़े की आज्ञा की तुलना देवता के प्रसाद से की गई है ।

**कोम्मनी मुद्दु योगमू, सेविम्पा गोरिनाड़ चन्द्रुडू ,**
**ताम्बूलमेड़ावासिना, वोप्पेने नगुमोवि चिगरू कोनगा ,**
**अमृतधारलु कुरियगा, पलुकवे आत्मा चल्लना सेयवे ;**
**चिट्टितामरलु बोलेड़ी, पादमुला कीलिञ्चवे स्वर्णमू !**

"लक्ष्मण आया, सगमर्मर की धर्मशालाओं के आँगन पार करके;

शयन-गृह मे दाखिल हो कर लक्ष्मण ने सुग्गे-सी वाणी बोलने वाली नारी को देखा।

कोमलांगी के पलँग पर, उस की जघाओ को दबा कर, वेग से उस की साड़ी ठीक करके,

(स्वय) शीघ्र यथोचित वस्त्र पहन, (उर्मिला के) शरीर पर शीतल जल के छीटे मार,

पत्नी के पलँग पर बैठ, वह विरह सहित बोला—

'ओ नारी, तुम्हारे चूमने लायक मुख को देखने का इच्छुक है चाँद !

पान चबाये बहुत समय हो चुकने पर भी तेरा मुस्कराता निचला होठ पल्लव की नोक-सा (दीखता) है !

अमृत बरसाती, मेरे साथ बोल, मेरी आत्मा मे ठंडक पहुँचा !

छोटे कमलो-से हैं तेरे पैर; इन पर स्वर्ण पहन !'"

अहो, लक्ष्मण तो योही खामोश दीखता था, वह तो प्यार के बोलो में निपुण है ! यहा गीत में निद्रालु उर्मिला जाग उठती है। अभी वह आखे नही खोलती। वह समझती है किसी ग़ैर आदमी ने वहां तक आने का साहस किया है। आखे बद रखती है, डरती नही एकदम, चेतावनी देती है, पडी-पड़ी। और फिर एक बार मुसीबत के खयाल से डर जाती है:—

**तप्पुता मरिचि उन्ना, आकोम्मा तमकमुना वणक दोड़गे ,**
**अइया मीरेवारइया, मीरिन्ता यागड़म्बुला कोस्तिरी ;**
**सन्दुगोन्दुलु वेताकुचू, मीरिन्ता तप्पु सेयगा वस्तिरी ,**
**एव्वरुनु लेनि वेला, मीरिपुड़ एकान्त मुला कोस्तिरा ;**
**मा तण्ड्री जनकराजू, विन्टेमिमु आज्ञा सेयका मानरू ,**

मा अक्का बावा विन्ना, मीकिपुडु प्राणमुकु हानिवच्चू ;
मा अक्का मरिविन्नानू, मिम्मिपुडु ब्रतुकनिव्वडु जगतिलो ,
इच्चदिना वम्शनिकी, अपकीर्ति वच्चे नेनेमि सेतू ?
कीर्तिगला इन्टा बुट्टी, अपकीर्ति वच्चे नेनेमि सेतू ?

"वह नारी, जो अपने आप को भूली पडी थी, कॉपने लगी !—
'ओ पुरुष ! तू कौन है ? शरारत करने आया है !
छोटे, तग रास्तों से होकर, इतनी तलाश करता, तू आया है (शरारत) करने !
इस वक्त कोई भी तो यहां नही है; तू यहां ही आ रहा है क्या ?
मेरे पिता राजा जनक सुनेंगे तो तेरे विरुद्ध हुक्म नही टलेगा उन का !
मेरे बहन और बहनोई ने सुन लिया तो अभी तेरी जान पर जोखिम आ जायगा !
अकेली मेरी बहन ही सुनेगी तो धरती पर तेरी जान बाक़ी न छोडेगी !
(आह !) इतने महान वश पर अपकीर्ति आई (चाहती) है ! मै क्या करू ?
मशहूर घर मे मेरा जन्म हुआ, अपकीर्ति आई (चाहती) है ! मै क्या करू ?"

लक्ष्मण चुप रहता है । उर्मिला बोलती जाती है, पड़ी-पड़ी, बदस्तूर आँखें बद किए । उर्मिला के अगले शब्दो से यह प्रत्यक्ष है कि उसे सीता के रावण द्वारा चुराए जाने की बात ज्ञात है । यों यह बात मूल किंवदंती के साथ मेल नहीं खाती, यदि उर्मिला की नींद इस बीच मे कभी नही टूटी थी, जैसा कि लोक-मानस का विश्वास है, तो उर्मिला को सीता के चुराए जाने का कैसे पता चल गया ? और फिर इस से यह भी प्रत्यक्ष है कि यह गीत किसी विद्वान के मस्तिष्क का मोहताज न रह कर लोक-मानस से ही, जिस मे कुछ-कुछ बेसिलसिलापन भी स्वाभाविक ही है, उपजा है । उर्मिला बोलती जाती है —

ओकड़ालि कोरिगादा, इन्द्रुड़िकि ओड़लेल्ला हीनमाए ,
पर सतन्नि गोराकादा, रावणुडु मूलामुतो हत माएनू ;
इट्टि द्रोहमुलु मीरू, एरिगुण्डि इन्ता द्रोहमु कोस्तिरा ,
आड़ा तोड़ाबुट्टुलू, मावन्टि तल्ली लेदा मीकुनू ?

" 'बेगानी नारी पर मन रखने से ही इंद्र का समस्त शरीर हीन नही हो गया था क्या ?

पराई स्त्री पाने की इच्छा से ही क्या रावण अपने वश सहित बरबाद नही हो गया ?

तू एसे द्रोहो (का फल) जानता हुआ एस मारी [illegible] के लिए आ [illegible] !

सहोदर बहने और मुझ-सी मा नहीं है क्या तेरे यहां ?"

उर्मिला आँखें नहीं खोलती। भीतर उस का मन [illegible] है। [illegible] भी [illegible] है। पुरुप के सनातन स्वभाव का—उस की [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] स्त्री की चापलूसी कर सकने की कारीगरी आदत का, प्रतीक बना लक्ष्मण अपना [illegible] सकने की सतर्कता पा लेता है।

> अनुचु ऊर्मिला पलुकगा, लक्ष्मणुड् विनिश्चयंबि इटुवानिबेनु ,
> श्रीरामु तम्मुण्डने, अतङ्न्ला सृष्टि लो नौकरुगलरा ;
> जनकुनल्लुगानटे, भूमिलो जनकुलनगा नेव्वरु ,
> शतपत्रमुनाबुट्टिना, चेड़ेरो सीतकु मरदोगानो;
> सीता अनगा नेव्वरु, भूमि लो सृष्टि कर्तेनु दुग्गा,
> भूमिनूर्मिलावन्दुरे, नी पेरु बोङ्कुने ईपटानू;
> दशरधुलानेड़वासियू, अक्कड़ा जानकी चेरानोपिनू.
> रावणुनि सम्हरिञ्ची, आ धरणिदेवी तोवकुवरिन्ची;
> चेकोआ इन्दुवदना, लोकापकीर्तिके लोनाऊदुनु,
> सीतामरदिनि गानटे, चेड़ेरो वचउञ्चि मेलुकोनवे,
> निन्नु बासिनदीमोदलु, प्राणसखि निद्राहारमुलेरगने !

"उर्मिला यों कह चुकी तो लक्ष्मण, जो ध्यान से सुन रहा था और [illegible] था, बोला—'मैं तो श्रीराम का भाई हूं; कौन महान है उन सा, सृष्टि में ?
क्या मैं जनक का दामाद नहीं हूं ? (नहीं तो) भूमि पर जनक है कौन ?
ओ शतपत्र से उत्पन्न हुई नारी ! क्या मैं सीता का देवर नहीं ?
नहीं तो सीता है कौन, भूमि पर, मैं नहीं जानता, ओ सृष्टिकर्ता !
धरती पर उर्मिला कहते है तुझे ! तेरे नाम की (सौगंद), मैं झूठी बात नहीं कहता !
दशरथ[1] को (यहां) छोड़ (हमारे वन में जाने पर), वहा सीता चुरा ली गई थी !

---

[1] मूल में दशरथ के स्थान पर दशरध है; तेलुगू भाषा के असर तले प्राय: "थ" का "ध" बन जाता है।

रावण का संहार करके, हम अपनी धरनी देवी, सीता, को वापिस लाए हैं ।

यदि मैं ने (अनिष्ट के लिए) हाथ उठाया हो, ओ चंद्रमुखी, लोक में मेरी अपकीर्ति होगी ही !

मैं सीता का अपना देवर नहीं क्या ? ओ नारी ! दया कर; उठ जाग !

तुम से बिछुड़ कर, ओ प्राण-सखी, न मैं (कभी) सोया, न मैं ने कुछ खाया !"

फिर लक्ष्मण आत्म-हत्या की बात पर आ गया । उर्मिला के हृदय में प्रेम जगा कर वह उसे एकदम आँखें खोल कर सत्य और असत्य की विवेचना के लिए, अपने जोरदार शब्दों द्वारा, एक जबरदस्त झटका दे देता है

**नीवुलेवका उन्ननु, ओ सखी प्राणमुलु निलुपलेने,**
**अनुचु कन्नुला जलमुलु, कारङ्गा लक्ष्मणुडु तालिकेनु;**
**कत्तिवरा दीसिअपुडु, लक्ष्मणुडु तानेसुकोन्दुननेनु !**

"'यदि तुम उठोगी नहीं, ओ सखी ! मैं प्राण नहीं थाम सकता !'

यह कहते, लक्ष्मण की आँखों में आँसू भर आए ।

म्यान से कटार निकाल, लक्ष्मण बोला—'मैं अपनी हत्या करूँगा !'"

यह उर्मिला की परीक्षा थी:

**अनुचु वादमु शायगा, ऊर्मिला दद्दिरिलि पडि लेचेनू,**
**प्राणेशुडगुटा देलिसि, कोमलिकि प्राणमुलु तेजरिल्ले;**
**पति पाद पद्ममुलकू, अप्पुडू पङ्कजाक्षी म्रोक्केनू !**

"उस के यों तर्क करने पर उर्मिला चौंक कर उठ खड़ी हुई !

यह जान कर कि वह उस का प्राणेश है, कोमल नारी के प्राण में दोबारा तेज आ गया !

पति के कमल-से पैरों पर, तब वह कमल-से नेत्रों वाली नारी झुक गई, साष्टांग !"

अब लक्ष्मण के हृदय में भी प्रेम और फर्ज की संधि हुई; उस ने उर्मिला को उठा लिया.

**पादमुला पडनी उन्ना, तनासतिनी करमुना लेव नेत्ति;**
**ग्रुच्ची कउगिटा चेर्चुकु, कान्ताकु कन्नीजलमुलु दुड़िचेनू !**

"पैरों पर पड़ी अपनी पत्नी को अपने हाथों से उठा कर,

उसे आलिंगन कर, उस ने नारी की आँखो के आँसू पोंछे।"

उर्मिला ने इस बीच मे सोच लिया था कि उसे अब बातचीत को कौन

हिए।

मा तण्ड्री जनकराजु, मिमु नम्मि मरचि कल्याण मिच्चे,

महिपति अल्लुडनुचू, तेलिअका मदिनि उप्पोङ्गुचुण्डे;

चित्तमोका दिक्कुनुञ्ची, समयमुना चिन्ना बुत्तुरू इन्तुला!

"मेरे पिता महाराज जनक ने आप पर भरोसा कर के मुझे व्याह

यह सोच कर कि उन का दामाद महीपति है, बिना जाने ही वह मन

थे।

अपने मन को किसी एक ओर लगा कर, अकसर (पुरुष) नारी के प्रति

शब्द बोल दिया करता है)!'"

अब लक्ष्मण की बारी थी.—

अनुचु ऊर्मिला बलुकगा, लक्ष्मणुड् मनसुलो चिन्तिम्पुचू,

दुःख वशामुना बल्कुतू, वुण्डेटि सुदति भावम्मु;

चिन्तिम्पा निकानेटिके, ओ बाला अनि इटलु लालिम्पुचु,

तरुणि पद्नालुगेण्ड्लु, निनु विड़िचि धरिइस्तिने प्राणमू;

आहारा निद्रालूनु, एरुगने अनिवा नीमीदयाना,

पुण्य पुरुषुला स्त्रीलनू, एड़ाबापि पूर्वजन्मुनामनसू;

एन्नेन्नि युगमुलइना, इदिमनाकु अनुभविञ्चकातीरदु।

"जब उर्मिला यों बोल चुकी, लक्ष्मण मन ही मन खिन्न हुआ;

दु ख के वश में बोलने वाली, उस सुदती का भाव समझ लिया उस ने,

'क्यो चिंतित हो, बाले!' यो ढारस बँधाते हुए, (बोला)—

'ओ तरुणी! चौदह वर्ष, तुम से बिछुड़, मैं (किसी तरह) जीवित

आहार और निद्रा मै ने नहीं जानी, ओ नारी, मुझे तुम्हारी सौगंद

पुण्य पुरुषो की पत्नियो को, पूर्वजन्म मे खडित किया होगा हम ने!

अनेक युग क्यो न बीत जायें, कर्म-फल भोगे बिना नही रह सकते ह

इस के बाद इस नाट्य-सुलभ गीत की तीसरी झाँकी शुरू होती है।

भी, जिस में हम ने सीता को भरे दरबार में शिकायत करते सुना था, रस की
छ कम नहीं है । इस नई झांकी में हम उर्मिला और लक्ष्मण को कद्दे-आदम
सम्मुख खड़े देख सकेंगे:

सति पतुल चिन्त जूचि, कउसल्या सम्पेङ्गा नूने देच्ची,
रत्न पीठमुला नुञ्ची, कउसल्या दम्पतुला सिरसन्टेनू;
गन्धमुलु कलिप देच्ची, ओ चेलिया पन्नीटा जलाकामार्चे,
मेलइना वलिपट्टुतो, लक्ष्मणाकु मेनु तल्लोत्तिरपुडू;
बङ्गारू पूलापट्टू, ऊर्मिलाकु बागुमीरगा गट्टेनु,
कोटिसूर्युला दीप्तितो, वेलिगटि मेलइना रविका दोड़गू;
आभरणमुलु सोम्मुलू, आ आदिलक्ष्मीके अलङ्करिञ्ची,
मुत्याला तिरूचूर्णमू, लक्ष्मणा मुद्दमुखमुना तीर्चेनू;
वेलालोनि माणिक्यमू, पति गूड़िनिलुवुटद्दमु जूचेनू,
सिग्गुपड़ि सिरसोञ्चुकु, ऊर्मिला चिरु नव्वुतो निलाचेनू !

"पति पत्नी को चितातुर पाकर कौशल्या चपक-सुगंधित तेल ले आई,
रत्न-भूषित पीढ़ों पर दंपति को बैठा कर, वह उन के सर पर मालिश करने लगी
एक टहलनी चंदन-लेप तैयार कर लाई; 'पन्नीटा'-जल[1] से उस ने उन्हें स्ना

सुंदर, महीन रेशम से उस ने लक्ष्मण का शरीर पोंछा ।
उर्मिला को टहलनी ने सुनहरे, पुष्प-खचित वस्त्र पहनाए,
एक करोड़ सूर्यों की दीप्ति उस की अँगिया पर चमक उठी !
आभूषणों और रत्नों द्वारा इस आदि-लक्ष्मी (उर्मिला) का सिंगार किया गया
मुक्ता-मिश्रित त्रिचूर्ण से टहलनी ने लक्ष्मण के प्यारे माथे पर तिलक किया
बहुमूल्य माणिक्य-सी (उर्मिला) ने पति के साथ कद्दे-आदम आइने में अपन
हारी !
लजा कर, सिर झुकाए, उर्मिला खड़ी-खड़ी मुसकरा रही थी !"

---

[1] लैवेंडर जल ।

यहा मे फिर नई झाँकी शुरू होती है.—

भोजनपुशाला लोनू, आ आणि मुत्याला पीटा मीदा,
राज शेखरूलप्पुडु, देवेन्द्र भोगमुतो गूर्चुण्डेनू;
मरदला माणिक्यमा, रम्मनी मगुवा अडुकू वच्चेनू,
मुरिपेम्पु सिग्गुचेता, चिलकला कोलिकी मुखमट्टुवञ्चुकू;
हंस नड़कला चेड़ेला, पादमुला अन्देलट्टुरवमुसेया,
वइआ रमुनु जूपुचू, पुण्डे मोक ओप्पुला कुप्पावलेनू;
कुलुकु मुद्दुला गुम्मनू, सुमित्रा कोडकु पोत्तुना युञ्चेनू,
वङ्गारू पल्लेरमुला, पञ्चापरमान्नमुलु वड्डिञ्चेने;
वेण्डि गिन्नेला नेतुलु, कउसल्या वेडुकतो वड्डिञ्चेनू,
आवुनेई अलिरसमुलु, सूमित्रा कोमरुनिकि वड्डिञ्चेनू;
सूमित्रा गारावुना, पट्टितो पुव्वुला शान्ता बलिके,
अन्ना पदुनालुगेण्ड्लु, अड़विलो आहारानिद्रलून्नू;
उन्ना बड़ालिकलु दीरा, नेडुमना ऊर्मिलातोनारगिञ्चू,
दिण्डिवल्टला नेतुलू, बोब्बटलु, दण्डिगा नारगिञ्चु;
मीगड़ा पेरुगु मीरू, मज्जिगालु वाञ्छदीरगा आगुडी,
आरगिञ्ची लेचिरी, सम्पूर्ण मारगिञ्ची निलचिरी;
गङ्गा जलमुना हस्तमू, कड़िगीताम्बूलमुलु वेयेचुण्डी।

"भोजन-शाला मे 'आणो' मोतियो के पीढे पर
तब वह राजशेखर (राम) देवता इद्र के-से सुख-भोग सहित आ बैठे।
माणिक्य-सी भावज को 'अंदर आओ तो' कहते (राम) अदर ले आए।
चित्ताकर्षक लज्जा सहित सुग्गे-सी (उर्मिला) ने मुख दूसरी ओर मोड लिए
(और) वह हसगामिनी पैजनियो से झनझन शब्द उत्पन्न करती आई।
सुषमा दिखाती, (उर्मिला) एक सौदर्य-राशि ही तो दिखती थी!
मानिनी, प्रिय (उर्मिला) को सुमित्रा ने अपने पुत्र[1] की बगल मे बैठाया;

---

[1] लक्ष्मण। सौमित्री या सुमित्रा का पुत्र आदि प्रयोग प्रायः लक्ष्मण के। शत्रुघ्न के लिए नहीं।

सोने के थालों में उस ने पांच परमान्न[1] परोसे।
कौशल्या खुशी से चाँदी की कटोरियों में घी लाई।
गोघृत और 'अतिरसमु'[2] सुमित्रा ने अपने पुत्र के सामने ला रक्खे।
लाड़ले सुमित्रानंदन से फूली (पर रीझी) शांता बोली—
'भइया, चौदह वर्ष बन में न तुम ने खाया न तुम सोये।
सब थकान दूर हो जावे जिस से, (खूब) खाओ हमारी उर्मिला के संग में आज!
ये मिठाइयां, घी, बोब्बट,[3] जी भर कर खाओ!
यह मलाई और यह दही और छाछ,[4] तुम सब जने, इच्छानुसार पान करो!'
भोजन पा कर, उठ खड़े हुए सब जने, जी भर खाकर;
गंगा-जल में हाथ धोकर, वे पान के बीडे लेने लगे!"

अगली झाँकी में शांता और सीता का हास-परिहास ननद भावज की कहानी के पुराने पन्नों को छू रहा है। उर्मिला यों इस गोष्ठी में मौजूद है, शांता के प्रथम व्यंग्य में उर्मिला ही निशाना बनी है। वह मूक रही; चपल अट्टहास में भाग न लिया; करीब होकर भी पुलकन-स्पंदन के प्रति उस की यह खामोश अनास्था न जाने कितनी करुणा जगा रही है।

**चेड़े विनबे जानकी, नी चेलिय ऊर्मिला बुद्धुलन्नी,**
**भमिड़ी पानपुना सोलासी, युण्डे नोका पद्दुनालुगेण्ड्लु पणती;**
**कुन्दनपु प्रतिमाकललू, ई कलालू एंदुन्डिदागुन्नबो,**
**दृष्टि तगुलाकुण्डनू, नीलालु निब्बालु लिव्वरम्मा;**
**अनिशान्ताबलुकगानू, विनि सीता नव्वुचु इट्लनिअनू,**
**इन्द्रादि चन्द्रूलनू, वल पिञ्चु चन्द्रुलू मी तम्मलू;**

---

[1] खीर (जो आंध्र देश में प्रायः 'पायसम्' कहलाती है) एक लोकप्रिय परमान्न है।

[2] एक मिठाई।

[3] एक पकवान।

[4] दही ('पेरुगु') और छाछ ('मज्जिगा') प्रायः भोजन के अंत में परोसे जाते हैं; यह इस प्रांत की पुरातन रूढ़ि है।

**बष्टि तगुला कुण्डनू नीलाला निम्वालू**

अनि सीता पलुक गानू, विनि शान्ता नव्वुचू इट्लनिश्ननू;
अक्काचेल्लेण्ड्रू मीरू, मिक्कोलि: सोंदर्यशालुरम्मा,
मा तम्मुलू नलूगुरी, वलापिन्चु जाणालकु दृष्टि तगुलू;
अनि शान्ता पलक गानू, विनि सीतानव्वुचु इटलननेनु,
मायन्ना ऋष्यशृंगू, नीवन्नमु लोकूडि बायकुन्ना;
एमि येरुगनि तपसिनी, श्रो वदिना केलिञ्चि विडुचिनावू,
शान्ता विनि इटलानेनू, श्रो सीता मा वदिना धरनी पुत्री;
ईश्वरुनि कृपवलननू, मा इल्लु जोच्चि पुभाव नीवू,
कोमली सीता नीवू, कोड़लवू पावनम्माए गृहमू!

"'श्रो नारी, श्रो सीता, सुनो तो अपनी बहिन उर्मिला की बुद्धिमानी
अपने स्वर्ण-पलग पर मूर्छित हुई पड़ी रही वह चौदह साल लगातार
इस स्वर्ण-प्रतिमा की सब छटा (इतने वर्ष) कहा छुपी रही थी!
कहीं उसे कुदृष्टि न लग जाय, उस पर 'नीलालु'[1] आरती कर, श्रो
शाता यो बोली, इसे सुन सीता हँस कर कहने लगी—
'इन्द्र तक को मोह लेने वाले तुम्हारे चाँद-से भाई जो हैं!
कही उन्हें कुदृष्टि न लग जाय, उन पर 'नीलालु' आरती करो न
सीता यो बोली, इसे सुन शांता हँस कर कहने लगी—
'तुम (सब) बहने सुंदरिया हो, अनुपम!
मेरे चारो भाइयो को मोह लिया है तुम ने, कही कुदृष्टि न लगे तुम-सी
को!'
शाता यो बोली, इसे सुन सीता हँस कर कहने लगी—
'ऋष्यश्रृग, जो मेरे लिए भाई-सम है, बन मे तुझ से मिल कर कभी भ
) नही छोड़ता!
उस भोले तपस्वी का तुम बेहद मजाक़ उड़ाया करती हो!'

---

[1] आरती में प्रयोग में आने वाली एक वस्तु।

इसे सुन शाता बोली—'सीता ! ओ मेरी भौजी ! ओ धरणी-पुत्री !
ईश्वर की कृपा से तुम ने हमारे गृह मे प्रवेश किया है !
ओ कोमलांगी सीता, तुम हमारी वधू बनी तो हमारा गृह पवित्र हुआ !"

यहां से फिर झाँकी बदलती है :

अलिसुन्ना सुतकपुड्डु, सुमित्रा हम्सु पान्नुपु परचेनु,
पट्टतलागडालु परची, पान्पुपइ पन्नीरू चिलिकिञ्चेनू;
वट्टी वेल्ला सुरटिनी, कोरवाणी थक्कड़ नुञ्चेनू,
गन्ध कस्तूरी पुनुगु, जव्वादि गिन्नेलालो तेञ्चुञ्चेनू;
पच्ची पोकलु थाकलू, मुत्थाला सुन्ना मक्कड़नुञ्चेनू,
सम्पेङ्गा पुवुला गाली, विसरगा शय्यापई गूरचुण्डरी;
मल्ले पुवुल्ला गाली यू, विसरगा शय्यापई गूरचुण्डरी,
पड़तीकी कोप्पा मरगा, लक्ष्मणुड्डु नेरुपुतो जड़लल्लीनू;
बोट्टु मल्लेलू जाजुलू, जड़पड्नी श्रृंगारमुगा नुञ्चेन,
ताम्बूलमुलू वेयुचु, दम्पतुलु कलसी मुच्चटा लाडुचू,
'अक्का चेरबोवू त्रिधमू, एमनी' अड़िगे नप्पुड्डु ऊर्मिला;
'सिम्हू विक्रमुलू मीरू, मुण्डगा सीतेटलू चेरबोएनू,
राम लक्ष्मणुलु मीरू, युण्डगा रमणेटलु चेरबोएनू';
अनुचु ऊर्मिला पलुकगा, लक्ष्मणुड्डु विनि मगुड़ी इटलानिनु;
'काल विधि गड्डपा वशमा, कड्कुना ब्रह्म के यइना गानी;
अइयोध्या वेड़लिमेमु, अन्दोक्का परणशालालोनुन्टिमी,
कनकम्पू माया मृगमू, आ परणशाला वाकिटकोच्चेनू;
आ मृगमू तेम्मनुचुनु, सीयक्का स्वामी काल्ला कु म्रोक्केनु,
विल्लम्बु चेता वट्टी, श्री राम चन्द्रुलु वेंटा वेड़ले;
विल्लम्बु तोड़िगी वेया, मृगमू विन्तइना कूतगूसे,
हा सीता हा लक्ष्मणा, अनीकूया अतिवा भीतिल्ली पलिके;
नम्मु बोम्मनी पलिकेनु, येरुगवु तल्ली वद्दन्टीलेनू,

करण सुल्तम्बु लहना येलहना माटले नन्नाकनू
गिरिगी सीयाना बेट्टी, पोईतिनी मा यशा दग्गिरकुनु,
पोई नन्ता बेगमे, रावणुड़ु माया बेशमु वेसुकु;
नारायणनुचु वच्ची, नलिनाक्षी ग्रवुटाने निलुचुण्डेनु,
हरि भक्तुड़नि तोचि, श्रामगु वा श्रदि श्रेग भिक्षा बेट्टे;
धदितलालु चूपा नतड़ु, श्रा चेड़े मूर्च्छ पड़ि पोवगानु,
गेड्डा तो पेल्ला गिञ्ची, एतु कोलि पोएने तन लङ्क कु;
पसिड़ी मृगमुनु वट्टुकु, श्रीरामचन्द्रुलु एतेञ्चिरी,
सीताचटलेमि जूचि, परणशाला वनमु वेदकी बेवको;
किष्किन्धा पर्वताना, कञ्चिरिमी परमऋषि सुग्रीवुनी,
दशरधुनी तनयुलनुचु, सुग्रीवु कानुकलु तेञ्चिवच्चेनु;
कानुकलु विप्पीचूड़ा, ग्रन्दुलो जानकी तोड़गु लुण्डे,
तम्मुड़ा रम्मनुचुनु, ननु बिलिची नाकु जूपेनु तोड़गुलु;
इशी तोड़ुगुलु एरुगनु, श्रीराम ग्रन्देलोक्कटे एरुगुदू,
केरली श्रोक्केड़ु वेल्ला, कान्तुनवि प्रति दुदयमन्दन्टिनी;
ग्रन्जनीसुतनी बिलिची, श्रारामुड़ुङ्गरमु चेतिकिच्ची,
श्राणवाललम्नि जेप्पी, श्रम्पेने देवि जूड़ा;
वारधि दाटि पाई, ग्र सोक वन मेल्ला वेदकी जूची,
उङ्गरमु चेति किच्ची, माणिक्यमन्दुकोनि माटलाड़ी;
तिरिगी वच्ची येगमे, श्री रामचन्द्रुला येदुटा निलिचे,
राज भूपाल चन्द्र, मन सीता ये विधम्मुना देसुनु;
तल लेल्ला जडलु गट्टी, उन्नदी हृदयमुना श्रगी रगली,
तल्ली उण्डेटी विधमु, तलचिते ताल शक्यमु गावया;
दु खवशमुना जेप्पिना, राघवुलु विनि मूर्च्छी बोई तेलसी,
श्रालङ्क गुट्टु तेलसी, रावणाक्षोहिणी बलमुलार्चे;
भृगारमुनु चेसिए, तेम्मनेनु सीतनु तना एदुटाक्षी,
तेच्चि श्रीरामुलेदुटा, निलपा श्रच्युतुण्डिटलानेनु;

**पदिनेलालु चर उन्नदी, माम तो भाषिञ्चलनि पलिकेनु ,**
**ओट्टु सत्यमु लेटिकि, ओ राम चिञ्चु गाविञ्चुमनेनु ;**
**आकास मन्ता एत्तु, मन्दलो मा वदिने मन्टालाडे ,**
**जगमुलु निण्डु नटलु, जलमुलु तटाक मइयोप्पेनु ;**
**परम पतिव्रता गनुकनु, मा वदिना पोन्दे मा यन्ना पोन्दू ,**
**सीता श्रीरामलकुनु, सृष्टिलो कट्टि रइयोध्या पुरमु !**

"अपने भ्रात पुत्र के लिए सुमित्रा ने हंसों के मुलायम पखों का बिस्तर बिछाया !
रेशमी तकिए रख, उस ने इस (बिस्तर) पर 'पन्नीरू' सुगधि छिडकी !
सुग्गे-सी बोली बोलने वाली एक टहलनी ने 'वट्टी' पंखा ला रक्खा !
चदन-लेप, कस्तूरी और 'पुनुगु' तथा 'जव्वादी'[1] कटोरियों मे पास ला रक्खी,
हरी सुपारिया, ताबूल, चूने (की बजाय) मुक्ता (भस्म), सब वहा ला रक्खे।
चंपक फूलो मे बसी हुई हवा चल पडी; (लक्ष्मण ने) बाहर का द्वार बंद कर लिया !
चमेली-लदी हवा चल पडी; (लक्ष्मण और उर्मिला) सेज पर बैठ गए !
नारी का जूडा (फिर से) बॉधने के लिए लक्ष्मण होशियारी से उस की वेणी गूँथने लगा !
'बोड्डू', चमेली और 'जाजी' फूलो से उस ने वेणी का शृंगार किया !
पान चबाते पति-पत्नी हास-परिहास करने लगे।
'मेरी बहन किस प्रकार चुरा ली गई थी?'—तब उर्मिला पूछ उठी,
'सिंह-से बहादुर, तुम वहां थे, फिर सीता कैसे चुरा ली गई थी?
आप राम और लक्ष्मण वहा मौजूद तो थे, फिर वह रमणी कैसे चुरा ली गई थी?'
उर्मिला के यों पूछने पर, लक्ष्मण, इसे सुन, कहने लगा—
काल के विधान से कोई बच सकता है क्या, स्वय ब्रह्मा भी क्यों न हो?
अयोध्या से चल कर हम वहा एक पर्णशाला मे जा टिके।
एक सुनहरा मायामृग उस पर्णशाला के द्वार की ओर आ निकला,

---

[1] दो विशेष सुगंधियां।

उस मग को (पकड) लाने की इच्छा जताती हुई तुम्हारी बहन पति के पैरों पर झुक गई

धनुष-बाण ले श्री राम शिकार को निकल पडे।

धनुष कस कर (उधर) उन्हों ने तीर छोड दिया, मृग ने एक अजब आवाज निकाली—

'हा सीता ! हा लक्ष्मण ! !'—इसे सुन वह नारी डर गई और बोली।

उस ने मुझे जाने को कहा, 'तुम नही जानती, मा ! मै नही (जाऊगा), मै बोला।

कानो मे तीरों की तरह चुभने वाले कितने ही शब्द वह बोलती गई !

एक रेखा खीच कर, उस के लिए हद बांध कर मै भाई की ओर चला।

शीघ्र ही, रावण मायावी वेश मे उधर आ गया।

'नारायण' कह, वह उस कमलिनि-सी आँखो वाली नारी के सम्मुख आ खडा हुआ।

उसे हरिभक्त समझ उस नारी ने उसे भिक्षा डाल दी।

जब (रावण ने) अपने दस सिर खोल दिखाए उस नारी को मूर्च्छा आ गई।

अपने नीचे की धरती का टुकडा उखाड़, वह उसे लका को उठा ले गया।

सुनहरे मृग को उठाए श्री रामचद्र आ रहे थे !

सीता को न पाकर, पर्णशाला और बन मे ढूँढते-ढूँढते हम किष्किधा पर्वत पर परम ऋषि सुग्रीव से मिले ;

'हम दशरथ के बेटे है', हम बोले; सुग्रीव ने हमारे (सम्मुख) उपहार ला रक्खा।

उपहार (का डब्बा) खोलने पर, उस मे सीता के भूषण मिले,

'आओ तो, भइया!', यों कह मुझे बुला (राम ने) मुझे सब भूषण दिखाए।

'यह सब भूषण मै नही पहचानता, भाई श्री राम, मै तो केवल पैजनियां पहचानता हूं !

हर बार (सीता को) प्रणाम करते मैं इन्हे देखता था, प्रतिदिन प्रभात समय !' मैं ने कहा।

अजना-सुत को बुला राम ने उसे अपनी अँगूठी दी।

सब निशानिया बता, उसे सीता[1] को तलाश मे भेजा।

सागर पार जा कर, अशोक-वन तलाश करने पर सीता को पाकर, अँगूठी दे कर, (बदले मे) माणिक्य पाकर, और (सीता से) वार्तालाप कर, शीघ्र लौट कर, (वह) श्री राम के सम्मुख खडा हो गया—

'हे राजभूपाल चद्र! (कहिए) मै सीता को किस प्रकार लाऊ!

उस के सर के सब बाल जटाए बन गए है; उस के हृदय मे आग जल रही है!

उस माता की दशा का विचार एकदम असहनीय है!

दु ख के वश मे जब वह यो बोला, इसे सुन राघव को मूर्च्छा आ गई।

(फिर) उस लका का भेद जान कर, रावण को अक्षौहिणी सेना सहित विध्वंस कर दिया!

'सजा कर सीता को यहा लाओ', उन्हो ने हुक्म दिया।

लाकर जब सीता को श्री राम के सम्मुख खड़ी किया गया, वह बोले—

'दस मास कारावास में थी यह, मै इस नारी से बात न करूँगा!' जब वह यह बोले,

'सत्य की सौगंद क्यो (खाऊं)? ओ राम, जलाओ आग!' उस ने कहा!

आग की ज्वालाएं आकाश तक गई, मेरी भौजी इस आग से खेली!

जैसे सब ओर पानी ही पानी हो गया, झील बन गई जैसे!

चूँकि परम पतिव्रता है मेरी भौजी, मेरे भाई का हाथ उस ने फिर से पा लिया!

सीता और श्री राम के लिए ही तो सृष्टि में अयोध्या नगर बना है!' "

यहा एक प्रकार से गीत का अंत हो गया है। बाक़ी की चद पक्तियो मे स्त्रियों ने अपनी बात कही है, और उर्मिला के पति लक्ष्मण में देवता की भावना प्रकाशित की है; उर्मिला का देवी रूप तो प्रत्यक्ष ही है उन के लिए, जिस पर, शायद इस लिए, अधिक कुछ नही कहा गया—बस उस की लंबी नीद की ओर ही फिर से सकेत कर दिया गया है; साथ ही इस गीत का माहात्म्य बतला दिया गया है:

---

[1] मूल में 'देवी' शब्द आया है।

ता बड्ड क्लेषम्मुलु, ऊर्मिला तो तप्पा कुण्डा जप्पेनु,
अक्करो विन्टी रटवे, नेडुमना ऊर्मिला सति बुद्धलु;
चन्द्रमुखी तननाधुनी, एड्डाबासि पदुनालुगु एँडलापाटु,
पच्चो गङ्गे नेरगके, पवलिञ्चे तन भमिड़ी पानपु पइना;
चिन्तिञ्चि चिन्तिञ्चि, मन मेल्ला अति दुःखमुनानुन्टिमी,
अइना कार्यमुकु मनमु, चिन्तिञ्चि कारणमु लेदु इङ्का;
ऊर्मिला विरहम्मुलु, इदियवरू पाड़िना विन्नागानी,
श्री विष्णु कैवल्यमु, सौमित्री विष्णु लोकमु निच्चनु!

"जो-जो कष्ट भोगे थे, उर्मिला को सब कह सुनाए, बिना एक भी भूल के।
ओ बहिनो! तुम ने सुनी क्या आज हमारी उर्मिला की बुद्धिमानी?
वह चद्रमुखी अपने नाथ से बिछुड चौदह वर्ष—
पानी की एक घूँट पिए बिना, वह सोती रही स्वर्ण-पलग पर!
चिंता करती-करती, हम सब अति दुखित होगई है!
जो बीत चुका, उस पर चिंता करने का तो कोई कारण नही है।
उर्मिला के विरह का गान जो कोई भी गायेगी, या सुनेगी,
लक्ष्मण उसे विष्णुलोक मे निर्वाण देगा।"

गीत कैसा है, कितना सार्थक है, यह विद्वान साहित्य-सेवी स्वय विचारे; मैं ने तो इसे आध्र लोक-मानस की उर्वरता के प्रतीक-स्वरूप सुना है, और आध्र भाषा की कठिनाई को, मित्रो की सहायता से लाँघ कर इसे हिंदी लिबास पहना दिया। मुझे यह सुदर सरस लगा है।

उर्मिला के यह पूछने पर कि राम और लक्ष्मण सरीखे सिंह से वीरो के होते सीता कैसे चुरा ली गई थी, लक्ष्मण ने इतनी लबी कहानी शुरू करदी, यह मुझे भला नही लगा। इस का उत्तर तो उस ने यो रूढ़ि-अनुसार एक ही कड़ी मे दे दिया था—'काल के विधान से कोई बच सकता है क्या' लक्ष्मण को चाहिए थी अपनी बात कहनी और उर्मिला की सुननी।

"लंका-यागम" नामक एक दूसरे आंध्र गीत में एक मार्के की झाँकी मौजूद है, यदि वह, किसी तरह, लक्ष्मण ने अपने शब्दो मे उर्मिला को दिखाई होती तो इस गीत मे

और भी जान पड जाती। यो तो इस गीत मे इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि लक्ष्मण बन में न सोया था, और न कभी उस ने कुछ खाया था। "लका-यागम" मे मूर्च्छा के बाद जब लक्ष्मण फिर-से युद्ध करने लायक हो जाता है तो राम कहते है—'मेघनाद से कौन लड़ेगा?' उस से दो हाथ वही ले सकता है जिस ने चौदह साल तक न कुछ खाया हो, और न कभी वह एक क्षण के लिए भी सोया हो।' यो शायद राम को यह ज्ञात था कि लक्ष्मण ऐसा 'नियमवान' पुरुष है और वह जरूर मेघनाद को पछाड सकेगा, उन्हे एक सदेह भी था। एक बार (जैसा कि जनश्रुति से प्रत्यक्ष है) सीता और राम पचवटी मे बैठे फल खा रहे थे। सीता बोली—'पतिदेव! हम भी कितने क्रूर है, निर्दयी है!' 'क्यो?' राम ने पूछा। 'क्यो?', सीता ने कहना शुरू किया, 'लक्ष्मण रोज़ हमारे लिए फल लाता है। रोज़ हमारे सम्मुख इन्हे रख कर बाहर पहरे पर जा बैठता है। हम कभी उसे नही पूछते कि उस भलेमानस ने स्वय भी कुछ खाया है या नही!' राम बोले—'वाह! इस में हमारी क्या क्रूरता है? वह खुद समझदार है। भूख लगेगी तो खुद खा लेगा।' सीता ने उस दिन यह जिद की कि राम अपने हाथ से "अमृतपाणी" केले, जिन्हे लक्ष्मण उस दिन कही से उन के लिए ढूँढ़ लाया था, लक्ष्मण को देकर आए। राम को पत्नी का कहना मानना पडा। लक्ष्मण इन्कार न कर सका, केले उस ने ले लिए, पर वह उन्हे खा कैसे सकता था? उस का व्रत था निराहार रहने का। उसे एक तरकीब सूझी। इन केलो को उस ने अपनी जघा काट कर भीतर छुपा दिया, भाई के दिए केलों को भूमि पर गिराने से भाई का अपमान हुआ होता, भूमि-पुत्री सीता को यह राज़ मालूम भी तो हो जाता। लक्ष्मण का विश्वास था कि जंघा के बीच मे, उस के चरित्र-बल और भगवान् की कृपा के मेल से, वे केले कभी खराब न होगे, और समय आने पर वह इन्हें निकाल इन का उपयोग कर सकेगा।

"लका-यागम" गीत मे राम के 'नियमवान' पुरुष की तलाश प्रकट करने पर हम लक्ष्मण को यह कहते पाते है—'मैं नियमवान हूं। वर्षो से मै ने न कुछ खाया है न सोया हू!' राम पूछते है—'और वे अमृतपाणी केले, जो मैं ने खुद तुम्हे दिए थे?' इस पर लक्ष्मण अनी जंघा काट कर वे केले निकाल कर दिखाता है।

( ५ )

उड़ीसा और आन्ध्र देश की सरहद पर, सन् १९३२ में, जब मैं "उर्मिला की नीद"

का पहले-पहल पता लगा सका था, श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपना 'साकेत', जो उर्मिला—रामायण की उस उपेक्षिता नारी—को हिंदी-जगत् के सम्मुख ला सकने में समर्थ हुआ है, मुझ तक पहुँचाने की कृपा की थी। यह एक विचित्र दैवयोग था!

'साकेत' में मैं ने उर्मिला को जी भर कर देखा।

**अरुण-पट पहने हुए आल्हाद में ?**
**कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में ?**
**प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं ?**
**कांति की किरणें उजेला कर रही।**

(पृष्ठ १०)

**स्वर्ण का यह सुमन धरती पर खिला ;**
**नाम है इस का उचित ही उर्मिला।**

(पृष्ठ १२)

**उर्मिला बोली अजी तुम जग गए ?**

(पृष्ठ १३)

इस पर लक्ष्मण बोल उठा—

**मोहिनी ने मंत्र पढ़ जब से छुआ !**
**जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ !**

(पृष्ठ १४)

यहां मैं सोचने लगा—ओ! कहीं यहां लक्ष्मण उर्मिला की आगामी चौदह वर्ष लंबी नींद—जिस पर "उर्मिला की नींद" गीत की सृष्टि हुई है, की ओर तो संकेत नहीं कर रहा! उर्मिला पूछ उठी—

**जागरण है स्वप्न से अच्छा कहीं ?**

लक्ष्मण झट बोला—

**प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं !'**

(पृष्ठ १४)

उर्मिला यहां चित्रकला में निपुण है; लक्ष्मण कह रहे है—

मंजरी-सी उंगलियों में यह कला !
देख कर मैं क्यों न सुध भूलूं भला ?

(पृष्ठ २१)

उर्मिला का अपना चित्र कवि ने खींचा है—

चूमता था भूमितल को अर्द्ध विधु-सा भाल ;
बिछ रहे थे प्रेम के दृग-जाल बन कर बाल।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ ;
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।

(पृष्ठ २५)

और फिर लक्ष्मण के राम और सीता के साथ वन जाते समय का दृश्य—

उठीं न लक्ष्मण की आँखें,
जकड़ी रहीं पलक-पाँखें।
किंतु कल्पना घटी नहीं,
उदित उर्मिला हटी नहीं।

(पृष्ठ ८८)

खड़ी हुई हृदयस्थल में—
पूछ रही थी पल-पल में—
"मैं क्या करूं ? चलूं कि रहूं ?
हाय ! और क्या आज कहूं ?"
आः कितना सकरुण मुख था,
आर्द्र-सरोज-अरुण मुख था,
लक्ष्मण ने सोचा कि—"अहो,
कैसे कहूं चलो कि रहो ! ....
प्रभुवर बाधा पावेंगे,
छोड़ मुझे भी जावेंगे ! ....
रहो, रहो, हे प्रिये ! रहो. . .
यह भी मेरे लिए सहो।"

लक्ष्मण हुए वियोगजयी,
और उर्मिला प्रेममयी।
वह भी सब कुछ जान गई,
विवश भाव से मान गई।

(पृष्ठ ८९)

श्री सीता के कंधे पर—
आँसू बरस पड़े झर झर।
पहन तरल-तर हीरे-से,
कहा उन्हों ने धीरे से—
"बहन! धैर्य का अवसर है,"
वह बोली—"अब ईश्वर है!"
सीता बोली कि—"हां, बहन!
सभी कहीं, गृह हो कि गहन।"

(पृष्ठ ९०)

फिर सुमित्रा से लक्ष्मण को आज्ञा मिलने के बाद—

लक्ष्मण का तन पुलक उठा,
मन मानो कुछ कुलक उठा।
मां का भी आदेश मिला,
पर वह किस का हृदय हिला?
कहा उर्मिला ने—"हे मन!
तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन!
भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे,
भू पर स्वर्ग-भाव सरसे।

(पृष्ठ ९३)

और फिर जब लक्ष्मण के चलने का समय आया, यह आदर्श उस की मूर्च्छा नहीं रोक सका; 'हाय' कह कर वह धड़ाम से गिर पड़ी। पर लक्ष्मण रुका नहीं।

षष्ठ सर्ग में फिर उर्मिला हमारे सम्मुख आ गई है—

**पुरदेवी-सी यह कौन पड़ी ?**
**उर्मिला मूर्च्छिता मौन पड़ी !**

(पृष्ठ ११३)

"उर्मिला की नींद" का पाठक सोच उठेगा—यह मूर्छिता क्या सचमुच चौदह साल यों ही बिता देगी ? कोई इसे उठाएगा नहीं ? सखिया उसे समझाती है—

**बोली सुलक्षणा नाम सखी—**
**"है धीरज का ही काम सखी !"**

(पृष्ठ १४४)

यहा उर्मिला चिर-मूर्च्छिता नही है। लक्ष्मण के चले जाने के अगले ही रोज हम साँझ समय उसे होश मे पाते है—

**फिर सूनी सूनी साँझ हुई,**
**मानो सब वेला बाँझ हुई।**
**उर्मिला कभी तो रोती थी,**
**फिर कभी शांत-सी होती थी।**
**देता प्रबोध जो, सुनती थी,**
**मन में अतर्क्य कुछ गुनती थी।**

(पृष्ठ १४६)

और फिर नवम सर्ग तो है ही उर्मिला की आत्मकथा; यही 'साकेत' की आत्मा धन्य हुई है। कवि ने स्वय लिखा है—"उर्मिला के विरह-वर्णन मे मैं ने स्वच्छदता से काम लिया है। यो तो 'साकेत' दो वर्ष पूर्व ही पूरा हो चुका था, परन्तु नवम सर्ग मे तब भी कुछ काम शेष रह गया था और मेरी भावना के अनुसार आज भी वह अधूरा है। यह भी अच्छा ही है।" (पृष्ठ ३)। यह अधूरापन ही तो इसे नित-नूतन बनाए रक्खेगा।

साकेत का लक्ष्मण आध्र-गीत के लक्ष्मण-सा निर्मोही नही है, उर्मिला भी यहा राम, लक्ष्मण और सीता के वापस आने पर खूब सचेत है, सयानी है.

**हाय ! सखी, शृंगार ? मुझे अब भी सोहेंगे ?**
**क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे ?**

नहीं नहीं प्राणश मुझी से छले न जावें
जैसी हूं मैं, नाथ मुझे वैसा ही पावें।

(पृष्ठ ४४३)

किंतु देख यह वेश दुखी होंगे वे कितने ?
तो, ला भूषण-वसन, इष्ट हों तुझ को जितने।
पर यौवन-उन्माद कहां से लाऊँगी मैं ?
वह खोया धन आज कहां सखि, पाऊँगी मैं ?

(पृष्ठ ४४७)

और लक्ष्मण भी उस से भेंट कर कहता है—

जो लक्ष्मण था एक तुम्हारा लोलुप कामी,
कह सकती हो आज उसे तुम अपना स्वामी।

(पृष्ठ ४४६)

वह फिर कहता है—

वह वर्षा की बाढ़, गई, उस को जाने दो,
शुचि-गंभीरता प्रिये, शरद की यह आने दो।

(पृष्ठ ४४४)

जो हो, "उर्मिला की नींद" की अपनी रूप-रेखा है। मुझे यह प्रिय है। और प्रिय हैं मेरे चार आंध्र-देशीय मित्र, जिन की असीम सहायता से मैं इस का अध्ययन कर सका श्री सिंगराचार्य, श्री श्रीनिवासाचार्य, श्री एम० कृष्णामूर्ति और श्री एम० सुब्बाराया। चारो मित्र अभी नवयुवक हैं, पर उन के दिल कितने सजीव, यह मैं जान गया हूं।

---

# तुलसीदास-संबंधी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज

[लेखक—श्रीयुत भद्रदत्त शास्त्री]

शूकरक्षेत्र (सोरो), जिला एटा मे कितने ही वर्षो से पडित गोविदवल्लभ जी भट्टशास्त्री तुलसीदास-संबधी हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथो की खोज कर रहे हैं। उसी के फल-स्वरूप कतिपय ग्रथ प्राप्त हुए थे जिन की सूचना कई पत्रों मे प्रकाशित हो चुकी है।

हाल मे भी उक्त भट्टशास्त्री एव आयुर्वेदाचार्य पडित वेदव्रत जी शास्त्री सोरो निवासी को खोज मे निम्न-लिखित ग्यारह महत्वपूर्ण ग्रथ उपलब्ध हुए है।

(१) रत्नावली-चरित—तुलसीदास जी की पत्नी रत्नावली की जीवनी। कविवर श्री मुरलीधर जी चतुर्वेदी द्वारा निर्मित तथा उन्ही के हाथ से सवत् १८२९, श्रावण शुक्ला १ शुक्रवार को लिखित। उक्त पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर ५ दुकडियो वाला एक 'गणपति-स्तवन' सस्कृत भाषा मे उल्लिखित है जिस का प्रारंभ 'वन्देगणपतिमीशम्' टेक से हुआ है और अंत मे निम्न दुकड़ी है—

मौलिमिलितबद्धाञ्जलिनाऽहम् गायन्संस्तवपद्यम्।
अधियाचे मुरलीधर विप्रो मतिवैभवमनवद्यम् ॥वन्दे०॥

इस के अनतर 'श्रीगणेशायनमः' और 'सरस्वत्यैनमः' लिख कर निम्न-लिखित दो श्लोक लिखे हैं—

हरिहर गुरुभक्तः कर्मधर्मानुरक्तः।
त्रिभुवनगतकीर्तिः कान्तिकन्दर्पमूर्तिः॥
रघुवरगुणगाथा गानशीलो महात्मा।
सजयति सुकुलात्मारामसूनुः कवीन्द्रः॥१॥

रत्नावलीवदनचन्द्रचकोररूप ।
श्रीरामचन्द्रपदपङ्कजचञ्चरीकः ।।
श्रीशुक्लवंशतिलकस्तुलसी द्विजेन्द्रो ।
बन्द्यो बुधो जयति शोकरतीर्थतीर्थः ।।२।।

इस से आगे भाषापद्यों में 'रत्नावली-चरित' लिखा है । अंत में दो छप्पे छन्द तुलसीदास एवं नंददास के विषय में और तीन शूकरक्षेत्र की प्रशंसा में हैं, तथा अपने विषय में भी निम्न छप्पै लिखा है—

लुषदुष बीते असी लगे मुरली इक्यासी ।
बसत सोंकरथ आस कटे बन्धन चौरासी ।।
दीठि भई अब मन्द दुरत सिर कँपत कछुक कर ।
तदपि न मानत लिखन कहत मन कविता सुन्दर ।।
सो अब कछ बानक बनहि मन बहलावन करि रहे ।
जिमि जन बिन दसनन चनक पोसि पीसि मुख भरि रहे ।।

पुन कृष्णदास कृत 'कृष्णदास वंशावली' के १० दोहे लिख कर वर्ष-पत्रिका बनाने के चार छप्पै और अपना वर्षपत्र भी निम्न प्रकार लिखा है—

अथ शुभ सम्वत् १८२६ मिते वर्षे वैक्रमे कार्तिक शुक्ला १० दशम्याम् बुधवासरे घ० ५६। २८ शतभिषामे ४६।४३ वर्षेष्टम् ४२।१५ तुलाऽर्क गतांशाः २२ कर्कट लग्नोदये चतु० मुरलीधरस्य ८१ मितहायने प्रवेशः गताब्दाः ८० ।।

वर्ष ल० चक्रम् ।
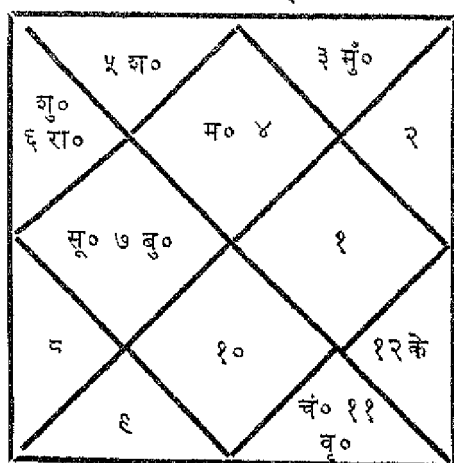
पञ्चवर्गी

| ज० | व० | मु० | त्रि० | स० |
|---|---|---|---|---|
| ७ | ४ | ३ | ४ | ११ |
| स्वा० | स्वा० | स्वा० | स्वा० | स्वा० |
| शु० | च० | बु० | म० | श० |

उक्त पुस्तक के उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री मुरलीधर चतुर्वेदी का जन्म सवत् १७४९ वि० मे (रत्नावली के स्वर्गगमन से ९८ वर्ष पीछे और तुलसीदास जी के मोक्षधाम जाने मे ६९ वर्ष पीछे) हुआ। उक्त पुस्तक के लेखन-काल स० १८२९ मे यह ८० वर्ष के थे। इस पुस्तक को लिखे हुए इस वर्ष १६७ वर्ष हो गए। पुस्तक के रचयिता सस्कृत और भापा दोनों के कवि थे।

(२) भक्तमाल—श्री नाभादास कृत। मेवादास कृत टीकासहित। पृष्ठ-सख्या २१८। लवाई १२॥", चौड़ाई ६॥।" । सवत् १८९४ वि० में लिखित। इस मे तुलसीदास जी और नंददास जी की वार्ता का उल्लेख है। तुलसीदास जी ने नददास जी से कहा है कि "ब्रज मे मति जाहि", तब नददास जी ने अनेक श्लोक और भाषापद्यो मे ब्रज की प्रशसा करते हुए तुलसीदास जी को अत मे यह कह कर "जब बिधि चुक्यो तब जाइवो आइवो कहा" निरुत्तर कर दिया है। टीकाकार ने अपना परिचय पुस्तक के अत मे निम्न प्रकार दिया है —

बृंदावन. . . .(शेप अक्षर कट गए है)
बंशीबट गोपेश्वर पास। ज्ञानगूदरी आगे बास ॥
तहां क्षेत्तर रतलाम को जानो। सब सुखधाम सुबासहि मानो ॥
मूरति ३० रहें जहँ छाये। सुखप्रद वास जानि सब आये ॥

दोहा

तिनमधि संत सिरोमनी, सब परिपूरन काम।
सरणागत प्रतिपाल हें, नाम श्री१०८ साधूराम ॥
तिनकी पादत्राण को, रक्षक सेवादास।
जन्म जन्म यह वंदगी, दीजै और न आस ॥
सदा जाय आनन्द मे, घड़ि पल छिन दिन रैन।
कबहूँ दुख व्यापै नहीं, रहत हे सुख के ऐन ॥

सेवादास दसकत लिखे ताम खोट अपार।
पंडित सुरता सत जन, लीजौ सूद सुधार ॥

(३) श्रीविष्णुस्वामिचरितामृत—संस्कृत ग्रंथ, श्री [illegible] भट्ट [illegible] पृष्ठ-संख्या ११५, साइज उक्त भक्तमाल के लगभग, श्लोक संख्या १२५० । [illegible] पृष्ठ नही है । यह ग्रंथ अनुमानतः सवा सौ वर्ष से पहले का लिखा [illegible] है । [illegible] श्री विष्णुस्वामी (जो कि गोकुलस्थ श्री वल्लभाचार्य स्वामी के [illegible]) [illegible] चरित्र उन के शिष्यो की नामावली तथा उन [illegible] का वर्णन है ।

कतिपय आधुनिक लेखक वाराहपुराण आदि [illegible] ग्रंथो का [illegible] करते हुए भ्रम से सूकरक्षेत्र को सोरो जिला एटा के [illegible] है । उन के भ्रम-निवारणार्थ उक्त पुस्तक [illegible] है । [illegible] के निम्नलिखित [illegible] श्लोको से सोरो, जिला एटा ही शूकरक्षेत्र प्रकट होता है—

श्री नैमिषं तत्र पुनर्विलोकयन् ,
स गोमतीं रामनदीं च जाह्नवीम् ।
उत्तीर्य गत्वा च मनोः पुरीं परां,
ददर्श मार्गे किल कान्यकुब्जकम् ॥१॥
स कम्पिलां तत्र पुनर्विलोक्य,
तीर्थं वराहस्य ततो जगाम ।
स्नात्वा हि गङ्गां च ततो द्विजेभ्यः,
दत्वा सुवर्णं प्रययौ मथोः पुरीम् ॥२॥

उल्लास ३०, श्लोक ४—५

श्री विष्णुस्वामी तीर्थाटन करते हुए नैमिषारण्य को देखते हुए, गोमती, रामगंगा और गंगा भागीरथी को पार कर बिठूर गए, वहा से चल कर मार्ग मे कान्यकुब्ज (कन्नौज) और कंपिला[1] (पांचाल देश की राजधानी राजा द्रुपद की नगरी, जिला फर्रुखाबाद) का

---

[1] जनपदमण्डले पाञ्चालक्षेत्रे द्विजातिभिरध्युषिते काम्पिल्य राजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गंगातीरे वन विचार मनु विचरन् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत् । चरक-संहिता । वि० स्थान । अध्याय ३

अवलोकन कर वराह तीर्थ में पधारे वहां गंगास्नान कर ब्राह्मणों को सुवर्णदान देकर मधुपुरी (मथुरा) को चले गए।

उक्त श्लोकों में वर्णित वराहतीर्थ (शूकरक्षेत्र) वही है जो कन्नौज से पश्चिम की ओर कपिल (जिला फर्रुखाबाद) और मथुरा के मध्य में है और जहां गंगा जी भी है। वह गंगा संयुक्त वराहतीर्थ सोरों जिला एटा ही हो सकता है। सोरों से कपिल (पांचालक्षेत्र) २२—२३ कोस पूर्व की ओर है।

सारांश यह है कि श्री विष्णुस्वामी एवं श्री वल्लभाचार्य जी के समय में भी सोरों जिला एटा ही शूकरक्षेत्र माना जाता था तथा उस से पूर्व काल में भी जैसा कि पुराणों से सिद्ध होता है। एवं वर्तमान काल में भी प्राय भारत के सभी प्रान्तवासी लाखों की संख्या में सोरों को शूकरक्षेत्र मानते हुए आते हैं।

ऊपर के (२)—(३) संख्या वाले ग्रंथ देशप्रसिद्ध नैयायिक पंडित अंगदराम जी शास्त्री बटरिया के पुस्तकालय से उन के पौत्र पंडित कुंजविहारीलाल जी शर्मा द्वारा प्राप्त हुए हैं।

(४) **दोहावली**—तुलसीदास-कृत। कासगंज निवासी पंडित हरगोविंद जी पंड्या से प्राप्त। इस के आदि के ४ पृष्ठ और अंत के न जाने कितने पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। परंतु पुस्तक अवश्य १२५ वर्ष से पूर्व की लिखी जान पड़ती है। इस में ६०० दोहे से १ या १॥ दोहा अधिक है। शेष पृष्ठों में नहीं कहा जा सकता कि सब कितने दोहे थे, दोहे प्राय: अशुद्ध हैं। भार्गव पुस्तकालय, काशी द्वारा प्रकाशित 'दोहावली' के क्रम से इस का क्रम नहीं मिलता है। उस में ५७२ ही दोहे हैं, इस में ६०० से भी अधिक थे।

(५) **विनयपत्रिका**—जान पड़ता है कि यह ३६ पृष्ठों तक ही लिखी गई है आगे लिखना बंद कर दिया है। इस में ६१ पद पूर्ण और ६२वां अधूरा है पुस्तक प्राय: शुद्ध है। संवत् १८७६ वि० के लगभग लिखी गई है। उक्त पुस्तक के लेखक की लिखी अन्य पुस्तकें जैसे 'आदित्य-हृदय' एवं 'विष्णुसहस्रनाम' तथा श्री नंददास-कृत 'भ्रमरगीत' भी हैं जो संवत् १८७६ में लिखी गई हैं।

(६) **विनयपत्रिका**—(२ प्रतियां) इस के १२—१३—१४—१७—१८—१९—२१—२२—२३—२५—२६—२८—२९ संख्यावाले कुल १३ पृष्ठ विद्यमान हैं शेष सब नष्ट

हो गए है। पुस्तक अनुमानत १५० वर्ष पूर्व की लिखी जानी जाती है। अंतिम पृष्ठ २९ मे पदो की सख्या २१६ पर्यंत उल्लिखित है। २१७वा पद अपूर्ण है। पुस्तक शुद्ध है। पदो से पूर्व लाल स्याही मे रागो के नाम भी दोनो प्रतियो मे लिखे गए है। दूसरी प्रति के पृष्ठो की लबाई १२॥" और चौडाई ६॥।" है।

(७) **हनुमानबाहुक**—पृष्ठ सख्या १६। छद सख्या ४०। सवत् १८३४ मे लिखित है। कासगंज निवासी ठाकुर बनवारीलाल भगवान् सिंह जी कठभिरया के यहा विद्यमान है।

(८) **भक्तमाल**—नाभादास जी कृत मूल। पृष्ठ स० ७२। इस मे बीच के ४ पृष्ठ नही है। इस मे १६७ छप्पै और १७ दोहा, कुल छद सख्या २१४ है। सवत् १८८४ की लिखी हुई है।

(९) **रासपंचाध्यायी**—नददास जी कृत। यह पुस्तक १७ पृष्ठों मे समाप्त हुई है। आदि के क्रमश ७ पृष्ठ नही है। सवत् १८०? की लिखी हुई है। ३२५ पद्य पर्यंत सख्या है। साइज १०॥"×६॥।" है। अशुद्धिया अधिक है।

(१०) **भ्रमरगीत**—नददास जी कृत। १ पृष्ठ से क्रमश ७ पृष्ठ तक विद्यमान है, शेष पृष्ठ नष्ट हो गए। ५१ संख्या तक गीत उल्लिखित है। सवत् १८७८ लिखा हुआ है।

(११) **कालज्ञान**—सस्कृत और भाषा टीका सहित यह वैद्यक ग्रथ है। इस की पुष्पिका में लिखा है—

**इति श्री कालज्ञान संपूर्ण समाप्तः सं० १८३८ वर्षे पोषसुदि चतुर्दसी १४ शनि-वासरे इदं पुस्तकं लिषितं इछाराम उपाध्याय बदरिया में गंगा निकटे पठनार्थ बिलेराम सुभमस्तु।**

उक्त पुस्तक की पुष्पिका से यह बात सिद्ध होती है कि सवत् १८३८ मे बदरिया ग्राम (गोसामी तुलसीदास जी की पत्नी श्री रत्नावली की जन्मभूमि) गगा जी के तट पर था पर अब गंगा जी बदरिया और सोरों से ३ मील दूर पर बहती है। इस वर्ष १ मील और आगे बढ गई है।

तुलसीदास-नददास संबधी ग्रथो की खोज करने वाले जो सज्जन उक्त ग्रथो तथा

पूर्व प्राप्त ग्रंथो का अवलोकन करना चाहते हो वे सोरो (शूकरक्षेत्र) जिला एटा मे पधार कर अवलोकन कर सकते हैं। कुछ नंददास संबंधी पुस्तकें कासगंज और सोरो से श्री मयाशंकर जी याज्ञिक अलीगढ-वासी के यहा पहुँच गई थी, वहा देखी जा सकती है।

---

# पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ

[ लेखक—श्रीयुत अगरचंद नाहटा और श्रीयुत भँवरलाल नाहटा ]

अंतिम हिंदू सम्राट् चौहान वंश के मुकुट महाराज पृथ्वीराज न्यायवान्, विद्या-व्यासंगी, कौतूहल-प्रिय और प्रकृत वीर थे। उन की सभा वागीश्वर, जनार्दन गौड, विद्यापति आदि प्रकांड विद्वानों से सुशोभित थी। प्रतिदिन काव्य, साहित्य, अलंकार आदि नाना विषयों की चर्चा वहां हुआ करती थी। महाराज स्वयं उस में बहुत रस लिया करते थे। आए दिन विदेशी विद्वानों के शास्त्रार्थ हुआ करते थे। सं० १२३९ में खरतर-गच्छ के आचार्य श्री जिनपति सूरि जी[1] और उकेश-गच्छीय चैत्यवासी पंडित पद्मप्रभ का बहुत ही मनोरंजक शास्त्रार्थ भी उन की सभा में हुआ था। उस का प्रामाणिक वर्णन श्री जिनपतिसूरि जी के शिष्य श्री जिनपालोपाध्याय[2] रचित 'खरतर-गच्छ

---

[1] तेरहवीं शताब्दी के उद्भट विद्वानों में आप का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। आप के रचित (१) 'संघपट्टकवृत्ति', (२) 'प्रबोधोदय-वादस्थल', (३) 'समाचारी' और कई स्तवनादि इस के स्पष्ट निदर्शन हैं। शास्त्रार्थ में आप की प्रतिभा अद्वितीय थी, ३६ शास्त्रार्थों में आप के विजय प्राप्त करने का उल्लेख साह रयण और भत्तउ कृत 'श्रीजिनपति सूरि गीत' में इस प्रकार मिलता है :—

पामिव जेत्रु छतीस विबादहिं जयसिह पुहविय परिसद्दइए।
बोहिय पुहवियपमुह नरिंदह, जासुवयणि जिण आदरइ ए ॥

विशेष जानने के लिए हमारे संपादित 'ऐतिहासिक जैनकाव्य-संग्रह', और श्रीजिनपालोपाध्याय कृत 'खरतर गच्छ गुर्वावली' देखना चाहिए।

[2] आप प्रकांड विद्वान थे। सं० १२२५ में पुहकरण नगर में श्रीजिनपति-सूरि जी ने इन्हें दीक्षा दी थी। सं० १२५१ कुहियप ग्राम में ये वाचनाचार्य पद से अलंकृत हुए। आप का विद्याध्ययन त्रिभुवन गिरि में यशोभद्राचार्य के पास हुआ था सं० १२४४ में अजमेर से तीर्थयात्रार्थ संघ निकला तब आप त्रिभुवनगिरि से आकर उस यात्रीसंघ में सम्मिलित हुए थे। सं० १२६९ में जाबालिपुर में आप को उपाध्याय पद मिला। सं० १२७३ में बृहद्द्वार में नगरकोट के राजा पृथ्वीचंद्र के समक्ष उन के सभा-पंडित मनोनानंद को शास्त्रार्थ में परास्त कर विजय प्राप्त की थी। आप के रचित (१) 'उपदेश रसायन विवरण' (सं० १२९२), (२) 'चर्चरी विवरण' (सं० १२९४),

गुर्वावली[1] में बहुत ही विस्तार से मिलता है। वह बहुत ही रोचक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, अतएव पाठकों को इस निबंध में उस शास्त्रार्थ का दिग्दर्शन कराया जाता है।

भगवान् महावीर का उपदिष्ट त्याग-मार्ग अत्यन्त कठिन व दुर्द्धर्ष था। उस की साधना जिस प्रकार आत्मोन्नति के चरम शिखर पर आरूढ़ करने वाली थी, उसी प्रकार जन-साधारण के लिए दुश्चरणीय भी थी। मानव-प्रकृति सदा सुखशील और पुद्गलानंदी है। अतएव उतने कठिन मार्ग को पालन करना सब के लिए, सहज नहीं था। फलत परिस्थिति के प्रबल झकोरों से उस के साधकों में क्रमश. शिथिलता प्रविष्ट होने लगी। आगे चल कर वही शिथिलता चैत्यवास के रूप में परिणत हो गई और उसी कारण, से त्यागी साधुवर्ग "सुविहित" और "चैत्यवासी"[2] इन दो भागों में विभाजित हो गए।

कई शताब्दियों तक "सुविहित" मार्ग बहुत मंद और "चैत्यवास" प्रबल शक्ति-शाली रहा, परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में चैत्यवासियों में जब शिथिलता की पराकाष्ठा, हो गई, तब परिस्थिति ने सुविहितों में एक नया बल पैदा कर दिया। जन-साधारण का

---

ये दोनों ग्रंथ गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित "अपभ्रंश काव्यत्रयी" में छपे हैं। सं० १२९३ में रचित 'द्वादशकुलकवृत्ति' आदि श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार, सूरत से प्रकाशित हो चुके हैं। 'स्वप्नसप्ततिकावृत्ति' एवं गुर्वावली बीकानेर के ज्ञान-भंडार में विद्यमान है। सं० १३११ प्रल्हादनपुर में आप का स्वर्गवास हुआ।

[1] प्रस्तुत गुर्वावली की रचना सेठ साहुलि पुत्र सा० हेमा की अभ्यर्थना से हुई है। सं० १३०५ आषाढ़ सुदि १० तक की घटनाओं का इस में वर्णन लिखा है। श्री वर्द्धमान सूरि जी से श्रीजिनदत्तसूरि जी तक का चरित्र तो सं० १२९५ में बने हुए श्री सुमतिगणि कृत 'गणधरसार्धशतकबृहद्वृत्ति' से मिलता जुलता है। इस के पश्चात श्री-जिनचंद्र सूरि, श्रीजिनपतसूरि और श्रीजिनेश्वर सूरि जी के चरित्र उपाध्याय जी की स्वतंत्र रचना हैं। इस गुर्वावली के ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्व के संबंध में हम शीघ्र ही एक निबंध प्रकाशित करेंगे। ऐतिहासिक महत्व के विषय में २ लघु लेख श्री दशरथ शर्मा एम्० ए० के "इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, जिल्द न० ८" एवं "दि पूना ओरियंटलिस्ट, जिल्द २" में प्रकाशित हुए हैं।

[2] जो लोग जैनमंदिरों में रह कर मठाधीश महंतों की तरह गद्दी तकिए लगाना, पान खाना आदि साध्वाचार के प्रतिकूल आचरण करने लगे थे। इन के आचार-विचारों के संबंध में 'संघपट्टक' और उस की वृत्ति में खूब घटस्फोट किया गया है।

भावना चैत्यवासियों के अकृत्यों से तिलमिला उठी, इसी भावना ने सुविहितों के प्रचार-कार्य में बहुत वेग भर दिया।

वि० सं० १०७० के लगभग पाटण नरेश दुर्लभराज की सभा में सुविहित आचार्यों के प्रमुख विद्वान् श्री वर्द्धमानसूरि और श्री जिनेश्वरसूरि द्वारा चैत्यवासियों के सुराचार्य प्रमुख ८४ आचार्यों ने बड़ी हार खाई[1]। श्री जिनेश्वर सूरि जी के उत्कृष्ट चरित्र और विद्वत्ता से प्रभावित होकर श्री दुर्लभराज ने इन्हें "खरतर" (कठिन आचार वाले) नाम से संबोधित किया। तभी से खरतर गच्छ और चैत्यवासियों के बीच द्वंद्व युद्ध प्रारंभ हो गया।

उपर्युक्त संघर्ष बहुत अरसे तक जोर-शोर से चला। श्री जिनवल्लभसूरि[2] जी ने चैत्यवासियों के हृदय को हिला दिया। उन की नींव एक दम खोखली हो गई। श्री जिनदत्त सूरि[3] जी ने भी इस दिशा में बड़ा भारी काम किया उस से प्रभावित होकर बहुत से चैत्यवासी आचार्य उन के शिष्य होकर सुविहित दल में सम्मिलित हो गए।

श्री जिनदत्त सूरि[3] जी के प्रशिष्य श्री जिनपति सूरि जी सघर्षकारकों में अंतिम आचार्य थे। इन की प्रतिभा बहुत बढ़ी-चढ़ी और सर्वतोमुखी थी। भिन्न-भिन्न छत्तीस शास्त्रार्थों में आप ने विजय प्राप्त की थी। संवत् १२३९ में आप फलवर्द्धि पधारे। वहां उपकेश-गच्छीय चैत्यवासी पंडित पद्मप्रभ रहते थे, वे सूरि जी के प्रभाव और लोकमान्यता की ईर्ष्या से जल-भुन गए। पर सूरि जी जब तक वहां रहे, उन का कुछ भी जोर न चला। उन के विहार करके अजमेर चले जाने पर पद्मप्रभ ने अपने आश्रित भाट लोगों द्वारा यह मिथ्या घोषणा करा दी कि "पद्मप्रभ ने जिनपति सूरि को जीत लिया"। तब श्रावक लोगों को इस मिथ्या प्रलाप से रोष हुआ। उन्हों ने पद्मप्रभ से पूछा "आप क्यों मिथ्या प्रचार करते हैं, जिनपति सूरि जी को आप ने कब जीता?" उत्तर में पद्मप्रभ ने कहा, "यदि आप मेरी बात मिथ्या समझते हो तो अपने गुरु को पुनः बुलाइए। मैं जीतने को

---

[1] इस शास्त्रार्थ का उल्लेख सं० १२९५ में रचित 'गणधरसार्धशतकबृहद्वृत्ति' में श्री सुमति गणि ने खूब विस्तार से किया है।

[2-3] इन का चरित्र "गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज" से प्रकाशित "अपभ्रंश काव्यत्रयी" में देखना चाहिए।

तैयार हूं।" इस प्रकार उभयपक्ष में वाद-विवाद बढ़ गया। यह संवाद जब श्री जिनपति सूरि जी के पास पहुँचा तो उन्हों ने शास्त्रार्थ के लिए अपनी ओर से श्री जिनमतोपाध्याय को वहां भेजा। परन्तु श्रावकों ने यह विचार कर कि पद्मप्रभ मिथ्याभाषी है, कल यह कह बैठेगा कि मैं ने जिनपति सूरि जी को जीता है, स्वयं मुझ से शास्त्रार्थ करने में अशक्त होने के कारण उन्हों ने अपने शिष्य को भेजा है, उपाध्याय जी के साथ अजमेर जाना निश्चय किया। और वहां जाकर सूरि जी के समक्ष राजमान्य श्रावक रामदेव को सारी बात कह सुनाई। रामदेव तत्काल महाराजा पृथ्वीराज की सभा में पहुंचा और उन से प्रार्थना की कि "हमारे गुरु महाराज अपनी शिष्यमंडली के साथ यहां आए हुए हैं। हम ने आप को सभा में एक विपक्षी के साथ उन का शास्त्रार्थ कराने का विचार किया है, आप की क्या आज्ञा है ?" कौतूहल-वश सम्राट् ने कहा, "हां ! क्या हरज है; इसी समय हो सकता है।" रामदेव श्रेष्ठि ने कहा "स्वामिन् ! प्रतिपक्षी पद्मप्रभ फलौधी में है" नृपति ने कहा, "उसे मैं बुला लूंगा, तुम अपने गुरु को तैयार करो।" रामदेव ने कहा "हमारे गुरु तैयार ही है।"

महाराज श्री पृथ्वीराज ने अपनी ओर से भट्ट लोगों को भेज कर फलौधी से पद्मप्रभ को अजमेर बुलाया। इसी बीच महाराजा ने दिग्विजय करने के निमित्त नरानयन से अपनी विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया। दिग्विजय कर वापिस लौटने पर सेठ रामदेव ने पुनः अपनी विज्ञप्ति का ध्यान दिलाया। महाराजाधिराज ने कहा, "शास्त्रार्थ का दिन कार्तिक शुक्ला १० (७) निश्चित किया गया है अपने गुरु से कह दो।"

निश्चित समय पर श्री जिनपति सूरि जी जिनमतोपाध्याय पंडित स्थिरचन्द्र[2],

---

[1] वि० सं० १२३४ फलवर्द्धि में इन्हें उपाध्याय पद दिया गया था। इस समय आप आचार्य पद के सर्वथा योग्य थे पर आप के इस पद को अस्वीकार करने से उपाध्याय पद ही दिया गया। इन की विद्वत्ता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। सं० १२४२ माघ सुदि १५ के दिन इन का स्वर्गवास हुआ।

[2] इन की दीक्षा श्री जिनदत्तसूरि जी के करकमलों से हुई थी। सूरि जी ने इन्हें विद्याध्ययनार्थ धारा नगरी भेजा था और उन्हों ने ही विद्याध्ययन कर के आने के अनंतर वाचनाचार्य पद दिया था। अतः इन की दीक्षा सं० १२०० के पूर्व होनी चाहिए।

मानचंद्र[1] आदि के साथ नरानयन की राजसभा में पधारे। उधर पद्मप्रभ भी भट्टपुत्रों के साथ आ गया। महाराजा ने मंत्रीश्वर कैमास को आज्ञा दी कि मैं थोड़ा विश्राम करके आता हूं, इस बीच तुम वागीश्वर, जनार्दन गौड और विद्यापति आदि पंडितों के समक्ष इन का शास्त्रार्थ होने दो।

मण्डलेश्वर कैमास[2] ने सूरि महाराज की भव्य मूर्ति देख कर हर्षान्वित होकर कहा, "अहो! इन महात्माओं के दर्शन से ही आनंद मिलता है। कई दिगंबर ऐसे देखने में आते हैं, जो दूर से ही पिशाच की भाँति आँखों को उद्वेग करते हैं।" यह सुन कर सूरि जी ने कहा —

पञ्चैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्ज्जनम्॥

अर्थात्—"सब धर्माचार्यों ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, त्याग और ब्रह्मचर्य को ही पवित्र माना है।" अत. मंडलेश्वर! इन पाँचों को पालन करने वालों की—नग्न या सवस्त्र कोई भी हो—निंदा न करनी चाहिए।

इस प्रकार श्री जिनपति सूरि जी कैमास को समझा रहे थे, इसी बीच उन की बात को काट कर पद्मप्रभ ने मंत्रीश्वर को यह श्लोक सुनाया .—

प्राणा न हिंसा न पिबेच्च मद्यं वदेच्च सत्यं न हरेत् परस्वं।
परस्य भार्यां मनसा न वांछेत्स्वर्गं यदीच्छेद् विधिवत् प्रविष्टुः॥

यह श्लोक सुन कर सूरि जी ने कहा—"अहा, कैसा शुद्ध उच्चारण है!"

पद्मप्रभ—"क्या आप मेरी हँसी उड़ाते हैं ?"

सूरि जी—"महानुभाव! इस कलिकाल में लोगों का ज्ञान अपूर्ण है। किस की हँसी की जाय और किस की नहीं ?"

---

[1] इन को सं० १२१८ में उच्च नगर में श्री जिनचंद्र सूरि जी ने दीक्षित किया था। सं० १२४४ में लवणखेटक (खेड़ नगर) में श्री जिनपति सूरि जी ने इन्हें वाचनाचार्य पद दिया था।

[2] मंडलेश्वर कैमास महाराजा पृथ्वीराज के प्रधान थे, ये दाहिमा जाति के थे पुरातन प्रबंधसंग्रह गत 'पृथ्वीराजप्रबंध', 'पृथ्वीराज-विजय' और 'पृथ्वीराजरासो' आदि ऐतिहासिक ग्रंथों में इन का नाम आता है।

पद्मप्रभ—"तो फिर आप ने 'कैसा शुद्ध उच्चारण है!' यह आक्षेप कैसे किया?"

सूरि जी—"महाशय! पंडितों की सभा में शुद्धोच्चारण करना ही शोभास्पद है।"

पद्मप्रभ—"तो क्या कोई ऐसा है कि मेरे बोले हुए श्लोक की अशुद्धि निकाल सके?"

सूरि जी—"यदि इतना ही घमंड है तो उस श्लोक को फिर से बोलिए।" जना-र्दन, विद्यापति आदि राजपंडितों से कहा—'पद्मप्रभ श्लोक बोल रहा है, आप भी जरा ध्यान से सुनें।"

इतने ही में पद्मप्रभ मन ही मन कुढ़ कर उद्दंडता से बोलने लगा। सभा-मंडली की साक्षी से सूरि जी ने उस श्लोक में दस अशुद्धियां बतलाईं और उस का शुद्ध उच्चारण इस प्रकार बतलाया—

> प्राणान्नहिंस्यान्न पिबेच्च मद्यं वदेच्च सत्यं न हरेत् परस्वम्।
> परस्य भार्यां मनसा न वाञ्छेत् स्वर्गं यदीच्छेद्गृहवत्प्रविष्टुम्॥

पद्मप्रभ कुछ लज्जित हो कर बोला, "इस वचन-चातुरी में क्या रक्खा है! यह तो केवल भोलों को ठगना है।"

सूरि जी—"शक्ति हो तो आप भी ऐसा करें!"

कैमास—"आप लोगों ने पहले-पहल यह शुष्क वाद क्या छेड़ा? अच्छा हो, किसी एक विषय को आप दोनों में से एक सज्जन स्थापित करे, और दूसरा खंडन करे!"

सूरि जी—"पद्मप्रभ जी! मंडलेश्वर का कथन बहुत ठीक है, आप किसी एक पक्ष का आश्रय लेकर बोलिए!"

पद्मप्रभ—"पूछने की बातें तो बहुत सी हैं पर उन में से मैं केवल एक ही बात पूछता हूं, कि आप ने 'दक्षिणवर्त्तारात्रिकावतारणविधि'[1] का परित्याग क्यों किया? यह तो अनेक आचार्यों के सम्मत है।"

---

[1] देवमंदिरों में आरती उतारने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से है। आरती को दाहिनी ओर से घुमाने को दक्षिणावर्त्त और बाएं तरफ़ घुमाने को वामावर्त्त कहते हैं। चैत्यवासियों के समय में दक्षिणावर्त्त की प्रथा थी उसे बदल कर श्री जिनदत्त सूरि जी ने वामावर्त्त की परिपाटी प्रचलित की।

सूरि जी ने "वक्रोक्त्यैव निर्लोढय" की उक्ति के अनुसार कहा—"क्या आप के कथनानुसार बहुजनसम्मत वस्तु को ही आदरणीय समझना चाहिए ? यदि ऐसा ही है तो मिथ्यात्व का भी आदर करना चाहिए क्योंकि उसे भी तो बहुतों ने अपना रक्खा है।"

पद्मप्रभ—"वृद्ध-परपरागत जो कुछ भी हो हम उस का आदर करते है।"

सूरि जी—"चैत्यवास (देवमदिरो मे रहना) तो वृद्ध-परपरागत नही है, आप के पूर्वजो ने उसे क्यो अपनाया ?"

पद्मप्रभ—"चैत्यवास वृद्ध-परंपरागत नही है—यह कैसे जाना ?"

सूरि जी—"भगवान् महावीर के समौशरण या किसी जिनमदिर में गणधर गौतम स्वामी के भोजन-शयन का कही वर्णन आया है ?"

(चैत्यवासी लोग मदिरो मे ही निवास भोजन और शयन करते थे जोकि शास्त्र-विरुद्ध था, इसी लिए यह प्रश्न किया गया।)

इस बात का उत्तर न आने से लज्जित होकर पद्मप्रभ जी कहने लगे—"कर्णे स्पृष्ट कटि चालयसि ? याने कान छूने पर कटि प्रदेश को हिलाना कहा का न्याय है ? मै ने तो पूछा था कि वृद्ध-परपरागत दक्षिणावर्त्तारात्रिकावतारण विधि आप ने क्यो छोड़ी, पर आप ले चले चैत्यवास के प्रसंग को।"

सूरि जी—"मूर्खचक्रे काष्टे च वक्रोवेधः क्रियते अर्थात् मूर्खमडल और काष्ट मे टेढा वेध किया जाता है। क्या आप को यह न्याय याद नही है ? अच्छा ! अब आप के विषय को ही ले। दक्षिणावर्त्तारात्रिकावतारण विधि, वृद्ध-परपरागत है यह कैसे जाना ? सिद्धांतो मे तो आरात्रिक दक्षिणावर्त्त या वामावर्त्त से करना चाहिए, इस का कोई विचार नही है। अब प्रश्न यह होता है कि पिछले बहुश्रुतो से अनुष्ठित विधि दक्षिणा-वर्त्त थी या वामावर्त्त ? इस सशय को दूर करने के लिए किसी युक्ति का अनुसरण करना चाहिए। 'न शवमुष्ठिन्याय. कर्त्तव्य' (मुर्दे की वद मुट्ठी खुलती नही) हठ नही कर के युक्ति-युक्त बात माननी चाहिए।"

यह बात सुन कर सभासद लोग कहने लगे—"पद्मप्रभ ! आचार्य श्री ठीक कहते है।"

तत्पश्चात् सभ्यो की सम्मति से सूरि जी ने प्रमाण-पूर्वक धारा-प्रवाही शब्दो मे

वामावर्त्तारात्रिकावतारण विधि' सिद्ध कर के बताई जिस सुन कर सभा ने सूरि जी का जयजयकार किया। इस का अधिक विवरण पद्मप्रभ के वादस्थल के प्रत्युत्तर में सूरि जी का बनाया हुआ 'प्रबोधोदय वादस्थल'[1] ग्रंथ में देखना चाहिए। लेख-विस्तार के भय से यहां नहीं देते हैं।

इतने ही मे महाराजाधिराज पृथ्वीराज भी सभा में आ पहुंचे और सिंहासन पर बैठ कर पूछने लगे—"मंडलेश्वर! कहो, कौन जीता और कौन हारा?" मंडलेश्वर ने सूरि जी की ओर अँगुली निर्देश कर कहा—"ये जीते"। इसी से ईर्ष्यावश पद्मप्रभ बोले—"राजन्, मंडलेश्वर रिश्वत लेने में प्रवीण है। गुणियों के गुण-ग्रहण में नहीं।" अपनी निंदा सुन कर मंडलेश्वर कहने लगे—"हे मूढ़! अभी कुछ नहीं बिगड़ा, ये आचार्य बैठे है, सभासद भी उपस्थित हैं, मैं ने रिश्वत ले ली है तो मैं मौन धारण करता हूं। बड़ी खुशी हो यदि आप अब भी इन आचार्य महोदय को जीत लें!"

पद्मप्रभ मंडलेश्वर कैमास को रुष्ट हुआ जान कर कुछ सहम कर कहने लगे—"महानुभाव! मेरे कथन का यह आशय नही कि आप ने आचार्य से रिश्वत ले ली है, पर मेरा कथन यह है कि आप के समझने में भूल हुई है। इन आचार्य जी ने जबरदस्ती गला फाड़ कर समस्त आचार्यों के अभिमत 'दक्षिणावर्त्तारात्रिकाविधि' को अप्रामाण्य ठहरा कर आप के हृदय में विपरीत विश्वास जमा दिया है।"

यह सुन कर सूरि जी कहने लगे—"पद्मप्रभ! यह विधि सब आचार्यों के सम्मत है। आप का कथन सत्य नहीं है, क्योंकि हमारे पूर्वाचार्य और वर्तमान आज्ञानुवर्ती आचार्यों को यह मान्य नही है।"

पद्मप्रभ—"क्या आप और आप के पूर्वाचार्य, हमारे पूर्वाचार्यों से अधिक ज्ञानवान है? जो उन के अभिमत अर्थ को नही मानते?"

सूरि जी—"क्या अन्य आचार्य हमारे आज्ञानुवर्ती आचार्यों से विशेषज्ञ हैं जो हमारे आचार्यों के सम्मत वामावर्त्तारात्रिकाविधि को नहीं मानते।"

---

[1] इस की एक प्रति श्री क्षमाकल्याण ज्ञानभंडार, बीकानेर में उपलब्ध है। इस ग्रंथ का कुछ परिचय "गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज" से प्रकाशित "जेसलमेर भांडागारीय ग्रंथानां सूची:" में छपा है।

इस प्रकार वक्रोक्तियो से सूरि जी ने महाराजा के समक्ष पद्मप्रभ जी को निरुत्तर कर दिया।

सैद्धातिक विषयो मे अपनी दाल गलती न देख कर पद्मप्रभ ने महाराजा को प्रसन्न करने के लिए कहा—"यदि आप की आज्ञा हो तो मै सब के मनोरंजनार्थ कुछ कुतूहल दिखलाऊ, जैसे आकाश-मडल से उतर कर अत्यत सुंदर विद्याधरी को आप की गोद मे बैठी हुई दिखा सकता हूं। बड़े से बड़े पहाड़ को अगुल प्रमाण बना कर दिखा दू ? हरिहरादि देवो को आकाश मे नृत्य करते दिखला दू ? बडी-बड़ी तरगो वाले समुद्र और इस नगरी को आकाश मे निराधार दिखला दू !"

इस कथन को सुन कर सभासद लोग कहने लगे—"यदि आप ने ऐसी ही कलाएं सीखी है तो फिर इन आचार्यो के साथ शास्त्रार्थ के पचडे मे क्यो पड़े ? महाराजा से इनाम पाने के लिए लाखो ऐंद्रजालिक सदा आते रहते है। उन के साथ आप भी अपना खेल दिखाते !"

प्रसगवश सूरि जी ने मुस्करा कर कहा—"राजपंडितो ! ये अपने को समस्त कलाओ मे पारगत मानते है, इस लिए सैद्धातिक विषयो मे पराजित हो जाने पर ऐंद्रजालिक विद्या का आश्रय ढूँढने लगे, अतः अब इन की इसी विद्या की परीक्षा की जाय !"

पद्मप्रभ—"आचार्य जी ! हँसते क्या है ? यह हँसी का समय नही, परीक्षा का समय है। यदि शक्ति है तो सब लोगो के चित्त मे चमत्कार पैदा करने वाला कोई कला-कौशल आप भी दिखलाइए, नहीं तो सभा से बाहर निकल जाइए !"

सूरि जी—"पहले तो आप को ही अपनी गर्वपूर्ण ऐंद्रजालिक विद्या दिखानी चाहिए ! फिर हम जैसा समयोचित होगा, करेंगे"।

कौतूहलप्रिय महाराजा ने इंद्रजाल देखने की उत्कठा से कहा—"पद्मप्रभ जी ! आचार्य श्री ने अनुमति दे दी है, अब शीघ्र ही स्वेच्छानुसार कोई चमत्कार दिखलावे।" पद्मप्रभ के पास दिखाने को क्या धरा था ? वह केवल लबी-चौडी हाँकने मे ही कुशल था। सूरि जी के पुण्य-प्रभाव से आकुल-व्याकुल होकर पद्मप्रभ कहने लगा—"आज रात को देवी की पूजा कर अभीष्ट देवता का आह्वान करके एकाग्र चित्त मे मत्रो का ध्यान करूँगा और कल प्रात काल अनेक प्रकार के इद्रजाल दिखलाऊँगा !"

इस कथन से पद्मप्रभ की पोल खुली जान कर सभासदो मे हँसी के फव्वारे छूटने

लग　सब लोगा न दुर्वाक्य कह कर उस की हंस [illegible]

पद्मप्रभ ने अपना उपहास होते देख सूरि जी से कहा--"यदि आप भले है तो अब भी कुछ दिखलाए !" सूरि जी मुस्कुराते हुए कहने लगे--"अच्छा ! पहले [illegible] तो बतलाओ इंद्रजाल किसे कहते है ?"

पद्मप्रभ--"आप ही बतलावे !"

सूरि जी--"मूर्खराज ! क्या इतना भी नही जानते कि असंभव वस्तु की [illegible] के आविर्भाव को इंद्रजाल कहते है ? क्या आप ने हमारा एक इंद्रजाल अभी नही देखा [illegible]"

पद्मप्रभ--"कौन सा ?"

सूरि जी--"अभी जो आप के सामने हुआ है।'

पद्मप्रभ--"वह क्या ?"

सूरि जी--"महानुभाव ! क्या आप ने यह बात स्वप्न मे भी सोची थी कि बड़ी-बड़ी गद्दी पर बैठनेवाला मै, महाराज पृथ्वीराज की सभा मे इस प्रकार पराजित हो कर हास्यास्पद होऊंगा ! परंतु दैवयोग से वह असंभव बात भी हमारी उपस्थिति मे तुम्हारे लिए संभव हो गई। क्या यह इंद्रजाल नही है ?"

पद्मप्रभ अपने उपहास की परवाह न कर के ईर्ष्यावश महाराजाधिराज से कहने लगे--"आप ने अपने अतुल पराक्रम से अनेक प्रतापी राजाओ को पराजित कर [illegible] आज्ञाकारी बना लिया है, समस्त भूमंडल मे आप ही अद्वितीय शासक है, अत आप [illegible] प्रधान है। परंतु बड़े आश्चर्य की बात है कि आप के रहते हुए ये सूरि महोदय भक्त लोगो द्वारा अपने को 'युगप्रधान' घोषित कराते है।"

महाराजा ने पूछा--"युगप्रधान शब्द का क्या अर्थ है ?'

पद्मप्रभ ने अपना मनोरथ पूर्ण होते देख कर तत्काल कहा--"युग अर्थात् काल प्रधान सर्वोत्तम। अर्थात् वर्तमान काल मे जो सर्वोत्तम हो वही युगप्रधान है। अब [illegible] कि युगप्रधान आप है कि ये है ?"

सूरि जी--"राजन् ! अपने-अपने श्रद्धेय के प्रति सब लोग सम्मान-सूचक शब्द व्यवहार करते है, इस मे क्या बुरा है ? जिस प्रकार आप को, राजेश्वर [illegible] आदि आदर-सूचक शब्दो से संबोधन करते है, उसी प्रकार भक्त लोग भी अपने गुरुओ को योग्य विशेषण दें तो क्या अनुचित है ?"

महाराजा ने पद्मप्रभ के ईर्ष्याभाव को जान लिया, उन्हों ने कहा—"हा, यह तो लोकाचार है। इस में कोई हरज नही! पंडितो! इन दोनो विद्वानो की विद्वत्ता की परीक्षा कर लीजिए। इन में जो अधिक योग्य हो उन्हें जयपत्र दिया जाय।" पंडितो ने कहा—"महाराजाधिराज! हम ने तो इन की परीक्षा कर ली है, न्याय, व्याकरणादि सभी विषयो मे जिनपति सूरि जी ही प्रौढ विद्वान् है; फिर भी आप की आज्ञा से इन दोनो के साहित्य-विषयक अनुभव की परीक्षा कर लेते है।"

तत्पश्चात् राजपंडितों ने सूरि जी और पद्मप्रभ के प्रति कहा—"राजा पृथ्वीराज ने 'भद्दानक' नाम द्वीपपति को जीत लिया इस विषय को लेकर कविता बनाइए!" सूरि जी ने तत्काल फरमाया —

यस्यान्तर्बाहुगेहं बलभृतककुभः श्रीजयश्रीप्रवेशे।
द्वीपग्रासप्रहारप्रहतघटतटप्रस्तमुक्तावलीभिः॥
नूनं भद्दानकीयै रणभुविकरिभिः स्वस्तिको पूरितोऽवैः।
पृथ्वीराजस्य तस्यातुलबलमहसः किं वयं वर्णयामः॥

अर्थात्—"अतुलबल शाली महाराज पृथ्वीराज का हम कहा तक वर्णन करे जिन्हो ने अपने सैन्यबल से तमाम दिशाओं को जीत लिया है; अतएव जयलक्ष्मी ने आकर इन की भुजाओं को अपना घर बना लिया है। जब सर्वप्रथम नवोढ़ा बधू घर मे आती है तब गृहद्वार मे स्वस्तिक किया जाता है, वैसे ही इन की भुजाओं में जयलक्ष्मी के प्रवेश के समय रणभूमि मे भद्दानक राजा के हाथियो ने तीखे भालो को मार से फटे हुए अपने कुम्भस्थल से निकलते हुए गजमुक्ताओं से स्वस्तिक किया है।"

इस श्लोक को पढ कर सूरि जी ने इस की विस्तृत व्याख्या की। देखा-देखी पद्मप्रभ ने भी पूर्वापर बिना सोचे ही शीघ्रता से पाँच चरण वाला श्लोक कह सुनाया। सूरि जी ने कहा—"पंडित महानुभावो! आज तक श्लोक तो चार चरणो का ही देखा और सुना है, इन पाँच चरणो वाले श्लोक-रचयिता पंडितशेखर (!) की बलिहारी है।" फिर सूरि जी ने उस श्लोक की पाँच अशुद्धियो का दिग्दर्शन कराया।

अपने श्लोक की अशुद्धिया सुन कर सूरि जी को नीचा दिखाने की इच्छा से पद्मप्रभ ने कहा—"'यस्यान्तर्बाहुगेहं' श्लोक इन की तात्कालिक रचना न होकर पूर्व अभ्यस्त है।"

पंडितो न कहा आप धय धारण कर व्यय की टीका टिप्पणी न कर आप दोनो पृथ्वीराज की सभा का गद्य मे वर्णन करे। पंडितों के कहने पर भाट जी ने मन ही मन विचार कर सभामंडप की कल्पना कर खड़िया से जमीन पर लिखना प्रारम्भ किया।

"उज्ज्वलनेचकमणिनिचयरुचिररचनारचितकुट्टिमोच्चरन् मरीचिप्रपञ्चार्दाञ्जन-दिक्चक्रवालम्, सौरभभरसम्भूतलोभवशबम्भ्रम्यमाणझङ्कारभृतभुवनभवनाभ्यन्तरभरि-भ्रमरसम्भृतविकीर्णकुसुमसम्भारविभ्राजमानप्राङ्गणम्, महानील श्यामलनीलवल्लीकोमल-सदुल्लोचाञ्चललम्बमानानिलविलोलस्थूलविमलमुक्ताफलमालाकुलितजलपद्मानिरन्तर-मुज्ज्वलसलिलधारम्, दिग्विक्षिप्तवलक्षचक्षुः कटाक्षविक्षेपशोभितकामुकपञ्चामुक्तमाक्ति-काद्यनर्घपञ्चवर्णानर्त्नरत्नालङ्कारविसरनिःसरत्किरणनिकुरम्बचुम्बिताम्बरशरशिगल-स्खलविचित्रकर्म, प्रविशत्कुसुमायुधराजधानीविलासवारविलासिनीजनम्, क्वचिच्चन्तू-ताङ्कुररसस्वादसरकलकण्ठरवसमाना नवगीतगानकलाकुशलगायकजनप्रारब्धललितका-कलीगेयम्, क्वचिच्छुचिचरित्रचारुवचनरचनाचातुरीचञ्चुनीतिशास्त्रविचारविचक्षण-सचिववचरूचर्यमाणाचारानाचारविभागम्, क्वचिदासीनोद्दामप्रतिवाद्यमन्दमन्दभिदुरोद्य-दनवद्यहृद्यसमग्रविद्यासुन्दरीबुध्यमानावदातवदनारविन्दकोविदवृन्दारकवृन्दम्, उद्धत-कन्धरविविधमागधवर्ण्यमानोद्धुरधैर्यगाम्भीर्यौदार्यवरिष्णु, सुधाधामदीधिति साधारण-यशोराशिधवलितवसुन्धराभोगनिविशमानसामन्तचक्रम्, प्रसरन्नानामणिकिरणनिकरविर-चितवासवशरासनसिंहासनासीनदोर्दण्डचण्डिमाडम्बरखण्डिताखण्डवैरिभूमण्डलनमन्म-ण्डलेश्वरपटलमस्तकोद्धटकिरीटतटकोटिसंघटकविघटितविसंकटपादपीठरभूपालम्, अपिच, उद्यानमिव पुन्नागालङ्कृतम्, श्रीफलोपशोभितं च महाकवि काव्यमिव वर्णनीय वर्णा-कीर्णम्, व्यञ्जितरसं च सरोवरमिव राजहंसावतंसम्, पद्मोपशोभितम्, पुरन्दरपुरमिव सत्येऽधिष्ठितम्, विबुधकुलसंकुलं च गगनतलमिव विलसन्मङ्गलम्, कविराजितं च कान्तावदनमिव सदलङ्कारम्, विचित्र चित्रं च।"

अर्थात्—"राजा पृथ्वीराज का सभामंडप कैसा है? चमकती हुई सुंदर मणियों से इस की भीत और अगन बनाए गए है। उन्ही मणियों की रुचिर रचना से रचित फर्श से निकलने वाली किरणो से इस के चारो ओर दिशाएं जगमगा रही है। जिन की सुगध के लोभ से आगत भ्रमरों के गुंजाररव से सारे ही सभाभवन का मध्य भाग भर गया

है, ऐसे फूलो के गुच्छे सभामडप के प्रागण मे बिखरे हुए है । इस सभा मे नीले रग का रेशमी शामियाना तना हुआ है । हवा मे हिलती हुई उस के चारो तरफ़ की चचल मुक्त मालाए ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी जलाशय के चारो ओर निर्मल जलधारा टपकती हो । जिस में कामदेव की राजधानी के उपयुक्त सुदरी वेश्याए विद्यमान है उन के सुदर कटाक्षो से कामीजनो का हृदय क्षुब्ध हो रहा है । वेश्याओ के धारण किए हुए अनेक वर्ण वाले रत्नजटित आभूषणो से विस्फुरित रग-बिरगी किरणो के समूह से निरालब ही आकाश मे चित्रकारी-सी हो रही है । सभाभवन मे किसी स्थान पर आम की मजरी खाने से मस्त हुई कोयल के कलरव के समान सगीतकला मे निपुण कलावत लोगो से सुदर गायन किया जा रहा है । कही पर सदाचार-सपन्न सुदर वचनो की रचना-चातुरी प्रसिद्ध नीतिशास्त्र को विचारने मे विचक्षण, मन्त्रि-मडल आचार-अनाचार का विवेचन कर रहा है । इसी सभा मे किसी स्थान पर उत्कट प्रतिवादियो को परास्त करने मे समर्थ उत्तमोत्तम समस्त विद्याए जिन की जिह्वा पर नृत्य कर रही है, ऐसा विद्वद्वृद विद्यमान है । यहा पर उद्धत कधरा वाले अनेक मागध, राजाओ की वीरता गभीरता और उदारता का व्याख्यान कर रहे हैं । चद्रमा के समान श्वेत यश द्वारा धवल की हुई पृथ्वी को भोगने वाले अनेक छोटे बडे सामत राजा आ-आ कर जिस मे प्रवेश कर रहे है । जिस मे राजा, नानावर्ण की मणियो के जडाव से बनाए हुए इद्र धनुषाकार सिहासन पर बैठे हुए है । जिस ने अपने बाहुबल से समस्त शत्रु-समुदाय को छिन्न-भिन्न कर दिया है ऐसे राजा पृथ्वी-राज के चरणकमलो मे अनेक राजा लोग किरीट मुकुटाच्छादित मस्तक को झुकाते है । जैसे बगीचा पुनाग और श्रीफल के बगीचों से शोभित होता है वैसे ही यह सभा-भवन हस्ति तुल्य पुष्टकाय पुरुषो तथा लक्ष्मी के वैभव से शोभित है । जिस प्रकार महाकवियो का काव्य व्याख्या करने योग्य वर्णो से पूर्ण तथा हास्य, शृगार, करुण आदि रसो से युक्त रहता है—उसी तरह यह सभाभवन ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों से युक्त है तथा अभिलाषा को व्यंजित करने वाला है । जैसे सरोवर की शोभा, राजहस और कमलो से होती है वैसे ही आप के सभाभवन की शोभा राजा और पद्मा(लक्ष्मी)से है। इद्र की नगरी अमरावती मे कोई भी मिथ्याभाषी नही है तथा सदैव उस मे देवताओ की भीड़ बनी रहती है; वैसे ही इस भवन मे सब सत्यवक्ता है और इस मे विद्वानो की सदैव भीड़ लगी रहती है । आकाश मे जिस प्रकार मगल और शुक्र नाम के ग्रह शोभावृद्धि करते है वैसे ही आप की

सभा में गायनादि मांगलिक कार्य तथा कवि [illegible] शोभा बढ़ा रहे हैं [illegible] की शोभा अच्छे-अच्छे अलंकारों से है तद्वत इस सभामंडप की शोभा भी सुन्दर सजावट से है । विविध प्रकार के चित्रों से यह चित्रित है ।'

सूरि जी इस प्रकार का धाराप्रवाही वर्णन कर रहे थे, [illegible] बोले, "पकते हुए अनाज के एक दाने की तरह आप ने [illegible] ली है । अब आप कृपया इस वर्णन को [illegible] समाप्त कीजिए !' सूरि जी ने तत्काल सभावर्णनात्मक निबंध का उपसंहार इस प्रकार कर दिया :—

श्रीपृथ्वीराजसभामण्डपमवलोक्य कस्य न [illegible] ।

अर्थात्—"महाराज पृथ्वीराज के इस सभामण्डप को देख कर [illegible] आश्चर्यमग्न नहीं होता ।' सूरि जी से यह वर्णन व्याख्या-सहित श्रवण कर [illegible] आश्चर्यमग्न हो कर सिर धुनने लगी ।

पद्मप्रभ ने कहा—"यह रचना कादम्बरी, वासवदत्ता आदि में की हुई [illegible] है ।" पंडितों ने उत्तर दिया—"बस ! चुप रहिए ! कादम्बरी आदि ग्रन्थ हमारे अच्छी तरह परिशीलन किए हुए हैं ऐसी व्यर्थ की बातें कह कर क्यों [illegible] बनते हैं ।"

पंडितों ने सूरि जी को लक्ष्य कर कहा अब आप प्राकृत भाषा में द्व्यर्थक गाथा रच कर महाराज पृथ्वीराज के अंतःपुर और वीर योद्धाओं का वर्णन करें । सूरि जी ने तत्काल यह गाथा कह सुनाई :—

बर करवाला कुवलय पसाहणा उल्लसंत सत्तिलया ।
सुंदरि विंदुव्व नरिंद मंदिरेसु हासहंति भडा ॥

अर्थात्—"हे राजन्, आप के महल में सुंदर हाथों वाली कमल के फूलों से शृंगारित ललाट तट पर केसर कस्तूरी के तिलक धारण करने वाली सुंदरियां विराजमान हैं ।" या "अच्छे-अच्छे खड्गधारी भू-मंडल के अलंकार, जिन की शक्ति-लता दिन दिन बढ़ रही है, ऐसे शूरवीर योद्धा आप के महल में सुंदरियों के ललाटस्थ बिंदु की भांति शोभायमान हैं ।"

इस गाथा की व्याख्या सूरि जी ने बड़े विस्तार से की । पूज्यश्री का पाण्डित्य-प्रवचन सुन कर सभी लोग उन की ओर श्रद्धा-पूर्वक निहारने लगे । ऐसा देख कर पद्म-प्रभ ने कहा—"आचार्य जी ! मेरे साथ वाद शुरू करके अब दूसरों के आगे अपनी विद्वत्ता

दिखाते हो ? सूरि जी ने तत्काल ही नंदिनी छन्द में एक श्लोक बना कर कहा

पृथिवीनरेंद्रसमुपाददे रिपोरवबोधनेन महासिन्धुरावली ।
अचला समीहमनुतिष्ठता स्वयं नहि फल्गुचेष्टितमहोमहात्मनाम् ॥

अर्थात्—"हे पृथ्वीराज ! आप ने शत्रुओं को कैद कर के हाथियों की कतार छीन ली, महापुरुषों का पुरुषार्थ कभी व्यर्थ नहीं जाता ।" और पद्मप्रभ से "इस नूतन श्लोक का छंद कौन सा है ?" पूछा, उसे निरुत्तर देख कर राजपंडितों ने कहा—"इस अज्ञानी के साथ सभाषण करना निरर्थक है । अब आप खड्गबंध चित्रकाव्य रचना कर दिखलावें ।"

सूरि जी ने उसी समय जमीन पर तलवार की रेखा बना कर दो श्लोकों द्वारा उस की पूर्ति कर दी—

लसद्यशः सिताम्भोज-पूर्ण सम्पूर्ण विष्टप ।
पयोधिसम गाम्भीर्य–धीरिमा धरिताचल ॥१॥
ललाम विक्रमाक्रान्त–परक्ष्मापालमण्डल ।
लब्धप्रतिष्ठभूपाला–वतीमव कलामल ॥२॥

अर्थात्—"आप के निर्मल यश सरोज से सारा जगत भरा है । आप गंभीरता में समुद्र के समान और धैर्य में समुद्र जैसे हैं । अपने प्रशंसनीय पराक्रम से अन्य नृपतियों को दबा कर आप ने विश्व में प्रतिष्ठा प्राप्त की है । हे कलाविद् राजन् ! आप चिर-काल पृथ्वी का शासन करते रहें !"

इस चित्रकाव्य को सुन कर सभी पंडित सूरि जी की प्रशंसा करने लगे । ईर्षालु पद्मप्रभ ने पंडितों से कहा—"हजार मुद्रा मैं भी दे सकता हूं, मेरी भी आप लोग प्रशंसा करें ।" ऐसी ऊटपटांग बातें सुन कर मंडलेश्वर कैमास चुप न रह सके, उन्हों ने पद्मप्रभ से कहा—"रे मुंडिक ! महाराज पृथ्वीराज के सामने यद्वातद्वा बोलते तुझे लज्जा नहीं आती ?"

यह सारा दृश्य देख कर महाराजा पृथ्वीराज कहने लगे—"आप सभ्यों को सम-दृष्टि रखनी चाहिए ! इस विचारे को भी बोलने का मौका दें ।"

मंडलेश्वर ने कहा—"राजन् ! यह क्या बोलेगा ? कुछ ज्ञान भी तो नहीं है ।"

महाराजा ने कहा—"आप का कहना यथार्थ है, यह तो इस की आकृति ही कह

रही है पर हमारी न्यायमयी सभा में किसी को पक्षपातादि का आक्षेप लगाने का अवसर न मिले, इस लिए सब विषयों में पद्मप्रभ की भी परीक्षा करनी चाहिए।

पंडितों ने कहा—"कृपानाथ ! पद्मप्रभ को कविता करने का ज्ञान नहीं है आचार्य-रचित श्लोकों में यह छंद भी नहीं पहचानता। आचार्य श्री ने नहीं और [illegible] से 'वामावर्त आरात्रिक अवतारण' को सिद्ध कर इसे निरुत्तर कर दिया। यह [illegible] से बिलकुल अनभिज्ञ है। इसे आता है—केवल विरुद्ध बोलना। खैर, जो हो, [illegible] श्रीमान् की आज्ञा से सविशेष रूप से समान बर्ताव करेंगे। अच्छा आचार्य जी ! आप [illegible] पंडित पद्मप्रभ जी ! आप निम्नोक्त समस्यापूर्ति करें —

चकर्तदन्तद्वयमर्जुनः शरैः क्रमादमुं नारद इत्यबोधिसः।"

सूरि जी ने कहा —

चकर्तदन्तद्वयमर्जुनः शरैः क्रमादमुं नारद इत्य बोधिसः।

भूपाल सन्दोह निसेवितक्रम-क्षोणीपते केन किमत्र संगतम्॥

पंडितों ने कहा—"आचार्य जी ! ऐसी समस्यापूर्ति से कोई लाभ नहीं। परस्पर असंगत पद का समस्यापूर्ति के रूप में उत्तर पाने के लिए ही हम ने आप से पूछा था। आप ने उसी को पूर्ति में लगा दिया। सरस काव्य-रचना की अपेक्षा असंगत दोष को हटा कर संगत बनाना ही तो समस्यापूर्ति की कठिनता है।"

सूरि जी—"महानुभावो ! इस प्रकार की भी तो समस्यापूर्ति होती है। देखिए—एक बार राजा भोज की सभा में विदेशी पंडित ने समस्या-पूर्ति के लिए निम्नोक्त तीन चरण कहे—'साते भवतु सुप्रीता', 'वद्य बित्रक नागरे', 'आकाशे नबका पालि' इति। भोज की सभा के राजकीय पंडित ने 'देव कि तेन सङ्गतम्' कह कर समस्यापूर्ति कर दी।"

पंडित—"हाँ ! इस प्रकार भी समस्या पूर्ण की जाती है, परन्तु पद्मप्रभ जैसों के लिए। आप जैसे काव्यरचना की शक्ति रखने वालों के लिए यह पूर्ति शोभास्पद नहीं है।" ऐसा सुन कर पूज्य श्री ने क्षण भर गंभीरता-पूर्वक सोच कर इस प्रकार की पद-योजना कर सुनाई :—

चकर्तदन्तद्वयमर्जुनः शरैः, कीर्त्या भवान् यः करिणो रणाङ्गणे।

दिदृक्षया यान्त मिला स्थितोहरिः क्रमादमुं नारदइत्यबोधिसः॥

अर्थात्—"रणागण मे अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणो से हाथी के दोनो दात काटे। और हे राजन्! आप ने अपनी धवलकीर्ति से रणांगण मे हाथी के दाँतो को भी मात कर दिया (अर्थात्—शत्रुओं को हराने से फैली हुई आप की कीर्ति हाथी दाँत से भी अधिक उज्ज्वल है)। पृथ्वी पर स्थित श्रीकृष्ण ने आकाश मार्ग से आते हुए नारद को एकाएक नही, क्रम-क्रम से जाना कि यह नारद है।"

इस की व्याख्या सुन कर आश्चर्य-रस मे सराबोर राजपडितो ने कहा—"आचार्य जी! भगवती सरस्वती की आप पर बड़ी भारी कृपा है। आप जिस विषय को लेते है, उसी मे भगवती आप का साहाय्य करती है।"

जिनमतोपाध्याय—"पडित महोदयो! आप लोगों का यह कथन अक्षरश सत्य है। इन पर यदि श्री वाग्देवी प्रसन्न न होती, तो आप सरस्वती-पुत्र विद्वानो से इन की कैसे मुलाकात होती?"

पडितो ने पद्मप्रभ से कहा—"महाशय! आप भी कुछ कहिए।"

पद्मप्रभ—"आप एक क्षण ठहरे, मै कुछ सोच रहा हू।"

पडितवर्ग—"अच्छा छः मास तक सोचते रहिए!"

फिर मंडलेश्वर से कहा—"कैमास जी! आप ने श्री जिनपति सूरि जी के समान कोई विद्वान् देखा?"

कैमास—"आज तक नहीं देखा।"

महाराजा पृथ्वीराज ने सामने के तबेले मे बँधे हुए घोड़ों की ओर अँगुली निर्देश कर कहा—"आचार्य श्री इधर देखिए, ये हमारे प्रधान घोडे किस प्रकार उछल रहे है, इन का वर्णन करे!"

सूरि जी ने कुछ सोच कर कहा—"राजन्! सुनिए—

**ऊर्द्धस्थितश्रोत्रवरोत्तमाङ्गा जेतुं हरेरश्वमिवोत्तरङ्गाः।**
**खमुत्प्लवन्ते जवनास्तुरङ्गास्तवावनीनाथ यथा कुरङ्गाः॥"**

अर्थ—"हे पृथ्वीपते! आप के ये तेज घोडे हरिणो की तरह आकाश की ओर उछलते है। इन के कान खड़े है और मस्तक ऊँचे है। मालूम होता है कि ये ऊँचे हो-कर सूरज के घोडो को जीतना चाहते है।"

इस अर्थ को सुनने से प्रसन्न हुए राजा को देख कर पडित लोगो ने कहा—"आचार्य

महोदय उदयगिरि नामक हाथी पर बैठे हुए महाराज पृथ्वीराज किस प्रकार शोभते हैं ? पूज्य श्री ने मन ही मन कल्पना कर के कहा—

विस्फूर्जद्दन्तकान्तं लसदुरुकटकं विस्फुरद्धातुचित्र-
पादैर्विभ्राजमानं गरिमभृतमलं शोभितं पुष्करेण ।
पृथ्वीराजक्षितीशोदयगिरिमभिविन्ध्यरत पादो विभाति
त्वं भास्वान्ध्वस्तदोषः प्रबलतरकराक्रान्तपृथ्वीभृदुच्चः ॥

अर्थ—"हे पृथ्वीराज भूपति ! आप जब अपने उदयगिरि नामक हाथी पर आरूढ होते हैं, तब आप की शोभा उदयाचल पर स्थित सूर्य की भांति हो जाती है। सुनहरी कडो वाले हाथीदांत सूर्यकिरण से चमचमाते हुए उदयाचल की तरह शोभित है। जैसे उदयगिरि गेरु आदि नाना रंग-बिरंगे खनिज पदार्थों से मनोहर लगता है वैसे ही हाथी अपने शरीर पर की हुई सजावट और सुंदर चित्रकारी से। वह अपने चार चरणो से अच्छा लगता है और वह आस-पास के छोटे पहाडों से। दोनों ही गुरुता (भारीपन) को लिए हुए है। पर्वत कमल और जलाशयों से सुंदर है, गजेंद्र सूंड से। हे राजन् ! आप निर्दोष और देदीप्यमान है, सूर्य चमकीला और रात्रि का मिटाने वाला है। आप ने अपने प्रबल भुजदंडो से बडे-बडे राजाओं को दबा लिया है, और सूर्य ने अपनी किरणे, बडे ऊँचे-ऊँचे पर्वतो पर पहुंचा दी है।"

यह श्लोक दो अर्थ वाला है। सूर्यराजा, पर्वत और हाथी इन की समता इस श्लोक मे बतलाई गई।

इस श्लोक का भावार्थ सुन राजराजेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजपण्डितों ने भी कहा—"नृपते ! सर्वदेशो मे अपने विद्याबल से राजाओं के पास स्वर्णपट (पदक) पाए हुए जो विद्वान् हैं उन सब से भी व्याकरण, धर्मशास्त्र, साहित्य, तर्क, सिद्धान्त और लोक-व्यवहार को जानने मे ये आचार्य बढ़े-चढे है। ऐसी कोई भी विद्या नहीं, जो इन के मुख-कमल मे विराजमान न हुई हो।"

असहिष्णु पद्मप्रभ ने अपने करने की समस्यापूर्ति को बिना किए ही सूरि जी की आलोचना करनी प्रारंभ कर दी—"राजन् ! कलहप्रिय मनुष्यों के पास विद्या का न होना ही अच्छा है, क्योंकि वे विद्याबल से कलह कर उलटा बुरा आदर्श खड़ा करते है। कहा है कि—

विद्या विवादाय धनं मदाय, प्रज्ञाप्रकर्षा परवञ्चनाय

अभ्युन्नतिर्लोकपराभवाय, येषां प्रकाशे तिमिराय तेषां ।"

यह श्लोक सुन कर सूरि जी ने कहा—"भद्र पद्मप्रभ ! यदि आप रुष्ट न हों तो हम एक हित की बात कहें !"

उस ने कहा—"कहिए !"

सूरि जी ने कहा—"इस प्रकार का अशुद्ध उच्चारण करते हुए देख कर अन्य लोग क्या समझेंगे, कि श्वेताम्बर साधुओं को शुद्ध बोलना भी नही आता। अतएव कम से कम लोकोपहास से बचने के लिए तो अब से 'प्रज्ञाप्रकर्ष परवञ्चनाय'—'येषा प्रकाशास्तिमिरायतेषाम्' ऐसा उच्चारण किया करें।"

और इस प्रसग मे आप ने जो 'विद्या विवादाय' श्लोक कहा है वह अप्रासगिक है क्योंकि हम ने आप को शास्त्रार्थ करने का आह्वान नही दिया; आप ने ही तो फलोधी मे श्रावकों के समक्ष कहा कि, "अपने गुरु को लाओ ! मै जीत लूँगा" कथा हिलाते हुए पद्मप्रभ कहने लगे—"हा, मै ने कहा था।"

सूरि जी—"किस शक्ति के भरोसे पर ?"

पद्मप्रभ—"अपनी निजी शक्ति के भरोसे पर।"

सूरि जी—"अब आप की वह शक्ति कहा चली गई, क्या उसे कौवे खा गए ?"

पद्मप्रभ—"नही, नही।"

सूरि जी—"तो फिर गई कहा ?"

पद्मप्रभ—"मेरी भुजाओ मे विद्यमान है, परतु बिना अवसर प्रकाशित नहीं की जाती।"

सूरि जी—"आखिर उस के प्रकाशन का अवसर कब आवेगा ?"

पद्मप्रभ—"अभी है।"

सूरि जी—"तो फिर विलब क्यो ?"

पद्मप्रभ—"महाराजा की आज्ञा लेकर अभी अपनी शक्ति प्रकट करता हू।"

सूरि जी—"शीघ्रता कीजिए।"

इस गरमागरम बहस के पश्चात् पद्मप्रभ सोचने लगा अब तो जिस किसी उपाय से अपनी मानरक्षा करनी ही पड़ेगी, अन्यथा लोगों के अपवाद से इस देश मे रहना भी

दुश्वार हो जायगा ! फिर करू भी क्या ? आज तो सब काम उलटा ही उलटा हो रहा है । इन्हो ने तो अपने विद्यावल और वचन-चातुरी से सब लोगो को प्रभावित कर लिया है । सोचते-सोचते आखिर एक उपाय हाथ लगने से महाराजा से कहा—"पृथ्वीनाथ ! मैं ने छत्तीस प्रकार की शस्त्रविद्या और मल्लविद्या का अभ्यास किया है, इस लिए इन आचार्य के साथ मेरी कुश्ती करा दीजिए ।" महाराज पृथ्वीराज जैन साधुओं के आचार-व्यवहार से अनभिज्ञ थे, और मल्लविद्या देखने की उत्कंठा से उन्हों ने सूरि जी की ओर दृष्टिपात किया ।

सूरि जी ने आकृति और चेष्टा से महाराजा का अभिप्राय जान कर कहा—"राजन् ! बाहुयुद्ध आदि की क्रीडाए हाथियो की हैं । वे अपने भुजदंड से अपने जोर की आजमायश किया करते हैं । एक-दूसरे से गले चिपट कर जूझना बालको के लिए शोभा-स्पद है, बड़ों के लिए नही । शस्त्र लेकर परस्पर लड़ते हुए राजपूत ही अच्छे लगते है ब्राह्मण नही । दंत-कलह करना वेश्याओ का काम है राज-रानियो का नहीं । अत आप ही बतलाइए कि पद्मप्रभ का यह आह्वान हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं—यह हमारा काम ही नही है । विद्वान् लोग तो शास्त्र एवं बुद्धिबल में ही उत्तर प्रत्युत्तर करते अच्छे लगते है ।"

सूरि जी के इस कथन के बीच ही से राजपंडित भी महाराजा से कहने लगे—"राजेश्वर ! हम पंडित लोग विद्वत्ता के गुण से ही आप श्रीमान् से आजीविका पाते है, मल्लविद्या से नही । कदाचित् आप हमें मल्लयुद्ध करने की आज्ञा दें तो हम उस के पालन मे असमर्थ हो ।" सूरि जी ने पद्मप्रभ से कहा—"पद्मप्रभ ! साधुवेषधारी होकर ऐसी बातें कहना, तुम्हारे लिए उचित है ?" ऐसा कह कर महाराजा के प्रति अपने पूर्वकथन का अवशेष भाग कहना प्रारंभ किया—"यदि इन की शक्ति हो तो हमारे साथ प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी, अपभ्रंश आदि भाषाओ मे गद्य-पद्य की रचना करें। व्याकरण, छंद, अलंकार, नाटक, तर्क, ज्योतिष और सिद्धान्त-संबंधी विचार करें । परंतु यदि यह हम से लोक और धर्म विरुद्ध मल्लयुद्धादि कराना चाहता है, तो हम इस कार्य को कदापि नही करेंगे । और इस के न करने से हमारी कोई लघुता भी नहीं है । इसी तरह कल कोई किसान कह बैठेगा कि 'अगर आप पंडित हों तो हमारे साथ हल चलाइए' तो क्या हम उस का कथन मान लेंगे ? और न मानने से क्या पंडिताई चली जायगी? यदि

इस मे सामर्थ्य है तो कूटश्लोक, प्रश्नोत्तर, गुप्त क्रिया, कारकादि विषयो मे कोई भी बात हम से पूछे। या वह स्वेच्छानुसार किसी भी सांकेतिक लिपि मे कोई श्लोक लिखे यदि हम इस के हृदय मे स्थित छद को न बतला दें तो हमें हारा हुआ समझे। शर्त यह है कि वह उस छंद को किसी सभ्य पुरुष को बता दे। जिस से फिर वह अपनी बात बदल न सके। अथवा किसी छंद के केवल स्वर या व्यजन को लिख दे, यदि हम उस के मनोगत श्लोक को न बता दें तो हमें हारा समझे। एक बार सुने हुए श्लोक या श्लोकाक्षरो को यह आनुपूर्विक लिख बताए या हम बता दे। या वर्तमान समय मे प्रचलित बाँसुरी से गाई जाने वाली राग-रागनियो का नाम-परिचय देते हुए तत्कालिक गायन स्वरूप कविता द्वारा अन्य किसी के बनाए हुए कोष्टक की पूर्ति यह दिखलावे या हम दिखाते है।"

सूरि जी के इस प्रवचन से चमत्कृत होकर राजा ने कहा—"आप सब राग-रागिनियो को भी पहिचानते है ?"

सूरि जी—"महाराजाधिराज! किसी पडित के साथ शास्त्रार्थ हो तो बात करे, इस अज्ञ के साथ विवाद करना केवल गला सुखाना है।"

महाराजा—"अच्छा, आप अपनी कोष्टकपूर्ति सबंधी कला को ही दिखावे!"

सूरि जी—"हा, इसी प्रकार की आज्ञा से हमे सतोष है!" राजाज्ञा से उसी समय बॉसुरी बजाई गई। सूरि जी ने उस से निकलती हुई नई-नई रागरागिनियो का परिचय दिया और अपनी आशु काव्य-कला द्वारा राजा पृथ्वीराज के गुणवर्णनात्मक श्लोको की रचना कर सर्वप्रधान मंडलेश्वर कैमास से निर्दिष्ट कोष्टको की पूर्ति की।

सूरि महाराज की सर्वतन्त्रो मे स्वतन्त्र प्रतिभा देख कर ऐसा कौन मनुष्य था जिस के हृदय-कमल पर आश्चर्य-लक्ष्मी विराजमान न हुई हो ? अति प्रसन्न होकर महाराजा ने कहा—"वाह! महाराज! आप जीत गए है, हम आप के विजय की मुक्तकठ से प्रशसा करते है। मैं ने अपने धर्म और न्याय के प्रभाव मे हजारो स्थानों पर प्रभुता प्राप्त की है। सत्तर हजार घोडों पर मेरा आधिपत्य है, मै समझता हूं कि कोई भी प्रतिपक्षी मेरे समान दरजे को अभी तक प्राप्त नही कर सका है। परंतु इसी देश मे मै आप को अपने समान श्रेणि का मानता हूं, क्योंकि आप ने भी समस्त देशों के धर्माचार्यो को जीत कर उन पर प्रभुता प्राप्त की है। आचार्य महोदय! अब तक हमे ऐसा मालूम नही था कि आप इस प्रकार के रत्न हैं। इस लिए जान या अनजान में मुझ से अनुचित व्यवहार

हुआ हो तो हम क्षमा कर इस प्रकार कहते हुए नरपति ने आचार्य श्री के समक्ष क्षमा याचनार्थ दोनों हाथ जोडे। सूरि जी ने भी प्रसन्न मुख से निम्नलिखित श्लोक द्वारा आशीर्वाद देते हुए महाराजा की भूरि-भूरि प्रशंसा की—

> अभ्यभ्यन्ते सर्वतास्त्रिभुवन भवनाऽभ्यन्तर कीर्तिकान्ता,
> स्फूर्जत्सौन्दर्यवर्या जितसुरललना योषितः संघटन्ते।
> आज्य राज्यं प्रधानप्रणमदवनिप प्राप्यते यत्प्रभावात्
> पृथ्वीराज क्षणेन क्षितिपतततुला धर्मलाभःश्रियन्ते॥

अर्थ—"हे पृथ्वीराज नृपते! जिस धर्म-लाभ के प्रभाव से आप की कीर्ति तीन लोक मे फैल गई है, जिस धर्म के प्रभाव से ही सौंदर्य गुणवाली देवांगनाओं के सदृश सुंदरी स्त्रिया आप को मिली है, और जिस धर्म के प्रताप से प्रधान-प्रधान राजाओं को जीत कर विशाल राज्य प्राप्त किया है वह धर्मलाभ आप की राज्य-लक्ष्मी को उत्तरोत्तर बढ़ावे!"

महाराजा और सूरि जी दोनो मे परस्पर इस प्रकार का शिष्टाचार होते देख कर पद्मप्रभ डाह से कहने लगा—"महाराज! इस सभा मे अब तक केवल आप ही समदृष्टि थे पर अब तो मंडलेश्वर आदि की तरह आप भी इन आचार्य का पक्ष करने लग गए हैं।"

महाराजा—"पद्मप्रभ! आप हम से क्या कराना चाहते हैं? यदि आप मे कुछ सामर्थ्य हो तो इन आचार्य के साथ वाद कीजिए, हम न्याय करेंगे। अगर कुछ जानते ही न हो तो व्यर्थ बकवाद न कर अपने स्थान चले जाइए।"

पद्मप्रभ—"राजन्! न्यायप्रधान आप की सभा मे यदि कोई कलाकौशल का अभिमान रखता हो, वह मेरे साथ आवे।" इस प्रकार रण-निमंत्रण देता हुआ कहने लगा—"मैं ने लाठी चलाने के छत्तीस भेद सीखे हैं, यदि वह सीखी हुई कला आप की सभा मे फलवती न हुई तो कहा होगी?"

इस अवसर पर महाराजाधिराज का कृपापात्र, मंडलेश्वर कैमास का समकक्ष और श्री जिनपति सूरि जी का अनन्य भक्त सेठ रामदेव बोला—"पृथ्वीनाथ! कृपया मेरी भी एक बात सुने, मेरे जन्म-समय मे पिता जी को ज्योतिषी लोगों ने कहा था कि सेठ वीरपाल! आप के पुत्र की जन्मपत्री से ज्ञात होता है कि वह राजमान्य और दानी होगा। ज्योतिषी लोगो के कथन पर विश्वास करके पिता जी ने एक विश्वासी पंडित

द्वारा बाल्य-काल से ही मुझे बहत्तर कलाओं का अभ्यास कराया है। उन में से बहुत-सी कलाओं का परिणाम मैं ने देख लिया है पर मेरे पिता जी ने यह विचार कर कि राज-सभा मे अनेक प्रकार के लोग आया करते है, कोई किसी बात मे मेरे पुत्र का अनादर न कर सके (मल) बाहुयुद्ध कला भी सिखाई थी। परन्तु आप की कृपा से आज तक राजसभा मे मेरी ओर किसी ने वक्र दृष्टि से नही देखा अतएव बाहुयुद्ध के उपयोग का अवसर ही नही मिला। आज पद्मप्रभ मानो मेरे पुण्य से खिचा हुआ आप की सभा मे आ गया है, आप की आज्ञा हो और पद्मप्रभ को स्वीकार हो तो उस सीखी हुई बाहुयुद्ध कला का भी फल देख लिया जाय।" केलिप्रिय राजा ने कहा—"क्या हरज है! तुम दोनों शीघ्रता मे तैयार हो कर अपनी अभ्यस्त कला का फल दिखाओ!"

राजाज्ञा पाकर दोनो ने लगोट कस लिए। गुत्थगुत्थी होकर अपने-अपने बल की जाँच करने लगे, थोड़ी ही देर मे सेठ रामदेव ने पद्मप्रभ को पछाड दिया। राजा पृथ्वीराज ने रामदेव सेठ को सबोधित करते हुए व्यग्य वचनो से कहा—"सेठ! सेठ! इस के कान लबे है तोड़ना मत!" हास्य मे कहे हुए इस निषेध को एक प्रकार की आज्ञा मान कर पद्मप्रभ के कान को हाथ मे पकड़ कर सूरि जी की ओर देखा। सूरि जी ने कहा—"इस कार्य से जिन-शासन की निंदा होती है, ऐसा मत करो!"

इस दृश्य को देख कर लोगो मे काफी हलचल मच गई, कोई कहने लगा—"मै ने तो पहले ही कह दिया था कि, सेठ जीतेगा", दूसरा बोला, "पद्मप्रभ ने ३६ दडकलाओं का अभ्यास किया है और सेठ जी ने इस से दुगुनी ७२ सीखी है। अतः पद्मप्रभ का पराजित होना स्वाभाविक ही है।" इस प्रकार एकत्र भीड़ मे से लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार बाते करने लगे।

महाराजा की आज्ञा से सेठ रामदेव पद्मप्रभ को छोड कर अलग हो गया। पद्म-प्रभ भी खडा होकर वस्त्रों की धूलि झाडने लगा। राजा का इशारा पाकर राजकीय पुरुषो ने पद्मप्रभ का गला पकड कर धक्का दिया। उस बिचारे का एक पैड़ी से दूसरी पैडी पर गिरने से सिर फूट गया। पैडियो के पास जमीन पर गिरने से कुछ क्षण के लिए मूर्छित-सा हो गया, इतने ही मे पास मे खडे किसी मनुष्य ने उस के लात मार दी।

सूरि महाराज से यह अनौचित्य न देखा गया। इस कार्य को उन्हो ने धर्म की अव-हेलना समझ कर अपने भक्त श्रावक कृष्णदेव से उस को पिछोडी (वस्त्र) दिलाई। एकत्र

भीड़ में से किसी ने हाथ का सहारा देकर उसे बठा लिया दूसरे ने हाथ में उस के सिर पर यह कहता हुआ थपकिया देने लगा कि हमारे ठाकुर ने खूब शास्त्रार्थ किया ! वहा खड़े हुए हजारों आदमियो में से कई धूर्तों ने बिचारे पद्मप्रभ को ठोकर देते हुए धक्का देकर धवलगृह नामक राजमहल से बाहर निकाल दिया।

सूरि जी ने श्वेत वस्त्रखड पर किसी सिद्धहस्त चित्रकार से श्लोकाकार प्रधान छत्रबध की रचना कर राजा को दिया। राजा ने बड़े चाव से उस छत्रबंध श्लोक को पढा—

पृथ्वीराजपृथुप्रतापतपनप्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां।
का स्पर्द्धा भवता पराद्धंच सहसा सार्द्धं प्रजारञ्जन।
ये ना जौ हरिणेन खड्गलतिका संपृक्तमत्याशिना।
दुर्वारापि विदारिता करिघटा भादानकोर्वीपिले॥

अर्थात्—"हे पृथ्वीराज ! आप का प्रताप सूर्य के समान है, आप का पराक्रम प्रशसनीय है। आप प्रजा का रजन करने वाले है, शत्रुपक्ष के राजा क्या आप की बराबरी कर सकते है ? आप ने हाथ मे तलवार लेकर सग्राम मे सिह की तरह 'भदानक' नामक राजा के दुर्जय हाथियो की कतार को छिन्न-भिन्न कर दिया है।"

पडितो ने इस छत्रबंध वृत्त का दो प्रकार से व्याख्यान किया। उसी चित्रपट में चित्रित दो राज-हसिकाओ के ऊपर लिखी हुई दो गाथाए भी महाराज ने पढी :—

कय मलिण पत्त संगह म सुद्ध वयणं मलीमसकमंच।
माणस हियं पि अवरं परिहरियं राजहंस कुलं॥
पर सुद्धोभय पक्खं रत्त पयं राजहंस मणुसरइ।
तं पुहविराय रण सरसि जयसिरि राय हंसिव्व॥

अर्थात्—"हे पृथ्वीराज नृपते ! जिन्हो ने (नृप) मलिन—दुराचारी पात्रो को एकत्र कर रक्खा है, पक्षातर मे जिन की पाखें मलिन और जिन की वाणी शुद्ध नहीं है (हस), जिन का कार्यक्रम दोषपूर्ण है (नृप) कीचड़ से जिस के पजे मैले है (हंस) जो मानी घमडी है (नृप) मानस नामक सरोवर जिन को प्रिय है (हंस), ऐसे मनुष्य ही जिन को प्रिय है (नृप) ऐसे राजसमुदाय को तथा राजहंस पक्षियो के झुंड को छोड़ कर, जिन के मातृपितृपक्ष शुद्ध है, पक्षातर मे जिन की पाँखें अच्छी है (हंस) जिन के चरण

लाल है ऐसे राजाओं में हंस के समान श्रेष्ठ आप का, राजहंस की तरह रणरूपी सरोवर में जयलक्ष्मी राजहंसी की तरह अनुगमन करती है।"

इन राजहंस और महाराजा के तुलनात्मक वर्णन वाली दो गाथाओं की व्याख्या सूरि जी ने बड़े विस्तार से की। गाथाओं के अर्थ को श्रवण कर प्रसन्न हो महाराजा मन ही मन सोचने लगे कि—"इन आचार्य श्री की कोई अभीष्ट सिद्धि करनी चाहिए"। प्रगट-रूप से कहा—"आप मुझ से कुछ वांछित पदार्थ की याचना अवश्य करें, जिस देश या नगर में आप का मन मानता हो उसी का पट्टा आप मुझ से ले लीजिए!"

सूरि जी—"राजन्! विक्रमपुर के मेरे चाचा साहब मानदेव[1] ने, जिन्हों ने अपने बाहुबल से एक लाख रुपए उपार्जन किए हैं, मुझे दीक्षा लेने के समय बड़े प्रेम से कहा बेटा! मैं अपने बालबच्चों को अनेक प्रकार के आनंद करते देखूंगा—इसी अभिप्राय से मैं ने अनेक कष्ट सह कर इतना धन कमाया है। बेटा! तू ने यह क्या मन में सोचा, जो तू गृहस्थावास से उद्विग्न सा दिखाई देता है। तेरी इच्छा हो तो दस-बीस हजार रुपए देकर तुझे विदेश भेज दूं, या यहीं कोई दुकान खुलवा दूं! सुंदर कन्या से तेरा विवाह कर दूं! और भी जो मनोरथ हो तत्काल पूर्ण कर दूं! इस प्रकार अनेक प्रकार से मुझे समझाया परंतु मैं ने इन बातों का कोई खयाल न कर गुरु श्री के उपदेश से उत्पन्न प्रबल वैराग्य-वश सर्वसंगपरित्याग कर दिया। आज मैं आप के दिए हुए देश या नगर की कैसे इच्छा कर सकता हूं?"

राजा ने कहा—"तो और कोई सेवा फरमाइए!"

महाराजा और सूरि महाराज का इस प्रकार संभाषण सुन कर परम उत्कंठित

---

[1] आप का निवासस्थान विक्रमपुर था। सं० १२३३ के आषाढ़ मास में कन्यानयन के विधिचैत्यालय में इन्हीं ने मानदेव श्री महावीर भगवान की प्रतिमा स्थापित की थी। पीछे से कन्यानयन प्रसिद्ध जैनतीर्थ कहलाने लगा था। चौदहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध खरतर गच्छाचार्य श्री जिनप्रभ सूरि जी अपने 'विविध तीर्थकल्प' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ में इस तीर्थ व उपर्युक्त प्रतिमा के संबंध में एक स्वतंत्र कल्प ही लिखा है। गुर्वावली व इस कल्प में इस महावीर प्रतिमा का प्रतिष्ठापक श्री जिनपति सूरि जी को लिखा है।

सेठ रामदेव ने कहा—"कृपानाथ! आप गुरु महाराज को विजयपत्र भेंट करने की कृपा करें।"

राजा—"आज तो समय अधिक हो गया है, दो दिन पश्चात् मै कार्यवश अजमेर आऊंगा तब अवश्य ही सूरि जी को जयपत्र भेंट कर दूंगा।"

रामदेव—"जैसी आप की आज्ञा! एक बात और है—अजमेर मे गुरु महाराज का प्रवेशोत्सव बडे समारोह से हो ऐसी आज्ञा दीजिए!"

महाराजा ने मंडलेश्वर कैमास को आज्ञा दी—"मंडलेश्वर! तुम सब कार्य अच्छी तरह कर देना! जिस से रामदेव के गुरु महाराज बड़े समारोह से अजमेर के उपाश्रय मे पधारे।"

सूरि महाराज वहा से उठ कर कैमास आदि राज-प्रधान पुरुषों के साथ वार्तालाप करते हुए नगर की ओर चले। हजारो घुड़सवार और पैदल राजसेना के साथ महाराजा के आग्रह से मेघाडंबर छत्र धारण किए हुए सूरि महाराज चल रहे थे। अनेक लोग उन की कीर्ति का यशोगान कर रहे थे, स्थान-स्थान पर राजा की ओर से नृत्य हो रहे थे, श्रावक लोग बडी खुशी से दीन-दुखियों को दान दे रहे थे, भाट लोग गौतम स्वामी आदि पूर्वाचार्यों के गुणवर्णन की विरुदावली पढ रहे थे। "पृथ्वीराज की सभा मे श्री जिनपति सूरि जी ने पद्मप्रभ को जीत लिया।" इस आशय की नई चौपाइया पढी जा रही थी। राजाज्ञा से नगर खूब सजाया गया, अनेक प्रकार के वाजित्रों के साथ अजमेर पहुंच कर चैत्यपरिपाटी[1] करते हुए सूरि महाराज पौषधशाला मे पहुंचे।

दो दिन के पश्चात् अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए महाराजा पृथ्वीराज ससैन्य अपने अजमेर के महलो मे आए। वहा से हाथी के हौदे पर जयपत्र रख कर नगर के मध्य-मध्य होते हुए पौषधशाला पधारे और सूरि जी के हाथ मे जयपत्र समर्पण किया। सूरि जी ने धर्मलाभ रूपी आशीर्वाद दिया। श्रावकों ने राजा साहब को खूब बधाइयां दिया। इस महोत्सव मे सेठ रामदेव ने १६०००) व्यय किए थे।

---

[1] नगर के समस्त जिनालयों को संघ के साथ समारोह-पूर्वक सविधि वंदन करने को चैत्यपरिपाटी कहते हैं।

इस के पश्चात् चातुर्मास पूर्ण होने पर श्री जिनपति सूरि जी महाराज वहां से विहार कर स० १२४० मे विक्रमपुर पधारे।

इस शास्त्रार्थ का सारा वर्णन श्री जिनपति सूरि जी के विद्वान् शिष्य जिनपालोपाध्याय विरचित 'गुर्वावली' से लिया गया है जो कि उसी समय की रचना है। अत उस की प्रामाणिकता मे किंचित् भी सदेह नही रह जाता। प्रस्तुत शास्त्रार्थ मनोरंजक होने के साथ-साथ कई ऐतिहासिक तथ्यो पर भी बहुत अच्छा प्रकाश डालता है।

यह शास्त्रार्थ स० १२३९ कार्तिक शुक्ला ७ (१०) के दिन हुआ था, इस से पूर्व शास्त्रार्थ के निश्चित होने पर महाराजा ने पद्मप्रभ को बुलवा भेजा और स्वयं दिग्विजय के लिए बडी भारी सेना के साथ नरानयन से प्रस्थान किया था और विजय करके वापिस लौटने पर शीघ्र ही शास्त्रार्थ हुआ था। अत दिग्विजय का समय इसी के लगभग होना चाहिए। सभवत यह चढाई भादानक राजा पर की गई थी क्योंकि शास्त्रार्थ मे दो-तीन बार भादानक-विजय सबधी प्रशंसात्मक वर्णन आए है। विद्वानों को इस पर विशेष प्रकाश डालना चाहिए।

दसवी शताब्दी के सुप्रसिद्ध काव्यमर्मज्ञ राजशेखर ने अपने ग्रथ 'काव्यमीमासा' मे एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है, जिस मे भादानक-निवासी अपभ्रश भाषा का प्रयोग करते है, लिखा है। स० १६५४ मे जैन कवि हेमाणद ने अपनी 'भोजचरित्र चौपाई' की रचना भी भट्टाणइ स्थान मे करने का उल्लेख किया है। सभवत उपर्युक्त भादानक और इन ग्रथद्वय मे निर्देश किया हुआ भट्टाणा, एक ही स्थान होगे।

महाराजा पृथ्वीराज उस समय अजमेर के निकटवर्ती नरानयन नाम के स्थान के राजप्रासादो मे रहते थे, एव शास्त्रार्थ भी वही हुआ था। यह नरानयन आजकल नारायणा ग्राम नाम से प्रसिद्ध है।

महाराजा पृथ्वीराज की सभा मे वागीश्वर, जनार्दन गौड़ और विद्यापति प्रभृति प्रकाड विद्वान् राजपडित थे, और शास्त्रार्थ के समय मंडलेश्वर कैमास भी उपस्थित थे।

महाराजा पृथ्वीराज ने अपने मुँह से अपनी सेना मे ७०००० (सत्तर हजार) घोडे का होना कहा है, यह विशेष महत्वपूर्ण बात है। इतना ही नही किंतु यहा तक कहा है कि इतना ऊँचा पद अन्य किसी को भी प्राप्त नही है। इस से सम्राट् के प्रभाव एव चक्रवर्तित्व का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

सवत १२४४ म अणहिल्लपर के अभयकुमार श्रावक ने तीर्थयात्रा का सघ निकाला। राजा भीमसिंह, प्रधान मंत्री जगदेव पडिहार आदि के आग्रह से श्री जिनपति सूरि जी भी सघ मे सम्मिलित हुए थे। तीर्थयात्रा के अनन्तर आशापल्ली मे सूरि जी ने चैत्य-वासी प्रद्युम्नाचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया, इस से उन के पक्षपाती नगर के अभयड़ नामक कोतवाल ने सघ को हैरान करने के लिए मिथ्या राजाज्ञा लगा कर सघ को १४ दिन तक अटकाए रक्खा। और जगदेव पडिहार को, जो मालवा देश में भेजा गया हुआ था, पत्र द्वारा कहलाया कि सघ से रुपया ऐंठने का समुचित अवसर है। यदि आप की आज्ञा हो तो सपादलक्ष देश (अजमेर) के सघ से उसको सीधा करूं। जगदेव ने अपने सेवक की इस उद्दडता से आग बबूला होकर आज्ञापत्र लिखा कि, "मैं ने बड़े कष्ट से अजमेर-नरेश पृथ्वीराज के साथ संधि की है, यह सघ भी अजमेर सपादलक्षीय है अतः सघ के साथ तनिक भी छेड़-छाड़ मत करना! यदि करोगे तो तुम्हे गधे की खाल में सिला दिया जायगा।" अभयड़ को जब यह पत्र मिला तो तत्काल ही सघ से माफी माग कर उसे रवाने किया।

इस घटना से सम्राट् पृथ्वीराज का कितना प्रभाव और आतंक जमा हुआ था, भली भाँति प्रमाणित हो जाता है।

इस शास्त्रार्थ से महाराज पृथ्वीराज सबधी ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त उन की प्रकृति के विषय मे भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'गुर्वावली' मे कई जगह महाराजा को केलिप्रिय, कौतुकार्थी विशेषण से सबोधित किया है। शास्त्रार्थ, इद्रजाल एव मल्ल-युद्ध देखने की उत्सुकता उन की विनोदप्रियता का ही प्रतीक है। वे बड़े समभावी और न्यायी थे। मडलेश्वर कैमासादि जिस समय पद्मप्रभ से रुष्ट हो गए थे उस समय भी महाराजा ने उन्हे समभाव-पूर्वक परीक्षा एव न्याय करने की आज्ञा दी थी। और स्वय भी बहुत निष्पक्ष रहे थे। चित्रबध काव्यादि पर भी आप का अच्छा प्रेम था। इस से आप की विद्या-प्रियता का भी अच्छा परिचय मिलता है।

श्री जिनपति सूरि जी के अनन्य भक्त श्रावक रामदेव महाराजा के विशेष कृपा पात्र एवं मडलेश्वर कैमास के समकक्ष थे। ये सेठ वीरपाल के पुत्र थे। ये वीर, धनवान् और सर्वकलासपन्न थे। राजसभा में इन की ओर वक्र दृष्टि से देखने की किसी की सामर्थ्य नही थी। शास्त्रार्थ के दो दिन पश्चात् जब महाराजा अजमेर के धवलगृह प्रासाद में

पधार कर जयपत्र हाथी के हौदे पर रख कर पौषधशाला पहुंचे उस समय इन्हीं रामदेव ने बधाई में १६०००) व्यय किए थे।

इस शास्त्रार्थ में राजसभा आदि का वर्णन भी महत्व का है, और भी कई दृष्टियों से प्रस्तुत शास्त्रार्थ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

---

# महाभारत की लड़ाई कब हुई ?

[ लेखक—डाक्टर देवसहाय त्रिवेद, एम्० ए०, पी-एच्० डी० ]

## भारतीय परंपरा और उस का ऐतिहासिक महत्व

गत साठ वर्षों से महाभारत युद्धकाल के विषय मे विद्वानो मे लगातार वादविवाद चल रहा है । कुछ लोगो ने यह भी सिद्ध करने का यत्न किया कि युद्ध एक दम हुआ ही नही, और 'महाभारत' नामक महाकाव्य कुरुपाचालों के मामूली झगडे-टटों के आधार पर रचा गया, और यह झगड़ा उतने विशाल रूप मे नही था जैसा कि 'महाभारत' मे दिखलाने का यत्न किया गया है। प्रिंसपल थडानी उन विद्वानों मे से एक है जो कहते है कि युद्ध हुआ ही नही । उन्हो ने अपने ग्रथ[1] मे सिद्ध करने का यत्न किया है कि यह महाकाव्य भारतीय षड्दर्शनों का विवादात्मक नाटक है जिस में वेदात की विजय हुई। किंतु हज़ारो वर्षों से भारतीय जनता का दृढ विश्वास केवल एक मामूली झगड़े के आधार पर स्थिर नही रह सकता और इस युद्ध की सत्यता का दृढ विश्वास ही इस बात का प्रमाण है कि यह निराधार परपरा नही है । इस युद्ध के कुछ वीरो के नाम उपनिषद्[2], पाणिनीय सूत्र,[3]

---

[1] 'दि मिस्ट्री अव् दि महाभारत', एन० वी० थडानी रचित, ४ भाग; कराची; (१९३१-३४)

[2] तद्धैतद्घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्तवो वाचा पिपास।—छान्दोग्योपनिषद्, ३।१७।६

[3] वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ।—पाणिनि, ४।३।९८
गवियुधिभ्यां स्थिरः ।—वही, ८।३।९५
भीमादयोऽपादाने ।—वही, ३।४।७४
स्त्रियामवन्तीकुंतीकुरुभ्यश्च ।—वही, ४।१।१७६
कुरुनादिभ्यो ण्यः ।—वही, ४।१।१७२

कात्यायनीय वार्तिक[१] और पातंजल महाभाष्य[२] में भी पाए जाते हैं। राजाओं ने इस का उल्लेख शिलालेखों[३] में किया है, और इस घटना के आधार पर विशाल साहित्य[४] पाया जाता है। और यदि होमर, सोफोक्लिज, यूरिपिडिज, एरिस्टोफेनिज इत्यादि के ग्रंथ ट्रोजन युद्ध की सत्यता को सिद्ध करते हैं तो कोई कारण नहीं कि इस घटना की सत्यता मे शका की जाय। पाश्चात्य विद्वानों को भी हार मान कर भारतीय परंपरा से मात खानी पडी है, और अंत में उन को लाचार होकर कहना पड़ा है[५] :—

"हिंदुओं के कथन प्रायः सर्वरूपेण शिक्षित और अंधविश्वासी जनता की गप्पों से विभिन्न माने गए हैं, और वे बहुत सावधानी के साथ आंतरिक अनुसंधान के अधिकारी हैं।"

## भारत युद्ध की पारंपरिक तिथि

भारतीय परंपरा के अनुसार भारत युद्ध कलि प्रारंभ के पहले हुआ। कलि का प्रारंभ विक्रम से ३०४४ वर्ष पूर्व ज्ञात है। आगे के पृष्ठों में मैं पुष्ट प्रमाणों के आधार पर, जिन की ऐतिहासिक महत्ता पर किसी प्रकार शका नहीं की जा सकती, यह दिखलाने का यत्न करूँगा कि यही विचार ठीक है, यद्यपि अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के इस जटिल प्रश्न पर परंपरा के और एक दूसरे के विरुद्ध विभिन्न सिद्धांत हैं।

---

[१] व्यासवरुडनिषादचाण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम्।—पाणिनि, ४।१।९७ का पाण्डोर्ड्यण्।—पाणिनि, ४।१।१६८ का वार्तिक।

[२] कंसवधमाचष्टे—पाणिनि, ३।१।२६ का भाष्य। साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले। वही, २।३।३६ का भाष्य। यजतिस्म युधिष्ठिरः। वही, ३।२।११८ भाष्य।

[३] श्री जान फ़ेथफुल फ़्लीट रचित 'कारपस इन्सक्रिप्शन इंडिकेरम्', तृतीय भाग, कलकत्ता, (१८८८)

(क) संख्या २६ पंक्ति १३; २७।१५; २८।२२; ३०।३
उक्तं च महाभारते भगवता वेदव्यासेन व्यासेन।

(ख) संख्या ३१ पंक्ति १९;
उक्तं च महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन वेदव्यासेन व्यासेन।

[४] 'शकुंतला', 'बालभारत', 'पंचरात्र', 'उरुभंग', 'नैषध', 'बालचरित' इत्यादि।

[५] इतिहासकारों का विश्वेतिहास ('हिस्टोरियन्स हिस्ट्री अव् दी वर्ल्ड'), भाग २, पृ० ४९५

## विद्वानों के विभिन्न विचार

पार्जिटर के[1] अनुसार नवनंदों का राज्य ३४५ विक्रमपूर्व (३२२ ईसापूर्व या २६५+८०) के लगभग आरंभ हुआ। उसे २० वर्ष अपने समकालीन राजाओं के नाश करने में लगे। अतः उन के नाश का मध्यमान ३२५ वि० पू० (३४५–२०) होना चाहिए। अब दस क्षणिक राज्यों का काल ४६८ वर्ष (२६×१८) हुआ। इस लिए ७९३ वि० पू० (३२५+४६८) अधिसीम कृष्ण, दिवाकर और सेनाजित् के राज्य प्रारंभ का समय हुआ। भारत युद्ध के समय को ज्ञात करने के लिए इन राजाओं के पूर्व के राजाओं को (पांच पौरव राजाओं क्योंकि युधिष्ठिर का भी राज्यकाल शामिल करना चाहिए) भी जोड़ना चाहिए। अतः हमें १०० वर्ष (२०×५) जोड़ना चाहिए और इस प्रकार भारत युद्ध का समय ८९३ वि० पू० (७९३+१००) के लगभग निर्धारित किया जा सकता है।

सीतानाथ प्रधान[2] रिपुंजय का सिंहासनारूढ़काल ५०७ वि० पू० मानते हैं। वह प्रत्येक राजा के लिए २८ वर्ष मध्यमान लेते हैं। इस कारण उन के अनुसार १०९५ वि० पू० (५०७+५८८ (२८×२१)) महाभारत युद्ध का काल है।

रमेशचंद्र दत्त के[3] अनुसार कुरु-पांचाल युद्ध के समय से भगवान् बुद्ध तक ३५ राजाओं ने राज्य किया। भगवान् बुद्ध[4] विक्रम पूर्व छठी शताब्दी में हुए। प्रत्येक राजा के लिए २० वर्ष मान कर युद्ध विक्रम पूर्व १३वीं शताब्दी में माना जा सकता है।

श्यामा शास्त्री कहते हैं—[5] दुष्यंत के पुत्र भरत ने द्वादश अतिरात्र में यज्ञ किया

---

[1] प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक गाथाएं ('ऐंश्यंट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशंस'), एफ० ई० पार्जिटर विरचित, लंदन (१९२२), पृ० १७९

[2] प्राचीन भारतीय वंशावली ('क्रानोलाजी अव् ऐंश्यंट इंडिया')। श्री-सीतानाथ प्रधान विरचित, कलकत्ता, (१९२७) पृष्ठ २४८

[3] 'प्राचीन भारतीय सभ्यता', ('सिविलाइज़ेशन अव् ऐंश्यंट इंडिया) श्री-रमेशचंद्र विरचित, कलकत्ता, १९१०, भाग १, पृ० १०।

[4] भगवान् बुद्ध के काल के लिए मेरा लेख देखिए। 'दि डेट अव् लार्ड बुद्ध, १८८५ ईसा पूर्व', 'डेली हेराल्ड', लाहौर।

[5] श्यामा शास्त्री रचित 'गवामयन' वैदिक संवत् पृ० १५५, कृष्णमाचार्य द्वारा अपनी पुस्तक 'क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' मद्रास (१९३७) में उद्धृत।

('आश्वलायन गृह्यसूत्र', १०।५।८) । इस के अनुसार १४८८ (३७२×४) कलि संवत् या १५५६ वि० पू० (३०४४—१४८८) भरत का काल हुआ । 'विष्णुपुराण' में दी हुई वंशावली के अनुसार महाभारत का नेता और श्रीकृष्ण का समकालीन युधिष्ठिर भरत की पच्चीसवीं पीढ़ी में है, और वह १२०३ वि० पू० सिंहासनासीन हुआ । तदनुसार भरत और युधिष्ठिर का मध्यकाल २४८ वर्ष हुआ और यदि वंशावली ठीक है, तो प्रत्येक राजा के लिए लगभग १० वर्ष हुआ (२४८÷२५) । परीक्षित युधिष्ठिर का पौत्र है । 'मत्स्यपुराण' के अनुसार परीक्षित और नंद का मध्यकाल १५० वर्ष कम सहस्र वर्ष अर्थात् ८५० वर्ष है । नंद चौथी शताब्दी विक्रम पूर्व में हुए, अर्थात् वे (१२०३—८५०) ३५३ वि० पू० गद्दी पर बैठे ।

"कर्नल विल्फ़र्ड की गणना से ('एशियाटिक रिसर्चेज', भाग ९ 'क्रानालॉजिकल टेबुल', पृ० ११६) महाभारत युद्ध का अंत १३७० ई० पू० या १३१३ वि० पू० हुआ । बुकानन के अंदाज से १३वीं सदी ईसा पूर्व हुआ । कोलब्रुक ज्योतिर्गणना से निर्धारित करते हैं कि वेदों की रचना जो व्यास की बतलाई जाती है ईसा पूर्व चौदहवीं सदी में हुई । बेन्टले पांडव प्रधान युधिष्ठिर का समय ईसा पूर्व ५७५ या वि० पू० ५१८ बतलाते हैं, किंतु महाभारत युद्धकाल और कलिप्रारंभ के लिए प्रमाणों का झुकाव ईसा पूर्व १२वीं या १४वीं सदी के पक्ष में है ।"—विलसन[1] ।

डाक्टर हेमचंद्र रायचौधरी[2] के अनुसार परीक्षित का जन्म १३५५ वि० पू० (२६५+४०+१०५०) होना चाहिए, किंतु डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल[3] के निर्णयानुसार महापद्म के पिता महानंद का सिंहासनारूढ़काल ३५२ वि० पू० है । इस प्रकार परीक्षित का जन्म या महाभारत युद्ध का अंत १३६७ वि० पू० (३५२+१०१५) होना चाहिए ।

किंतु महामहोपाध्याय श्री सतीशचंद्र विद्याभूषण और श्री ललितमोहन

---

[1] विल्सन-संपादित 'विष्णुपुराण', ४।२३२

[2] श्री हेमचंद्र रायचौधरी रचित 'प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास' ('दि पोलिटिकल हिस्ट्री अव् ऐंश्यंट इंडिया'), कलकत्ता, (१९२७), पृ० १५

[3] 'जर्नल बिहार ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी', भाग १, पृ० १०९

कार[1] युद्ध का होना १८६५ वि० पू० मानते हैं—श्रीयुत कार कहते है। महापद्म नंद जैसा कि भारतीय इतिहास से ज्ञात है ३६५ वि० पू० (२६५+१००) गद्दी पर बैठे। इस कारण पीछे गणना कर कुरुक्षेत्र के मैदान मे महायुद्ध का समय (२६५+१००+१५००) १८६५ वि० पू० आता है।

पडित सत्यव्रत समाश्रयी भट्टाचार्य[2] और श्री प्रमोदचरण सेनगुप्त[3] वाराह-मिहिर, अलबेरूनी और कल्हण के आधार पर युद्ध को २३४३ और २३९२ वि० पू० क्रमश मानते है। कल्हण[4] लिखता है—"कलि के ६५३ वर्ष बीतने पर (३०४४—६५३) २३९१ वि० पू० कुरुपाडव हुए।"

## युद्ध कल्पित नहीं है

जो कुछ ऊपर कहा गया है उस मे प्रकट है कि भारतीय ऐतिहासिक क्षेत्र की इस प्रधान घटना के विषय मे किस प्रकार विरोधी विचार विद्वान् रखते है, और यह स्पष्ट है कि महाभारत युद्ध का काल केवल कपोलकल्पित कह कर टाला नही जा सकता[5]। विना कुछ अग्नि के धूम नही होता, इस बात की उपेक्षा इतिहासकार को कदापि नही करनी चाहिए। माइकेल टेंपुल[6] साहब भी कहते है —"अब हम लोग समझने लगे है कि जब कभी कोई प्राचीन किंवदती हम लोगो के सामने प्रकट होती है तो इस के पीछे किसी प्रकार की सच्चाई अवश्य रहती है। किंवदती शून्य मे प्रकट नही होती, क्योकि कुछ ही से कुछ उत्पन्न हो सकता है। बीज का होना आवश्यक है। संभव है कि पौधे

---

[1] 'सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज', 'मत्स्यपुराण', इलाहाबाद (१९१६), भूमिका, पृ० १५

[2] निरुक्त, सत्यव्रत समाश्रयी भट्टाचार्य संपादित, कलकत्ता, (१८०४ शाके), भाग ४, भूमिका।

[3] 'जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी अव् बेंगाल', 'भारत बैटल ट्रेडिशंस', पी० सी० सेनगुप्त लिखित, भाग ४, (१९३८), पृ० ३९३–४१३

[4] शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः ॥ राजतरंगिणी, १।५१

[5] 'हिस्टोरियंस हिस्ट्री अव् दि वर्ल्ड', भा० २, पृ० ३६८

[6] 'इंगलिशमैन', कलकत्ता, ७ फ़रवरी १९२७

ने, जो इसी बीज से उत्पन्न हुआ हो, एक विचित्र और अगम्य रूप धारण कर लिया हो।"

## विभिन्न मतों की समालोचना

यह स्पष्ट है कि विद्वज्जन मनमाने ढंग से, राजाओं के राज्यकाल के लिए जितना वर्ष चाहते हैं मान लेते हैं। वे प्रत्येक राजा के लिए १० वर्ष से लगाकर २८ वर्ष तक मानते हैं और इसी प्रकार महाभारत युद्ध का समय निर्णय करते हैं। इस तरह नंदों का भुक्त काल उन की इच्छानुसार ४० वर्ष से लेकर १०० वर्ष तक ठहरता है, यद्यपि सभी पुराण एक मत से नंदो का काल पूरे १०० वर्ष बतलाते हैं। पार्जिटर महोदय परीक्षित और नंद के बीच ३१ पीढ़ी गिनते हैं और बिना कारण बतलाए एक ही अधिकरण में एक श्रेणी के कुछ राजाओं के लिए १८ वर्ष का मध्यमान और कुछ के लिए २० वर्ष मध्यमान लेते हैं। डाक्टर प्रधान भारत युद्ध और अंतिम बृहद्रथ रिपुंजय के सिंहासनासीन काल तक २१ पीढ़ी मानते हैं, किंतु श्री रमेशचंद्र दत्त भारत युद्ध और भगवान् बुद्ध के बीच ३५ पीढ़ी मानते हैं।

दूसरे विद्वान् परीक्षित के जन्म और नंदाभिषेक के मध्यकाल के लिए एक ही श्लोक[1] का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि उस का अर्थ ८५०, १०१५, १०५०, १११५, या १५०० वर्ष होता है। इस संबंध में यह कहना असंगत न होगा कि भारतीय वंशावली जैसी आधुनिक ऐतिहासिक पुस्तकों में पाई जाती है, अलेक्जेंडर साड्राकोटस की समकालीनता और द्वितीय के (साड्राकोटस के) चंद्रगुप्त मौर्य के साथ भ्रमपूर्ण समीकरण पर निर्धारित है। सत्यतः महासिकंदर का समकालीन भारतीय सम्राट् गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त[2] था न कि मौर्यवंशीय चंद्रगुप्त। मैं ने मगधराजाओं की वंशावली[3] और परीक्षित-जन्म तथा नंदाभिषेक के मध्यकाल, महाभारत युद्धकाल निर्धारित करने के

---

[1] महापद्माभिषेकात्तु जन्म यावत्परीक्षितः।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचशतोत्तरम्॥ श्रीमद्भागवत, १२।२।२५

[2] क्या सिकंदर ने मौर्यों के समय भारत पर चढ़ाई की? ('डिड् अलेक्जेंडर, इनवेड इंडिया इन दी टाइम अव् दि मौर्याज़') 'हिंदुस्तान टाइम्स', दिल्ली, २९ जून १९३६

[3] 'मगध राजाओं की नई वंशावली', 'साहित्य' (त्रैमासिक), पटना।

लिए दूसरे लेख मे विवेचन किया है ।

काश्मीर के इतिहासकार कल्हण ने एक श्लोक[1] की टीका के रूप मे "कलि के ६५३ वर्ष बीत जाने पर (२३९१ वि० पू०) कौरव पाडव हुए" लिख कर बडी भारी भूल की । वह अपने पूर्वाचार्य गर्गाचार्य और वाराहमिहिर की अक्षरश नकल करते है जिन के अनुसार युधिष्ठिर का समय जानने के लिए शककाल मे २५२६ जोडना चाहिए । उन लोगो ने ज्योतिर्गणना के लिए एक ऐसे शककाल का प्रयोग किया जिस का वर्ष आधुनिक शालिवाहन शक के प्रथम वर्ष से भिन्न था । उस के अनुसार ३५ राजा विस्मृति सागर मे डूब गए थे जिन का उद्धार करने मे वह असमर्थ था । अपि तु शालिवाहन शक के सिवाय उसे और किसी शकसवत् का ज्ञान ही न था इस लिए उस ने भूल से बिना कारण बताए निर्णय किया कि कलि के ६५३ वर्ष बीतने पर कुरु-पाडव हुए और अत मे उसे बाध्य हो कर कहना पडा[2] । लोग यह समझ कर कि भारतयुद्ध द्वापर के अत मे हुआ हमारी इस काल-गणना को झूठा समझते है । महाभारत युद्ध के लिए 'राजतरगिणी' के आधारो का पूर्ण विवेचन मै ने अन्यत्र किया है ।[3]

किंतु क्या हम लोग केवल परपरा पर ही निर्भर रहेगे ? हम लोगो के लिए पुष्टप्रमाण उपस्थित है कि युद्ध ३०८० वि० पू० या ३१३७ ई० पू० हुआ । उन युक्तियो को जो भारतीय परंपरा से स्वीकृत महाभारत युद्ध की तिथि से विभिन्न निर्धारित करने की कोशिश करती है, हम भारतीय परपरा के पक्ष मे उपलब्ध अनेक ऐतिहासिक और साहित्यिक प्रमाण उपस्थित करते है ।

---

[1] आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ।। राजतरंगिणी १।५६

[2] भारतं द्वापरान्ते ऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ।। राजतरंगिणी, १।४९

[3] (क) काश्मीर की संशोधित राजवंशावली, 'विज्ञान', प्रयाग, कुंभार्क, १९९३ वि०

(ख) 'दि रिवाइज्ड क्रानालाजी अव् काश्मीर', 'जर्नल अव् इंडियन हिस्ट्री' (चातुर्मासिक), मद्रास, एप्रिल, १९३९

## ऐहोली शिलालेख

पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोली शिलालेख से[1] ज्ञात होता है कि यह शिलालेख जिस समय स्थापित किया गया था, उस समय तक महाभारत समर के समय से कलियुग के ३७३५ वर्ष और शक राज के ५५६ वर्ष बीत चुके थे। इन दोनों से यह स्पष्ट है कि कलि का प्रथम वर्ष ३१७९ शकपूर्व (३७३५ – ५५६) या ३०४४ वि० पू० (३१७९ – १३५) हुआ।

## ज्योतिषग्रंथ

शिलालेख के इस कथन की सत्यता 'सिद्धान्तशिरोमणि'[2] 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त'[3] और 'ज्योतिर्मकरन्द'[4] के देखने से एक क्षण में सिद्ध हो जायगी। इन के अनुसार भी कलिप्रारंभ का काल वही है।[5] हिंदुओं की ज्योतिर्गणना के अनुसार वर्तमान कलियुग का प्रारंभ २० फरवरी को २ बज कर २७ मिनट ३० सेकेंड पर हुआ (माघशुक्ल १५) ३१०२ वर्ष ई० पू०, ३०४४ वि० पू० हुआ। उन के कथनानुसार सभी ग्रह उस

---

[1] 'इंडियन एंटिक्वेयरी', भाग ८, पृ० २४१

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥
(३० + ३००० + ७०० + ५ = ३७३५)
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥
(५० + ६ + ५०० = ५५६)

[2] ९ ७ १ ३
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।
—सिद्धांतशिरोमणिः, काशी, (१९१७) पृ० ८९

[3] ९ ७ १ ३
गोऽद्रैकगुणाः शकान्तेऽब्दाः। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मध्यमाधिकार।

[4] ९ ७ १ ३
शाको नवाद्रीन्दुकृशानुयुक्तः कलेर्भवत्यब्दगणो युगस्य। ज्योतिर्मकरन्द।
'अङ्कानां वामतो गतिः' के अनुसार शकसंवत् प्रारम्भ के समय ३१७९ वर्ष कलि के बीत चुके थे।

[5] 'थिओगनी अव् दि हिंदूज', काउंट जानस्टर्ण रचित, डाक्टर अविनाशचन्द्र दास द्वारा 'ऋग्वेदिक इंडिया', कलकत्ता (१९२०) में उद्धृत।

[6] वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिक शुक्लपक्षे
नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे।
एता युगाद्याः कथिताः पुराणैरनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ॥ विष्णुपुराण।

समय एक स्थान पर थे और उन की सारिणी से भी यह प्रकट होता है। कर्नल बेली का कहना है कि उस समय बुध और गुरु भूमध्य वृत्त के एक ही अंश में थे। मंगल आठ अंश की दूरी पर तथा शनिश्चर सात ही अंश की दूरी पर थे। अतः यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों के कथनानुसार कलियुगारंभ के समय उपर्युक्त चारों ग्रह अवश्य ही क्रमशः सूर्य की किरण में छिप गए होंगे (प्रथम शनिश्चर, तब मंगल इस के बाद बृहस्पति तथा अंत में बुध)। अतः उस समय ये एक ही स्थान पर थे और यद्यपि शुक्र उस समय दिखाई न दिया होगा, यह कहना स्वाभाविक था कि सभी ग्रह उस समय एक ही स्थान पर थे। ब्राह्मणों की गणना हम लोगों की ज्योतिःसारिणी से इस प्रकार ठीक बैठती है कि सिवा प्रत्यक्ष दर्शन के ऐसा समान फल मिलना असंभव है।

## कलि-द्वापर की संधि की समकालीनता

आंतरिक और बाह्य प्रमाणों से भी महाभारत युद्ध और कलि प्रारंभ की साधारण समकालीनता सिद्ध है। उपर्युक्त शिलालेख में 'भारताहव' और 'कलौ काले' प्रकट ही है। 'महाभारत'[1] कहता है "कलि और द्वापर के पास होने पर कुरु और पांडवों की सेना का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ।" उसी ग्रंथ में[2] अन्य स्थानों पर भी कलि का आधुनिक आगमन निर्देश किया गया है।

## कलिप्रारंभ के ३६ वर्ष पूर्व

किंतु युद्ध की तिथि और भी ठीक नियत की जा सकती है। 'महाभारत' से ज्ञात होता है[3] कि 'युधिष्ठिर ने ३६वें वर्ष बुरी दशाओं को देखा। 'महाभारत'[4] कहता है कि कृष्ण भी ३६वें वर्ष के आने पर परिवार, मंत्री और पुत्रों के नाश होने पर जंगल में

---

[1] अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥ महाभारत १।५।१३

[2] (क) एतत्कलियुगं नाम अचिराद् यत्प्रवर्तते। महाभारत, वनपर्व, १४९।३६
(ख) प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञा पाण्डवस्य च। महाभारत।

[3] षट्त्रिंशेत्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दन।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥ महाभारत, मुशलपर्व, १।२

[4] त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि॥ महाभारत, स्त्रीपर्व, १५।१४

घूमते हुए नीच उपाय द्वारा मृत्यु को प्राप्त होंगे। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार श्रीकृष्ण जी जंगल में घूम रहे थे, और एक पेड़ के नीचे योगसाधन के लिए बैठ गए। उन के चरण में चक्र की प्रतिभा चमकने लगी। एक व्याध ने उस पर तीर चला दिया और यही श्रीकृष्ण भगवान् की मृत्यु का कारण हुआ। अर्जुन द्वारा श्रीकृष्ण की मृत्यु का समाचार सुन कर शीघ्र ही पाण्डवों ने राजपाट छोड़ दिया और उन्हों ने तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया। 'विष्णु पुराण' कहता[1] है कि वसुदेव कुलोत्पन्न भगवान् विष्णु का अंश जिस समय स्वर्ग गया उसी समय कलि आ गया। 'श्रीमद्भागवत'[2] के अनुसार जब तक भगवान् विष्णु पृथ्वी को स्पर्श किए रहे तब तक कलि पृथ्वी पर अपना पराक्रम नहीं दिखा सका। अतः यह सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण युद्ध के ३६ वर्ष बाद स्वर्गगामी हुए। पाण्डवों ने शीघ्र ही राज्य छोड़ दिया, कलि प्रकट हो चुका था किंतु श्रीकृष्ण जी के प्रभाव के कारण अपना प्रभुत्व न दिखा सका। कलि संवत् का प्रारंभ ३०४४ वि० पू० है। मैं इसे कलि के प्रभुत्व धारण का समय मानता हूं। अतः श्रीकृष्ण के स्वर्गवास का काल ३०४४ वि० पू० है और इस कारण ३०८० वि० पू० (३०४४+३६) महाभारत युद्ध का काल है।

## निधानपुर ताम्रपत्र

उपर्युक्त तिथि की सामान्यपुष्टि कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन के समकालीन भास्करवर्मा के निधानपुर ताम्र[3] पत्र से भी होती है। यह शासनपत्र ६४७ वि० संवत् में खोदा गया था, और इस में नीचे लिखी वंशावली पाई जाती है —

नरक
|
भगदत्त (जो अर्जुन से लड़ा)
|
वज्रदत्त
|
पुष्यवर्मन् (वज्रदत्त के ३००० वर्ष बाद)
|
भास्करवर्मन (पुष्यवर्मन् से १२ वां राजा)

---

[1] यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज।
वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः॥ विष्णुपुराण, ४।२४।१४

[2] यावत्स भगवान् विष्णुः यस्पर्शे मां वसुन्धराम्।
तावत्पृथ्वीं पराक्रान्तुं समर्थो नाभवत्कलिः॥ श्रीमद्भागवत।

[3] 'इपिग्राफ़िका इंडिका', भाग १२, पृ० ६५

ताम्रपत्र[1] कहता है—"उस नरक से जिस ने कभी नरक नही देखा, राजा भागदत्त इंद्र का मित्र उत्पन्न हुआ, जो प्रसिद्ध विजेता अर्जुन से लड़ा। उस शत्रुनाशक का पुत्र इन्द्र के समान चाल वाला वज्रदत्त हुआ। उस अखड वीर ने सर्वदा युद्ध मे शत-क्रतु इन्द्र को प्रसन्न किया। इस के वश के राजाओ के तीन हजार वर्ष बीत जाने पर पुष्य-वर्मा नामक राजा हुआ।" महाभारत के अनुसार[2] प्राग्ज्योतिष (आसाम) का राजा भागदत्त कौरवों का सहायक था, और वह रणक्षेत्र मे मारा गया। उस के कृतप्रज्ञ और वज्रदत्त नामक दो पुत्र थे। भागदत्त अर्जुन द्वारा और कृतप्रज्ञ नकुल द्वारा बध किए गए थे। अत यह कहा जा सकता है कि महाभारत युद्ध २०८० वि० पू० हुआ।

## आईने-अकबरी

शिलालेखो के अतिरिक्त मुगल-सम्राट् अकबर के नवरत्नो मे से प्रसिद्ध सस्कृत और फारसी के विद्वान् अबुलफ़जल का भी वचन कम विश्वसनीय नही है। वह कहता है[3]—"इस युग के आदि मे राजा युधिष्ठिर ने विश्वविजय किया और एक युग का अन्त समझ कर अपने राज्यकाल से एक सवत् चलाया। उस समय से आज तक जो कि दीन इलाही का ४०वा है ४६९६ वर्ष बीत गए।" अत यह स्पष्ट है[4] कि तारीख-ए-इलाही या इलाही सवत् का ४०वा वर्ष, जिस को अकबर ने चलाया था और जिस का प्रथम वर्ष उस का गद्दी पर बैठना था, जब वह २७।२८ रवी दूसरा ९६३ हिजरी या ११ मार्च १५५६ ई० (सिंहासनारूढ से २५ दिन का समय एक वर्ष माना गया था), अथवा १५९५ ई० सन् (१५५५+४०) या १६५२ वि० स० (क्योंकि इलाही सन् सौर वर्ष था) युधि-

---

[1] तस्माददृष्टनरकान्नरकादजनिष्टनृपतिरिन्द्रसखः।
भागदत्तः ख्यातजयं विजय युधि यः समाव्ह्वयत् ॥५॥
तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रगतिरतोषयद् यः सदा संख्ये।
शतमखमखण्डलवत्मगतिरतोषयद् यः सदा संख्ये ॥६॥
वंश्येषु तस्य नृपतिसु वर्षसहस्रत्रयं पदमवाप्य।
यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्माऽभूत् ॥७॥

[2] प्राग्ज्योतिषाधिपः शूरो म्लेच्छानामधिपो बली।
यवनैः सहितो राजा भागदत्तो महारथः॥ महाभारत, शांतिपर्व, ५१।१४

[3] 'आईने-अकबरी', ३रा भाग।

[4] विंसेंट स्मिथ रचित 'अकबर दि ग्रेट', आक्सफ़ोर्ड (१९१९), पृ० ४४८-४४९

ष्ठिर संवत ४६९६ के बराबर है (३०४४+१६२ ) इस के अनुसार [illegible] का प्रारंभ जो कलि संवत् के समान है ३०४४ वि० पू० (४६९६—१६५२) है। इस में भी कुरु-पांडवों का अस्तित्व और इस में कुरु-पाण्डव [illegible] (युद्ध के पहले के) [illegible] है। इस प्रकार भी गणना करने से हम लोगों का युद्ध काल वही ३०८० वि० पू० आता है।

## नक्षत्रगणना[1]

ज्योतिःशास्त्र से ज़रा-सा भी संबंध रखने वाले [illegible] जानते हैं कि [illegible] रेखा पर २७ और अभिजित् को मिला कर २८ नक्षत्र हैं। [illegible] पर ३६० अंश होते हैं। $\frac{३६०}{२७}$=१३$\frac{1}{3}$ अंश प्रत्येक नक्षत्र का परिमाण हुआ। [illegible] एक अंश से दूसरे अंश तक जाने में लगभग ७२ [illegible] लग जाते हैं। [illegible] को एक नक्षत्र की त्रिज्या की दूरी तय करने में ९६० वर्ष (७२×१३$\frac{1}{3}$) लगते हैं। महाभारत युद्ध के समय वसंत संपात कृत्तिका नक्षत्र में तथा ऋग्वेद के समय मृगशिरा में होता था। अंतरंग प्रमाणों से इन बातों की पूर्ण पुष्टि होती है। [illegible] महोदय भी इस का अनुमोदन करते हैं। आजकल वसंत संपात पूर्वा भाद्रपद में होता है। अतः विपरीत क्रमानुसार गणना करने से कृत्तिका, भरणी, अश्विनी, रेवती, उत्तरा भाद्रपद, पूर्वा भाद्रपद अर्थात् ५$\frac{1}{4}$ नक्षत्रों का समय बीत चुका। अतः ५०४० वर्ष आज से पूर्व (९६०×५$\frac{1}{4}$) या (५०४०—१९९६) ३०४४ वि० पू० पांडवों का अस्तित्व था, अतः हम लोग निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि विक्रम के पूर्व ३१वीं सदी में या ३०८० वर्ष वि० पू० महाभारत की लड़ाई अवश्य हुई।

## निश्चित तिथि का निर्धारण

हम लोग एकदम ठीक तिथि का भी पता लगा सकते हैं कि कब युद्ध आरंभ हुआ। कौरवों के सेनापति भीष्म कहते हैं[2]—"हे युधिष्ठिर, बाणों की तीक्ष्णशय्या पर पड़

---

[1]इस गणना के आधार के लिए देखिए—'हिस्ट्री अव् संस्कृत लिटरेचर', श्री चिंतामणि विनायक वैद्य कृत, भा० १, पूना (१९३०)

[2]अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा।

हुए मेरे ५८ दिन सैकडो वर्ष के समान बीत गए। यह माघ का सुंदर महीना आ गया। यह शुक्लपक्ष का होना चाहिए जिस के तीन भाग बीत चुके।" भीष्म दशवे दिन युद्धक्षेत्र से हट गए अत शुरू से ६८ दिन (५८+१०) युद्धारंभ के दिन से बीत चुके थे जब भीष्म ने उपर्युक्त शब्द कहा। "त्रिभागशेष पक्षः" का अर्थ 'त्रयो भागाः शेषाः व्यतीता यस्य' जिस के तीन भाग बीत चुके होना चाहिए। होडाचक्र[1] के अनुसार पक्ष पाँच भागो मे—नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा तिथियो मे—विभाजित होता है। इस प्रकार माघ शुक्लपक्ष के ९ दिन (१५/५ × ३) बीत चुके थे। अतः पीछे से गणना करने से हम लोगो को ठीक ६८ दिन (९+१५+३०+१४) आ जाते है यदि मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपद् से जो मंगलवार को पड़ता है हम लोग गणना करे।

## उपसंहार

आधुनिक इतिहासकार कह दिया करते है कि इन शिलालेखो से तथा पुस्तको मे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि उस काल की परंपरा के अनुसार महाभारत युद्ध को हुए आज तक करीब पाँच हजार वर्ष बीत गए। किंतु आजकल के समालोचनात्मक अध्ययन मे उक्त परंपराएं प्रामाणिक नही मानी जा सकती। जैसा कहा जा चुका है आधुनिक इतिहास सिकंदर-चंद्रगुप्त मौर्य की समकालीनता पर जो सर विलियम जोन्स ने १७९३ ई० पू० करीब १५० वर्ष पहले स्थिर किया था, निर्धारित है, किंतु महाभारत युद्ध के काल पर अगणित सदियों से विवाद किया जा रहा है तथापि उस का समय वही है जो परंपरा से सिद्ध है, और परंपरा मे उस की बराबरी करने वाला कोई नही है। अत यह सिद्ध हुआ कि महाभारत युद्ध ३०८० वि० पू० (३१३७ ई० पू०) था आज से ५०७७ वर्ष पूर्व हुआ।

मैं महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज का अत्यंत ऋणी हूँ जिन की विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षता मे यह लेख लिखा गया है।

---

माघो यं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षो यं शुक्लो भवितुमर्हति।

[1] नन्दाभद्राजयारिक्ताः पूर्णाश्च तिथयः क्रमात्।—होडाचक्र।

# स्फुट प्रसंग

## राजा शिवप्रसाद का 'आत्मचरित'

इस पत्रिका के भाग ९, अंक ४, पृ० ४४२–६ पर राजा शिवप्रसाद की वंशावली पर कुछ प्रकाश डाला गया है। उस में रामचंद्र कृत 'कल्पभाष्य' या 'आगमकल्पसूत्र' ग्रंथ के आरंभ में राजा शिवप्रसाद-लिखित वंश-परिचय को लेकर सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा उक्त राजा साहब के विषय में लिखी टिप्पणी में कुछ भूलों का संशोधन किया गया है। परंतु राजा साहब की जीवनी के संबंध में प्रमुख साधन उन का लिखा 'आत्मचरित' ही है, जिसे उन्हों ने अपनी अंतिम अवस्था में उर्दू में लिखा था। यह पुस्तक सन् १८९४ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में छापी गई थी और इस के प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ पर आठ पंक्तियों में इस प्रकार लिखा है।

सवानिह उमरी

राजा शिवप्रसाद

सितारए-हिंद

फेलो यूनिवर्सिटी कलकत्ता व इलाहाबाद

सन् १८९४ ई०

लखनऊ

मतबअ नामी मुंशी नवलकिशोर सी० आई० ई० में छापी गई

पहली मर्तबः ३०० जिल्द छपी क़ीमत फ़ी जिल्द १ रु०

दूसरे पृष्ठ पर राजा शिवप्रसाद का फ़ोटो चिपकाया गया है, जिस के ऊपर फ़ारसी लिपि में तथा नीचे अंग्रेजी में उन का नाम मै पदवियों के दिया है। इस के अनंतर 'फ़िह्रिस्त मज़ामीन' है। ५३ मज़मून ८४ पृष्ठों में दिए गए हैं। प्रथम सात में पूर्वजों, अपने जन्म, शिक्षा आदि का १३ पृष्ठों में वर्णन है और उस के अनंतर इन्हों ने अपनी सेवाओं का विवरण दिया है, जो अत्यंत मनोरंजक है। भरतपुर राज्य, नादिरशाह की चढ़ाई, बिठूर मे बाजीराव पेशवा, सिखों की लड़ाई, जर्मनी का राजकुमार, लार्ड डलहौजी, अवध के

नवाबी का अंत, सन् १८५७ का बलवा, काबुल की चढाई आदि का विवरण इतिहास की दृष्टि से अत्यत उपादेय तथा आकर्षक है। परिशिष्ट मे इन्हो ने बहुत से पत्र, सनद आदि २८ पृष्ठो मे दिए हैं और अंत मे इलबर्ट बिल पर अपना व्याख्यान दिया है, जो अंग्रेजी में चालीस पृष्ठों मे छपा है।

इस 'आत्मचरित' के सिवा एक छोटी पुस्तिका इन्हो ने अलग छपवाई है, जिस मे अंग्रेजो द्वारा लिखे गए सनद संगृहीत है। इन मे इन के सेवा-कार्यों का प्रशसात्मक उल्लेख है। यह बत्तीस पृष्ठो मे है और काशी के मेडिकल हॉल प्रेस मे सन् १८९४ ई० मे प्रकाशित हुई है। इन दो पुस्तको से राजा शिवप्रसाद की जीवनी पूर्ण-रूपेण लिखी जा सकती है और अन्यत्र आए हुए भ्रम-पूर्ण लेखो का सशोधन किया जा सकता है।

—ब्रजरत्नदास

# हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६।)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुल्फ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास (दूसरा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२-२३) भारतीय इतिहास की रूपरेखा ( २ भाग )—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्य-कृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१-३२) हिंदी कवि और काव्य (२ भाग)—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य प्रथम भाग ४॥); द्वितीय भाग ३॥)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य १)

(३४) जीवनवृत्ति-विज्ञान—लेखक, प्रोफेसर महाजोत सहाय। मूल्य १)

(३५) न्याय—जॉन गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २।)

(३६) चाँदीकी डिबिया—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य १॥)

(३७) धोखाधड़ी—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद अनुवादक, श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०। मूल्य १॥)

(३८) हड़ताल—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २)

(३९) भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष—मूल-लेखक सर सी० वाई० चिंतामणि। अनुवादक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा। मूल्य १)

(४०) हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी, एम० ए०। मूल्य २॥)

(४१) विज्ञान-हस्तामलक—लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए० मूल्य ६)

(४२) यूरोप की सरकारें—लेखक, श्रीयुत चंद्रभाल जौहरी। मूल्य ३॥)

(४३) हिंदी भाषा और लिपि ( तीसरा संस्करण )—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ।)

(४४) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

# नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की नवीन प्रकाशित पुस्तकें

## भारतीय मूर्तिकला

**( लेखक—श्री राय कृष्णदास )**

इस पुस्तक में मोहनजोदडो के समय से लेकर आज तक की भारतीय मूर्तिकला का वर्णन बडी सरल भाषा मे किया गया है। साथ ही इस कला के सौंदर्य की विशेषताए एव तात्त्विक व्याख्या भी दी गई है। अपने ढग की हिंदी ही में नही समस्त भारतीय भाषाओं में पहली पुस्तक है। पृष्ठसख्या २३६+१३, ३६ चित्र तथा मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य ३), विशिष्ट सस्करण ३।)

## भारत की चित्रकला

**( लेखक—श्री राय कृष्णदास )**

यह तथा भारतीय मूर्तिकला सबद्ध प्रकाशन है ; इसमें अपनी महान् चित्रकला का अथ से इति तक का इतिहास, सौदर्य-निरीक्षण, एवं उसके मर्म की बाते तो है ही, साथ ही लेखक ने लगभग ३० बरस के अपने गभीर अध्ययन का साराश भी दिया है जिससे भारतीय चित्रकला के इतिहास-विषयक कई महत्त्वपूर्ण नई बातो का उद्घाटन हुआ है और नया प्रकाश पडा है। यह भी अपने ढंग की हिंदी ही मे नही, समस्त भारतीय भाषाओं मे पहली पुस्तक है। पृष्ठसंख्या १८०+१६, चित्रसख्या २७ (सादे) +१ (रगीन) मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १=), विशिष्ट सस्करण १।=)

## मआसिरुलउमरा ( दूसरा भाग )

**( अनुवादक—बाबू ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल०बी० )**

मूल ग्रथ फारसी भाषा मे है और उसमे मुगल-शासन-कालीन सरदारो और अमीरो की जीवनियाँ दी गई है। मुगल-कालीन इतिहास के अध्ययन के लिये ग्रंथ बहुत उपयोगी है। इसका पहला भाग पहले ही प्रकाशित हो चुका है। इस भाग में लगभग ६०० से ऊपर पृष्ठ है और कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो के चित्र भी दिए गए है। पृष्ठसख्या ६०० से ऊपर। मूल्य ४)

## बाल-मनोविज्ञान

**( लेखक—प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी० )**

आजकल बालको की शिक्षा और सुधार के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान कितना आवश्यक है यह बतलाने की आवश्यकता नही। ठोक-पीटकर बालको को पढाने और दुरुस्त करने का समय अब बहुत पीछे चला गया। अब सभी बुद्धिमान् लोग समझने लगे है कि बालको को ठोकने-पीटने के बदले हमे उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो का पता लगाना चाहिए। उन्ही प्रवृत्तियो का अनुसरण करके हम उन्हे बड़े से बडा आदमी

बना सकते हैं। बाल-मनोविज्ञान में बड़ी सरल और सुबोध भाषा में लेखक ने बालकों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उन्हें समझाया है। पृष्ठसंख्या २६०, मूल्य १)

## बिहार में हिंदुस्तानी

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार आजकल बड़े जोरों से किया जा रहा है। हिंदुस्तानी के समर्थक उसे सबके समझने योग्य सरल भाषा बतलाते हैं, पर वस्तुतः उस भाषा की आड़ में कहीं तो शुद्ध उर्दू का प्रचार करते हैं और कहीं हिंदी का अत्यंत विकृत रूप उपस्थित करते हैं। बिहार प्रांत में हिंदुस्तानी का प्रचार किस ढंग से करने का उद्योग किया गया है इसी की छान-बीन इस पुस्तक में की गई है। पृष्ठसंख्या ६१, मूल्य ।)

## कचहरी की भाषा और लिपि

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

कचहरियों में इतिहास के भिन्न-भिन्न कालों में किस प्रकार की लिपि और भाषा का प्रचार रहा है तथा इस समय वस्तुतः कचहरी की भाषा और लिपि कौन सी होनी चाहिए, इसी का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक अवश्य पठनीय है। पृष्ठसंख्या १७६, मूल्य ।।।)

## भाषा का प्रश्न

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम०ए० )

आजकल हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के झगड़े के कारण भाषा की समस्या बहुत ही जटिल हो गई है। किंतु लेखक ने कई लेख लिखकर इस पुस्तक में इस प्रश्न को बहुत अच्छी तरह सुलझाया है। पृष्ठसंख्या १८८, मूल्य ।।।)

## संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर

( संपादक—बा० रामचंद्र वर्मा )

हिंदी का यही एक छोटा सस्ता, और सबसे अच्छा शब्दकोश है। यह बृहत् हिंदी शब्दसागर का ही संक्षिप्त रूप है। नया संस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसंख्या १२००, मूल्य ४)

## कबीर-वचनावली

( संपादक—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" )

इस पुस्तक का खूब प्रचार हो चुका है। कबीर की रचनाओं का बहुत सुंदर संग्रह है और भूमिका बहुत विद्वत्ता-पूर्ण है। आठवाँ संस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसंख्या ३०० से ऊपर, मूल्य १।)

**मिलने का पता—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।**

# हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अप्रैल, १९४०

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

## हिंदुस्तानी, अप्रैल, १९४०

संपादक—रामचंद्र टंडन



### लेख-सूची




वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग १० } अप्रैल, १९४० { अंक २


## स्वामी दयानंद सरस्वती के कुछ नए पत्र

[ लेखक—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) ]

सन् १९३४-३५ मे जब मै पेरिस मे था तब सयोग से मुझे मालूम हुआ कि स्वामी दयानद सरस्वती के कुछ पत्र एक सम्मानित गुजराती सज्जन के यहा सुरक्षित है। यहा यह बतला देना उचित है कि बहुत से भारतीय व्यवसायी पेरिस तथा लदन मे स्थायी रूप से बस गए है। भारत लौटने से पहले मैं इन सज्जन से मिला और इन्हो ने कृपापूर्वक पत्रो की फ़ायल मुझे सौप दी।

इस फायल में कुल २८ पत्र निकले। इन मे २६ पत्र स्वामी जी के है तथा दो एक भिन्न व्यक्ति के है जो स्वामी जी के प्रेस मे नौकर थे। स्वामी जी के पत्रों मे ३ पत्र आद्योपात उन के हाथ के लिखे है। इन मे से दो के फोटो दिए जा रहे है। २२ पत्र उन्हो ने दूसरो से लिखवाए है तथा उन पर अपने हस्ताक्षर किए है और १ पत्र बिना हस्ताक्षर का है। भाषा की दृष्टि से १७ पत्र हिंदी मे है, ६ अग्रेजी मे और ३ सस्कृत मे है।

सोलह पत्र श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को लिखे गए है, ५ पत्र श्री गोपालराव हरिदेशमुख को, २ श्री हरिश्चद्र चिंतामणि को, १ हेनरी आलकट तथा मैडम ब्लॅवाट्सकी को, १ श्री मूलराज को तथा १ वल्लभदास को। अधिकाश पत्र छोटे है और प्राय. वेदभाष्य आदि की छपाई के सबध मे है। कुछ पत्रो मे सिद्धातो की चर्चा की गई है, किंतु ये पत्र प्राय: संस्कृत मे है।

यद्यपि स्वामी दयानद सरस्वती के पत्र कई जिल्दो म प्रकाशित हो चुके हैं किंतु
अभी तक अप्रकाशित हैं। अत इन का विशेष महत्व है। स्वामी जी के व्यक्तित्व,
और विचारावली पर ये नवीन प्रकाश डालते हैं। प्रस्तुत लेख के साथ स्वामी
हाथ के लिखे एक हिंदी के तथा एक संस्कृत के पत्र के फ़ोटो दिए जा रहे है, तथा
पत्रों को उद्धृत किया जा रहा है। अंतिम दोनों पत्र उन के हाथ के लिखे नही
दोनों पर देवनागरी में उन के हस्ताक्षर हैं। इन मे एक पत्र हिंदी मे लिखवाया
और १ अंग्रेजी में है।

पहला पत्र जो आद्योपात स्वामी जी का हस्तलिखित है, हिंदी मे है और इस
है :—

सं० १९३५ फा० शु० ११ मंगल ता० ४ मार्च सन् १८७९

पंडित श्यामजीकृष्ण वर्म्मा आनन्दित रहो तुम्हारा ता० २६ फरवरी का लिखा पत्र आया सब हाल विदित हुआ मैं बहुत शोक इस बात में करता हूं कि हमारे प्रिय बन्धुवर्ग पाताल देश निवासी लोगों को मुंबई में आ के मिल नही सकता क्योंकि हरद्वार में चैत्र की समाप्ति पर्य्यन्त ठहरने का नोटिस फाल्गुन शुदी ६ गुरुवार से दे चुका हूँ॥ और यहां इस बात की प्रसिद्धी भी कर चुका हूं अब इस बात को अन्यथा नहीं कर सकता॥ जब वे इस देश में लाहौर आदि के समाजों को देखने को आवेंगे तब यहां वा कहीं अत्यन्त प्रेम के साथ उन से मिलूंगा और बातचितें भी यथोचित होंगी उन से मेरा आशीर्वाद कह के कुशल क्षेम प्रेम से पूँछना॥ और जो तुम ने समाज के विषय में लिखा कि न आओगे तो यहां का आर्य्यसमाज टूट जायगा क्या तुम ने समाज हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के ही भरोसे किया था और जो मेरे आने जाने पर ही समाज की स्थिति है तो मैं अकेला कहां २ आ जा सकता हूं जो समाज में अयोग्य प्रधान हो उस को छुड़ा कर दूसरा नियत कर के समाज का काम ठीक २ चलाना चाहिए। कल यहां से चल के मुन्शी समर्थदान वेदभाष्य के काम पर नियत हो के मुंबई को आते हैं तुम से मिलेंगे छापे वालों और कागज वालों से ठीक २ नियम करा देना और बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि से भी सब पुस्तक

सं० १९३५ फा० सु० ११ मंगल ता० ४ मार्च सन् १८७९

पंडित श्यामजी कृष्णवर्मा आनन्दित रहो [illegible]

ता० २६ फरवरी का लिखा पत्र आया सब हाल विदित हुआ मैं बहुत शोक इस बात में करता हूं कि हमारे प्रियबन्धुवर्ग पाश्चात्य देशनिवासी लोगों को मुंबई में आके मिल नहीं सकता क्योंकि हरद्वार में मैंने कुम्भ समाप्ति पर्यन्त ठहरने का नोटिस फाल्गुन सुदी ६ गुरुवार से दे चुका हूं॥ और यहां इस बात की प्रसिद्धी भी कर चुका हूं अब इस बात को अन्यथा नहीं कर सकता॥ जब वे इस देश में लाहौर आदि के समाजों को देखने को आवेंगे तब मैं यहां वा कहीं अत्यन्त प्रेम के साथ उनसे मिलूंगा और बातचीत भी यथोचित होगी उनसे मेरा आशीर्वाद कहके कुशल क्षेम प्रेम से पूछना॥ और जो तुमने समाज के विषय में लिखा कि न आओगे तो यहां का आर्यसमाज टूट जायगा क्या तुमने समाज हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के ही भरोसे किया था और जो मेरे आने जाने पर ही समाज की स्थिति है तो मैं अकेला कहां २ जा आ सकता हूं जो समाज में अयोग्य प्रधान हो उसको छुड़ाकर दूसरा नियत करके समाज का काम ठीक २ चलाना चाहिये॥ कल यहां से ये मुन्शी समर्थदान वेदभाष्य के काम पर नियत होके मुंबई को आते हैं तुम से मिलेंगे छापेवालों और कागज वालों से ठीक २ नियम करा देना और बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि से भी सब पुस्तक पत्रे दिला देना सब हिसाब किताब करा के शीघ्र खुलासा करा देना और इनको मकान आदि का क्लेश कभी न होने पावे

दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानंद का हिंदी पत्र

सं० १९३५ फाल्गुन शुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यः श्रीयुतश्यामजिकृष्णवर्मभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् शमिहास्ति तत्रत्यं भवदीयं चानित्यमाशासे ॥

अग्रे इदं बोध्यमेकं मनस्विनं समर्थं धनवन्तं पुरुषं वेदभाष्यप्रबन्धार्थं भवत्सनीडं मुम्बापुर्यां वर्त्तमानेऽहं निप्रेषयामि यथा समयमनयं तत्र प्राप्स्यत्यस्मै कथं विलंबो न स्यात्तथानुष्ठेयं वेदभाष्यसम्बन्धिकार्य्याणि संसेधनीयानि नैवात्र विलंबः कार्य्य इति ॥ ये तत्र सभासदः सज्जनाः सन्ति तैः सह सम्मेलनं कृत्वा ज्ञापयेतत्र पातालदेशनिवासिनो वर्त्तन्ते तेभ्योऽस्मन्नादरेणाशिषः संश्राव्य कुशलक्षेमता प्रष्टव्या ॥ यथा मयि प्रीतिर्वर्त्तते तथैवैतस्मिन् प्रेमभावो विधेयो विद्याध्यापनसहायः स्थापनम् तत्प्रबन्धश्च यथावत्समर्पणस्य कार्य्य इति च ॥

(दयानन्दसरस्वती)

स्वामी दयानंद का संस्कृत पत्र

पत्रे दिला देना सब हिसाब किताब करा के शीघ्र खुलासा करा देना और इन को मकान आदि का क्लेश कुछ भी कभी न होने पावे।

दयानन्द सरस्वती

दूसरा पत्र सस्कृत मे है, और यह भी आद्यंत स्वामी जी का हस्तलिखित है —

सं० १९३५ फाल्गुन शुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायुक्तेभ्यः श्रीयुत श्यामजिकृष्णवर्मभ्यो दयानन्द सरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमांशमिहास्ति तत्रात्यं भवदादीनां च नित्यमाशासे ॥ अग्रे इदं बोध्यमेकं मनस्विनं समर्थदाननामानं पुरुषं वेदभाष्यप्रबन्धार्थं भवत्सनीडं मुम्बापुर्यां वर्त्तमानेऽहनि प्रेषयामि यथासमयमय तत्र प्राप्स्यत्यस्मै कथञ्चित्क्लेशो न स्यात्तथानुष्ठेयं वेदभाष्यसम्बन्धिकार्य्याणि संसेधनीयानि नैवात्र विलंबः कार्य्य इति ॥ ये तत्र सभासदः सज्जना. सन्ति तैः सह संमेलनम्। ये तत्र पातालदेशनिवासिनो वर्त्तन्ते तेभ्योऽत्यन्तादरेणाशिषः सश्राव्य कुशलक्षेमता प्रष्टव्या ॥ यथा मयि प्रीति वर्त्तते तथैवैतस्मिन्प्रेमभावो विधेयो विद्याऽध्ययन सहायः स्थानभृत्य प्रबन्धश्च यथावत्समर्थदानस्य कार्य्य इति च ॥

दयानन्द सरस्वती

पीठ पर

पंडित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा योग्य बंबई

स्वामी जी के उपर्युक्त संस्कृत पत्र का हिंदी रूपातर निम्न है :—

स० १९३५ फाल्गुन सुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमत् श्री उपमायुक्त श्रीयुत श्यामजी कृष्ण वर्मा को स्वामी दयानद सरस्वती के आशीर्वाद। यहा कुशल है, वहां आप लोगों के कुशल की आशा करता हू। आगे यह जानना कि समर्थदान नाम के एक मनस्वी पुरुष को वेदभाष्य के प्रबंध के लिए आज आप के पास बबई शहर को भेज रहा हूं। जिस समय ये वहा पहुँचे इन्हे कोई क्लेश न हो इस का यत्न आप को करना चाहिए।

वेदभाष्य संबंधी कार्यों को साधन करना है और इस में अब विलंब न होना चाहिए इति ।। जो सभासद सज्जन वहां हैं उन के साथ मिलना चाहिए । वहां जो पाताल देश वासी सज्जन हैं उन्हें भी बडे आदर से आशीर्वाद सुना कर उन का कुशल क्षेम पूछना । जैसा प्रेम मुझ मे है वैसा ही प्रेमभाव इन से भी रखना और विद्याध्ययन मे इन की सहायता तथा समर्थदान जी के ठहरने का स्थान और नौकर का प्रबंध कर देना । इति ।

दयानन्द सरस्वती

यह तीसरा पत्र किसी दूसरे के हाथ का लिखा हुआ है । इस के अंत में हस्ताक्षर मात्र स्वामी जी के हैं :—

**पहला पृष्ठ**

पंडित श्यामजी कृष्ण वर्म्मा आनंद रहो

विदित हो कि तुम्हारी चिट्ठी १८ अक्टू० की लिखी पहुंची सब हाल मालूम हुआ, हम बहुत प्रसन्नतापूर्वक लिखते हैं कि जब तक तुम मुंबई मे रहो तभी तक वेदभाष्य का काम उठा लो और खूब होशियारी से करो, और ३०) जो नोकर चाकरो के लिये हैं उन मे तुम को अख़्त्यार है चाहे जैसे खर्च करो, और जो ३५) तक भी कभी खर्च हो जावेगा हम को स्वीकार है, और यह सख्या भी जब तक है कि काम कुछ कम चलता है, जब दो हजार ग्राहक हो जावेंगे फिर हम कुछ गिनती न रक्खेगे चाहे जितना खर्च हो ।। और जब तुम इस काम को ठीक ठीक चलाओगे तो प्रति दिन उन्नति हि होगी ।। और आज ही हम ने बाबू हरिश्चद्र चिंतामणि जी को भी लिखा है ।। वे आप को बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक काम सौंप देंगे, तुम यह शंका मत करो कि शायद वे बुरा मानें, वे कभी बुरा न मानेंगे और न वे ऐसे आदमी हैं ।। और उन की और तुम्हारी तो घर के सी बात है, वे तुम पर सदैव प्रसन्न है ।।

**दूसरा पृष्ठ**

यह पहिला पत्र व्यवहार का हमारा तुम्हारे पास पहुंचता है इस को रख लेना और आगे सब रखते जाना, हम भी तुम्हारे पत्र रख लिया करेंगे और तुम्हारे ही पास पत्र भेजा करेंगे ।। और पुस्तकादि सब संभाल कर रखना, और

जैसा कागज अबकी बार लगा है वैसा ही सदैव लगाना इस से कुछ भी न्यून न हो और अगले मास मे ५००) भी तुम्हारे पास भेज देगे बाबू हरिश्चद्र चिं० जी को यह हमारा पत्र दिखा देना और गोपालराव हरिदेशमुख जी को हमारा आशीर्वाद कह देना ॥ अगले मास मे तुम्हारा नाम भी टाइटिल पेज पर छाप दिया जावेगा जिस से ग्राहक लोग भी चिट्ठी पत्री और रुपया पैसा तुम्हारे पास भेजा करेगे ॥ हम बहुत आनंद मे है ॥

२२ अक्टू० ७८

हस्ताक्षर
दयानन्द सरस्वती
दिल्ली

चौथा पत्र जो अग्रेजी में है, और सभवत: जिस का मसविदा किसी बगाली सज्जन का बनाया है, इस प्रकार है। इस के अत मे भी स्वामी दयानद के हिंदी मे हस्ताक्षर हैं:—

*Lohore, 6th June, 1877*

Dear Sir,

I am exceedingly glad to read your's of the 30th ult. which refreshed my soul very much. Your boldness in virtuous path is beyond measure & your exertions in Indian's welfare are unspeakable. By the laws of nature you are deserving good reward from Heaven & your prosperity will grow brighter & brighter rapidly.

I am willing to follow your advice & ready to translate white Yajurveda as you wish, but in this I will stand in need of two Pandits more & the printing charges will also get increased for the double issue of the work every month. Therefore you can yourself think over the matter properly & inform me then of your final opinion on the matter, so that I may employ two writers more and begin to translate the work with certainty. I have every reason to believe that the darkness of ignorant India,—which has reduced the people to such low condition in which

they seem & still ca (e) less will one day be banished away if the sun of civilisation shone & the true knowledge of the *Vedas* diffused over the country Noble & high-spirited persons like you and your companions only can be expected to undertake this mighty work for the public good & though such souls are few in number their rarity is better than abundance.

I wish that Shamji Krishna Varma should come to me for some time before starting for Oxford I wish to give him some of the most important hints on *Vedas* which are necessarily required for him He must not care for his expenses or anything else & I'll furnish him with all necessaries indeed.

In my opinion his going to England is very useful for him but let me know what is your opinion about the matter. I will also write directly to him. I have got no copy of *Mahanirwan-tuntra* with me but it is procurable from Calcutta. Hoping you are well Please let me know Shamji K. Verma's answer about my enquiry & accept my *asheerbad.*

Yours well-wisher

Pundit S Daynund Sorusswatti

Sd. दयानन्द सरस्वती

Gopal Rao Hurry Desh Mookh, Nasik

अंग्रेजी पत्र का रूपांतर :

लाहौर, ६ जून १८७७

प्रिय महोदय,

आप के पिछली ३० तारीख के पत्र को पढ कर बडी प्रसन्नता हुई, और उस ने मेरी आत्मा को प्रसन्न किया। सन्मार्ग में आप का साहस अत्यंत सराहनीय है और आप के हिंदुस्तानियों के क्षेम के लिए उद्योग अकथनीय है। प्रकृति के नियमों के अनुसार आप को ईश्वर से अच्छा फल मिलना चाहिए और आप की समृद्धि शीघ्रता से उज्वलोज्वल होगी।

मैं आप की सलाह मानने को तैयार हूं और जैसा आप चाहते है शुक्ल

यजुर्वेद के अनुवाद का काम उठा सकता हू। लेकिन इस काम मे मुझे दो और पडितो की सहायता अपेक्षित होगी और छपाई का खर्च भी बढ़ जायगा यदि प्रति मास दोहरा नबर निकाला गया। इस लिए इस विषय पर आप स्वय विचार कर सकते है और अपनी अन्तिम सम्मति मुझे लिख सकते है, जिस से मै दो लेखकों को और लगा कर अनुवाद का काम निश्चित ढग से आरंभ कर दूं। इस का मुझे पूरा विश्वास है कि अज्ञान का अंधकार जिस ने हिंदुस्तान को इस बुरी दशा मे डाल रक्खा है, और जिस के विषय मे वह निश्चेष्ट है, एक दिन दूर हो जायगा यदि सभ्यता का सूर्य चमका और वेदो का सच्चा ज्ञान देश मे फैला। आप जैसे उच्चाकाक्षी और उदारचेता लोगो और आप के साथियो से ही इस बात की आशा हो सकती है कि जनता के हित के इस महान कार्य को उठावे, और यद्यपि ऐसी आत्माए गिनती मे थोडी ही है, ऐसे थोड़े ही से लोग बहुत बडे समुदाय मे अच्छे है।

मै चाहता हू कि शामजी कृष्ण वर्मा आक्सफोर्ड के लिए प्रस्थान करने से कुछ पूर्व यहा आ जायँ। मैं उन्हे वेदों के सबध मे कुछ अत्यंत आवश्यकीय सकेत देना चाहता हू जिन को उन्हे जरूरत पडेगी। उन्हे अपने खर्चे के या किसी अन्य विषय मे चिन्तित न होना चाहिए, और मै उन की सब आवश्यकताओ का प्रबंध कर दूँगा।

मेरी सम्मति मे उन का इग्लिस्तान जाना उन के लिए बड़ा लाभप्रद होगा, परतु आप भी अपनी सम्मति इस विषय में मुझे लिखे। मै उन के पास सीधे भी पत्र भेजूगा। मेरे पास 'महानिर्वाणतन्त्र' की कोई प्रति नही है लेकिन यह पुस्तक कलकत्ते से प्राप्त हो सकती है। आशा करता हू कि आप सकुशल होंगे। मेरी जिज्ञासा के विषय मे शामजी के० वर्मा के उत्तर से मुझे सूचित कीजिएगा, और मेरा आशीर्वाद ग्रहण कीजिएगा।

आप का शुभाकांक्षी

(हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती

पीठ पर

गोपालराव हरिदेशमुख, नासिक

२

# 'यामा'—उस का दार्शनिक आधार और काव्य

[ लेखक—श्रीयुत नंददुलारे वाजपेयी, एम्० ए० ]

'यामा' श्री महादेवी वर्मा जी का संपूर्ण काव्यसंग्रह है। इस के चार यामो मे उन की चारो स्फुट रचनापुस्तके संग्रहीत है। इन के अतिरिक्त महादेवी जी की कोई अन्य रचना शायद प्रकाश मे नही आई है। अवश्य यहा मेरा मतलब केवल उन की काव्य-रचनाओ से ही है। ये सब की सब मुक्तक पद्य और गीतरूप मे है, जिन की सख्या दो सौ से कुछ कम है। साथ ही 'यामा' में महादेवी जी की लिखी भूमिकाएं और उन के बनाए कितने ही चित्र है जिन से उन के काव्य पर आवश्यक प्रकाश पड़ता है।

अच्छा होता यदि हम विना कोई भूमिका बाँधे ही 'यामा' का अध्ययन (यहा अध्ययन से मेरा मतलब उस की विशेपताओं के पर्यवेक्षण से है) आरभ कर सकते, किंतु ऐसा करने मे दो मुख्य कठिनाइयां दीखती है। एक तो 'यामा' केवल एक सग्रहपुस्तक ही नही है, वह महादेवी जी का पूरा काव्यव्यक्तित्व ही है। इस व्यक्तित्व को हम नवीन काव्यधारा से एकदम अलग रख कर नही देख सकते। साम्य और वैपम्य के वे सूत्र हमे सक्षेप मे देखने होगे जिन के द्वारा महादेवी जी सामयिक काव्यजगत से बँधी हुई है। उन के लिए एक छोटी-सी, उपयुक्त, सेटिंग हमे तैयार करनी होगी।

दूसरी कठिनाई दूसरे ढंग की है। इन दिनों वादों का प्रवाह हमारी हिंदी मे जोरो से आया हुआ है। जान पडता है हमारी मानसिक सूर्यकिरणें खूब क्रियाशील हो रही है। यह शुभ लक्षण है क्योकि इस से साहित्यजगत की उर्वरता बढने की ही संभावना है। किंतु यदि यह वादो की बाढ, मजबूत बाँधों मे बाँध कर, उपयुक्त प्रणालियो से नही बहाई जाती तो हमारा अनिष्ट भी कर सकती है। विशेप कर कविता की फ़स्ल जो अधिक आँधी पानी सहन नही करती—कोमल प्रकृति की और कीमती होती है—वह तो इस बाढ़ मे चौपट ही हो सकती है। 'यामा' की और विशेष कर महादेवी जी के काव्य की विवेचना करते हुए कई बार वादों का ऐसा अनुचित प्रयोग किया गया है जिसे देख कर हमे पहले से ही

सतर्क हो जाना पडता है। काव्य मे और काव्य विवेचना में किसी भी वाद का क्या स्थान है, इसे बिना स्पष्ट किए हम 'छाया' के साथ आगे नही बढ़ सकेंगे।

हिंदी मे महादेवी जी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्यकाल मे हुआ था, किंतु आरंभ से ही उन की रचनाएं छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थी। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या होनी चाहिए। इस व्याख्या में आए 'सूक्ष्म' और 'व्यक्त' इन अर्थगर्भ शब्दों को हम अच्छी तरह समझ ले। यदि वह सौंदर्य सूक्ष्म नहीं है, साकार होकर स्वतंत्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अंतर्गत नही ले सकेंगे। छायावाद के इस सीमांत पर हम स्काट और बाइरन जैसे अंग्रेजी के कवियो को पाते है जिन्हों ने विमोहक और तल्लीनताकारी नारीसौंदर्य को लंबी कथाओं के सूत्र मे ताना है, और प्रकृति की अनिर्वचनीय सुषमा को पृष्ठभूमि बनाकर चित्रित किया है। वे प्रकृत छायावादी नही कहे जा सकते। और छायावाद के दूसरे सीमांत पर हम वर्ड्सवर्थ को देखते है जिस की प्रकृति के प्रति इतनी सार्वत्रिक प्रीति है कि वह व्यक्त सौंदर्य के प्रति निस्पृह, बेपरवाह, निगूढ़-सी मालूम देती है, सब कुछ तो सुंदर ही है ऐसी भावमयता मे मग्न-सी हो गई है। वह भी प्रकृत छाया-वादी नही है। प्रकृत छायावादी तो अंग्रेजी में प्राकृतिक सूक्ष्म सौंदर्य भावना का एकमात्र अधिष्ठाता शेली ही हुआ है जो एक ओर कुछ समीक्षकों द्वारा (जो सूक्ष्म के विरोधी है) हवाई और आस्मानी बताया गया है किंतु दूसरी ओर जिसे नास्तिक (अव्यक्त सत्ता का विरोधी) कहे जाने का श्रेय भी प्राप्त है। आशा है छायावाद की इस मध्यवर्तिनी भूमि पर पाठक की दृष्टि गई होगी।

मुझे आशा नही है कि छायावाद की मेरी यह व्याख्या निकट भविष्य मे सर्वमान्य हो सकेगी, किंतु इस की दार्शनिक और काव्यात्मक शैली इतना सुस्पष्ट व्यक्तित्व रखती है और यह अन्य निकटवर्ती वादो से इतना पृथक् अस्तित्व बनाए हुए है कि कोई कारण नही कि यह आखिरकार एक अलग वाद के रूप मे स्वीकार न कर लिया जाय। संप्रति हिंदी के अधिकांश समीक्षक छायावाद और रहस्यवाद के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नही कर रहे। नवीन काव्ययुग के निर्माता स्वर्गीय प्रसाद जी का इस विषय का विवरण विशेष ध्यान देने योग्य है। वर्तमान रहस्यवाद के संबंध मे वे लिखते हैं—"विश्वसुंदरी प्रकृति

मे चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौंदर्यलहरी के 'शरीर त्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिंदी मे इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य मे रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इस मे अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौंदर्य के द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुंदर प्रयत्न है।"

अब, विश्वसुंदरी प्रकृति मे चेतनता की भावना सार्वत्रिक भी हो सकती है और एक-एक सुंदर वस्तुगत भी हो सकती है। शंभु अथवा आत्मा का शरीर सारा सृष्टिप्रसार ही है, इस दृष्टि से व्यक्त वस्तु मात्र मे सौंदर्य की एक ही धारा प्रवाहित है। प्रकृति मे कुछ भी असुंदर नही, यहां व्यष्टि-भेद नही है। पुन: प्राकृतिक सौंदर्य के द्वारा अहं (आत्मा) का इदम् (प्रकृति) से समन्वय करने का प्रयत्न व्यष्टि सौंदर्य को स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रसाद जी ने व्यष्टि सौंदर्य-दृष्टि (छायावाद) और समष्टि सौंदर्य-दृष्टि (रहस्यवाद) मे कोई स्पष्ट अंतर नही किया। किंतु मै इस अंतर का विशेष रूप से आग्रह करता हूं क्योंकि इस ने दो विशेष पृथक्-पृथक् काव्यशैलियो की सृष्टि की है। व्यष्टि सौंदर्यबोध एक सार्वजनीन अनुभूति है। यह सहज ही हृदयस्पर्शी है, यह सक्रिय और स्वावलंबिनी काव्यचेतना की जन्मदातृ है। इसे मै प्राकृतिक अध्यात्म कह सकता हूं। समष्टि सौंदर्यबोध उच्चतर अनुभूति है। फिर भी प्रत्येक क्षण रूढ़िबद्ध होने की संभावना रखती है। इस मे इंद्रियानुभूति की सहज प्रगति या विकास के लिए स्थान नही है। यह कदम-कदम पर धर्म के कटघरे में बंद होने की अभिरुचि रखती है।

काव्य मे यह रहस्यवाद बडे-बड़े दुर्दिन देख चुका है। अपने अतिप्राकृत स्वरूप के कारण पहले तो इस की अभिव्यक्ति ही अतिशय दुर्गम और दुरूह है, किंतु कुछ सच्चे रहस्यवादियो ने कुछ अनोखे रास्ते निकाले भी तो उन पर चलने वाले बहुत से झूठे रहस्यवादी नक़लनवीस निकल आए। उन्हो ने काव्य की पूरी-पूरी अधोगति कर डाली। सारी प्रकृति को समाहित करने वाली निर्गुण प्रेम की विशुद्ध व्यंजना विषयवासना का नंगा नाच बन रह गई। उपनिषदो का ऊर्जस्वित आत्मवाद संपूर्ण कर्तव्यों से हाथ समेटने का बहाना सिद्ध हुआ। योग और तंत्र शास्त्रो की प्रकृति को आत्मा मे लय करने की सारी प्रक्रिया जो पूर्ण मनुष्यत्व का साधन थी अनहोनी सिद्धियों और तामसिक उपचारों का दूसरा नाम बन गई। शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक सबलता का प्रचारक रहस्यवाद

ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा' गा कर भीख मांगने वालों का ब्रह्मास्त्र बन गया। एक ओर तो यह नकली रहस्यवाद की प्रगति हुई और दूसरी ओर रूढ़िबद्ध हो कर रहस्यकाव्य विनय के पदों, भक्तिगीतों, धार्मिक आख्यानों आदि में परिणत हो गया। अवश्य ही ईरान और फारस के कुछ सूफी कवियों और भारत के कुछ वैष्णवों ने रहस्यकाव्य की वास्तविक मर्यादा स्थिर रक्खी किंतु उन की संख्या उंगलियों पर गिने जाने के योग्य है। यह इतनी भी है यह कम गौरव की बात नहीं क्योंकि हम कह चुके हैं रहस्यानुभूति एक अति विरल वस्तु है और उस की काव्य-प्रक्रिया अतिशय दुरूह और दुःसाध्य है।

रहस्यकाव्य की मुख्य परंपराओं में हम नीचे लिखे भेदों की परिगणना कर सकते हैं। यदि हम प्रकृति की ओर से आत्मसत्ता की ओर आगे बढ़े तो इस गणना का क्रम इस प्रकार होगा—विश्वसुंदरी प्रकृति में चेतनता का आरोप, यह पहली सीढ़ी है। इसी के अंतर्गत सुख और दुःख का सामंजस्य जिसे प्रसाद जी ने समरसता कहा है, आ जाता है। यही प्रसाद जी की 'अपरोक्ष अनुभूति' भी है। महादेवी जी ने इसे छायावाद की सीमा में मान कर एक दूसरे ढंग से कहा है—'छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।' वास्तव में यह रहस्यवाद का पहला और व्यापक उपक्रम है जिस में भावना-बल से 'एकोऽहं बहुस्याम' के 'बहुस्याम' को 'एकोऽहं' की ओर प्रतिवर्तित करते हैं। सांसारिक सुख दुःख, राग-विराग आदि जितने भी द्वंद्व हैं सब को एक ही चेतन से संबद्ध करने की यह प्रणाली रहस्यवाद के प्रथम सोपान पर मिलती है। इस सोपान पर हम महादेवी जी को नहीं पाते। यद्यपि अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के विकास के सिल-सिले में उन्हों ने लिखा है कि 'पहले बाहर खिलने वाले फूल को देख कर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे हृदय में ही खिला हो, परंतु उस के अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी, फिर यह सुख-दुःख मिश्रित अनुभूति ही चिंतन का विषय बनने लगी और अंत में अब मेरे मन ने न जाने कैसे उस भीतर-बाहर में एक सामंजस्य सा ढूँढ लिया है, जिस ने सुख-दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है, किंतु महादेवी जी के काव्य में प्राकृतिक सुख-दुःख का अथवा उस के सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं

मिलता। प्रकृति के किसी भी दृश्य या मानव मनोभाव का आकलन उन की रचनाओं में नही के बराबर है। दृश्य प्रकृति मे हिमालय पर ही उन की एक रचना 'यामा' मे देखने को मिली किंतु वहां भी अंतरमुख भावना ही उभर पाई है। प्रकृति के रूपो, दृश्यो और भावो को महादेवी जी ने चेतना का प्रेरक न रख कर उन सब को एक-एक चेतन व्यक्तित्व सा दे दिया है। उन की पहली ही रचना मे 'निशा की धो देता राकेश, चाँदनी से जब अलके खोल, कली से कहता था मधुमास, बता दो मधुमदिरा का मोल', यद्यपि व्यक्त सौंदर्य की भी झलक लिए हुए है किंतु वहां वह गौण है और महादेवी जी की रचनाओ मे उत्तरोत्तर गौण होता गया है। आगे चल कर सारी प्रकृति और उस के समस्त उपकरण एक निखिल वेदना की अनेक-रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड लगाते है, जिसे हम इसी निबंध मे देखेंगे। प्रकृति की परिपूर्ण छवि की आत्मरूप प्रतिष्ठा हमे वर्ड्सवर्थ मे ही मिलती है। कुछ लोग हिंदी मे गुरुभक्तसिंह को वर्ड्सवर्थ का स्थानापन्न मानते है किंतु प्रकृति की आध्यात्मिकता की अनुभूति गुरुभक्तसिंह मे हमें विशेष नहीं मिलती। एक-एक डाली, एक-एक लता, एक-एक पत्ती अथवा उद्भिज्ज को चेतन क्रियाशील उल्लेख कर देने से ही उन की आध्यात्मिकता प्रकाश में नही आती। यह चेतन व्यक्तित्व देने (या 'पर्सानिफाई' करने) की प्रकृति ही ह्रासोन्मुख होकर 'चिडियो का विवाह' नामक ग्रामीण गीत मे परिणत हो गई है जिस मे सब चिडियो को विवाह-संबधी एक-एक काम सिपुर्द किया गया है। समरसता (सुख-दुःख का समीकरण) और अपरोक्ष आध्यात्मिक अनुभूति का हिंदी मे सब से सुंदर उदाहरण प्रसाद जी का 'आँसू' काव्य है।

रहस्यवाद के इस सोपान से ऊपर उठने पर हम प्राकृत या अपरोक्ष अनुभूति को छोड़कर परोक्ष अनुभूति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। महादेवी जी के काव्य की यही भूमि है। परोक्ष अनुभूति के भी कितने ही भेदोपभेद हैं जिन्हें दार्शनिक दृष्टि में तीन मुख्य भागों मे बाँटा जा सकता है। सगुण साकार, सगुण निराकार और निर्गुण निराकार। एक दिव्य व्यक्तित्व पर, वह प्रेममय हो, करुणामय हो अथवा शक्तिमय या आनंदमय, आस्था रखने वाले सगुण साकार के अनुयायी होते है। महादेवी जी की अधिकाश रचना का यही दार्शनिक आधार दीखता है। वे लिखती भी हैं—'मानवीय संबधो मे जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नही घुल जाता तब तक वे

सरस नही हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नही होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उस के निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया।' मधुरतम व्यक्तित्व की यह नियोजना महादेवी जी के काव्य मे मौजूद है किंतु उस के निकट आत्मनिवेदन करने वाले बहुत से भक्त कवि हो गए है जिन का धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त आदर है किंतु जिन्हें रहस्यकाव्य का स्रष्टा नही कहा जा सकता। स्पष्ट है कि महादेवी जी ने अपने इस वक्तव्य में आवश्यक सतर्कता से काम नही लिया। यही नही, उन्हो ने रूढिबद्ध धार्मिक काव्य और वास्तविक रहस्य काव्य का स्पष्ट अंतर सदैव अपने सामने नही रक्खा है जिस से उन की रचनाओ मे स्थान-स्थान पर प्रकृत कविता की जगह रूढ़ि के चिह्न मिलते है।

सगुण साकार दार्शनिकता का सब से बडा खतरा यही है कि वह निःसीम सौंदर्य-सत्ता का रहस्य खो कर सीमारेखाओ मे आ जाता और वास्तविक परोक्ष अनुभूति संपन्न काव्य का विषय न रह कर, धर्म और उपासना का आधार बन जाता है। सगुण दार्शनिको और कवियों ने इस कठिनाई को खूब अच्छी तरह समझा था। इसी लिए उन्हो ने बचत के कई उपाय निकाले थे। प्रथम, उन्हों ने उस मधुरतम व्यक्तित्व को अलौकिक सत्ता संपन्न अंकित करने की चेष्टा की। इस के लिए दार्शनिकों को दिव्य सत्ता संबंधी एक नई दार्शनिक प्रक्रिया ही चलानी पड़ी जिस मे उस दिव्य व्यक्तित्व के सभी उपकरणों, उस के नाम, रूप, लीला और धाम को, तथा उस से संपर्कित वस्तुव्यापार को बार-बार अप्राकृत घोषित करना पडा। किंतु काव्य अथवा कलाओ का काम केवल घोषणा से नही चलता। उन्हें ऐसी प्रतीक योजना का सहारा लेना पड़ा जिस से वस्तुतः अलौकिक का आभास मिल सके। कवियों को उस मधुरतम चरित्र के निर्माण मे दिव्य सौंदर्यसृष्टि की अशेष कला समाप्त कर देने पर भी सीमा के अंदर संतोष नही हुआ। उन्हे पद-पद पर उस व्यक्तित्व की महिमा का अलग से निर्देश करते रहना पडा, जिस पद्धति को हम 'श्रीमद्भागवत' और 'रामचरितमानस' मे भी देखते है। फिर भी ससीमता और असीमता, साकारता और रहस्य मे जो मौलिक अंतर है उस की पूर्ति नही हुई। फलतः सीता-राम और राधा-कृष्ण की पूर्ण परोक्ष अनुभूति काव्य के अंदर नही

हो सकी। तब रामायत कवियों ने रहस्य का पल्ला छोड कर चरित्र की व्यक्त महत्ता के आग्रह द्वारा महाकाव्य की सृष्टि कर डाली और कृष्णायत कवियों ने प्रेम और सौदर्य की अशेष तरगिणी बहा कर राधाकृष्ण की जो चरितावली निर्माण की वह रोमाचक भावो से भर गई। किंतु रहस्यवाद के निकट होते हुए भी वह रहस्यकाव्य नही कहा जा सकता। अवश्य इस चरित्र के दो प्रधान प्रसगो—रास और भ्रमरगीत मे हम रहस्य-काव्य के सारे लक्षण पाते हैं। रहस्य के क्षेत्र मे वैष्णव कवियों की वास्तविक सफलता इन्ही दो प्रसगों को लेकर हैं।

जब उस मधुरतम व्यक्तित्व के प्रति आत्मनिवेदन का क्रम आरभ हुआ तब तो काव्य स्पष्टत. धार्मिक घेरे मे आ गया। यहा मेरा मतलब उन विनयगीतो से है जिन का कृष्णकाव्य मे भी प्राचुर्य है और जिन से तुलसीदास जी की 'विनयपत्रिका' भरी हुई है। इस प्रकार के काव्य मे प्रकृत रहस्यात्मक अनुभूतियो की टोह लगाना व्यर्थ श्रम है मूर्त प्रतीको मे अलौकिक अमूर्त तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाली समुन्नत रहस्य-कला उस मे हम नही पाते। यदि हम मे पर्याप्त काव्यभावना का विकास होता तो उन्हें रहस्य-काव्य कहना हम ने कभी का छोड़ दिया होता। धार्मिक काव्य की दृष्टि से उन का आदर सदैव रहेगा, किंतु प्रकृत काव्य की दृष्टि से नही।

मेरा यह आशय नही है कि महादेवी जी ने 'मधुरतम व्यक्तित्व' की सृष्टि कर के रहस्य की इतिश्री कर दी है और न मै यही कह रहा हू कि उस के प्रति उन का आत्मनिवे-दन भी धार्मिक कवियो के ही ढंग का है। प्रचुर कल्पनागुण के कारण महादेवी जी ने रहस्यात्मकता कभी खोई नही किंतु उन की रचनाओ मे भक्तों और निर्गुणियो की रूढि भी कम नही मिलती। इसे हम आगे चल कर देखेगे। इस का मुख्य कारण मधुरतम व्यक्तित्व की नियोजना और आत्मनिवेदन की परंपरागत प्रेरणा ही है। किंतु महादेवी जी के पास फिर से लौटने के पहले हम रहस्यवाद की शेष दोनो श्रेणियो को भी थोडे मे देख ले।

सगुण निराकार शैली सूफ़ियो की है। सच पूछिए तो परोक्ष रहस्यकाव्य का सच्चा स्वरूप हमें इन्ही मे मिलता है। प्राकृतिक प्रेम-प्रतीकों के भीतर परोक्ष प्रेम-सत्ता का इतना प्रगाढ धाराबद्ध प्रवेश और पुन:-पुन उस अव्यक्त का नैसर्गिक आवाहन और आलेख हम अन्यत्र कहा पाते है? अवश्य, जहा यह प्रेम कथानक का रूप धारण करता

है यहा वही कठिनाई सूफियो के सामने भी आती है जो वैष्णव के सामने आई है। यहां सूफियो ने कथा को सैद्धातिक दृष्टि से रूपक मात्र घोषित किया है किंतु इस से समस्या सुलझ नही पाई। फलत सूफी आख्यानक काव्यों मे रूपक की चिंता न कर, सारी वर्णना के भीतर अति मोहक प्राकृतिक सौंदर्य तल्लीनता, प्रेम के प्रति परिपूर्ण आत्मविसर्जन और फिर भी उस की दुष्प्राप्ति का संकट दिखा कर अव्यक्त प्रेम-रहस्य का इंगित किया गया है। इन कथानकों को रहस्यकाव्य कहने मे फिर भी सकोच रह ही जाता है। यह स्पष्ट ही इस लिए कि कथा के सूत्र साद्यंत रहस्य की रक्षा नही कर सकते और यदि उन्हे रूपक मान ले तो सहज काव्य-सौंदर्य की हानि हो जाती है। इसी लिए कथानको वाले जायसी आदि कवियो को रूपक के स्वरूप की चिंता न कर सारे काव्य को, चाहे वह मायारूपिणी नागमती अथवा विद्यारूपिणी पद्मावती का प्रसग हो, आत्मविसर्जनकारी अलौकिक प्रेम-पीर से आप्लुत कर देना पड़ा है। फिर भी कथा का चक्र स्थान-स्थान पर बाधक बन ही गया है।

कुछ समीक्षक इसी निराकार प्रेमव्यजना के भीतर, ब्रज मे विहरण करने वाली, गिरिधर मूर्ति की उपासिका, चिरतन प्रेम और चिर विरहमयी मीरा के काव्य को भी शुमार करते है किंतु ऐसा करने का हमें कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दीखता। जिन्हो ने सूरदास जी के 'गोपीविलाप' और 'भ्रमरगीत' का अध्ययन किया है उन्हें मीरा को किसी निराकार कृष्ण की उपासिका बना देने की आवश्यकता नही प्रतीत होगी। अवश्य मीरा एक नारी थीं और गिरिधर के प्रति उन का प्रियतम भाव था किंतु ऐसा ही भाव गोपियो का भी था जो निराकार की उपासिका नही थी। स्वप्न में प्रियतम के दर्शन आदि के उल्लेख गोपियो के विरह-वर्णन मे भी मिलते है और मीरा मे भी। महादेवी जी और मीरा दार्शनिक दृष्टि से एक ही परंपरा की अनुयायिनी प्रतीत होती हैं।

निर्गुण निराकार ही आध्यात्मिक दार्शनिकता की चरम कोटि है। एक अखड, अव्यय चेतन तत्व जिस मे त्रिकाल मे भी कोई भेद किसी प्रकार सभव नही, जिस चिर स्थिर आत्मतत्व के अविचल गौरव मे ससार की उच्चतम अनुभूतिया भी मरीचिका सी प्रतीत होती है, वह परिपूर्ण आह्लाद जिस मे स्मित-तरगो के लिए कोई अवकाश नही, रहस्यवाद का सर्वोच्च निरूप्य है। इस के ओजस्वी निरूपण उपनिषदो के जैसे और कहीं नही मिलते। आगे चल कर इस की महामहिमा का क्षय होने लगा, इस मे विरह के कम-

जोर अग जुडन लग और क्रमश यह करुण साधनाओं का अधिष्ठान बना दिया गया । काव्य मे जब तक इस का केवल साकेतिक स्वरूप रहा तब तक यह अधिक विकृत नही हुआ था (उदाहरणार्थ आरभिक बौद्ध साहित्य मे) किंतु जब इस में साप्रदायिक शब्दावली प्रवेश करने लगी और इडा-पिगला आदि की चर्चा वढ गई तब काव्य-दृष्टि से इस का ह्रास होने लगा। कबीर की चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा और अतर्दृष्टि के फलस्वरूप एक बार फिर यह अक्षर तत्व प्रकाश में आया किंतु इस बार यह उतना ओजस्वी और महिमामय नहीं था। कारण इस बार प्रतिस्पर्द्धिनी माया भी दलबल सहित उपस्थित थी। कबीर से आगे वढ़ने पर माया रानी की छाया भी काव्य मे जोर पकड़ने लगी और क्रमश' अक्षर की सत्ता असख्य क्षरो की अतिम सीमा पर जा पहुँची। जहा आरंभ मे भेदों की अस्वीकृति इष्ट थी वहा अंत मे भेदो का प्राबल्य ही प्रमुख वन गया। ऐसी अवस्था मे निश्चल अध्यात्म सत्ता अपने पूर्व गौरव मे कैसे स्थिर रहती ?

( २ )

यहां मेरी पहली मजिल समाप्त होती है। ऊपर मैं ने महादेवी जी के काव्य की दार्शनिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए आध्यात्मिक वादो का खाका कुछ विस्तार के साथ इस लिए खींचा है कि उस से हमारी वह दूसरी कठिनाई भी सुलझ जाय जिस का जिक्र मैं ने इस निबंध के आरंभ मे किया है। वह है काव्यविवेचन मे वादों सबंधी कठिनाई। वाद वास्तव मे जीवन-संबंधिनी धारणाओ और प्रवृत्तियो के बौद्धिक निरूपण हैं। प्रत्येक वाद की एक सीमा-रेखा होती है, यद्यपि उस विशेष वाद के अंतर्गत समय-समय पर ऐसी जीवन-दृष्टिया भी संघटित हो सकती है जिन से उस की उन्नति अथवा ह्रास के सयोग इकट्ठे हो जाएं। किसी भी वाद की कुछ शक्तिमत्ता और कुछ दुर्बलता होगी ही क्योंकि प्रत्येक वाद अपनी सीमा-रेखा मे बद्ध है। प्रत्येक वाद में ये शक्तिमत्ता और दुर्बलता के परमाणु समय-समय पर घट-बढ़ सकते हैं। किसी भी वाद के साथ न्याय करने के लिए उस की पारिभाषिक शब्दावली का उस के अभिप्रेत अर्थ में और उस युग की ऐतिहासिक प्रगति को ध्यान में रख कर, अध्ययन करना अत्यावश्यक है। यही बात किसी विशेष वाद की उन्नति या ह्रास के लक्षणों को जानने के लिए भी

आवश्यक है अर्थात इस के लिए भी हम उस वाद की बदलती हुई परिभाषाओं शब्दावलियों और उन के अर्थसकेतों को अच्छी तरह समझना होगा ।

सारे आध्यात्मिक वादों जिन में छायावाद और रहस्यवाद के वे सब भेद सम्मिलित हैं जिन का मैं ने ऊपर उल्लेख किया, की दिशा वैविध्य में एकता की खोज, प्राकृतिक और मानसिक मलिनताओं का प्रक्षालन, नैतिक बल और अडिग मन:स्थिति की सृष्टि करने की है । इन्हें सार्वजनीन लक्ष्य कहा जा सकता है, इन में देश, काल और व्यक्त द्रव्य के भेदोपभेदों की विशेष मीमांसा नहीं है । आप पूछ सकते हैं कि इस वाद से हमें क्या लाभ जो यह हम में विद्रोह के भाव, राष्ट्रीयता के विचार नहीं उत्पन्न करता । इस का सीधा उत्तर यह है कि यह किसी विद्रोह का समर्थन या विरोध नहीं करता किंतु मन को सुदृढ़ और निर्णयात्मक अवस्था पर ला देता है । छायावाद के अंतर्गत राष्ट्रीय काव्य भी है यद्यपि वह कल्पना और सौंदर्य-प्रधान अधिक है । छायावाद में हमें सामयिक सामाजिक चित्रण और एक उदार जनसत्तात्मक भावधारा के भी अंश मिलते हैं, इस लिए हम उसे अराष्ट्रीय भी नहीं कह सकते किंतु आध्यात्मिक काव्य का मुख्य विषय यह नहीं है यह स्वीकार करने में हमें कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती । साथ ही हम यह नहीं भूलेंगे कि वाद से भिन्न काव्यसौंदर्य एक अलग वस्तु है और उस का मूल्य उस सौंदर्य में ही है ।

यहीं अध्यात्मवाद को हमारे उन मित्रों के आक्रमणों का सामना करना पड़ता है जो 'साइकोसिस' और 'न्यूरोसिस' की भाषा में बातें करते हैं । उन के मत में अध्यात्म मूलत: प्रतिक्रियात्मक वस्तु है और वह श्रमजीवी सभ्यता के निर्माण और विकास में बाधा-स्वरूप है । यह क्रांति को पीछे ढकेल रहा और सत्ताधारियों अथवा मध्यवर्गों का सहायक बन रहा है । इन मित्रों को हम सलाह देंगे कि वे इतिहास की पृष्ठभूमि पर छायावाद और रहस्यवाद का अध्ययन करें तो उन्हें मालूम होगा कि वे वाद राष्ट्रीय विकास की अति स्वाभाविक कड़ियां हैं और उन का कलात्मक मूल्य भी कुछ कम नहीं है ।

और इन के स्थान पर हमें जो आज मिल रहा है वह क्या है ? अब तक उस की साहित्यिक महत्ता यथेष्ट प्रकाश में नहीं आई । नई प्रगति पहले तो अपना स्वरूप ही निर्धारित नहीं कर सकी है जिस के फलस्वरूप नए उगते सभी लेखक अपने को प्रगतिवादी कहने लगे हैं । उन के भाव कितने ही पिष्टपेषित, उन की व्यंजना कितनी ही शिथिल, और

उन की कला-धारणा कितनी ही अविकसित क्यों न हो, वे नए है इसी लिए प्रगति के नेता है। हिंदी में फैली हुई अराजकता, उन्हें नेतागीरी का अवसर भी दे देती है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि भाषा का बेसिलसिलापन और बिना खराद की भोंड़ी शैली ही प्रगति का प्रमाण बन जाती है। कला-संबंधी अगो-प्रत्यंगो की बिना जाँच किए और भावधारा की प्राजलता तथा अभिव्यक्ति की नवीनता और प्रौढता का बिना ध्यान रक्खे, प्रसाद से लेकर महादेवी तक की रचनाओं मे चरित्र-चित्रण, कथा-निर्माण, विचार-विकास, अथवा किसी अन्य बौद्धिक सूत्र को ढूँढना, कुछ नए क्षेत्रों में अपराध माना जाता है। यह सारा भावनामूलक साहित्य, रहस्यवाद या अफ़ीम का नशा है, इस मे काव्य के उच्च अगो के लिए स्थान ही कहा है, अकसर ऐसी बेतुकी बाते भी सुनने को मिल जाती है। एक ओर जहा हम भावना का विरोध करते है दूसरी ओर क्षीण उत्तेजना और भावोन्माद को प्रगति के नाम पर प्रश्रय दे रहे है। किंतु वास्तविक प्रगति के लिए केवल इतना ही आवश्यक नही कि काव्यवस्तु नए समय की हो और नई उपमाओ का सग्रह किया जाय बल्कि अभिव्यक्ति की शैली का आधार और अतर्निहित विचार-प्रवाह नवीन और साथ ही उस नई शैली का सारा उपक्रम भी पुष्टतर और प्रौढ़तर होना चाहिए। हमारे अति नवीन साहित्य के मूल मे वस्तुवाद की दार्शनिक प्रेरणा काम कर रही है किंतु वास्तविक साहित्य-निर्माण मे हम प्राय. छायावाद की उच्च कला का ह्रासोन्मुख स्वरूप, नई किंतु दुर्बलतर भावना, उन्माद, अथवा शुष्क बौद्धिक प्रकरण ही मुख्यतः पाते है। नए भावलोक और नई कलाशैली के निर्माण में जो ऊँची रचनात्मक प्रतिभा अपेक्षित है अभी उस की क्षीण आभामात्र दिखाई दे रही है। इस के विपरीत, रहस्यात्मक काव्यशैली सप्रति अपने चरम विकास पर पहुँची हुई है। इस लिए केवल नवीनता के नाम पर इस की उपेक्षा नही की जा सकती।

रहस्यवाद पर 'न्यूरोटिक टेंडेंसीज' का आरोप अब भी शेष है। इस संबंध मे हम पूछना चाहते है कि 'अह ब्रह्मास्मि' के महामनस्वी भाव से भरी हुई उपनिषद्-ऋचाए क्या स्नायविक दौर्बल्य की उदाहरण है? स्वतंत्र भारत की अमर और जगत्पूज्य रचना गीता और उस की स्थितप्रज्ञ की कल्पना क्या दुर्बल भाव की द्योतक है? आज यह देश परतत्र है, आज स्नायविक दौर्बल्य यहां घर कर सकता है किंतु उस समय जब ऐसी कोई लाचारी न थी गीता मे ऐसी कल्पनाए क्यो की गई और उन का इतना सम्मान आज

विदेशो म किस लिए ह किंतु इस सबध म म अधिक कुछ न कहूंगा क्योंकि श्री अर विंद जैसे मुझ से योग्यतर व्यक्ति, अभी हाल में, इस का यथेष्ट निराकरण कर चुके हैं।

यह पूछा जा सकता है कि इस प्रकार रहस्यवाद की हिमायत मैं क्यों कर रहा हू। वास्तव में मैं ने किसी वाद की वकालत करने का बीडा नही उठाया, मेरा प्रयोजन तो काव्यालोचन मे आने वारो वादो के संबध की गलतफहमी को दूर कर देना मात्र है। एक ओर जहां मैं ने ऊपर की बातें कही हैं, वही दूसरी ओर यह भी कहूँगा कि बहुत से लोग रहस्यवाद के नाम पर ही इतनी श्रद्धा रखते है कि रहस्यवादी कविता को आप ही आप कविता का सिरमौर समझ लेते है। रहस्यवाद के अतर्गत कोई कविता किस कोटि की है यह जानने की उन्हे यावश्यकता ही नही होती। ऐसे लोगों की अधश्रद्धा भी काव्य-विवेचन मे बडी बाधक है। वास्तव में यह दूसरी अति है। यही स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि काव्यविवेचन मे किसी वाद का क्या स्थान हो?

काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियो का, नैसर्गिक कल्पना के सहारे, ऐसा सौदर्यमय चित्रण है जो मनुष्यमात्र मे स्वभावत अनुरूप भावोच्छ्वास और सौदर्यसवेदन उत्पन्न करता है। इसी सौदर्य सवेदन को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली मे 'रस' कहते है, यद्यपि मै यह स्वीकार करूँगा कि रस का हमारे यहा दुरुपयोग भी कम नही किया गया। ऊपर की व्याख्या से हम काव्य या साहित्यमात्र के सबध मे कतिपय निष्कर्षो पर पहुँच सकते हैं। प्रकृत मानव अनुभूति सार्वजनीन वस्तु है, इस में वे कृत्रिम अनुभूतिया सम्मिलित नहीं है, जिन की शिक्षा कुछ विशेष व्यक्तियो या वर्गो को दी जाती है, जिन से साप्रदायिक काव्य का निर्माण होता है (जो वास्तव मे काव्य नही)। इन अनुभूतियो का चित्रण जिस नैसर्गिक कल्पना के सहारे होता है उसे पारिभाषिक शब्दावली मे 'प्रतिभा' कहते है। यह कल्पना जितनी ही नैसर्गिक होगी उतने ही उन्नत काव्य का सृजन करेगी। उतना ही चित्रण की सौदर्यमयता बढ जायगी और उस का सवेदन भी उतना ही समुन्नत और प्रगाढ़ होगा। सार्वजनीन होने के कारण ही यह सौदर्यतत्व सर्वकालीन या शाश्वत भी है। एक ही कविता सैकड़ों हजारों वर्ष के बाद भी वही सौदर्यचेतना उत्पन्न करती है जो उस ने आरंभ में उत्पन्न की थी।

अवश्य कविता सार्वजनीन और सर्वकालीन वस्तु है किंतु कवि के व्यक्तिगत विकास और संस्कार के अनुसार उस की सौदर्यानुभूति की शक्ति, मात्रा और क़ीम-

दीपन में अंतर हुआ करता है और उन अनुभूतियो को व्यक्त करने का सामर्थ्य या योग्यता भी कम वा अधिक हुआ करती है। इन सारी वस्तुओ का परिचय हमे कवि की उस रचना से ही प्राप्त होता है इस लिए काव्यविवेचन मे रचना या अभिव्यक्ति ही सब कुछ है। वास्तव मे काव्य के उत्कर्ष या अपकर्ष की परीक्षा और वर्गीकरण इन्ही विशेषताओ के आधार पर किया जा सकता है। यो व्यावहारिक विभाग के लिए हम महाकाव्य, गीतकाव्य, उपन्यास, आख्यायिका, नाटक-रूपक आदि के विभाग किया करते है अथवा बौद्धिक सीमा-रेखाओ या वादो के अंतर्गत भी हम कवियो और उन की रचनाओ को ले लिया करते है। अपने स्थान पर इन पिछले वर्गीकरणो का भी मूल्य हो सकता है किन्तु काव्य का तात्विक मूल्य तो प्रथम वर्गीकरण मे ही है।

यह पूछ सकते है कि कविता यदि शाश्वत वस्तु है तो उस पर देश, काल आदि की सस्कृतियो और विचारधाराओ का क्या कुछ भी प्रभाव नही पडता ? यह पहेली ऊपर से जितनी सदिग्ध जान पडती है वास्तव मे उतनी ही सरल है। देश, काल और वातावरण का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति और समाज पर पडता है, कवि पर तो वह और भी अधिक असर करता है। इस लिए सच्चे कवि और साहित्यकार प्राय प्रगतिशील ही हुआ करते है। किंतु कवि का कार्य प्रगतिशील होना नही है, प्रगतिशील सामाजिक प्रेरणाओ, स्वरूपो और प्रवृत्तियो को शाश्वत सौदर्य-सवेदन का स्वरूप देना है। आज का प्रगतिशील व्यक्ति कल पिछड सकता है किंतु हृदय के चिरतन सौदर्य-तारो को स्पर्श करने वाला कवि कभी पिछडता नही। कालिदास और शेक्सपियर, होमर और मिल्टन, वाल्मीकि और तुलसी, सूर और कबीर शताब्दियो पुराने है, किंतु उन का काव्य उतना ही ताजा और उतना ही प्रगतिमान आज है जितना वह किसी दिन था।

पर आज हमे ऐसे समीक्षक भी मिलते है जो इन कवियो को अथवा इन मे से कुछ को आज के लिए प्रतिगामी, प्रतिक्रियाशील अथवा पिछडा हुआ बतलाते है। अवश्य यह समीक्षक उन कवियो के काव्य मे निहित विचारधारा अथवा उस आचार-व्यवहार का विरोध करते है जो आज के समाज के उपयुक्त नही है। उन की दृष्टि काव्यसौदर्य और भावना की सबलता और चिरंतनता पर नही जाती। वे समाज के नए रूपो और विचारो के साथ उन पुराने रूपो और विचारो का मेल नही मिला पाते। किंतु काव्य की कथावस्तु और विचारधारा अपना एक स्थान रखते हुए भी काव्य का मुख्य अग नही

है। एक ही विचारधारा की पृष्ठभूमि पर उत्कृष्ट और हेय दोनो ही प्रकार के काव्य रचे जा सकते है। जो वस्तु काव्य को स्थायी बनाती है वह है चिरतन मानव अनुभूति अथवा सवेदन का सौंदर्यपूर्ण सग्रह। बिना इन के हमारे विचार चाहे जितने ऊंचे हो हमारा काव्य नीरस हो जायगा। टाल्सटाय और गोर्की दोनो मे विचारो का स्पष्ट विभेद है, किंतु उन का रचना-चातुर्य एक ही श्रेणी का और उन की सहानुभूति एक ही दिशा मे है। फलत ये दोनो ही समसामयिक रचनाकार, वादो मे अतर होते हुए भी, एक-से सम्मानित है। इस से स्पष्ट है कि वादो का बखेडा उठा देने पर साहित्य मे जो कुछ रह जाता है, वह सम्मान की वस्तु है। सप्रति हमारे साहित्य मे बौद्धिक विचारणा का प्राधान्य होने के कारण वादो को प्रमुखता मिल रही है किंतु, आशा है, यह ज्वार शात होने पर काव्य को उस की नैसर्गिक प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

आज हम साहित्य मे सामयिक जीवन की वास्तविकता चाहते है। नए आचार-विचार, नई रहन-सहन की ऐसी हल्की किंतु सच्ची चीजे जिन मे वर्तमान साहित्यिक गभीरता, भावुकता, काल्पनिकता और आदर्शवादिता का नाम न हो। ये वस्तुए नवीन सामाजिक व्यवहारो मे अब अनाकाक्षित और अवास्तविक मालूम दे रही है। हम नवीन जीवन का सौदर्य उस की सहज अकृत्रिमता मे देखना चाहते है। किंतु वस्तुवाद के नाम पर आज हमे हिंदी मे मिल क्या रहा है? अधिकाश सस्ता, उत्तेजनाशील या बेसिल-सिला साहित्य। अधिकतर इस साहित्य के नाम पर जो चीजें आ रही है वे या तो उप-देशात्मक होने के कारण असाहित्यिक है अथवा आदर्शवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे अति-शय नग्न, व्यग्यात्मक और अस्थायी है। रचनात्मक, नई, सास्कृतिक अभिरुचि का द्वार अभी हमारे साहित्य मे ठीक तरह से उद्घाटित नही हुआ। इस का एक मुख्य कारण यह भी है कि समाज की नवीन वास्तविकता अभी हमारे यहा पूरे प्रकाश में नही आई है, न उस की प्रेरणाएं यथेष्ट बलवती हो पाई है। यो तो साहित्य मे कभी किसी वाद या विचार-प्रणाली-विशेष का आग्रह नही किया जा सकता, किंतु वर्तमान अवस्था मे छाया-वाद या रहस्यवाद के माध्यम से आनेवाली प्रौढ़ रचनाओ और उन की कला-शैलियो का सामयिकता के नाम पर तिरस्कार हम किसी प्रकार नहीं कर सकते।

ऊपर मैंने जो कुछ कहा उस का यह मतलब नही है कि कवि और साहित्यकार बदलते हुए समय और बदली हुई परिस्थिति के अनुरूप नए विचारों का स्वागत न करे।

मैं कह चुका हूं कि अपनी तीव्र संवेदनाओं के कारण वे ही नए युग के अग्रदूत और विधायक हुआ करते हैं। नई जीवन-स्थितियां उन पर अनिवार्य रूप से असर करती हैं और नए ज्ञान को वे आदर के साथ अपनाते हैं। वर्तमान समय में हमारा पुराना सामाजिक और आर्थिक ढांचा बदल रहा है और नई समस्याएं सामने आ रही हैं। इन का असर सारी सामाजिक रीति-नीति और प्रथाओं पर पड़ रहा है। इन सब में परिवर्तन अवश्यभावी है; बल्कि कहना यह चाहिए कि तीव्र वेग से होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप ही पुरानी व्यवस्था उच्छिन्न हो रही है। नई जीवन-शक्तियों को न पहचानना और प्रगति का साथ न देना न केवल अदूरदर्शिता होगी, आत्मघात भी कहा जायगा। कहा जाता है कि इन परिवर्तनों के साथ ही समाज की नैतिक और आध्यात्मिक मर्यादाएं बदल जाएंगी और काव्य की माप में भी अन्तर आ जायगा। जहां तक उन प्रथाओं का संबंध है जो प्रचलित विधि-निषेधों का द्योतन करती हैं, उन का बदल जाना स्वाभाविक है। किंतु उन के कारण हमारी नैतिक और आध्यात्मिक मर्यादा का बदल जाना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वह तो हमारी नसों में व्याप्त है। उल्टा उस की परीक्षा ही इन परिवर्तनों में होगी। और काव्य पर इन परिवर्तनों का क्या असर हो सकता है, वह तो अमिट सौंदर्य की सृष्टि है। आप पूछ सकते हैं कि बिना वैज्ञानिक दृष्टि से परिवर्तन के क्रमों का अध्ययन किए, बिना नवीन मनोविश्लेषण की जानकारी रक्खे, संक्षेप में बिना नवीन वादों का प्रश्रय लिए हमारा काव्य समय के साथ रह ही कैसे सकता है? इस का सीधा उत्तर यह है कि हम इन अध्ययनों से मुंह नहीं मोड़ना चाहते, किंतु हम इन वादों से भी अधिक जीवन का—चारों ओर फैले हुए जीवन का—अध्ययन करना चाहते हैं, और सच पूछिए तो हम जीवन से भी अधिक उस के संवेदनों का—जीवन के अध्ययन से प्राप्त सुष्ठुतम अनुभूतियों का—काव्यप्रणाली से अभिव्यंजन करना चाहते हैं, फिर वह प्रणाली रहस्यवाद की हो या अन्य किसी भी वाद की। अब य उन अनुभूतियों में जीवन का रस और उस प्रणाली में स्वानुभूत सौंदर्य की आभा होनी चाहिए। इतना ही हमारे लिए अलम् होगा।

( २ )

मैं ने अपनी समझ से काव्य में वादों का प्रश्न हल कर दिया और अब मैं महादेवी जी के काव्य की परीक्षा (अवश्य ही विहग-परीक्षा) हाथ में ले सकता हूं। ऊपर

मैं प्रसगवश कह चुका हूँ कि महादेवी जी के काव्य में यग की विशेषताएं नहीं मिलती। प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति 'पल्लव वाले पंत जी' का (इस प्रयोग के लिए क्षमा चाहता हूँ) सा विमोहक आकर्षण उन में नहीं, इस के बदले वे प्रकृति के एक-एक रूप या उस की एक-एक वृत्ति को साकार व्यक्तित्व देकर उन के व्यापारों की कल्पना करती हैं जिन में उन की समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट हुई है। अवश्य यह कल्पना-बाहुल्य ही छायावाद युग की एक विशेषता उन के काव्य में दीखती है। किंतु वे कल्पनाएं सब जगह सीधी और चोट करने वाली नहीं है, उन का प्रत्यक्ष रूप सहज आंखों के सामने नहीं आता। कहीं-कहीं तो उन प्रतीकों का वह कल्पित व्यापार हमारे सौंदर्य-संस्कारों के प्रतिकूल पड़ जाता है और कहीं-कहीं वह इतना क्लिष्ट होता है कि हम ईप्सित सौंदर्य की झाँकी नहीं पा सकते। इन दोनों का एक-एक उदाहरण मैं देना चाहता हूँ—

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उस के बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली॥

यह प्रभात का दृश्य है। रजनी का झिलमिल तारों की जाली ओढ़ कर जाना, बड़ी ही सरल और मार्मिक कल्पना है। किंतु उजियाली का रोना हम साधारणतः कहीं नहीं देखते। वह प्रायः हँसती ही आती है। यहां हमें अपनी अभ्यस्त अनुभूतियों को दबा कर यह कल्पना करनी पड़ती है कि प्रभातकाल की नमी, अथवा ओस आँसू के रूप में उजियाली रो रही है।

क्लिष्ट कल्पना का एक उदाहरण मैं ने यह चुना है—

निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के बंदनवार॥
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार।
आँसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार॥

आकाश में रात्रि के समय अचानक बादल छा गए हैं और पानी बरसने लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पड़ती है। रात्रि के, मुक्तावलियों के अभिराम बंदनवार (तारिकापंक्ति), छिन्न हो कर लुट गए हैं। निश्वासों का नीड़ उस का शयनागार बन गया है (इस का इतना ही अर्थ मेरी समझ में आ पाता है कि रात्रि दुःखपूर्ण निश्वास ले रही है)। तारे बुझ रहे हैं, बूँदें गिरने लगी हैं, वही मानो बुझते तारों के नीरव

नयनों का हाहाकार और उस के आँसू हैं जिन के द्वारा यह लिखा जा रहा है, 'संसार कितना अस्थिर है !' कितनी कल्पना हमें ऊपर से करनी पड़ती है, कृपया विचार कीजिए ! और अब भी मुझे निश्चय नहीं कि मेरा ही अर्थ ठीक है।

जिस क्षण को महादेवी जी की कल्पना ने पकड़ा है—तारों से हँसते हुए आकाश में सहसा मलिन बादलों का छा जाना, वह काव्योपयुक्त और अति सुंदर है, किंतु क्या यही बात उन के इस चित्रण के संबंध में कही जा सकती है ?

इस के दो कारण मुझे दीखते हैं। एक तो यह कि महादेवी जी की कविताएं इतनी अंतर्मुख हैं कि वे प्रकृति के प्रत्यक्ष स्पंदनों, उन की ध्वनियों और संकेतों से सुपरिचित नहीं; और दूसरा यह कि वे काव्य के एक-एक बंद को एक-एक चित्र के रूप में सजाना चाहती हैं, जिस में वस्तुओं और व्यापारों की योजना संश्लिष्ट हुआ करती है। और चूँकि वे मानसिक वृत्तियों और वातावरणों को भी उन्हीं वस्तुव्यापारों के द्वारा ध्वनित करना चाहती हैं, इस लिए यह कार्य उन के लिए दुःसाध्य हो जाता है। उन के इन दीर्घ चित्रणों की तुलना अन्य प्रमुख छायावादियों से कीजिए तो अंतर आप दीखेगा—

देख वसुधा का यौवन-भार।
गूँज उठता है जब मधुमास।
विधुर उर के से मृदु उद्गार।
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास।
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !
—सुमित्रानंदन पंत ('मौननिमंत्रण')

अथवा—

पवन में छिपकर तुम प्रतिपल,
पल्लवों में भर मृदुल हिलोर।
चूम कलियों के मुद्रित दल,
पत्र छिद्रों में गा निशि-भोर।।
विश्व के अंतस्तल में चाह।
जगा देती हो तड़िल-प्रवाह।।
—निराला ('स्मृति')

अवश्य ये चित्र अधिक हल्के और अनलंकृत हैं, इन में सूक्ष्मतर [illegible] और भावव्यंजना की वह महत्वाकांक्षा भी नहीं है, यह हम स्वीकार करेंगे, किंतु तब हम महादेवी जी से कहेंगे कि वे अपनी उच्चतर कला-आकांक्षा के उपयुक्त सामग्री का भी सञ्चय करें। यह कहना भी उचित न होगा कि जिस सूक्ष्मतर भावभूमि के चित्र महादेवी जी देती हैं उस में अस्पष्टता अनिवार्य है। अस्पष्टता काव्य का कोई गुण नहीं है, वह चित्रण की दुर्बलता ही है। अस्पष्ट, छाया-भावों का चित्रण भी सुस्पष्ट, मोती के पानी जैसा भीतर से दमकता होना चाहिए। काव्य की विशेषता तो इसी में है।

महादेवी जी ने भी जहां अलंकृत चित्रांकण छोड़ कर सीधा रास्ता पकड़ा है, वहां बड़ी सजीव कविता का स्रोत बह चला है—

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास।
देव-वीणा का टूटा तार।
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार।
रत्न वह प्राणों का शृंगार
　　　　नई आशाओं का उपवन,
　　　　मधुर वह था मेरा जीवन॥

और जहां वे कल्पना के अर्द्धस्फुट उपमानों को छोड़ कर, इसी सरलता के साथ रूपांकण भी करने लगी हैं (यद्यपि ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं) वहां उन के चित्र खूब साफ आए हैं—

जैसे—

जाग जाग सुकेशिनी री,
अनिल ने आ मृदुल होले
शिथिल वेणी-बंध खोले;
पर न तेरे पलक डोले।
　　　　बिखरती अलकें झरे जाते—
　　　　सुमन वर-वेणिनी री।
छाँह में अस्तित्व खोए,
अश्रु से सब रंग धोए,
मंदप्रभ दीपक सँजोए,

पंथ किस का देखती तू,
अलस स्वप्न निवेशिनी री।

पाठक देखेंगे कि यह सौंदर्य-चित्रण आध्यात्मिक रहस्य-मुद्राओं से परिपूर्ण है, इसे छायावाद की परंपरा में हम नहीं ले सकते। इन में एक विलक्षण उदासीनता, सात्विकता, शांति और निश्चलता झलकती है। छायावाद की चेतनता, चांचल्य और चटक इन में नहीं। महादेवी जी के काव्य की यह एक सार्वत्रिक विशेषता है।

किंतु महादेवी जी की अधिकांश रचनाओं में ऊपर के से भाव-संकेतक रूप-चित्र नहीं मिलते, भावों का चित्रण ही प्रधानतः मिलता है। मेरी अपनी दृष्टि से रूपचित्रण की सहायता बिना रहस्यवाद की काव्य-कला का पूर्ण प्रस्फुटन नहीं हो सकता। जो स्वयं अदृश्य वस्तु है उसे अस्फुट उपमानों से व्यक्त करना, पाठकों को काव्य-रस से अज्ञात वंचित ही रखना है। जैसे 'बेसुध पीड़ा' के संबंध में ये पंक्तियां—

**इस में अतीत सुलझाता अपने आंसू की लड़ियां,**
**इस में असीम गिनता है वे मधुमासों की घड़ियां।**

किंतु इन की गणना कहां तक की जाय, यह महादेवी जी की प्रधान काव्य-शैली ही है। तो भी इस के अंदर कुछ उच्च कोटि की रचनाएं भी उन्हों ने की हैं। जहां व्यक्त रूप किसी न किसी प्रकार आ गए हैं वहां रचना प्रायः सुंदर हुई है—

**किसी नक्षत्र-लोक से टूट**
**विश्व के शतदल पर अज्ञात**
**ढुलक जो पड़ी ओस की बूंद**
**तरल मोती-सा ले मृदु गात—**
**नाम से जीवन से अनजान**
**कहो क्या परिचय दे नादान !**

अथवा—

**स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान,**
**जान कब पाई हुआ उस का कहां निर्माण !**
**अचल पलकों में जड़ी-सी तारिकाएं दीन,**
**ढूंढती अपना पता विस्मित निमेषविहीन।**

... ... ...

कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?

कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

अनुसरण निश्वास मेरे कर रहे किस का निरंतर ?

चूमने पदचिह्न किस के लौटते यह श्वास फिर फिर ?

यह पिछला पद प्रसाद जी के 'कौन हो तुम इसी भूले हृदय की चिर खोज ?' का स्मरण दिलाता है यद्यपि महादेवी जी और प्रसाद जी की रहस्यभावना में यह सुस्पष्ट अंतर है कि महादेवी जी का झुकाव सदैव करुणा और भक्ति की ओर रहता है जब कि प्रसाद जी प्राय. तादात्म्य (वही तू है) का संकेत करते हैं ।

'मत अरुण घूँघट खोल री' और 'शृंगार कर ले री सजनि' रहस्यात्मक रूप-विन्यास के सुंदर उदाहरण हैं ।

'सांध्यगीत' में दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हो उठी है, किंतु काव्य-उपादान उतनी ही मात्रा में समृद्ध नहीं हो पाया । इसी लिए संभवतः इन गीतों की रहस्यभावना ही प्रधान स्थान पा गई है. उपयुक्त रूपयोजना उन्हें नहीं मिल सकी । भावना का वैसा ही विकास होते हुए भी 'सांध्यगीत' में और महाकवि रवींद्र की 'गीतांजलि' में दो मुख्य अंतर है । उन की अजेय काव्यशक्ति कभी उन की भावना का साथ नहीं छोड़ती । भावना की दौड़ में पिछड़ जाने पर ही काव्य को

पंकज कली,

क्या तिमिर कह जाता करुण

क्या मधुर दे जाती किरण !

जैसी अन्योक्ति पद्धति पकड़नी पड़ती है । यद्यपि यह अन्योक्ति ऊँचे दर्जे की है, किंतु अन्योक्ति कितने ही ऊँचे दर्जे की हो, उस की काव्य से भिन्न बौद्धिकता बिना खटके नहीं रह सकती । दूसरी बात यह है कि रवि बाबू की रचनाओं में कल्पना की जो एकतानता, जो प्रसार, जो अटूट शृंखला मिलती है वह इन गीतों में दुर्लभ है । तो भी छोटे-छोटे टुकड़ों में अपने ढंग की सफ़ाई और काफ़ी काम महादेवी जी के बहुत से गीतों में मिलता है ।

प्रसाद के 'आँसू', निराला की 'स्मृति' जैसी उदात्त और एकतान कल्पना तथा

'पल्लव' का-सा सौंदर्योन्मेष महादेवी जी मे नहीं है, किंतु वेदना का विन्यास, उस की वस्तुसत्ता ('आब्जेक्टिविटी') का बहुरूप और विवरणपूर्ण चित्रण, जितना महादेवी जी ने दिया है, उतना वे तीनों कवि नहीं दे सके हैं।

'सांध्यगीत' की पहली ही कविता मे सांध्य-गगन और जीवन का बिंब-प्रतिबिंब स्वरूप महादेवी जी के काव्य मे चित्रांकण कला का एक सफल उदाहरण है, भले ही प्रकृत भावोच्छ्वास का प्रवेग उस मे न हो।

मै ने ऊपर कहा है कि छायावाद काव्य के व्यक्त प्रकृति के सौदर्य-प्रतीको को न लेकर महादेवी जी ने उन प्रतीको की अव्यक्त गतियो और छायाओ का संग्रह किया है। इस से उन की रचनाओ मे वेदना की विवृत्ति और रहस्यात्मकता बढ गई है किन्तु वे स्थल कही-कही अधिक दुरूह भी हो गए हैं। उदाहरण के लिए यह रचना लीजिए—

> उच्छ्वासों की छाया में,
> पीड़ा के आलिंगन में,
> निश्वासों के रोदन में,
> इच्छाओ के चुम्बन में,
> उन थकी हुई सोती सी
> उजियाली की पलकों में,
> बिखरी उलझी हिलती सी
> मलयानिल की अलकों में,
> सूने मानस मंदिर में,
> सपनों की मुग्ध हँसी में,
> आशा के आवाहन में,
> बीते की चित्रपटी में,
> रजनी के अभिसारों में,
> नक्षत्रों के पहरों में,
> ऊषा के उपहासों में,
> मुस्काती सी लहरों में,

जो बिखर पड़े निर्जन में
निर्भर सपनों के मोती,
मैं ढूँढ रही थी लेकर
धुँधली जीवन की ज्योती।

लाक्षणिकता उसी हद तक काव्य में काम दे सकती है जिस हद तक वह उस के भारावाही सौंदर्य मे रोड़े न अटकाए। महादेवी जी के काव्य की जो भूमि है उसी भूमि की रचनाएं कतिपय छायावादी कवियों की भी मिलती हैं, किंतु उन की व्यंजना व्यक्त सौंदर्य-प्रतीकों के और सीधी लाक्षणिकता के आधार पर होने के कारण स्पष्टतर हुई है। उदाहरणार्थ हम निराला जी की ख्यातिप्राप्त रचना 'तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता' को ले तो दोनों का अंतर साफ़ दिखाई देगा। हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि महादेवी जी के ऐसे प्रयोग सर्वत्र दुरूह हो गए है, कहीं-कहीं वे अतिशय मार्मिक हैं।

जैसे—

उन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिला कर प्राणों का आसव ढाला।
मलयानिल के झोंकों में अपना उपहार लपेटे।
मैं सूने तट पर आई बिखरे उद्‌गार समेटे।
काले रजनी अंचल में लिपटी लहरें सोती थीं।
मधुमानस की बरसाती वारिदमाला रोती थी।

ये पंक्तियाँ हमें प्रसाद जी के 'आँसू' की सुंदर कड़ियों की याद दिलाती हैं। अवश्य प्रसाद जी में सौंदर्य-संवेदन के दोनों स्वरूप 'आनंद' और 'वेदना' का एक-सा प्रसार मिलता है किंतु महादेवी जी में उस के पिछले अंश की ही प्रधानता है।

अपनी इस एकपक्षिता के दो कारण महादेवी जी ने बताए हैं जो इस प्रकार हैं— 'जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।' इस के अतिरिक्त 'बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उन की संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।' इस दुःख के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती

हुई वे लिखती हैं—'दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र मे बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सकें किंतु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नही गिर सकता।'

इस स्पष्टीकरण मे महादेवी जी ने सुख और दु:ख के स्वरूप को अस्पष्ट ही रख छोड़ा है। उन्हो ने दु:ख के आध्यात्मिक स्वरूप और सुख के भौतिक स्वरूप को सामने रख कर विचार किया है। किंतु इस के विपरीत सुख का एक आध्यात्मिक और दु:ख का भौतिक स्वरूप भी है जिस की ओर उन की दृष्टि नही गई। दु:ख की तामसिक, राजसिक, और सात्विक तीनो अभिव्यक्तिया हो सकती हैं, उसी प्रकार सुख की भी। यह सब कुछ उस संवेदन पर अवलंबित है जिस से सुख और दु:ख का नि:सरण होता है। महात्मा बुद्ध ने दु:खवाद को आध्यात्मिक अर्थ मे लिया है, उसी प्रकार भारतीय दर्शनो ने 'आनंद' का आध्यात्मीकरण कर लिया है। इस लिए भौतिक आधार पर सुख और दु:ख का जो व्यतिरेक (या 'कंट्रास्ट') महादेवी जी ने ऊपर दिखाया है, उसे मै उन की व्यक्तिगत सात्विकता का परिणाम मान सकता हूं। उसे दार्शनिक सत्य या काव्य की कसोटी मानने के लिए मै तैयार नही हूं।

यह स्त्रियोचित सात्विकता भी महादेवी जी के काव्य की सार्वत्रिक विशेषता है। इस से उन के काव्य को एक सुंदर कांति मिली है यद्यपि कही-कही अति सरलता सौदर्य-स्पर्श से वंचित भी रह गई है। जैसा कि मै ऊपर कह चुका हूं महादेवी जी की वेदना पहले व्यक्तिगत भावुकता अथवा रूढि भक्तिभावना के रूप में रही है जो क्रमश: निखरती गई है। अब मै इन के एक-एक उदाहरण दूँगा—

भावुकता का स्वरूप निम्नांकित 'फैंसी' मे प्रकट हुआ है—

चाहता है यह पागल प्यार<br>
अनोखा एक नया संसार।<br>
कलियों के उच्छ्वास शून्य में तानें एक वितान,<br>
तुहिनकणों पर मृदु कंपन से सेज बिछा दें गान—<br>
जहां सपने हों पहरेदार,<br>
अनोखा एक नया संसार।

रूढ़िगत भक्तिभावना मुझे वहा दीखती है जहा महादेवी जी ने रहस्यमय आध्यात्मिक सत्ता को स्थूल उपास्य का रूप दे दिया है अथवा जहा प्राकृतिक सौंदर्य का, जिस में कवि-हृदय बिना मुग्ध हुए नही रहता, स्थान-स्थान पर प्रतिषेध किया है ।

निराली कलकल में अभिराम
मिलाकर मोहक मादक गान
छलकती लहरों में उद्दाम
छिपा अपना अस्फुट आह्वान
न कर हे निर्झर भंग समाधि
साधना है मेरा एकान्त ।

किंतु नीचे के पद्य मे रूढिरहित आध्यात्मिक निरूपण है—

छाया की आँख-मिचौनी, मेघों का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलो पर ढरकीले श्रम के कन ।
फूलों की मीठी चितवन, नभ की यह दीपावलियां ।
पीले मुख पर संध्या के वे किरणों की फुलझड़ियां ।
विधु की चाँदी की थाली मादक मकरंद भरी सी,
जिस में उजियारी रातें लुटतीं घुलती मिसरी सी ।
भिक्षुक से फिर जाओगे जब लेकर यह अपना धन ,
करुणामय तब समझोगे, इन प्राणों का महँगापन ।

'न थे जब परिवर्तन दिन रात, नही आलोक तिमिर थे ज्ञात' से आरभ होने वाला पूरा गीत भी रूढ़ पद्धति पर बना है। किंतु आगे चल कर जहा वेदना तप कर निखर उठी है, वहां रूढ़ि का लेश भी नही दीखता और काव्य ऊँचे धरातल पर आ पहुँचा है। यहां वेदना खूब सशक्त संवेदन की छटा ले कर आती है—

देव, अब वरदान कैसा ?
बेंध दो मेरा हृदय माला बनूं, प्रतिकूल क्या है ।
मैं तुम्हें पहचान लूं इस कूल तो उस कूल क्या है !
छीन सब मीठे क्षणों को,
इन अथक अन्वेषणो को ।

आज लघुता ले मुझे
दोगे निठुर प्रतिदान कैसा ?
जन्म से यह साथ है मैं ने इन्हीं का प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना।
इंद्रधनु से नित सजी सी।
विद्यु हीरक से जड़ी सी।
मैं भरी बदली रहूं चिर मुक्ति का सम्मान कैसा ?

इस अवस्था की रहस्यात्मक अनुभूतियों का वैविध्य और काव्य की मनोहारिता महादेवी जी मे ऊंची श्रेणी की है। कोई भी छायावादी इतने अटल भाव से इस भूमि मे स्थिर नही रह सका। इस भूमि की प्रदीप्त अनुभूतियो का ऐसा सकलन नवीन युग का कोई हिंदी कवि नही कर सका है। तो भी, हम कहेंगे कि महादेवी जी का काव्यक्षेत्र धार्मिक काव्य की सीमा-भूमि पर स्थित है और कई बार दोनों की सरहद निरूपित करना कठिन हो जाता है।

महादेवी जी जिस नए क्षेत्र मे जिस नवीन ढंग से काम कर रही है, इस से उन की कठिनाइयो का अनुमान हम कर सकते है। एक तो परोक्ष स्तर की निगूढ़ अनुभूतियो का सग्रह फिर उन का परिष्करण और उन्हे उपयुक्त व्यजना देना, तीनों ही आयास-साध्य हैं। फिर महादेवी जी अपनी व्यजना शैली मे भी एक नवीनता रखती है। ऐसी अवस्था मे हमें आश्चर्य नही होता कि भाषा, तुको, और छदों के विन्यास की ओर वे पर्याप्त सतर्क नही हो सकी। महादेवी जी की भाषा मे हमे समृद्ध छायावादी चमत्कृति नही मिलती। तुकों के संबंध मे भी काफी शिथिलता दीखती है। छदो और गीतो मे भी एकरूपता अधिक है। भावो को काव्याभिव्यजना देने के सिलसिले मे कही-कही सुदर कल्पनाओ के साथ ढीले प्रयोग एक पक्ति के बाद दूसरी ही पक्ति मे मिल जाते हैं—

जिन नयनों की विपुल नीलिमा में मिलता नभ का आभास।
जिस मानस में डूब गए कितनी करुणा कितने तूफ़ान।
जिन अधरों की मंद हँसी थी नव अरुणोदय का उपमान।
किया देव ने जिन प्राणों का केवल सुषमा से निर्माण।

ओठों की हंसती पाड़ में
आहों के बिखरे त्यागों में ।
जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेस पथ में बिछ जाते बन पराग ।

इन उद्धरणों की पहली पंक्तियां जितनी सुंदर और काव्योगयुक्त हुई हैं, उतने ही प्रत्येक दूसरी पंक्ति के चिह्नित प्रयोग चिन्त्य हो गए हैं । कई पंक्तियां शुष्क गद्य सी प्रतीत होती हैं—

मैं मदिरा तू उस का खुमार ।
मैं छाया तू उस का आधार ।
चल चितवन के दूत सुना उन के पल में रहस्य की बात ।
मेरे निर्निमेष पलकों में मचा गए क्या क्या उत्पात ।
गए तब से कितने युग बीत हुए कितने दीपक निर्वाण ।
नहीं पर मैं ने पाया सीख तुम्हारा सा मनमोहन गान ।।

नीचे लिखी पंक्ति ध्वनि-शैथिल्य का एक उदाहरण है—

शिथिल मधु-पवन गिन-गिन मधुकण,
हरसिंगार झरते हैं झर झर ।

तुम बिन, उन बिन, जैसे प्रयोग अधिक नहीं अखरते और 'पथ बिन अंत' भी चल जाता है । 'मैं न जानी', 'मैं प्रिय पहचानी नहीं', जैसे व्याकरण असम्मत प्रयोग भी अप्रिय नहीं लगते तो भी कहना पड़ता है कि महादेवी जी की रहस्यानुभूति जितनी समृद्ध है, उन की काव्य-प्रतिभा उतनी ही उत्कृष्ट नहीं और भाषा-शक्ति भी सीमित है । किंतु अभी महादेवी जी निरंतर विकास के मार्ग पर बढ़ रही हैं, वे किस दिशा में कितना बढ़ेंगी यह अब तक अज्ञात है । इस लिए उन की किसी भी विशेषता पर अंतिम मुहर अभी नहीं लगाई जा सकती ।

अब यहां मुझे उन मतदाताओं के समाधान में कुछ अंतिम शब्द कहने होंगे जो महादेवी जी की अनुभूतियों पर काल्पनिकता का आरोप करते हैं । उन की समझ में नहीं आता कि किस जगत की बातें वे कर रही हैं और उन से हमारा क्या संबंध हो

सकता है। इन्ही मे से वे कुछ लोग भी है जो आधुनिक कोलाहल मे व्यस्त होने के कारण या तो महादेवी जी के काव्यजगत में पहुँच ही नही पाते, अथवा दो-चार चीजो की बानगी लेकर, शेष सब एकरूप ही है, कहने की जल्दबाजी करते है। इन सब को मेरा उत्तर यह है कि महादेवी जी के काव्य का आधार उसी अर्थ मे काल्पनिक कहा जा सकता है जिस अर्थ मे कबीर और मीरा का काव्याधार काल्पनिक है। जिस अर्थ मे 'गीताजलि' और 'आँसू' काल्पनिक है। जो महादेवी का अध्ययन नही कर सकते वे इन कवियों का भी अध्ययन कैसे कर सकते है, अथवा इन को भी एकरूप क्यो नही ठहरा सकते ! यहां मै उन महानुभावो का शुमार नही कर रहा जिन की राय मे रहस्यवाद किसी प्राचीन बर्बर युग की स्मृति है, मनुष्य की अविकसित बाल्यभावना की सृष्टि है और जो वैज्ञानिक विकास सिद्धांत से बहुत दूर की चीज हो गई है। ऐसे लोग तो काव्याध्ययन के अधिकारी भी है, मै नही मानता।

ऊपर मै ने प्रसंगवश 'मीरा' का नाम ले लिया है। साथ ही कुछ अन्य कवियो के नाम भी आए हैं जिन से महादेवी जी की तुलना करने का मेरा मतव्य नही रहा, केवल काव्य की आधारभूमि मिलती-जुलती दिखानी थी। फिर भी अकसर लोगो का आग्रह रहा है कि मीरा और महादेवी के काव्य की तुलना के सबंध मे कुछ कहू। मेरा कहना यह है कि मीरा और महादेवी के काव्य का आधार बहुत अशों में एक-सा है किंतु ये दोनो दो युगो की सृष्टियां है। अपने-अपने युगों के अनुरूप ही इन दोनो का काव्य-व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोद्रेक का नमूना है। वह अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्‌गार है। उस मे काव्यकला की बारीकियां हमे नही मिलती, मूर्तिमान विरह की तड़प और मिलन के स्पदन सुन पड़ते है। प्रकृति और कल्पना की सहायता से भावों का चित्रण वे नही करने बैठी। मध्ययुग के सभी समुन्नत कवियो की यह अप्रतिम नैसर्गिकता उन की अपनी चीज है। उस तरह की चीज आज इस बौद्धिक विकास के युग मे ढूंढना दोनो युगो का अपमान करना है। महादेवी जी में भी अनुभूति की सच्चाई है और गहराई है किंतु वे काव्यकला मे सज कर आई है। मीरा अपने प्रियतम की खोज मे राजमहल छोड कर निकल आई थी और उन्हे गृह-वन पुकारती फिरती थी। उन का काव्य-पुकार साकार है। महादेवी जी की ध्वनि अधिक धीमी और अधिक सभ्य होनी समुचित ही है।

विशुद्ध काव्यदृष्टि से महादेवी मीरा की उंचाई पर कम ही पहुंचती हैं । काव्य कला में सज्जित होने पर भी उन की कविता में भावना की ही प्रधानता है । उक्त भावना-शिशु के लिए मुक्त आकाश में पक्षी की भांति उड़ कर चराचर जगत की जो सौंदर्य-सामग्री, जो सहज आस्वाद्य फल, कविगण प्रस्तुत किया करते हैं, महादेवी जी में उस की कमी है । भावना-शिशु का प्यार उन्हें अपना नीड़ छोड़ने नहीं देता । फलत. उन के काव्य में भावना का प्राधान्य है और अन्य काव्यांगों का विकास उतनी मात्रा में नहीं हो पाया । उन की कविता कुछ अंशों में इसी भावना-निष्ठा से, जो व्यक्तिगत है, विजड़ित है । अपनी बात स्पष्ट करने के लिए मैं 'प्रसाद जी' की दो पंक्तियां लेता हूं । ये उन के 'चंद्रगुप्त' नाटक से आई हैं, विषय है देशप्रेम का—

**अरुण यह मधुमय देश हमारा,**
**जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।**

. . . . . .

**लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे ।**
**उड़ते खग जिस ओर मुंह किए समझ नीड़ निज प्यारा ।**

कवि अपने मूल विषय को लेकर कितनी दूर चला गया है, व्यक्तिगत भाव के भार से कितना छूटा हुआ ! पक्षियों का अनुकूल पवन के सहारे, छोटे-छोटे इंद्रधनुषों के से पंख पसारे, अपनी ईप्सित दिशा में नीड़ों की ओर उड़ना, और मेरा देश ! (सुख, सौंदर्य और अपनेपन की व्यंजना) । अनजान क्षितिज को कूल किनारा मिलना—सहारा मिलना, और मेरा देश (आश्रय, दाक्षिण्य और औदार्य का भाव) ! और साथ ही क्षितिज को किनारा मिलने और पक्षियों के नीड़ की ओर उड़ने की मूर्तिमत्ता कितनी सहज, भव्य और हृदयग्राह्य है । यहां भावना तो है ही किंतु समुन्नत काव्य के वेष में । महादेवी जी की शक्ति भावना के विश्लेषण में है, प्राकृतिक रूपों और उपमानों द्वारा उसे व्यंजित करने में नहीं । बाह्य निरपेक्षता और अंतरंगता जो महादेवी जी में एक सीमा तक बढ़ी हुई है, उन की काव्यशक्ति को परिपूर्ण विकास नहीं दे रही है ।

सभी उच्च कोटि के रहस्यवादी कवियों और स्वयं मीरा में भी भावना का प्राचुर्य उपयुक्त प्राकृतिक उपमाओं और कल्पनाओं के सहारे, काव्यात्मक परिच्छद में व्यक्त हुआ है । बल्कि हृदय के सूक्ष्म भावों की व्यंजना के लिए अन्य कवियों की अपेक्षा रहस्य-

वादी कवि को प्रकृति की उस की एक एक भावभंगी, रूप-रंग, गति-अनुगति की—और भी महीन परख रखनी पड़ती है। अन्यथा उस का काम नहीं चल सकता।

मीरा और महादेवी में दूसरी असमानता यह भी है कि मीरा का काव्य दिव्य प्रेम और विरह पर आश्रित है, जो एक ओर उसे सहज हृदयग्राह्य बनाता है और दूसरी ओर काव्य के विषय को विस्तीर्ण कर देता है। महादेवी के काव्य में वैराग्यभावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भांति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में दुःख की मुद्राएं नहीं मिलती) किंतु बौद्ध सन्यासियों और सन्यासियों सरीखी एक चिंतामुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शांति के प्रति एक अशांति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किंतु इस कारण उन की कविता में एकरूपता 'मोनोटनी' नहीं आई है जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उन में प्रचुर वैभिन्य है।

आशा है मैं ने दोनों का अंतर यथासंभव थोड़े में स्पष्ट कर दिया है।

अब मैं अंत में यह कहूंगा कि आधुनिक कवियों में महादेवी जी का क्या स्थान है, इस का निर्णय करना अभी हमारे लिए असामयिक होगा। इस युग के अग्रगण्य कवियों में संभवतः उन का स्थान सुरक्षित रहेगा (केवल इस लिए नहीं कि भारत अध्यात्म-प्रधान देश है, बल्कि उन के काव्यगुणों के कारण) किंतु उन में उन्हें कौन-सा विशेष पद प्राप्त होगा यह तो समय ही बता सकता है। मैं कह चुका हूं कि उन का विकास अभी बंद नहीं हुआ है।

---

# भोजपुरी मुहावरे

[ लेखक---श्रीयुत उदयनारायण तिवारी, एम्० ए० ]

मुहावरा अरबी शब्द है। इस का अर्थ है 'परस्पर बातचीत और सवाल जवाब करना'। इसे अंग्रेजी मे 'ईडियम' कहते हैं। संस्कृत मे इस शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नही है। कतिपय विद्वानो ने 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'वाग्धारा' और 'भाषा-सम्प्रदाय' को मुहावरे के स्थान पर प्रयुक्त किया है, किंतु वास्तव में ये शब्द उपयुक्त नही जंचते, क्योंकि इन से मुहावरे के अर्थ का भली भाँति प्रकाशन नही होता।

अरबी में 'मुहावरा' शब्द का अर्थ सीमित तथा संकुचित है, किंतु हिंदी-उर्दू मे वह विकसित होकर व्यापक हो गया है। हिंदी-उर्दू मे लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। मुहावरे के अर्थ मे अभिधेयार्थ से विलक्षणता होती है। इस संबध मे मौलाना हाली ने अपने "मुकद्दमा शेर व शायरी" मे जो कुछ लिखा है, उसे नीचे दिया जाता है :—

"कभी मुहावरा का इतलाक खास कर उन अफआल (क्रियाओ) पर किया जाता है, जो किसी इस्म (संज्ञा) के साथ मिल कर अपने हकीकी मानो (वास्तविक अर्थों) मे नही बल्कि मजाजी मानों (लाक्षणिक वा सांकेतिक अर्थो) में इस्तैमाल होते हैं। जैसे उतारना, इस के हक़ीक़ी मानी (वास्तविक अर्थ) किसी जिस्म (शरीर) को ऊपर से नीचे लाने के हैं। जैसे घोड़े से सवार का उतारना, खूटी से कपड़ा उतारना, कोठे पर से पलंग उतारना। लेकिन इन मे से किसी पर मुहावरे के दूसरे मानी ठीक नही आते। क्योंकि इन सब मिसालो (उदाहरणो) में उतारना अपने हकीकी मानो (वास्तविक अर्थों) में इस्तैमाल किया गया है। हां, नकशा उतारना, नक़ल उतारना, दिल से उतारना, दिल में उतारना, हाथ उतारना, पहुँचा उतारना, यह सब मुहावरे कहलावेंगे।"

आगे चल कर मौलाना साहब ने 'रोजमर्रा' और 'मुहावरे' का अंतर भी स्पष्ट किया है। आप लिखते है :—

"रोजमर्रा[1] और मुहावरा मे एक फर्क और भी है। रोजमर्रा की पाबंदी जहा तक मुमकिन हो तकरीर (व्याख्यान या बातचीत) और तहरीर (लेखन) नज्म (पद्य) व नसर (गद्य) मे जरूरी समझी गई है। यहा तक कि कलाम (वाक्य) मे जिस कदर रोज-मर्रा की पाबंदी कम होगी, उसी क़दर वह फसाहत (प्रसादगुण) के दर्जे से गिरा समझा जावेगा। जैसे, 'कलकत्ते से पेशावर तक सात आठ कोस पर एक पक्की सराय और एक कोस पर मीनार बना हुआ था' यह जुमला (वाक्य) रोजमर्रा के मुआफिक (अनुसार) नही है, बल्कि उस की जगह होना चाहिए, 'कलकत्ते से पेशावर तक सात-सात आठ-आठ कोस पर एक-एक पक्की सराय और कोस-कोस भर पर एक-एक मीनार बना हुआ था'।"

मौलाना हाली के रोजमर्रा और मुहावरा सबधी ऊपर के विचारो को स्पष्ट करते हुए पडित अयोध्यासिह उपाध्याय अपने 'बोलचाल' ग्रथ मे, पृ० १२६ पर लिखते है :—

"मौलाना हाली ने उन वाक्यो के विषय मे कुछ नही लिखा जो शब्दयोजना के विरुद्ध साकेतिक अर्थ द्वारा भाषा-मर्मज्ञो अथवा सर्वसाधारण मे गृहीत है, जैसे 'मुँह मे ताला लगा होना', 'फूटी आँख से न देखना', इत्यादि। उन्हों ने 'तीन-पाँच करना' का अर्थ झगडा-टटा करना लिख कर और उस को मुहावरा मान कर रूपातर से इस बात को स्वीकार किया है, परतु जैसे अफआल (क्रियाओ) का उदाहरण देकर और उन की परिभाषा लिख कर उन को मुहावरा सिद्ध किया है, उसी प्रकार वाक्य के विषय मे कोई परिभाषा नही लिखा। यद्यपि अधिकतर मुहावरे के अर्थ मे साकेतिक अर्थ द्योतक वाक्य ही गृहीत होते है, तथापि मै यह कहूँगा कि मौलाना साहब ने मुहावरा के विषय मे जो कुछ लिखा है, उस का निचोड़ यही है, कि मुहावरा के दो रूप है, एक वह जिस को हम 'रोज़मर्रा' या बोलचाल कह सकते है, और दूसरा मुख्य मुहावरा जो किसी वाक्य के

---

[1] किसी भाषा के विशेष ढाँचे में ढले वाक्य को ही 'रोजमर्रा' कहते है। यह ढाँचा ठीक है अथवा नहीं, इस के भी अंतिम निर्णायक उस भाषा के बोलने वाले (अहले ज़बान) ही होते हैं।

सांकेतिक अथवा लाक्षणिक अर्थ द्वारा विदित होता है किसी क्रिया में स्वतः मुहावरा के रूप में गृहीत होने की शक्ति नहीं है, वह जब किसी विशेष संज्ञा के साथ मिल कर वाक्य में परिणत होती है, और अपना साधारण अर्थ छोड़ कर विशेष अर्थ देती है, तभी उस की मुहावरा संज्ञा होती है, ऐसी अवस्था में प्रधानता वाक्य ही की हुई।"

ऊपर मुहावरे के स्वरूप के विषय में विद्वानों के मत का उल्लेख किया गया है। अब मुहावरे के महत्व के संबंध में कुछ लिखना अनुचित न होगा। वास्तव में मुहावरे किसी जीवित भाषा के प्राण होते हैं। यह कहा जा चुका है कि लक्षणा तथा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग से सब से अधिक लाभ यह होता है कि केवल कतिपय वाक्यों के सहारे ही अनेक भावों की अभिव्यंजना हो जाती है। मौलाना हाली इन के महत्व के संबंध में 'मुकद्दमा शेर व शायरी' में लिखते हैं —

**मुहावरे का महत्व**

"मुहावरा अगर उम्दा तौर से बाँधा जावे तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलंद और बलंद को बलंदतर कर देता है।"

इस में तनिक भी संदेह नहीं कि उचित मुहावरों के प्रयोग से शैली में माधुर्य, सौंदर्य तथा शक्ति आ जाती है।

**मुहावरों की उत्पत्ति**

मुहावरों की उत्पत्ति के संबंध में पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय अपने 'बोलचाल' के पृष्ठ १३६-३७ पर लिखते हैं —

"मनुष्य के कार्य-क्षेत्र विस्तृत हैं, उस के मानसिक भाव भी अनंत हैं। घटना और कार्य-कारण परंपरा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं, जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण-विशेष से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिन के अधिक लंबे चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभीप्ट होता है। प्रायः हास-परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य-योजना होती देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य-विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।"

आर्य-परिवार की आधुनिक भाषाओं में अनेक विचारधाराएं संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि से आईं। इन विचारधाराओं के साथ-साथ मुहावरों का आना भी अवश्य-

संस्कृत में मुहावरे

भावी था; किंतु प्राचीनता के कारण इन भाषाओं के मुहावरों का पता लगाना सहज काम नहीं। अवश्य ही इन प्राचीन भाषाओं में कतिपय ऐसे मुहावरे होंगे जो यूरोप तथा एशिया की भिन्न-भिन्न प्राचीन आर्यभाषाओं, जैसे लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता तथा पुरानी फ़ारसी आदि में भी मूलतः एक ही रूप में होंगे। इन मूल मुहावरों के पता लगाने से आर्यों की प्राचीन संस्कृति पर भी प्रकाश पड़ सकता है; किंतु इस ओर कदाचित् अब तक प्रशंसनीय प्रयत्न नहीं किया गया है। यहाँ आधुनिक भाषाओं के मुहावरों के सहारे संस्कृत मुहावरों के संबंध में विचार किया जाता है।

'पंचतंत्र' के नीलवर्ण शृगाल की कथा में एक वाक्य है, "अर्धचंद्रम् दत्वा निस्सारित"। इस में 'अर्धचंद्र देना' एक मुहावरा है। इस का अर्थ है 'गरदनिया देना' अथवा 'गला पकड़ कर बाहर निकाल देना'। इसी बात को राजशेखरकृत 'कर्पूरमंजरी' की प्रथम 'जवनिका' में 'विचक्षणा' विदूषक से इस प्रकार घुमा-फिरा कर कहती है कि वहां से मुहावरा ही ग़ायब हो गया है। वह वाक्य इस प्रकार है :—

**इध राअउले तं दे भोदु कण्ठट्ठिदं जं भअवं तिलोअणो सीसे समुव्वहदि'**[1]

अर्थात् इस राजकुल में तुम्हारे कंठ पर वही स्थित हो जिसे भगवान् त्रिलोचन अपने सिर पर धारण करते हैं।

'जीभ गिर जाना' हिंदी का एक मुहावरा है। इस का अर्थ है 'मुँह बंद हो जाना'। किसी मनुष्य के मुख से कोई अशिष्ट बात सुन कर लोग प्रायः कह उठते हैं—'तुम्हारी जीभ गिर जाय'। इस मुहावरे का प्रयोग गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण की निम्नलिखित चौपाई में भी किया है :—

**राम मनुज बोलत अस बानी।**
**गिरहिं न तव रसना अभिमानी।**

---

[1] संस्कृत रूप : 'इह राजकुले तत् ते भवतु कण्ठस्थितं यत् भगवान् त्रिलोचनः शीर्षे समुद्वहति।'

यह मुहावरा वेणीसंहार के तृतीय अंक में अश्वत्थामा द्वारा कथित वाक्य में इस रूप में मौजूद है :—

**कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया**

अर्थात् 'इस प्रकार वार्तालाप करते हुए तुम्हारी जीभ के सहस्र टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?'

**पालि में मुहावरे**

संस्कृत की अपेक्षा पालि से मुहावरे ढूँढ़ लेना सरल है। यहां 'उदान'[1] से दो मुहावरे दिए जाते है ।

भोजपुरी का एक मुहावरा है "मछरी के बाँजार लाँगावल" अथवा "मछरी मारल"। मछली के बाजार में अथवा मछली पकड़ते समय बड़ा शोर गुल होता है। इस मुहावरे का अर्थ भी "शोर गुल होना" ही है। इस का ठीक प्रतिरूप पालि में इस प्रकार मिलता है :—

**केवट्टा मञ्ञे मच्छं विलोपेन्ति**[2]

अर्थात् 'मछुए मानो मछली मार रहे हों', भारी शोरगुल हो रहा है ।

किसी बात का मन में बैठ जाना हिंदी का एक मुहावरा है। भोजपुरी में इस मुहावरे का रूप है, मन में बइठल । इस का ठीक रूप इसी अर्थ में पालि में है, अर्थात्

**"चित्तानि नमेन्ति"**[3]

आधुनिक भाषाओं का प्राकृत से अत्यंत सन्निकट का संबंध है। अतएव इन में

**प्राकृत में मुहावरे**

मुहावरों का मिलना सर्वथा स्वाभाविक है। नीचे उदाहरण-स्वरूप दो मुहावरे दिए जाते हैं।

हिंदी में एक मुहावरा है—"मुँह पर मोहर लगाना" 'कर्पूरमंजरी' में यह मुहावरा "मुहेमुद्दा"[4] रूप में मिलता है। इसी प्रकार 'बुलाने' के अर्थ में प्राकृत का "शद्दावेदि"[5] 'शब्द करना' मुहावरा मिलता है।

---

[1] बुद्ध-धर्म के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथों, 'सूत्रपिटक', 'विनयपिटक', तथा 'अभिधर्मपिटक' से हिंदी के विज्ञ पाठक सुपरिचित होंगे। इन में 'सूत्रपिटक' के अंतर्गत 'दीघ', 'मज्झिम', 'संयुक्त', 'अंगुत्तर', तथा 'खुद्दक निकायों' की गणना होती है। 'खुद्दक निकाय' में कुल पंद्रह ग्रंथ हैं। इन्हीं में एक 'उदान' भी है।

[2] नंदवग्ग, ३ [3] 'पाटलिगामीयवग्ग', ८ [4] मुखेषु मुद्रा।

[5] अले के मं शद्दावेदि (अरे का मां शब्दायते) 'वेणीसंहार', अंक ३

उर्दू के कवि और लेखक गद्य तथा पद्य में रोजमर्रा और मुहावरे के महत्व को खूब जानते हैं। इस विषय में, मौलाना हाली की सम्मति अन्यत्र उद्धृत की जा चुकी है। उदाहरण-स्वरूप कुछ शेर नीचे दिए जाते हैं। मुहावरों के नीचे लकीर खींच दी गई है —

उर्दू में मुहावरे

न छेड़ ऐ नखते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियां सूझी हैं यां बेजार बैठे हैं॥

(इन्शा उल्ला खां)

गदा समझ के वह चुप था मेरी जो शामत आए।
उठा और उठ के क़दम मैं ने पासबा के लिए॥

(गालिब)

बाल चोटी के करेंगे बदनाम।
ये मुए पीछे पड़े रहते हैं।
यह किस ने जाके शिगूफा चमन में छेड़ दिया।
कि आज तक गुलो बुलबुल में बोल चाल नहीं॥

यह कहा जा चुका है कि जीवित भाषाओं के मुहावरे प्राण हैं और इन के उचित प्रयोग से शैली तथा शक्ति की अभिवृद्धि होती है। उदाहरण के लिए स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा पंडित रामचंद्र जी शुक्ल की शैलियां ली जा सकती हैं। इन दोनों आचार्यों की शैलियों की एक बड़ी विशेषता यह है कि पांडित्य तथा गांभीर्य के अतिरिक्त उस में रोजमर्रा तथा मुहावरों का उचित उपयोग हुआ है। स्थान-संकोच से उदाहरण नहीं दिए जा सकते।

हिंदी में मुहावरे

हिंदी के पुराने कवि भी मुहावरों का पर्याप्त ध्यान रखते थे, यह बात निम्नलिखित पदों के देखने से स्पष्ट हो जायगी :—

भामिनि भयेहु दूध की माखी।

(रामायण)

हाथ झार जस चलै जुआरी।

(पद्मावत)

**बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि।**
**याते हाथी हहरि कै दये दाँत द्वै काढ़ि॥**

(रहीम)

मुहावरो के सबंध मे ऊपर लिखा जा चुका है। अब यहा 'भोजपुरी मुहावरो' पर कुछ लिखा जायगा। भोजपुरी बोली की सीमा आदि के सबध मे इसी पत्रिका मे

**भोजपुरी मुहावरों के संबंध में**

प्रकाशित 'भोजपुरी लोकोक्तिया'[1] शीर्षक के अतर्गत विचार किया जा चुका है। उसे यहा दुहराने की आवश्यकता नही। उस लेख मे यह दिखलाया जा चुका है कि भोजपुरी लोकोक्तियो मे स्पष्टवादिता का प्राचुर्य है। वास्तव मे भोजपुरी मुहावरो के विषय मे भी यह बात सर्वथा सत्य है।

युद्ध-प्रिय होने के कारण भोजपुरियो को वाह्याडवर से स्वाभाविक घृणा है। इसी कारण इस विषय के अनेक मुहावरे भी है। उदाहरण के लिए कुछ मुहावरे नीचे दिए जाते है:—

(१) ताथा बाँढ़ावल।
(२) पोथि बाँढ़ावल।
(३) खटराग बाँढ़ावल।
(४) टिमाक बाँढावल।

भोजपुरी लोकोक्तियो की भाँति कही-कही मुहावरो में भी गहरा व्यग्य है। विवाह के समय वर तथा कन्या पक्ष के पुरोहित अपने-अपने पक्ष के पिता-पितामह आदि के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करते है। इसे भोजपुरी मे "गोतरुचार" कहते हैं। किंतु व्यग्य मे "गोतरुचार कइल" का अर्थ होता है 'गाली-गलौज करना'। इसी प्रकार "देवता भइल" तथा "महापुरुष भइल" का अर्थ होता है, 'दुष्ट प्रकृति का होना' और "कचर कूट कइल" का व्यग्यार्थ है, 'खूब छक कर खाना'।

भोजपुरी के अतिरिक्त बिहार मे मगही और मैथिली बोलियां प्रधान है। इन

---

[1] 'हिंदुस्तानी', अप्रैल, जूलाई १९३९

मे साहित्यिक दृष्टि से मैथिली का स्थान बहुत ऊँचा है। वास्तव मे बिहार की बोलियो मे मैथिली ही ऐसी है जो वहा की अन्य बोलियो की उत्पत्ति तथा विकास का इतिहास लिखने में सहायक सिद्ध हो सकती है। नीचे कतिपय ऐसे मुहावरे उद्धृत किए जाते है जो भोजपुरी, मैथिली तथा मगही मे एक ही रूप में मिलते है। सुविधा के लिए इन मुहावरो के अर्थ तथा भिन्न-भिन्न बोलियो मे प्रयोग भी नीचे दिए जाते है।

**भोजपुरी तथा बिहार की अन्य बोलियों के मुहावरों की तुलना**

| भोजपुरी | मैथिली | मगही | अर्थ |
|---|---|---|---|
| (१) लंगोटिया इआर भइल | लंगोटिया इआर भेलाह | लँगोटिया इआर भेल | घनिष्ट मित्र होना |
| प्रयोग—उ हँमॉर लँगोटिआ इआर हउए। | ओ हमर लँगोटिआ इआर भेलाह। | उ हम्मर लँगो-टिया इआर होल। | |
| (२) नियति बिगरल | नियति बिगड़ल | नियति बिगड़ल | बेइमान हो जाना |
| प्रयोग—उन्कर [हुन्हिकर] नियति बिगरि गइल | हुनक नियति बिगडि गेलन्हि | हुन्हुकर नियति बिगड़ गेल। | |
| (३) डॉड परल | डॉड पड़ल | डॉड़ पड़ल | नुकसान होना |
| प्रयोग—उन्का डॉड परि गइल | हुनका यहि व्यापार मे बहुत डॉड़ लगलन्हि | उन्का बॉडा डॉड पड गेल। | |

स्थान-सकोच से और उदाहरण नही दिए जा सकते, किंतु इस सग्रह मे अनेक ऐसे मुहावरे होगे जो मैथिली तथा मगही मे उसी रूप मे मिलेगे। मेरा तो खयाल है कि अन्य मागध भाषाओ, जैसे बँगला, उड़िया आदि मे भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ये मुहावरे मिलेगे। भोजपुरी का एक मुहावरा है "हरस दीरिघ के ग्यान ना भइल"। इस का प्रयोग है "ओकरा हरस दीरिघ के ग्यान नइखे"। बँगला में भी यह मुहावरा इसी रूप मे मिलता है। इस का प्रयोग है, "ताहार ह्रस्व दीर्घेर ज्ञान नाई"।

संग्रह मे कतिपय अशिष्ट मुहावरे भी मिले थे, किंतु उन्हें इस से पृथक् रक्खा गया है।

इस सग्रह को प्रस्तुत करने में अनेक सज्जनों ने मेरी सहायता की है। उन के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना मेरा धर्म है। मुहावरो को अकारादि क्रम से रखने में ठाकुर सुदर्शनसिंह ने मेरी विशेष-रूप से सहायता की। आप के अतिरिक्त श्री गगाधर इनदूरकर, ठाकुर रामेश्वरप्रसाद सिंह, पडित शारदाप्रसाद मिश्र तथा मेरे अनुज पडित विश्वनाथ तिवारी ने भी मेरी पर्याप्त सहायता की। श्री राहुल साकृत्यायन, भिक्षु जगदीश काश्यप, डाक्टर उमेश मिश्र तथा श्री क्षेत्रेशचन्द्र जी चट्टोपाध्याय का भी मै अत्यत आभारी हूं। इस सग्रह मे पालि, मगही, मैथिली तथा बँगला सबधी सामग्री आप लोगो की ही कृपा का फल है। डाक्टर बाबूराम जी सकसेना का मै विशेष रूप मे आभारी हू। आप के ही निरीक्षण मे भोजपुरी संबधी सग्रह तथा अनुसंधान का यह कार्य चल रहा है।

'भोजपुरी लोकोक्तिया' शीर्षक मे ह्रस्व 'आ' के लिए ॅ चिह्न का प्रयोग किया गया था। इस लेख मे वही चिह्न है। जैसे 'ऑगॉराइल' मे 'आ' तथा 'गा' के 'आ' का

**उच्चारण चिह्न**

उच्चारण 'अ' तथा 'आ' के बीच का होगा। इसी प्रकार 'ए' तथा 'ओ' के ह्रस्व रूप भी भोजपुरी में वर्तमान है। इस ह्रस्व उच्चारण को प्रदर्शित करने के लिए इन अक्षरो के नीचे लकीर खीच दी गई है। जैसे "एकवदि विगडल" तथा "ओझाई कइल" मे 'ए' तथा 'ओ' ह्रस्व है।

## मुहावरों की सूची

प्र०=प्रयोग

**अँइठि के चलल**—गर्व से चलना। प्र०—का 'अँइठि के चल (अ) तार (अ)'?

**अँकवारि पूजल**—कार्य पूर्ण होना। प्र०—तोहार 'अँकवारि पूजल नू' चाहे दोसरा के किछऊ होखो।

**अँखिगर भइल**—अँखिगर (दिव्य दृष्टि वाला) मत्र तंत्र जानने वाले ओझा को कहते है। प्र०—उ 'अँखिगर' हउए।

**अँखि देखारे कइल**—प्रत्यक्ष काम करना। प्र०—इ बड बदमास बाटे, 'अँखि-देखारे' अइसन काम कर(अ)ता।

**अँखिफोर भइल**—कुत्ते बिल्ली आदि के बच्चो की आँख पैदा होने के कुछ दिन बाद खुलती है। तब उन्हे 'अँखिफोर' होना कहते है। व्यग्य मे मनुष्य के लिए भी इस

का प्रयोग होता है। इस का अर्थ होता है—'चालाक या बुद्धिमान होना।' प्र०—अब इ 'अँखिफोर' हो गइले।

**अँखि मटकउअलि कइल**—आँखें मटकाना, इशाराबाजी करना। प्र०—कतनो अँखि मटकउअलि कर (अ)' अब तोहार जान ना बाँची।

**अँगुरी चाँमाँकावल**—बात चीत या लड़ाई करते समय हाथ और उंगलियों को हिलाना या मटकाना। यह विशेष कर स्त्रियों और जनखों का स्वभाव है। प्र०—उए, होकर 'अँगुरी चाँमाँकावल' देख (अ) तार (अ)।

**अँगुरी देखावल**—निंदा करना। प्र०—ए घरी उन्हिका के मए गाँव 'अँगुरी देखाव (अ) ता'।

**अँगुरिआवल**—उँगलियाना, परेशान करना। प्र०—ढेर 'अँगुरिआवल' नीक ना ह (अ)।

**अंडा सेवल**—प्रतीक्षा करना। प्र०—का 'अंडा सेव (अ) तार (अ)'।

**अँतरासे सूखल**—डर के मारे सूखते जाना। प्र०—उ 'अँतरासे सूखल' जाता।

**अतिआवल**—जानबूझ कर किसी बात पर अनभिज्ञता प्रकट करना। प्र०—का 'अतिआव (अ)' तार (अ) कुल्हि बात त तोहरा मॉलुमे बा।

**अँवटि घालल**—परेशान करना। प्र०—तूँ त (अ) 'अँवटि घलले' बाड (अ)।

**अँवासल**—नवीन कोरी वस्तु विशेषतया मिट्टी के बर्तन का प्रथम प्रयोग करना। प्र०—आजु एगो कँहतरी 'अँवासि द (अ)'।

**अइगा दिहल**—निमंत्रण देना। प्र०—आजु बाबा जी लोग के 'अइगा दिहल' बा।

**अइनि बोकरल**—अइनि=आईन (अ०)=कानून। बहुत बहस-मुबाहसा करना। प्र०—इहाँ का बहुत 'अइनि बोकरिले'।

**अकिलि के पूरा भइल**—अकिलि=अक़्ल (अ०) मूर्ख होना। प्र०—इहाँ का 'अकिलि के पूरा हउई'।

**अकेला घर में छकेला मारल**—अकेले घर में खूब मौज उड़ाना। प्र०—उ (वह स्त्री) 'अकेला घर में छकेला मार (अ) तारी'।

**अखज भइल**—अखज=अग्वज (अ०)=ग्रहण करना। भोजपुरी में इस का अर्थ है निषिद्ध वस्तुओं का भोजन करने वाला होना। मैले-कुचैले घृणित मनुष्य पर भी मुहावरे का प्रयोग होता है। प्र०—इ बाँडा भारी 'अखज हवे'।

**अखड़ल**—जब दो साँड़ लड़ने के लिए आमने-सामने आते हैं तो पहले वे अपने अगले पैरों से जमीन गोड़ने लगते हैं। इसे 'अखड़ना' कहते हैं। व्यंग्य से मनुष्य के लिए भी इस का प्रयोग होता है। तब इस का अर्थ होता है—शोर करते हुए क्रोध प्रदर्शित करना। प्र०—सीताराम भइया त (अ) आजु बाँड़ा 'अखड़त' रहले हा।

**अखड़ेरे जान गइल**—मुफ्त में प्राण जाना। प्र०—ए में उन्हिकर इचिकिओ दोस ना रहे, ओ बेचारु के त (अ) 'अखड़ेरे जान गइल'।

**अखरल**—दुख अनुभव करना। प्र०—आजु उन्हुकर ए नोका पर ना रहल बाँडा 'अखर (अ) ता'।

**अगुआ भइल**—अगुआ=अग्रगामी। विवाह पक्का कराने वाला 'बिचवई' जिसे बँगला में 'घटक' कहते हैं। प्र०—ए बिआह में ऊहे 'अगुआ बाडे'।

**अछरंग लॉगावल**—दोषारोपण करना। प्र०—उ हॉमॉरा के 'अछरंग लॉगाव (अ) तारे'।

**अछरि कट्टू भइल**—अछरि कट्टू=अक्षर काटने या लिखने वाला। अक्षर जानने वाला होना, कुछ कुछ पढ़ा लिखा होना। प्र०—उन्हि 'अछरि कट्टू' हउअनि।

**अछोप भइल**—निकृष्ट कर्म करने वाला होना। प्र०—मार (अ) एकरा के इ 'अछोप हवे'।

**अड़बाँड़ाइल**—काम ठीक न चलना। प्र०—एकरा ना रहला से हॉमार कामे 'अड़बॉडाइल' बा।

**अदॅक समाइल**—अदॅक=आतंक। भयभीत होना। प्र०—ओकरा मन में 'अदॅक समाइल' बा।

**अधभेसरि भइल**—मूर्ख होना। प्र०—आरे इ अधभेसरि हउअनि हो।

**अधर में परल**—दुविधा में पड़ना। प्र०—उ 'अधर में परल' बाडे, उन्हिका बुझात नइखे जे का करसु।

**अधिका चलल**—अनीति करना। प्र०—'अधिका चलल' नीक ना ह (अ)

**अनखुन खोजल**—जबरदस्ती बहाना ढूँढना। प्र०—उ रोवे खातिर 'अनखुन' खोज (अ) ता।

**अनभल ताकल**—बुराई चाहना। प्र०—उ केहु के 'अनभल ताकल' ना चाहे ले।

**अन्मुनाहे गइल**—तड़के जाना। प्र०—उ 'अन्मुनाहे गइले' हा।

**अनेति कइल**—अनीति करना, जुल्म करना। प्र०—का 'अनेति कउले' बाट (अ)।

**अनेति चलल**—लोक तथा समाज के विपरीत चलना। प्र०—आज् काल्हि उ बॉडा 'अनेति चल' (अ) तारे।

**अनेरिआ भइल**—व्यर्थ होना, किसी काम का न होना। प्र०—इ 'अनेरिया भइल' फिर (अ) ता।

**अत ना पावल**—भेद न पाना, रहस्य न जान पाना। प्र०—उन्करा घर के केहु 'अत ना पावे'।

**अंते गइल**—(अंते=अन्यत्र) अन्यत्र जाना। प्र०—उन्हि आज् 'अंते गइल' बाडे।

**अन्हुआइल**—अर्द्ध निद्रितावस्था में होना। प्र०—का 'अन्हुआइल' बाड (अ), उठत काँहे नइख (अ)।

**अन्हे बतियावल**—पीठ पीछे निंदा करना। प्र०—केहु का 'अन्हे ना बतियावे' के चाहीं।

**अन्हेर मचावल**—(अन्हेर=अंधेर) अत्यंत अत्याचार करना। प्र०—का 'अन्हेर मचवले' बाड़ (अ)।

**अपने ओटल**—अपनी ही बात करना, और किसी की न सुनना। प्र०—उ 'अपने ओटेले', उन्का दोसरा केहु के थोरे सुने के बा।

**अपपी भइल**—कमजोर होना। प्र०—उ बॉडा 'अपपी हवे'।

**अफनाइल**—छक जाना। प्र०—उ खाइ के 'अफनाइल' बाडे।

**अभवा सोचल**—अनुमान करना। प्र०—इहाँ का 'अभवे सोचीले'।

**अम्मर के घरिआ पिअल**—आशा से अधिक दिनों तक जीना। प्र०—इ 'अम्मर के घरिआ पिअले' बाडे।

**अरई कइल**—परशान करना। प्र०—राति दिन केहु का 'अरई कइल' नीक ना ह (अ)।

**अरकस बथुआ बिटोरल**—(बथुआ=एक प्रकार का शाक जो गाँवो मे बहुत सस्ता मिलता है।) निरर्थक वस्तुओ का संग्रह। प्र०—का 'अरकस बथुआ बटोरले' बाड़ (अ)।

**अरधी राखल**—पाणिग्रहण सस्कार के बिना ही किसी स्त्री को रख लेना। प्र०—उ 'अरधी रखले' बा।

**अर्की के आइल**—विशेष तौर पर आना। प्र०—का हम आजु 'अर्की के आइल' बानी।

**अर्की के चॉलान चलावल**—नया रिवाज चलाना। प्र०—का 'अर्की के चॉलान चलवले' बाड (अ)।

**अरठ भइल**—जल्दी टूटने वाला होना। प्र०—सहिजन के डाढि बॉडा 'अरठ होले'।

**अरे खाइल परें पादल**—मौज उड़ाना। प्र०—उ 'अरे खातारे परें पाद (अ) तारे'।

**अलहदी भइल**—सुस्त होना। प्र०—का 'अलहदी भइल' बाड़ (अ)।

**अल्हड़ भइल**—अनुभव शून्य होना। प्र०—उ 'अल्हड़ ह' (अ), उ का जाने।

**अवतार भइल**—दुष्ट प्रकृति का होना। प्र०—इहाँ का 'अवतार हउई'।

**अवहल**—विफलता के कारण हृदय मे विशेष रूप से कष्ट की अनुभूति करना। प्र०—कुल्हि काम कइलसि तबो ना ओकरा मेहरारु के जान बॉचल, एही मे ओकरा बॉड़ा 'अवह (अ) ता'।

**आँगॉराइल**—अत्यत हर्षित होना। प्र०—आजु तूँ बॉड़ा 'आँगॉराइल' बाड (अ)।

**आँन का बल पर फउकल**—किसी दूसरे का सहारा पाकर बहुत बढ-चढ़ कर बोलना। प्र०—उ 'ऑन्का बल पर फउक (अ) तारे'।

**आँन्हारे मुँह गइल**—तड़के जाना। प्र०—उ 'आन्हारे मुँह गइले' हा।

**आँवाँकालि से बाहर कइल**—शक्ति से अधिक काम करना। प्र०—हती मुकी त (अ) बा, बाकी 'आँवाँकाति से वाहर काम करेला'।

**आँसाँरा टूटल**—निराश होना। प्र०—अब उनुकाँरा वाले के 'आँसाँरा टूटि गइल' बा।

**आँसाँरा दिहल**—आश्रय देना, वचन देना। प्र०—जे तोहारा के 'आँसाँरा दिहल' ओकरे से इ हालि कइले बाड (अ), नाहीं 'आसाँरा दिहला' में त इ काम होता।

**आँसाँरा देखल**—इन्तजार करना। प्र०—कबे से तोहार 'आँसाँरा देखत रहली' हा।

**आँखि आइलि**—आँखों का उठना। प्र०—कई दिन से उनिकर 'आँखि आइलि' बा।

**आँखि ओँखि टँगाइल**—मृत्यु के सन्निकट पहुंच जाना। प्र०—थउर (अ) ए दादा, उन्हुकर 'आँखि ओँखि टँगा गइल' बा।

**आँखि कवड़ेना भइल**—कौडी की तरह साफ तथा बडा होना। प्र०—उन्हिकर 'आँखि त कवडेना ह (अ)'।

**आँखि के ओट कइल**—आँखो के सामने से हटाना। प्र०—हम इन्हिका के 'आँखि के ओट कइल' नइखी चाहत।

**आँखि के पुतरी भइल**—अत्यन्त प्यारा होना। प्र०—बबुआ त हमरा 'आँखि के पुतरी हउए'।

**आँखि खुलल**—आँख खुलना, बुद्धिमान होना। प्र०—अब इ बाँहरा रहतारे, इन्हिकर 'आँखि खुलि गइलि'।

**आँखि गिड़ोरल**—(गिडोरल=गडोरना) आँख तडोरना, आँखो से क्रोध प्रदर्शित करते हुए, धमकी देना। प्र०—का 'आँखि गिडोरले' वाड (अ), हम का तोहरा जगहि मे बसल बानी।

**आँखि चमकावल**—आँख मटकाना। प्र०—का 'आँखि चमकावत' रहल् हा।

**आँखि झँपल**—नीद आना। प्र०—ओ घरी हाँमार 'आँखि झँपि गइल' रहे।

**आँखि ताँखि निकलल**—बेहोश हो जाना। प्र०—जब उ ई समाचार सुन (अ) ले, त उन्हुकर 'आँखि ताँखि निकलि' गइलि।

**आँखि देखावल**—आँख दिखाना, धमकी देना। प्र०—हम केहु के 'आँखि देखावल' सहि ना सकीलें।

**आँखि ना ठहरल**—किसी अत्यंत उज्ज्वल तथा चमकती हुई वस्तु को देख कर इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं। प्र०—ङ अइसन साफ बाटे जे एकरा पर 'आँखि नइखे ठहरति'।

**आँखि निकालल**—शत्रु को जोर की धमकी देना। प्र०—एह पारी हम तोहार 'आँखि निकाल् लेबि'।

**आँखि नीचे कइल**—लज्जा करना। प्र०—का 'आँखि नीचे कइले' बाड (अ) तनी सोझ ना ताक (अ)।

**आँखि फरकल**—आँख की पलक का बार-बार हिलना, इस से लोग शुभाशुभ की पहचान करते हैं। प्र०—आजु हॅमॉर दहिनी आँखि फरकल बा, देखीं त (अ) का मिलेला।

**आँखि फेरल**—मित्रता तोड़ना, प्रतिकूल होना। प्र०—काहें तू 'आँखि फेरले' बाड (अ)।

**आँखि बइठलि**—आँख फूटना। प्र०—जब से ओकरि 'आँखि बइठलि' तब से का केहू ओकरा के पूछ (अ) ता।

**आँखि बाँचावल**—कतरा कर जाना। प्र०—उ ए घरी 'आँखि बाँचाइ' के भागि जा तारे।

**आँखि मुना गइल**—आँख बंद हो जाना; मृत्यु को प्राप्त हो जाना। प्र०—जब ले बयद अइले तब ले उन्हुकर 'आँखि मुना गइल'।

**आँखि में आँजन कइल**—आँख मे अंजन करना, परेशान करना। प्र०—अबही तोहरा मरद से भेट ना भइल रहल हा। चल (अ), अब तोहरा 'आँखि मे आँजन कइ देबि'।

**आँखि में काचा बइठल**—अंधा अथवा अंधे के समान हो जाना। प्र०—का तोहरा 'आँखि मे काचा बइठल बा'।

**आँखि में राखल**—यत्न से रखना। प्र०—उन्हिका के त तू 'आँखि मे रखले रहे ल (अ)।

**आँखि लागल**—आँख लगना, नींद आ जाना। प्र०—जब उ अउलें त 'आँखि लागल' रहे।

**आँखि से भादो खेपल**—कमजोरी दिखलाना। प्र०—एही 'आँखि से भादो खेपाई'?

**आँखि आँजन कइल**—मारने, पीटने अथवा किसी को दुरुस्त कर देने के लिए धमकी देना। प्र०—ए पारी हम तोहरा 'आँखी आँजन कइ देबि'।

**आँखी देखल**—अशकुन देखना। प्र०—ए बबुआ, बुझाता जे आजु तूँ किछु 'आँखी देखले' बाड (अ)।

**आँखी में गड़ल**—बुरा लगना, पसन्द आना। प्र०—उ हमींगा 'आँखी मे गड़ल' बाड़े। हटसन बा, एही से नू ओकरा 'आँखी में गड़ल' बा।

**आगे आइल**—आविर्भाव होना। प्र०—ओकरा 'आगे माना आइल बाड़ी'।

**आँचरा तर तोपल**—अंचल के नीचे छिपाना। प्र०—चउथि के चान 'आँचरा तर ना तोपाला'।

**आँजल**—अपनी बराबरी का न समझना। प्र०—उ अपना आगे केहुके 'आजल' नइखे।

**आँजुरि दीहल**—आँजुरि=अंजलि। बोआई के समय प्रति दिन जब सध्या समय अनाज बच जाता है तो अजलि मे भर-भर कर बढई लोहार तथा हलवाहे को देते है। इसे 'आँजुरि देना' कहते हैं। प्र०—जल्दी 'आँजुरि दी', जे हम जाईं।

**आँट परल**—आँट=गाँठ। गाँठ पडना, शत्रुता होना। प्र०—आजु काल्हि उन्करा से 'आँट परल' बा।

**आँट लिहल**—भेद लेना। प्र०—हम उन्हुकर 'आँट लिहली' हाँ, बाकी उ तेयार नइखन होत।

**आँवक में आइल**—कब्जे मे आना। प्र०—उ हमींगा 'आँवक में नइखे आवत'।

**आँकास में चकती लगावल**—असंभव कार्य करने का दम भरना। प्र०—इहाँ का 'आँकास में चकती लगाइले'।

**आग पाछ जानल**—भूत भविष्य जानना। प्र०—उ 'आग पाछ जानत' रहे।

**आग पाछ में परल**—दुविधा में पडना। प्र०—का 'आग पाछ मे परल' बाड (अ)।

**आगा सँभारल**—मुँहड़ा सँभालना। प्र०—जा 'आगा सँभाल' (अ) गे, एजूत हम बटले बानी।

**आगि बरिसल**—बहुत गर्मी पड़ना, लू चलना। प्र०—आजु कालिह् 'आगि बरिस (अ) ता'।

**आगि लाँगा के ताँमासा देखल**—झगड़ा खड़ा करके मनोरंजन करना। प्र०—ए घरी 'आगि लाँगा के ताँमासा देखल' त (अ) इन्हिकर कामे बा।

**आगी मे झोंकल**—आफत मे डाल देना। लड़की को ऐसे घर ब्याह देना जहां उसे हरदम कष्ट हो। प्र०—जे हाँमाँरा धिया के 'आगि मे झोंकल' हा ओकर भाला ना होखे।

**आगी में मूतल**—आग में पेशाब करना, अत्याचार करना। प्र०—ढेर 'आगि मे ना मूते के'।

**आगे निकलल**—आगे बढ़ जाना। प्र०—ऑताँना तेज दउरे ला की कुल्ही जाना से 'आगे निकल जाला'।

**आगो मागो कइल**—मूर्खता करना। प्र०—का 'आगो मागो कइले' बाड (अ)।

**आजु कालिह् कइल**—बहाना करना। प्र०—का 'आजु कालिह् कइले' बाड (अ)।

**आधि न रहल**—मर्यादा न रहना। प्र०—अब ओ लोगनि के कवनो 'आधि नइखे'।

**आन्ही उठावल**—हलचल मचाना। प्र०—आजु का इ 'आन्ही उठवले' बाडे।

**आन्ही के आम भइल**—बिना परिश्रम के मिली वस्तु; थोड़े दिन रहने वाली वस्तु। प्र०—एकाँरा के नइखे पूछे के, इ 'आन्ही के आम ह'।

**आन्ही भइल**—तेज होना। प्र०—हमनिओ का चलदि जा हो, खाड़ा रह (अ), का 'आन्ही भइल' बाड (अ)।

**आपन कइल**—अपने अनुकूल करना। प्र०—उन्हिका के का 'आपन कइल' चाह (अ) तार (अ)?

**आपन खून भइल**—अपने वश का होना, सगोत्री होना। प्र०—उन्हि 'आपन खून हउए'।

**आपन घर भइल** आराम की जगह होना संकोच का स्थान न होना प्र० इ 'आपन घर ह' जब मन कर तब चलि अइली।

**आपुस के भइल**—अपना भाई-बंधु या निकट संबंधी होना। प्र०—उ सभ केहु 'आपुसे के ह'।

**आफति ढाहल**—उपद्रव मचाना। प्र०—तूँ त (अ) 'आफति ढहले बाड' (अ)।

**आभा में परल**—स्वप्न देखना, विपत्ति में पड़ना। प्र०—आज् रातिखानी हम 'आभा में परल' रहली हा। आजु कालिह हम 'आभा में परल बानी'।

**आम दरफ भइल**—आम दरफ=आमद-रफ्त। घनिष्टता होना। प्र०—ए लोग का आपुस में आजु कालिह 'बाँडा आम दरफ' वा।

**आमे मछरी भेंट भइल**—आम पेड़ पर तथा मछली पानी में रहती है। दोनो का मिलन प्राय: असंभव होता है। असंभव कार्य का संभव हो जाना। प्र०—संजोग के बात ह (अ), 'आमे मछरी भेंट हो जाला'।

**आरती कइल या भइल**—पूजा करना। प्र०—काली माई के 'आरती कइल (अ)' हाँ, कि ना।

**आराम से भइल**—फुरसत से होना। प्र०—अबही कवनो अकुताई बा 'आराम से होई'।

**आल्हा गावल**—अपना वृत्तांत सुनाना। तोंहार 'आल्हा गावल' कब ले ओराई।

**अवाज फाटल**—आवाज़ भर्राना। प्र०—तोहार त 'आवाज फाटि गइल' बा।

**आस टूटल**—आशा भंग होना। प्र०—ओजुगी से कवे के 'आस टूटल' बा।

**आस तुरल**—निराश कर देना। प्र०—ओतोना दउरा के 'आस तुरल' ना चाहत रहल हा।

**आसन कइल**—योग के अनुसार अंगो को तोड़-मरोड़ कर बैठना। प्र०— उ 'आसन कइके बइठल बाड़े।

**आसन जमल**—बैठने में स्थिर भाव आना। प्र०—अब इहाँ के 'आसन जमि गइल', जल्दी नइखे उठे के।

**आसन डिगल**—चित्त चलायमान हो जाना। प्र०—अब इहाँ से इहाँ के 'आसन डिगल वा'।

**आसन डोलल**—चित्त का चलायमान होना। प्र०—अब इहाँ के आसन डोलल बा।

**आसन दीहल**—सत्कारार्थ बैठने के लिए कोई वस्तु रख देना या बतला देना। प्र०—पाँवाँना के बड के 'आसन दीहल' नीमन ह।

**आसन मारल**—पालथी मार कर बैठना। प्र०—बाड़ा 'आसन मरले' बाड़ (अ) हो।

**आस बन्हल**—आशा उत्पन्न होना। प्र०—हामरा उन्हिकाँरा बात सुनाँला से किछु 'आस बन्हल' बा।

**आस भइल**—सहारा होना; गर्भ रहना। प्र०—उनहीं ले त 'हॉमाँरा आस' बा। उन्हिकरा पतोहिया के किछु 'आस बा'।

**आसा दीहल**—उम्मीद बँधाना। प्र०—कहिआ से 'आसा दीहले' रहल (अ) हा।

**आसा बन्हल**—आशा करना। प्र०—का अब ही ले 'आसा बन्हले' बा।

**आसामी बुझल**—अपने वश का समझना। प्र०—का तुँ ओकारा के 'आसामी बुझले' बाड़ (अ)?

**आहि दाओ भइल**—मेहरा होना। प्र०—उ 'आहि दाओ ह'।

**आहे गरई धइल**—आहे=अदाज से; गरई=मछली विशेष जो अत्यत चचल होती है। वहुत दूर का अदाज लगाना। प्र०—इहाँ का 'आहें गरई धर (अ) तानी।

**इँकाँटा बरोबरि बुझल**—कुछ न समझना। प्र०—ओनाँका धन के उ इँकाटा बरोबरि बुझे ले।

**इतलाइ कइल**—इतलाइ=इत्तला। राजकर्मचारी को किसी वात की सूचना देना। प्र०—जा 'इतलाइ कइले' आव (अ) इ मनिहे ना।

**इन्ना भइल**—तमाशा होना। प्र०—इ एगो 'इन्ना' हुउए।

**इमान से कहल**—सच कहना। प्र०—का तू 'इमान से कह' (अ) तार (अ)?

**इमान दिहल**—सत्य छोड़ना। प्र०—का अतने से 'इमान दिहल (अ)' हा?

**इमिली घोंटावल**—विवाह के समय लड़के या लड़की का मामा अपनी बहन को आम्र-पल्लव दाँत से खोंटाता है और यथा शक्ति कुछ दक्षिणा भी देता है इसी रीति

को इमली घोटावत' करते ह प्र०—ए मामा जा ?माना घाता आव (अ)

**उकठल**—सूख जाना। प्र०—ठ फउ उकठि गइल बा।

**उकुटारल या उटुकारल**—बुझती हुई आग को जब तेज करने के लिए नीचे से चलाते हैं, तो उसे 'उकुटारना' या 'उटुकारना' कहते हैं। समाप्त हो गए काम को फिर से जागृत करना। प्र०—तूँ बुताइल आँगार 'उकुटारि' (या 'उटुकारि') दिहल (अ)।

**उकुसावल**—दीपक की वत्ती जब नहीं जलती है तो तेज प्रकाश के लिए उसे 'उकसाते' है। मनुष्य के लिए भी इस का प्रयोग होता है। तब इस का अर्थ होता है 'उत्तेजित करना'। प्र०—उहा का लड़े भानिर 'उकुसावतानी'।

**उखम भइल**—उखम=उष्म। बहुत गर्म होना। प्र०—आजु बाड़ा 'उखम भइल' बा।

**उघटा पुरान कइल**—गाली गलौज करना। प्र०—का 'उघटा पुरान कइले' बाड (अ) म (अ) रे।

**उघरवार भइल**—चमकते हुए सूर्य का निकलना। प्र०—बादरि फाटि गइलि, एही से आजु दिन 'उघरवार भइल' बा।

**उँचा खालाँ लात परल**—भ्रष्ट होना। प्र०—'उँचा खालाँ लात परला' पर केहू केहू के ना होला।

**उत्तपाति कइल या नाधल**—आफत करना। प्र०—का 'उत्तपाति कइले (या नधले)' बाड (अ)।

**उछिटा दिहल**—जब किसी खेत में फसल कमजोर हो जाती है तो उस की रक्षा न कर के उसे पशुओं को चरा देते है। इसे 'उछिटा देना' कहते हैं। प्र०—आजु पछिम वाला खेत 'उछिटा दिहल' गइल हा।

**उजड्ड भइल**—मूर्ख होना। प्र०—उ बाँडा भारी 'उजड्ड भइल' बा।

**उजुग भइल**—जगते रहना, सावधान होना। प्र०—आजु काल्हि उन्हन्हिका 'उजुग' बाड़े सनि।

**उजुबुक भइल**—उजुबुक=उजबेक। सोवियट रिपब्लिक के अन्तर्गत उजबेकिस्तान के लोग, जो अभी कुछ दिन पूर्व इस्लाम के अनुयायी थे। मूर्ख होना। प्र०—उ आजु काल्हि 'उजुबुक भइल' फिर (अ) ता।

**उजुबुजाइल या उजुबुजा गइल**—दम घुटना, परशान हो जाना। प्र०—घर के कचकच देखि कें हॅंनार मन 'उजुबुजा गइल' बा।

**उभंख लागल**—सूना लगना। प्र०—आजु काल्हि ए जो वाडा 'उभंख लाग (अ) ता'।

**उभिटा में परल**—निर्जन तथा भयानक स्थान में पड़ना। प्र०—काल्हि त हम बॉडा 'उभिटा मे परल' रहली।

**उभुकत चलल**—गिरते परते चलना। प्र०—का राह मे 'उभुकत चल (अ) तार (अ)'।

**उटक्कर के फतिहा भइल**—व्यर्थ घूमने वाला होना। प्र०—ओकरॉ कें का ले ले वाड (अ), उ त (अ) 'उटक्कर के फतिहा भइल' वाटे।

**उटुकार कइल**—उभाड़ना। प्र०—इ बीतल भॉगॉरा 'उटुकार' (अ) तार (अ)।

**उठक बइठक कइल**—कसरत करना। प्र०—आजु काल्हि इ 'उठक बइठक कर (अ) तारे'।

**उठती परती जानल**—वास्तविक स्थिति से परिचित होना। प्र०—उन्हिकर 'उठती परती जान' (अ) तानी।

**उठा बइठी भइल**—मेल जोल होना। प्र०—आजु काल्हि ओ लोग मे बॉड़ा 'उठा बइठी' वा।

**उठा रखल**—कसर छोड़ना। प्र०—जा तू 'उठा मति रखिह (अ)'।

**उठि गइल**—विकना, भाड़े पर जाना। प्र०—ऐ बाबू हॉमार गेस त (अ) 'उठि गइल' वा।

**उठि बइठल**—जाग पड़ना। प्र०—'उठि बइठ (अ),' बिहान भइल।

**उड़त चिरई के हर्दी लगावल**—बहुत चालाक होना। प्र०—इहॉ का 'उड़त चिरई के हर्दी लगाइ' ले।

**उड़ाँक भइल**—चालाक होना। प्र०—उ वॉडा भारी 'उड़ॉक ह'।

**उतराइल**—पानी के ऊपर आना। मुहावरे मे, घमंड करना। प्र०—ढेर 'उतराए' के ना।

**उतरा के चलल**—गर्व करना। प्र०—आजु कान्हि उ 'उतरा के चल (अ) तारे'।

**उद्बुद् भइल**—अत्यंत प्रसन्न होना। प्र०—ई गुड़ी नथिया पर 'उद्बुद् भइल' बाड़ी।

**उधार कइल**—गाली देना, कर्ज करना। प्र०—उ आई त कई पुरिख के 'उधार करी'।

**उपर नीचे ताकल**—निरुत्तर हो जाना। प्र०—पुछला पर उ 'उपर नीचे ताके लगले'।

**उपर लिहल**—उत्तरदायित्व ग्रहण करना। प्र०—हांमांरा से त (अ) ना सँपरी तूँ आँपाँना 'उपर ले ल'।

**उबड़ खाबड़ भइल**—ऊँचा नीचा होना। प्र०—इ राँहना बाँड़ा 'उबड़ खाबड़' बा।

**उमा उम भइल**—लबालब होना। प्र०—गंगा जी त आजु कालिह खूब 'उमा उम भइल' बाड़ी।

**उरठ बोलल**—सख्त बातें बोलना। प्र०—काहे तूँ एड़ो 'उरठ बोलेल (अ)'।

**उरठ दिन भइल**—धूप तेज होना। प्र०—आजु दिन बाँडा 'उरठ भइल बा'।

**उरुआ बोलल**—उजाड़ होना या उजड़ जाना। प्र०—थोरे दिन में ओजवाँ उरुआ बोलिहे स (अ)।

**उरेब परल**—घाटा लगना; नुकसान पहुँचना। प्र०—हाँमाँरा ए रोजिगार मे बाँड़ा 'उरेब परल' हा।

**उर्ध लागल**—कंठगत प्राण होना। प्र०—उन्हुकरा 'उर्ध लागल' बा।

**उल्हा कइल**—स्थानच्युत करना; हराना। प्र०—बात में हाँमाँरा के केहू 'उल्हा' ना कइ सकेला।

**उल्हि मेल्हि कइल**—चंचलता दिखलाना। प्र०—का 'उल्हि मेल्हि कइले' बाड (अ), एक जगह बइठ (अ) ना।

**उल्हि मेल्हि भइल**—कल न पड़ना, चैन न पड़ना। प्र०—जब से इ बात सुनु-अनि तब से इन्करा 'उल्हि मेल्हि भइल' बा।

**उल्हि मेल्हि में रहल**—व्यथ (कामा म) व्यग्र रहना। प्र०—आजु हम 'उल्हिय मेल्हि मे रहि गइली'।

**उल्हि मेल्हि लागल**—मृत्यु के निकट पहुँचना। प्र०—बाबा कॉ अब 'उल्हि मेल्हि लागल' बा।

**ऊँच सुनल**—कम सुनना। प्र०—थोरे दिन मे इ ऊँच सुन (अ) तारे।

**ऊँट भइल**—ऊँट के समान होना, निरर्थक घूमने वाला होना। प्र०—मार (अ) एके, इ 'ऊँट भइल' फिर (अ) ना।

**ऊड़् बुड़् भइल**—अत्यंत प्रसन्न होना। प्र०—ई एही नथिया पर 'ऊड् बुड् भइल' वाडी।

**एक तरफा डिगरी भइल**—वह व्यवस्था जो प्रतिवादी का उत्तर बिना सुने ही दी जाय। प्र०—हॉमॉरा 'एक तरफा डिगरी भइल' हा।

**एकवदि बिगाड़ल**—परलोक बिगाडना। प्र०—का तु आप 'एकवदि विगडले' बाड (अ)।

**एक बग्गा अदिमी भइल**—झक्की होना, एक बात पकड़े रहना। प्र०—उ 'एक बग्गा अदिमी हउए'।

**एड़बसल**—पैर से मारना, सजा देना। प्र०—इन्हिका के वे 'एडबसलें' काम ना चली।

**एक पेट के भइल**—सहोदर भ्राता होना। प्र०—उ दुनो भाई 'एक पेट के ह लोग'।

**एक भइल**—मिलना-जुलना। प्र०—थोरे दिन से उ लोग 'एक भइल' ह।

**एड़ी ले धोती छॉटल**—एडी तक धोती छोडना, शौकीनी करना। प्र०—उ 'एड़ी ले धोती छाँटेले'।

**एने के बात ओने कइल**—इधर की बात उधर करना, झगड़ा लगाना। प्र०—उ हमेस 'एने के बात ओने करेले'।

**ओझाई कइल**—रूठे हुए आदमी को मनाना। प्र०—का इन्हिकर ऑतॉना 'ओझाई कइले' बाड (अ)।

**ओठ्घंल**—बीमार होना। प्र०—आजु कालिह उ ओठ्घंल बाड।

**ओठ बाँधाइल**—क्रोध और दुख प्रकट करना। प्र०—का 'ओठ बावा' गार (अ)।

**ओठ बिदोरल**—होठ निचकाना, भर्त्सना प्रदर्शित करना। प्र०—का 'ओठ बिदोरले' बाड (अ)।

**ओनइसबीस भइल**—मात्रा में कुछ कम या अधिक होना। प्र०—एहे नु बा ओकरा से 'ओनइस बीस होई'।

**ओनइस भइल**—कम होना। प्र०—उ एकरा से तनी 'ओनइस ह'।

**ओल्हि गइल**—कूद जाना। प्र०—ओतीना के 'ओल्हि गइल' कवनो भारी नइखे।

**ओहाइन कइल**—पशुओं द्वारा कामवासना का प्रदर्शन। व्यंग्य में मनुष्य के लिए भी इस का प्रयोग होता है। प्र०—उ 'ओहाइन कइले' बाडे।

**ओहारि लागल**—पारी आना। प्र०—काहा बाड(अ)हो 'ओहारि लागल बा'।

(क्रमशः)

# 'जोश' मलीहाबादी

[ लेखक—श्रीयुत कैलाश वर्मा, बी० ए० ]

उर्दू साहित्यिक संसार मे परिवर्तन एवं क्रांति उत्पन्न करने वाला, सोए हुए हृदयो को जाग्रत करने वाला, स्वतन्त्रता का संदेश लाने वाला, जीवन की रहस्यमय गुत्थियो को सुलझाने वाला, निर्धनो का सहायक, उन की सेवा करने वाला तथा उन के दुख-सुख मे सम्मिलित होने वाला, भारतवर्ष की दरिद्रता पर आँसू बहाने वाला, धनवानो की फजूलखर्ची पर शोक प्रकट करने वाला, हिंदू मुस्लिम एकता का पाठ पढाने वाला, दीनता पर करुण क्रंदन करने वाला, शायर इन्कलाब हजरत 'जोश' मलीहाबादी के नामनामी मे कौन अपरिचित होगा। जहा एक ओर डाक्टर सर मुहम्मद 'इकबाल' का नाम आता है, दूसरी ओर 'जोश' मलीहाबादी का। दोनों महान कवियों ने उर्दू अदब को एक नया वस्त्र पहना कर उस में रूह फूँकी है; परंतु जब हम जरा गहरी दृष्टि से हजरत 'इकबाल' की रचनाओं को देखते है तो स्पष्ट हो जाता है कि उन की अंतिम समय की कविता मे वह बात नही है जो होनी चाहिए। सारांश यह कि उन की रचनाए आगे बढ कर साम्प्रदायिक मरुस्थल मे विलीन हो गई है, जो दुख की बात है। परन्तु हमें यह प्रकट करते हुए गर्व होता है कि हजरत 'जोश' की कविताओ मे अभी तक यह रंग नही आया। उन पर 'इकबाल' की भाँति इस्लामिज्म का प्रभाव नही पडा, वह खिलाफत आंदोलन से पृथक् हैं। वह आज तक अपना वही रंग अपनाए हुए है जिस रग मे आप ने कविता कहना आरंभ किया था। सच तो यह है कि दिनोदिन आप की रचनाए उन्नति के मार्ग पर जा रही है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यदि यह कहा जाय कि आप का दर्जा 'इकबाल' साहब से भी अधिक ऊँचा है तो अनुचित न होगा। 'जोश' ने अपनी कविताओ का अधिकाश क्रांति के साँचे मे ढाला है और स्वय क्रांति के कवि बने है। कवि प्राचीन रूढियों का कायल नही है। उस ने अपने हृदय एवं मस्तिष्क को एक नवीन शैली की ओर आकर्षित कर इल्म व अदब की दुनिया में तहलका मचा दिया। कवि के

कथनानुसार

**ख्वाब को जज्बये बदार किए देता हूं;**
**क़ौम के हाथ में तलवार दिए देता हूं।**

'जोश' साहब एक बहुत ही लाग्रोबानी शायर हैं। आप में बेसाख्तगी हद से ज्यादा है। आप का सारा कलाम पढ़ जाइए ज्ञात होता है कि उमड़ता हुआ दरिया है, जिस के प्रवाह में रुकावट का अंश नहीं दिखाई पड़ता। आप ने नज्मों में बहुधा ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो साधारणतः समझ से बाहर हैं। जहां तक वर्णनात्मक कविताओं का संबंध है, फी जमाना आप की जोड़ का कोई नहीं है। यदि कोई कवि आप के टक्कर का बैठता है तो हज़रत 'सीमाब' अकबराबादी। 'सीमाब' साहब नज्म उसी अंदाज से कहते हैं जैसा कि गजलें, किंतु हजरत 'जोश' की कविताएं केवल वर्णनात्मक ही होती हैं। गजल में आप को वह सफलता नहीं प्राप्त हुई। यदि कोई आप के विचारों की उड़ान देखे तो आप की नज्में इस का भली भांति प्रदर्शन कराएंगी।

ज़माना करवट बदल चुका है। अब प्राचीन युग नहीं रहा। प्राचीन कविता भी काफी बदनाम हो चुकी है; क्योंकि उस में आकर्षण नहीं रहा। आधुनिक युग में आवश्यकता थी अछूते खयाल की, नवीन विचारों की, और ऐसे जज्बात की जो संसार में क्रांति पैदा कर सकें, मनुष्यों में एक नई रूह फूंके, उन के हृदयों को कहने की अपेक्षा कार्य की ओर प्रेरित करे, उन को अवसर दिया जाय कि वह भी चमकें और इस बात को समझें कि वह संसार में किस लिए हुए हैं, उन का कर्तव्य क्या है, उन की जिम्मेदारी क्या है, एक-दूसरे में प्रेम-भाव किस प्रकार उत्पन्न करें, बड़ाई छोटाई के विचारों को किस प्रकार दूर करें। प्रत्येक कवि के बस की बात नहीं है कि वह अपनी कविता में आत्मा पैदा कर उपदेशक बने और यह बात मानी हुई है कि कवि से बढ़ कर अच्छा उपदेशक और कोई नहीं हो सकता। कवियों में इतनी शक्ति होती है कि यदि वह चाहें तो अपनी लेखनी के बल से संसार में परिवर्तन कर दें। अस्तु नई जान फूँकने के लिए कविता के मैदान में हजरत 'चकबस्त' और हजरत 'इकबाल' आए। 'चकबस्त' साहब ने जो भी कहा, एक बिल्कुल नए ढंग में और नवीन शैली में। स्वतंत्रता का बेहतरीन पाठ पढ़ाया। आप की कविताओं का एक-एक शब्द ख्यालात का कोष लिए हुए है। जरा आप के तीन पदों का रसास्वादन कीजिए—

शैदाये बोस्तां को सरवे समन मुबारक;
रंगीं तबीयतों को रंगे सुखन मुबारक।
बुलबुल को गुल मुबारक गुल को चमन मुबारक;
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक।
गुंचे हमार दिल के इस बाग में खिलेंगे;
इस खाक से उठे हैं इस खाक में मिलेंगे।

इस से बढ़ कर स्वतन्त्रता का और क्या अच्छा पाठ हो सकता है? डाक्टर 'इकबाल' ने प्रारभ में जो कुछ कहा बहुत खूब कहा। इन महाकवियों की कविताए अब भी दिलचस्पी के साथ पढी जाती हैं। इन कवियो ने उर्दू साहित्य मे काफी परिवर्तन कर दिया। अब इन के बाद 'सीमाब' साहब और 'जोश' साहब का नबर आता है। 'सीमाब' साहब की कविताओ के विषय मे यहा कुछ लिखना लेख को बढाना है—मुझे जो कहना है वह 'जोश' साहब और उन की कविता के विषय मे।

आप का नाम शब्बीर हसन और 'जोश' उपनाम है। आप का जन्म सन् १८९४ ई० मे मलीहाबाद (जिला लखनऊ) के निकट कबलहार नामी गाँव मे हुआ था। आप ने शायराना तबीयत अपने पूर्वज से तरके मे पाई थी। आप के परदादा फ़कीर मुहम्मद खा, 'गोया' एक प्रसिद्ध कवि हो चुके है। हजरत 'गोया' के पुत्र हजरत मुहम्मद खा अहमद की गणना उस समय के प्रसिद्ध कवियो में थी। इस प्रकार 'जोश' ने उर्दू कविता के वायुमडल मे अपने नेत्र खोले, और उसी वातावरण मे आप का पालन पोषण भी हुआ। जब आप की आयु केवल नौ वर्ष की थी आप ने कविता कहना आरभ कर दिया था। आप कुछ समय तक प्रसिद्ध कवि हजरत 'अजीज' लखनवी के शिष्य रहे, तत्पश्चात् इस बधन से भी मुक्त हो कर स्वय उस्ताद (काव्य-गुरु) बने। आप के कथनानुसार कवि को स्वतत्र विचार का होना चाहिए, अनुसरण करना लाभदायक नही सिद्ध होता। सामयिक साहित्यिक क्षेत्र मे वह आज 'शायर आजम' के नाम से भारत-विख्यात हो रहे है।

आप ने अरबी तथा फारसी शिक्षा प्राचीन रीति के अनुसार घर ही पर प्राप्त की। अँगरेजी भाषा पढने के लिए जुबली स्कूल सीतापुर, सेंट पीटर्स स्कूल आगरा और अलीगढ़ कालेज मे आप ने पदार्पण किया, किंतु लाउबाली स्वभाव होने के कारण आप

की शिक्षा अधूरी रह गई। सन् १९२४ ई० में आप हैदराबाद दकन में अनुवाद विभाग में मुलाज़िम हुए, और इस विभाग के साहित्यिक तसानीफ के निरीक्षक के पद पर नियुक्त किए गए। इस प्रकार कई वर्ष तक 'नाजिर अदब' का काम करते रहे। इसी काल में आप मदरास विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में परीक्षक का काम करते रहे। इन बंधनों में फँसे हुए भी आप अपनी रचनाओं में परिश्रम करते रहे और उन ने काफी उन्नति हुई। कई साल हुए आप की प्रारम्भिक कविताओं का संग्रह 'रूहेअदब' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह की कविताओं में अधिकतर लखनऊ के रंग की झलक थी। फिर भी विचारों, सुकुमार सूक्तियों, रंगीनी के विचार से आप का कलाम प्रशंसनीय था। गज़लों से पता लगता है कि आप ने इस कला में उर्दू महाकवि 'ग़ालिब' का पूरा अनुसरण किया है, और कहीं-कहीं टैगोर का रंग प्रकट होता है।

सन् १९३५ ई० में जाड़े के दिनों में 'जोश' हैदराबाद से दिल्ली आए और यहां लगभग ४ वर्ष व्यतीत किए। यहां से एक उर्दू मासिक पत्रिका 'कलीम' का संपादन करते रहे। इस पत्रिका का प्रकाशन उन्हों ने अपने बल-बूते पर किया और अपनी रचनाओं को चार जिल्दों में प्रकाशित किया, जिन के नाम 'नक्शो निगार', 'फिक्रो निशात', 'शोलओ शबनम', और 'जुनूनो हिकमत' हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त अपनी नई रचनाओं की भी क्रमवृद्धि की। गत पहली मई सन् १९३९ ई० को 'जोश' ने दिल्ली छोड़ दिया, और अपने वतन मलीहाबाद वापस आए। साथ-साथ पत्रिका भी मलीहाबाद लाई गई, जो यहां से प्रकाशित होती रहेगी।

इस से पूर्व कि मैं 'जोश' की कविताओं को समालोचनात्मक दृष्टि से देखूं इन के प्रति 'सागर' निज़ामी साहब के विचारों को प्रकट कर देना उचित समझता हूं। आप फरमाते हैं "    . लेकिन इस वक्त उन ('जोश') की मजमूई शख्सियत के मुताल्लिक इतना ही कहना काफी है कि ऐसे और इतने मेलजाद अनासिर का फिल्सफी शायर दुनिया सदियों में पैदा करती है। हिंदुस्तानी कौम की इस से बड़ी खुशबख्ती और कोई नहीं हो सकती कि उस में 'जोश' जैसा जवान पैदा हुआ, जिस को मुसलमान . . . बर्दाश्त नहीं कर सकते। लेकिन जो मुस्तकबिल में आसमान पर मेह्रे नीम रोज बन कर चमकेगा . 'जोश' दिमागी इंसान है वह सुसाइटी की नीची

सतह पर नही आ सकता। यहा तक कि निजा तौर पर मस्लहत भी उस को जबान का गुलाम नही बना सकती, लेकिन समाज के इस खतरनाक निजाम मे जिस की बागे अहले-जर के हाथो मे हैं दिमागी इसान और खास कर शायर के लिए कोई ऐसा मरकज नही जहा से वह ताकत परस्त दुनिया को मरऊब कर सके.. . ।"

हज़रत 'जोश' मलीहाबादी की कवित्वकला आधुनिक युग मे अपना जोड नही रखती। आप के विचार और तर्ज अदा अद्वितीय है। कृत्रिम से आप को घृणा है। जो भी आप कहते है अपने सिद्धातो के अनुसार। आप का हृदय साफ़ है। साम्प्रदायिक मामलो मे आप कदापि नही पडते, बल्कि अपनी कविताओ द्वारा इस विषय पर लानत-मलामत करते हैं। वह सासारिक मनुष्यो मे सभी के सच्चे मित्र है। निर्धनो और निर्बलो की हार्दिक सहायता करने पर सदैव तत्पर रहते है। आपस मे समानता का उपदेश देते हैं। आप के गद्य और पद्य दोनों मे क्रांति का बहुधा जिक्र रहता है। खोई हुई देशी कला, शिक्षा, तथा हिंदुस्तानी वेषभूषा और गौरव पर जार-जार आँसू बहाते है। हिंदू-मुस्लिम एकता का पाठ पढ़ाते हैं। वह चाहते है देश स्वतत्र हो, खुशहाल हो, राजनैतिक दासता शेष न रहे। प्राचीन भारतीय वेषभूषा के उपासक है, और इस मे कोई परिवर्तन पसद नही करते। स्त्रियो की आजादी के सख्त खिलाफ़ है। उन्हे इस बात से भी घृणा है कि हिंदुस्तानी स्त्रिया योरोपियन शिक्षा ग्रहण करे। वह स्त्रियो का सदैव आदर-सत्कार करते है। वह स्त्री को अपने हृदय का मालिक बनाने के लिए तैयार है, पर वह नही चाहते कि उसे पुरुषो के बराबरी का दर्जा दिया जाय। यह उस का यहा तक सम्मान करते है कि मनुष्य उस की पूजा करे, किंतु इस बात मे नफरत करेगे कि वह परदे से बाहर निकल कर सासारिक क्षेत्र मे आकर राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक मामलो मे पडे। आप ने इन सारी बातो को नवीन विचारो में अलकारो द्वारा इस प्रकार सुसज्जित किया है कि श्रोतागण तथा अध्ययन करने वाले मंत्र मुग्ध हो जाते है। आप की उपमाएं तथा अलकार बिल्कुल नए होते है, और ख्यालात अछूते। आप ने मुहावरो का प्रयोग इस खूबी से किया है कि वे अपने स्थान पर बहुत भले प्रतीत होते है। आप की तरकीबे अनोखी लेकिन प्रभावशाली होती है। आप को जबान पर पूर्ण अधिकार है। आप की कविताओ मे दूरदर्शी उपमाए रहती है। उपमाओं और अलंकारो का प्रयोग आप ने कविता मे बहुतायत से किया है जिस से ज्ञात होता है कि आप के पास इन का एक

बड़ा कोष है। आप नज्मो मे अपना सानी नही रखते, आप की गजले आप की नज्मो का मुकाबिला नही कर सकती। आप की गजलो मे बहुधा मुसल्सल नज्म का रंग पाया जाता है। आप की नज्मो मे बहुधा ऐसे शब्दो का प्रयोग किया गया है जो सर्वसाधारण की समझ से परे हैं, और जो कानो को भले नही प्रतीत होते और सकील और गैरमानूस दीख पड़ते हैं। 'जोश' प्रेम और सौंदर्य के सच्चे उपासक है। सौंदर्य को ग्रहण करने के विषय मे उन की सर्वत्र तीव्र दृष्टि रहती है।

वह दुखो से आजाद है। मदिरा और प्याले के भी उपासक है। धार्मिक रूढ़ियो और रीतियो पर उन्हे विश्वास नही है। आप की कविताए आप के नेचर (प्रकृति) का दर्पण है, जिन से आप के सारे जीवन का रहस्य प्रकट होता है। हार्दिक विचार आप की सचाई, प्रेम, वफा, सासारिक व्यवहार, आपस मे भाईचारे का खयाल सभी बातो पर आप की कविताए प्रकाश डालती है। इन के अतिरिक्त आप के कलाम मे रहस्यवाद, छायावाद, मिस्टिसिज्म और फिलासफी का भी गहरा रंग नजर आता है। 'जोश' के कलाम मे जोश है, प्रवाह है, रोचकता है, किंतु माधुर्य कम है। आप ने प्राकृतिक दृश्यो का भी अच्छा निरीक्षण किया है, जो आप की कविताओं मे प्रकट है। कवि ने किसी का अनुसरण नही किया। वह लकीर का फकीर कवि बन कर रहना नही चाहते, वरन् अपनी एक नवीन शैली रखना चाहते हैं। वह औरों से भी कहते है कि पैरवी छोड़ देना चाहिए। अपने विचारो को स्वतत्रता के साथ प्रकट करना चाहिए। आप ने वर्णनात्मक कविता मे जिस विषय को लिया उस का पूरा चित्र खीच दिया है। इस बात का सच्चा उदाहरण 'कोहिस्तान की औरत', 'जामुनवाली' इत्यादि शीर्षक कविताओ से मिलता है। आप ने 'जामुनवाली' कविता मे उत्तरी भारत के निर्धन देहाती स्त्रियो का सजीव चित्र खीचा है। 'जोश' साहब की कविताए हमारे लिए गर्व की चीज है। जब तक उर्दू साहित्य जीवित रहेगा, आप की कविताए अमर रहेगी, और उर्दू साहित्य पर प्रकाश डालती रहेगी। अब हिंदी पाठको का परिचय, जोश की कविता मे, कुछ उद्धरणो द्वारा कराना, आवश्यक है। 'कोहिस्तानी औरत' शीर्षक कविता के सजीव चित्र का निरीक्षण कीजिए—

**यह उबलती औरतें इस चिलचिलाती धूप में;**
**संग असवद की चटानें आदमी के रूप में।**

बाल जैसे तुंद चश्मे, त्योरियां जैसे गिज़ाल;
आरिज़ों में जामुनों का रंग आँखें बेमिसाल।
औरतें हैं या कि हैं बरसात की रातों का ख्वाब;
फट पड़ा जिन पे कि तूफां खेज़ पथरीला शबाब।
जिस्म हैं कुछ इस क़दर ठोस अल्हफ़ीज़ो अलअमां;
लीजिए चुटकी तो छिल जाएं खुद अपनी उँगलियां।
मछलियां शानों की उभरी-सी बटी सी काकुलें;
आहनो फ़ौलाद के पट्ठे, सलाखों की रगें।
दीद के क़ाबिल हैं इन काफ़िर बुतों का रंगो रूप;
खप चुकी है जिस्म में बारिश डस चुकी है जिस को धूप।
इन नबाते कोह को कहिक्ल जवानी अलअमां;
पत्थरों का दूध पी-पी कर हुई हैं जो जवां।
कंकड़ों के फर्श पर दुनिया सुलाती है जिन्हें;
आँधियों के पालने में नींद आती है जिन्हें।
क्या खबर कितने दिलों की 'जोश' पामाली हुई;
इन अदाओं से कि तूफ़ानों की है पाली हुई।

इसी प्रकार 'जामुनवाली' का यह पद—

मस्त भौंरा गूँजता फिरता है कोहो दश्त में;
रूह फिरती है किसी वहशी की घबराई हुई।

अपना जवाब नही रखता।

उपर्युक्त कविताएं पढ़ने से ज्ञात होता है कि कितना सजीव चित्र पेश किया गया है। पहाड़ी स्त्रियों के अग-अंग से वीरता प्रकट होनी है। इन स्त्रियो ने कितनी कठोर मुसीबतो का सामना किया है, कितने दुख उठाए है जिन का सारा जीवन धूप और वर्षा मे व्यतीत हो रहा है और जो ककड़ो के फर्श पर सोनेवाली है, और जिन्हे आँधियो के पालने मे नीद आती है, जो पत्थरों का दूध पी-पी कर जवान हुई है, और जिन का पालन-पोषण तूफानो मे हुआ है; क्या वह वीर स्त्रिया नही हो सकती ? इन का शरीर इतना ठोस है कि यदि उन मे चुटकी ली जाय तो स्वय अपनी उँगलिया छिल जायें। उन के

कधो की मछलियां उभरी रहती है, केश बटे हुए, और जिन के पट्ठे इसपात के से हैं और नसे लोहे के छड़ो की भाँति हैं और चाल तेज चश्मे की तरह है, और त्योरिया हिरन की सी, कपोल जामुन के रंग की भाँति और नेत्र अद्वितीय है। यह पहाडी स्त्रियां क्या हैं मनुष्य के रूप मे काले पत्थरो की चट्टानें हैं। देखिए कितना सुदर चित्र है और उपमाओ और अलकारो की छटा प्रस्फुटित हो रही है। अब जरा इस के साथ-साथ एक पत्थर कूटने वाली कोमल सुंदर स्त्री का भी चित्र देखिए, कितना सुदर वर्णन है और कैसी-कैसी उपमाए हैं—

एक दोशीज़ा सड़क पर धूप में है बेकरार;
चूड़ियां बजती है कंकड कूटने से बार बार।
चीथड़ों में दीदनी है रूए रंगीने शबाब;
अब्र के आवारा टुकड़ों में हो जैसे माहताब।
हुस्न से मजबूर कंकड़ कूटने के वास्ते;
दस्त नाज़ुक और पत्थर तोड़ने के वास्ते।
फ़िक्र से झुक जाय वह गरदन तुफ ऐ लैलो नेहार;
जिस में होना चाहिए फूलों का यक हलका सा हार।
भीक में वह हाथ उट्ठें इल्तजा के वास्ते;
जिन को कुदरत ने बनाया हो हिना के वास्ते।
नाज़ुकी से जो उठा सकती न हों काजल का बार;
उन सुबुक पलकों पे बैठे राह का बोझल ग़ुबार।
नाज़नीनों का यह आलम मादरे हिंद आह आह;
किस के जौरे नारवा ने कर दिया तुझ को तबाह।
हुन बरसता था कभी दिन रात तेरी ख़ाक पर;
सच बता ऐ हिंद तुझ को खा गई किस की नज़र।
बाग़ तेरा क्यों जहन्नुम का नमूना हो गया?
आह क्यों तेरा भरा दरबार सूना हो गया?
जिस के आगे था क़मर का रंग फीका क्या हुआ?
ऐ उरूसे नौ तेरे माथे का टीका क्या हुआ?

ए खुदा हिदोस्ता पे ये नहूसत ता कुजा?
आखिर इस जन्नत पे दोज़ख की हुकूमत ता कुजा?

एक विवाहित कम उम्र सुदर लडकी सड़क पर ककड़ कूट रही है और वह धूप की तेजी के कारण बेचैन हो रही है, और ककड कूटने से उस की चूड़िया बार-बार बजती हैं। चीथड़े के अदर उस के यौवन का रग-रूप देखने योग्य है, उन का रूप चीथडो में ऐसा प्रकट होता है मानो बादल के टुकडो मे चॉद हो। शोक के साथ कवि कह रहा है कि सौंदर्य ककड़ कूटने के वास्ते विवश हो और उस के कोमल कर पत्थर तोडे। ऐ रात दिन तुझ पर लानत है कि वह गरदन जिस पर पुष्पों का एक हल्का सा हार होना चाहिए वही चिता के कारण झुक जाय। वह हाथ जिन को ईश्वर ने मेहदी के लिए बनाया हो, वही भीक के लिए उठे, और वह नेत्र जो कोमलता के कारण काजल का भी बोझ न सह सके, उन्ही हलके पलकों पर रास्ते की गर्द बैठे। ऐ भारत माता, नाजनीनो की यह दशा! शोक, तुझ को किस के असह्य अत्याचारो ने बरबाद कर दिया। कभी दिन-रात तेरी मिट्टी पर सोना बरसता था। ऐ हिद, बता तुझे किस की नजर खा गई, तेरी वाटिका क्यो नरक का नमूना बन गई और तेरा भरा-पुरा दरबार क्योकर सूना हुआ? ऐ नई दुल्हन, तेरे माथे का वह टीका जिस के सामने चॉद का भी रंग फीका था क्या हुआ? ऐ ईश्वर, तू ही बतला कि हिद पर यह मनहूस घडी कब तक रहेगी? और इस स्वर्ग पर नर्क का शासन आखिर कब तक रहेगा?

'मालिन' शीर्षक कविता के कुछ पदो का भी रसास्वादन कीजिए—

आ रही है बाग से मालिन वह इठलाती हुई;
मुस्कराने मे लबों से फूल बरसाती हुई।
बार बार आँखें उठाती, साँस लेती तेज तेज;
रस जवानी की भरी पलकों से टपकाती हुई।
फूल है आँचल में आँचल लोटता है दोश पर;
और आंचल पर घनी जुल्फ़े हैं लहराती हुई।
'जोश' कोई पूछे इस गुल पैरहन मालिन का नाम;
आ रही है गुंचए दिल को जो चिटकाती हुई।

वाटिका से एक मालिन इठलाती हुई आ रही है, और उस की मुस्कान से ऐसा

प्रतीत होता है मानो उस के अधरों से पुष्प की वर्षा हो रही है वह अपने नेत्र बार-बार उठाती है और साँसें तेज़ी से लेती है, और जवानी की भरी अपनी पलकों से रस टपकाती है। उस के आँचल मे फूल हैं, और आँचल कंधे पर लोट रहा है और आँचल के ऊपर उस के घने केश लहरा रहे हैं। 'जोश' कहते हैं कि उस गुलाब के पुष्प जैसे शरीर वाली मालिन का कोई नाम पूछे जो हृदय की कली को विकसित करती, चिटकाती हुई आ रही है। घनी पलकों से जवानी का रस टपकना कितनी सुंदर उपमा है। इस कविता के तृतीय पद में कवि ने आँचल का कितना अछूता चित्र खींचा है।

कवि ने हैदराबाद के अपने निजी जीवन का दैनिक क्रम इस ढंग से चित्रित किया है :—

ऐ शख़्स अगर 'जोश' को तू ढूँढना चाहे;
वह पिछले पहर हल्क़ए इरफ़ां में मिलेगा
औ' सुब्ह को वह नाज़िरे नज़्ज़ारये कुदरत;
तरफ़े चमनो सहनो बियाबां में मिलेगा।
औ' दिन को वह सरगश्तए इसरार मआनी;
शहरे हुनरो कूए अदीबां में मिलेगा।
औ' शाम को वह मर्दे खुदा रिंद खुश औक़ात;
रहमत कदए बादा फ़रोशां में मिलेगा।
औ' रात को वह ख़िल्वतिए काकुलो रुखसार;
बज़्मे तरबो कूचए जानां में मिलेगा।
औ' होगा कोई जब्र तो वह बंदए मंज़ूर;
मुर्दे की तरह क़ल्बए अहज़ां में मिलेगा।

ऐ मनुष्य यदि 'जोश' को तू ढूँढना चाहे तो पिछले पहर वह पवित्र आत्मा पुरुष के घर में मिलेगा। प्रातः समय वह प्राकृतिक दृश्यों का निरीक्षण करने वाला वाटिका, आँगन और वनों में मिलेगा। दिन के समय वह रहस्य और मानी में परीशान रहने वाला किसी कला के शहर और साहित्यिक पुरुषों की गलियों में मिलेगा, और संध्या समय वह ईश्वर का बंदा मदिरा बेचने वाले के भवन में मिलेगा, और रात्रि में वह केशों और कपोलों का प्रेमी आनंद की महफ़िल तथा प्रेमिका की गली में मिलेगा, और यदि उस पर

कोई जुल्म और अत्याचार होगा तो वह मृतक मनुष्य की भाँति शोक-भवन में मिलेगा।

निर्धन और धनवान सभी के यहाँ त्योहार मनाए जाते हैं, परतु दोनो मे क्या अतर है, 'मुफ़लिस की ईद' शीर्षक कविता मे देखिए—

अह्ले दवल में धूम थी योमे सईद की;
मुफ़लिस के दिल में थी न किरन भी उमीद की।
इतने में और चर्ख ने मिट्टी पलीद की;
बच्चे ने मुस्करा के सदा दी जो ईद की।
फ़र्ते मेहन से नब्ज़ की रफ़्तार रुक गई;
माँ बाप की निगाह उठी और झुक गई।
दोनो हुजूम ग़म से हम आग़ोश हो गए;
यक दूसरे को देख के खामोश हो गए।

धनी पुरुषो मे इस शुभ घड़ी ईद की धूम थी, किंतु निर्धन के हृदय मे आशा की कोई किरण तक न थी। इतने मे आकाश ने इन की दशा को और अबतर कर दिया, जब बच्चे ने मुस्करा कर ईद की आवाज़ दी। उस की कोमल वाणी सुन कर दुख की अधिकता के कारण उन की नाडी की चाल रुक गई। निर्धन माता-पिता की दृष्टि ऊपर उठी और उठ कर झुक गई। दुख की अधिकता के कारण दोनों एक-दूसरे से मिल गए, उन की निराशाए बढ़ी और दोनों चुप हो गए। कितना मार्मिक चित्र है!

एक स्थान पर आप ने दासता के संबध में कहा है—

दौर महकूमी में राहत कुफ़्र इज़्ज़त है हराम;
दोस्तों की चाह आपस की मुहब्बत है हराम।
इल्म नाजायज़ है दस्तारे फ़ज़ीलत है हराम;
इंतहा यह है ग़ुलामी की इबादत है हराम।

इस दासता के जमाने मे सुख और आनंद कुफ़्र है। मर्यादा हराम है। मित्रो का प्रेम और आपस का प्रेम भी हराम है। विद्या नाजायज है और बुजुर्गी की पगड़ी भी हराम है। हद यह है कि दासता की पूजा तक हराम है।

आप की 'भूका हिंदुस्तान' शीर्षक कविता अपना विशेष महत्व रखती है, साथ-साथ बड़ी प्रभावशाली भी है। आप ने इस कविता द्वारा एक ऐसे धनवान घर का चित्र

खींचा है जो अंत मे निर्धन हो चुका है। कविता मे कठिन शब्द नही आने पाए है :—

एक मुफलिस के मकां में कल हुआ मेरा गुजर;
खाक पर बैठा था बच्चा और बीवी तख्त पर।
तख्त ईंटों की कमी बेशी से नाहमवार था;
वजन इक नाजुक सी औरत का भी जिस पर बार था।
तीरा क़िस्मत घर का मालिक पायमाले सद जुनूं;
बोरिये पर इक तरफ बैठा हुआ था सर निगूं।
जो मकां कल नग़मए खुद्दाम से पुर जोश था;
आज आक़ा के लिए आग़ोश में ख़ामोश था।
ताक़ पर रक्खा हुआ था एक सोया सा चिराग़;
ताक़ के नीचे थे कड़वे तेल के बूँदो के दाग़।
तेल बहने का निशा दीवार पर असला न था;
एक दिन वह भी दिया शायद कभी छलका न था।
एक गोशे में था बिस्तर के एवज़ थोड़ा पयाल;
जिस पै दो टुकड़े दरी के और इक सदपास शाल।
बच्चा बहला सा हुआ था खाक के इक ढेर से;
मा दुपट्टा सी रही थी सर झुकाए देर से।
खेलने में तिफ्ल के गुलफाम था डूबा हुआ;
आई इतने मे गली से आम वाले की सदा।
कॉपती आई सबा हिलने लगा बच्चे का दिल;
साँस ली यूं जैसे रक्खी हो कोई छाती पै सिल।
मा की नजरें उठ गई, उठ कर पड़ीं, पड़ कर झुकीं;
हाय मेरे लाल मेरे पास तो कुछ भी नहीं।
छा गया आँखों में सन्नाटा दिले नाकाम का;
अश्क बन कर आँख से टपका तसव्वुर आम का।

मुफलिस से तात्पर्य निर्धन, नाहमवार से जो समतल न हो, नाजुक से कोमल, बार से बोझ, तीरा क़िस्मत से अभागा, पायमाले सद जुनू से सैकड़ो भाँति की परी-

शानियों से पागल, सर नगूं से सर नीचा किए हुए, नगमए खुद्दाम से नौकर चाकर की आवाज, आका से मालिक, आगोश से गोद; मसन्ना से कदापि, गोशा से कोना, एवज़ से बदले, सदपारा शाल से सैकड़ों टुकड़े वाला दुशाला, तिफल के गुलफ़ाम से गुलाब सा पुष्प-मुखी बालक, सदा से आवाज और तसव्वर से ख़याल है।

देश की फजूलखर्ची और अंधविश्वास से कवि उकता गया है। इसे बुरा समझता है, अत. समझाता है :—

ऐ बिरादर पुल पे गंगा के जब आ जाती है रेल;
फेंकता है किस लिए पैसे यह क्या करता है खेल।
कौम की आँखों से जारी हैं लहू की नद्दियां;
बह रही हैं जिस के अंदर इज्जते हिंदोस्तां।
क्यों नहीं आता है तू इस खून की नद्दी के पास;
जिस को गंगा से कहीं बढ़-चढ़ के है दौलत की प्यास।
डूब कर गंगा में इक पैसा उभर सकता नहीं;
हिंद की आँखों से आँसू खुश्क कर सकता नहीं।
देख कर नद्दी यह नादानी यह कारे नासवाब;
शर्म के मारे हुई जाती है गंगा आब आब।
बाजुए ज़र नाखुदाई के लिए तैयार हो;
डूबने वाली है कश्ती क़ौम की तैयार हो।

कारे नासवाब से तात्पर्य अनुचित कार, बाजुये जर से धनवान, नाखुदाई से नाव खेने वाला है।

अब आप के प्राकृतिक निरीक्षण तथा अध्ययन से भी परिचय प्राप्त कीजिए —

खुरशेद तुलूअ हो रहा है;
अफ़साना शुरू हो रहा है।
गर्दों की जबीं दमक रही है;
पौदों की कमर लचक रही है।

फूटी है किरन जो तिलमिलाती,
शबनम की धड़क रही है छाती।
जागे हैं तयूर चहचहाते;
चौंके हैं हसीन कसमसाते।
लाई है नसीम चूम गेसू;
गलियों में मचल रही है खुशबू।

सूर्य निकल रहा है, आकाश का मस्तक चमक रहा है, पौदों की कमर लचक रही है। जब सूर्य की किरण तिलमिलाती हुई फूटी तो ओस की छाती धड़कने लगी तात्पर्य यह कि ओस अदृश्य हो गई। चिड़ियां चहचहाती हुई जागीं, हसीन कसमसाते हुए चौंके। प्रात. समय की वायु माशूक के केशों की सुगंधि अपने साथ लाई, परिणाम यह होता है कि गलियों में सुगंध मचल रही है।

'नेचर की ख्वाबगाह' शीर्षक कविता के दो पद देखिए—

रहम कर अल्लाह ऐ इंजन की सीटी रहम कर;
शाम का है वक़्त वीराने का सन्नाटा न छीन।
जर्रा जर्रा है यहां रौंदा हुआ तपता हुआ;
दो घड़ी नेचर को सो रहने दे ऐ अंधी मशीन।

जर्रा से तात्पर्य कण से है।

'पहाड़ की सदा' के यह दो पद हैं :—

मेरी वादी में है फूलों की दुनिया;
उबलता है मेरे पहलू से चश्मा।
मेरे दामन में है शफ़्फ़ाफ़ दरिया;
मेरी चोटी पे क़ुदरत का तमाशा।
इधर आ, ऐ मेरे शायर इधर आ।

वादी से तात्पर्य घाटी, पहलू से बगल, किनारा, चश्मा से सोता, शफ़्फ़ाफ़ से स्वच्छ, और क़ुदरत से प्रकृति है।

'चाँद की सदा' शीर्षक कविता में आप क्या कहते हैं—

**ज़मीनों आस्मां मुझ से मुनव्वर**
**बिछी है नूर की हलकी सी चादर।**
**खुनुक मुझ से गुल अंदामो के बिस्तर;**
**मेरी ज़ौ से झलकता है समंदर।**
**इधर आ, ऐ मेरे शायर इधर आ!**

पृथ्वी और आकाश दोनों मुझ से रौशन है, मेरे प्रकाश की हलकी सी चादर बिछी हुई है। मेरे ही कारण पुष्प जैसे शरीर वालो के बिछौने ठडे रहते है और मेरे ही प्रकाश मे समुद्र झलकता है। ऐ मेरे कवि, इधर आ !

'फस्ल गुल की सदा' शीर्षक कविता के भी दो पदो को देखिए.—

**मेरी महफ़िल में बुलबुल का तराना ;**
**दिलों की ज़िंदगी मेरा फ़साना।**
**हवाएं मेरी खुशबू का खज़ाना;**
**मोहब्बत खेज़ है मेरा ज़माना।**
**इधर आ, ऐ मेरे शायर इधर आ!**

मेरी महफिल में बुलबुल का राग है। और मेरी कहानी हृदय का जीवन है। मेरी हवाए सुगधि का कोष और मेरा समय प्रेम वढ़ाने वाला है। ऐ मेरे कवि इधर आ !

इसी प्रकार आप की 'आफताब, समदर, फूल की सदाए' इत्यादि कविताए हैं। इन उपरोक्त कविताओ के अध्ययन से विदित होता है कि आप ने प्राकृतिक दृश्यों का कितना सुदर चित्र खीचा है, और प्रकृति से अपनी कितनी आत्मीयता स्थापित की है।

**काम है मेरा तग़य्युर नाम है मेरा शबाब;**
**मेरा नारा इंक़लाबो, इंक़लाबो, इंक़लाब।**

कवि कहता है कि मेरा काम परिवर्तन करना है और मेरा नाम युवा है और मेरी आवाज़ क्राति, क्रांति, क्राति है।

उपर्युक्त पद आप की 'नारए शबाब' नामी कविता का पद है।

एक स्थान पर आप 'पीरी' को सबोधित कर के कहते है। कितने अच्छे पद है, और कितने प्रभावशाली !

यह सितम क्या ऐ कनीज़ कुफ्रो ईमां कर दिया,
भाइयों को गाय और बाजे पे कुरबां कर दिया।
डाल दूँगा तरह नौ अजमेर औ' परियाग में;
झोंक दूँगा कुफ्रो ईमां को दहकती आग में।
कौसरो गंगा को इक मरकज़ पै लाने के लिए;
एक संगम मैं बना दूँगा ज़माने के लिए
एक दीने नौ की लिक्खूँगा किताबे ज़रफ़शां;
सब्त होगा जिस की ज़री जिल्द पर हिंदोस्तां।
फिर उठूँगा अब्र के मानिंद बल खाता हुआ;
घूमता, घिरता, गरजता, गूँजता, गाता हुआ।
खून में लिथड़े बिसाते कुफ्रो दीं उलटे हुए;
फ़ख्र से सीने को ताने आस्ती उलटे हुए
वलवलों से बर्क़ के मानिंद लहराया हुआ;
मौत के साए में रह कर मौत पर छाया हुआ।

ऐ कुफ्र और ईमान की लौंडी तू ने यह क्या अत्याचार किया कि भाइयों का गाय और बाजे के हेतु बलिदान कर दिया। मैं अब अजमेर और प्रयाग में एक नई नींव डाल दूँगा और इस कुफ़ और ईमान के झगडे को दहकती हुई आग में छोड़ दूँगा। कौसर (स्वर्ग मे मदिरा की नहर है) और गंगा को एक केंद्र पर लाने के लिए एक नया संगम बनाऊँगा। एक नवीन धर्म की सोनहरी पुस्तक लिखूँगा, जिस की सोनहरी जिल्द पर हिंदोस्तान लिखा होगा। तत्पश्चात् मैं मेघों की भाँति बल खाता हुआ, घूमता, घिरता, गरजता, गूँजता और गाता हुआ उठूँगा। खून मे लिथडे हुए कुफ्र और धर्म के बिछौने को उलट दूँगा और घमंड के साथ सीने को तानूँगा और अपनी आस्तीन उलट लूँगा। जोश के कारण मैं बिजली की भाँति लहराऊँगा और मृत्यु के साये मे रह कर मृत्यु पर छा जाऊँगा। मौत के साये मे रह कर मौत पर छाना कितनी महान कल्पना है! आप की उपर्युक्त कविता वास्तव मे क्रांति का पूरा चित्र है।

'शायरे हिंदोस्तां' शीर्षक कविता के तीन पदों का मुलाहिज़ा कीजिए :—

शेर की बहरों में मुमकिन ही नहीं हुस्ने क़बूल
शायरे हिंदोस्तां है अस्ल में जंगल के फूल।

जिस के गिर्दो पेश रहता है बहायम का हुजूम;
रौंदते हैं जिस को चौपाए झुलसती है समूम।
जुहल का दरिया है और ना कदरियों की लहर है;
शायरे हिंदोस्तां होना ख़ुदा का क़हर है।

वहायम से तात्पर्य चौपाये, जानवर, हुजूम से भीड, समूम से गर्म वायु, जुहल से मूर्खता, कहर से गजब है।

अब आप के गैर मानूस शब्दों का प्रयोग दो पदों में देखिए--

तू कहे दरिया में था गर्क नमू;
यार की कडियल जवानी का मजा।
क़सम उन गाज़ियों की मौत से जो जंग करते हैं;
उपी तलवार की बुंदिश से जिन के जख्म भरते हैं।

कडियल जवानी और उपी तलवार का अर्थ समझ में नही आता। इसी प्रकार और भी कविताओं मे ऐसे शब्दो का प्रयोग किया गया है जो सुनने मे कम आते है।

'नौजवानी के मजे' शीर्षक कविता का कितने अच्छे ढग से वर्णन किया गया है!

याद हैं अब तक वह अहदे[1] नौजवानी[2] के मजे;
नौजवानी के मजे क्या जिंदगानी के मजे।
वस्ल[3] के वादे ख़ुनुक[4] में हिज्र[5] के तूफ़ान में;
कामरानी[6] के मजे नाकामरानी के मजे।
बादलों से झूम कर सरशार[7] साग़र[8] चूम कर;
जल्वागाहे रंगो बू में शेरख़्वानी[9] के मजे।
रूठने और रूठ कर मनने के दौरे[10] नाज में;
मेहरबानी के मजे[11] नामेहरबानी के मजे।

---

[1]जमाना। [2]युवा अवस्था। [3]मिलन। [4]शीतल वायु। [5]वियोग। [6]ध्येय पूरा होना। [7]ऊपर तक भरा हुआ। [8]प्याला। [9]कविता पढ़ना। [10]काल, चक्कर। [11]आनंद।

पहलुए जानां[1] के शीरीं गर्मियों से गाह गाह[3]
उम्र फ़ानी[4] में हयाते जावदानी[5] के मज़े।
इल्तफ़ाते यार[6] से दौरे तरब आहंग[7] में;
हर क़दम पर 'जोश' मर्गे[8] नागहानी[9] के मज़े।

अब आप की 'जवानी' शीर्षक कविता के दो बंद देखिए:—

हर ख़ार[10] में यक फूल है हर फूल में रुख़सार[11];
हर बर्ग[12] में यक रंग है हर रंग में गुलज़ार[13]।
हर मौज[14] में यक रक़्स[15] है हर रक़्स में झंकार;
हर शाख़ में यक लोच है हर लोच में तलवार।
तस्वीर यह तस्वीर बनाती है जवानी।
क्या कुफ़्र की क़ूव्वत[16] है कि दब जाता है ईमां;
इस्लाम के सीने में लरज़[17] उठता है क़ुरआं।
उड़ जाते हैं मस्जिद में मोअज़्ज़न[18] के भी औसां[19];
घबरा के निकल जाते हैं काबे के निगहबां[20]।
यूं दैर[21] के ज़ंजीर हिलाती है जवानी।

'जवानी की रात' शीर्षक कविता के कुछ बंद यह है :—

आँखों में रूए यार था, आँखें थीं रूए यार पर;
ज़र्रा था आफ़ताब में, ज़र्रे में आफ़ताब था।
मौजे हवा में इत्र था, छिटकी हुई थी चाँदनी;
फूल के मेहवे बाग़ में, चर्ख़ पे माहताब था।
दर्द से क़ल्ब चूर थे, कैफ़ से रूह मस्त थी;
सोज़ भी बे नज़ीर था, साज़ भी लाजवाब था।

---

[1]प्रेमिका की बगल। [2]मधुर। [3]कभी कभी। [4]मिटने वाली आयु। [5]सदैव रहने वाला जीवन। [6]मित्र की कृपा। [7]प्रसन्नता का राग। [8]मृत्यु। [9]अचानक, सहसा। [10]काँटा। [11]चेहरा। [12]पत्ती। [13]वाटिका। [14]लहर। [15]नाच। [16]बल। [17]कांप उठना। [18]अज़ान देने वाला। [19]होश हवास। [20]रक्षक। [21]मंदिर।

ओठों को वक्त गुफ्तगू चूमती थी शिगुफ्तगी
बात जो थी सो फूल की, फूल जो था गुलाब था।
गुंबदे क़स्ले ऐश में, गूँज रही थी यह सदा;
रात न थी वह कैफ़ की, 'जोश' तेरा शबाब था।

नेत्रो मे तो माशूक का मुख प्रतीत होता था और मेरी दृष्टि माशूक के चेहरे पर थी, ऐसा प्रकट होता था कि सूर्य मे कण है और कण मे सूर्य है। पहले चरण के विचार से दूसरे चरण की कितनी अच्छी उपमा है! वायु की लहरो में इत्र था और चाँदनी छिटकी हुई थी। वाटिका के आँगन में पुष्प थे और आकाश पर चाँद था। हृदय दर्द के कारण चूर हो रहे थे और आत्मा कैफ से मस्त थी। वेदना भी अद्वितीय थी और बाजा भी बेजोड था। बात करते समय शिगुफ्तगी (खिलना) अधरो का चुंबन करती थी। वात क्या थी मानो पुष्प और पुष्प गुलाब था। आनद भवन के गुबद मे यह आवाज गूँज रही थी कि वह मस्ती की रात्रि नही थी, वरन् ऐ 'जोश' तेरी जवानी थी।

'जवानी के साजो बर्ग' शीर्षक कविता कितनी सुदर है!

कुछ दिनों भीगी हुई रातों का लुत्फ़े बे क़यास;
शक्करी बातों का रस शादाब चेहरों की मिठास।
कुछ तबस्सुम नर्म कलियों की तरह खिलते हुए;
चंद चेहरे चौदहीं के चाँद से मिलते हुए।
सायदों को चंद शमये आरिज़ों के कुछ गुलाब;
कुछ रुखों की सुर्खियां कुछ मस्त आँखों के शराब।
कुछ खुनुक लहजों के शबनम कुछ तरानों की फुहार;
कुछ लबों का शहद कुछ जुल्फ़ों का इत्रे मुश्कबार।
लुत्फ़ के दो एक दिन तफ़रीह की एक आध रात;
ऐ जवानी थी तेरी ले-दे के इतनी कायनात।
वक्त की खूँरेज़ियों पर बढ़ के पानी फेर दे;
उन दिनों की एक ही शब ऐ जवानी फेर दे।

उन भीगी रातो के आनंद की कल्पना विचार से बाहर है जब मधुर बातो मे रस था और विकसित मुखों पर माधुर्य था। मुस्कान कोमल कुसुम की भाँति विकसित

होती थी और मुख पूर्णिमा के चाँद से मिलते-जुलते थ . कलाइयो की दीपक और चेहरे का गुलाब, चेहरे की लाली और मस्त नेत्रों की मदिरा, ठंडे लहजो के ओस और संगीन की फुहार, अधरो मे शब्द की मिठास थी और केश इत्र बरसाने वाले थे। ऐ जवानी, तेरी पूँजी क्या है? केवल आनंद के दो एक दिन और तफरीह की एक आध रात। समय के अत्याचारो को बढ कर मिटा दे। ऐ जवानी, उन दिनो की मुझे एक ही रात फेर दे।

अब आप की गजलो का भी रसास्वादन कीजिए ––

**न छेड़ शायर रबाब रंगीं यह बज्म अभी नुक्तादां नहीं है,**
**तेरी नवासंजियों के शायां फ़िजाए हिंदोस्तां नही है।**
**मुझे हकीक़त से आशना कर दिलों को तस्कीन देने वाले,**
**हर एक कांटे को जिंदगी के नजर में मेरी गुलाब कर दे।**
**हरीमे जानां में बारयाबी की 'जोश' अगर तुझ को आरजू है,**
**जगा दे गफलत से बे खुदी को खिरद को मसरूफ़ ख्वाब कर दे।**

प्रथम पद मे कवि कहता है कि ऐ कवि, तू अभी रंगीन बाजे को मत छेड़। अभी यह महफिल बारीकियो के समझने वाली नही है, अभी भारत का वायुमंडल तेरे गाने के योग्य नही है। तात्पर्य यह कि हिंदोस्तान तेरी बारीकियो को नही समझ सकता, अत. तेरा उपदेश बेमौका होगा, तू अभी अपने रहस्य को प्रकट न कर। ऐ हृदय को धैर्य देने वाले, मुझे वास्तविकता से आगाह कर। जीवन के प्रत्येक काँटे को मेरी दृष्टि मे गुलाब की भाँति कर दे, जीवन की कठिनाइयो को आसान कर दे। तृतीय पद मे 'जोश' कहते है कि यदि तुझे अभिलाषा है कि तेरा गुजर माशूक की महफिल मे हो तो आत्मविस्मृति को गफ़लत से जगा दे और बुद्धि एव ज्ञान को सोता हुआ छोड़ दे। तात्पर्य यह कि यदि तू ईश्वर तक पहुँचना चाहता है तो अपने को आत्म-विस्मृति की दशा मे कर दे और स्वय मूर्ख बन जा। इस पद मे छायावाद का गहरा पुट है।

अब आप की हुस्नो-इश्क़ सबंधी कविताओ का लुत्फ उठाइए। आप की एक कविता 'सताए हुए से हो' के कुछ पद दिए जाते हैं।

**क्यों सुब्ह यूं अरक़ में नहाए हुए से हो;**
**शायद किसी खलिश के जगाए हुए से हो।**

क्यों खैर तो है आज है क्या दुश्मनों का हाल;
आँखें हैं सुर्ख अश्क बहाए हुए से हो।
आसार कह रहे है छिपाने से फ़ायदा;
दर परदा दिल किसी से लगाए हुए से हो।
जिन मशग़लों से खेलती रहती थी कमसिनी;
उन मशग़लों से हाथ उठाए हुए से हो।
रखते कहां हो और कहां पड़ रहा है पाँव;
मस्तों की तरह होश गँवाए हुए से हो।
अगला सा आज चश्म ग़िज़ाली में रम नहीं;
शायद किसी के दाम में आए हुए से हो।
क्या 'जोश' ना मुराद को देखा है ख्वाब में;
यूं सुब्ह को जो शाम बनाए हुए से हो।

मशग़लों से तात्पर्य काम, कमसिनी से कम उम्री, चश्म ग़िज़ाली से हिरन के नेत्र, रम से भागना, दाम से जाल और ना मुराद से जिस की अभिलाषा न पूरी हुई हो।

अब आप की उपमाओं और अलंकारों का रसास्वादन 'बेकस बीमार' शीर्षक कविता में कीजिए :—

मौत के बिस्तर पर एक दोशीज़ा है लेटी हुई;
जिस ने देखी हैं अभी चौदह बहारें उम्र की।
चेहरए गुल रंग है इस तरह बीमारी से फ़क;
झुटपुटे के आख़िरी लम्हे की हो जैसे शफ़क़।
चल रही है नब्ज़ यूं उठती है जब रह रह के हूक;
फ़िलसफ़ी के कल्ब में जैसे मचलते हों शकूक।
कमसिनी के वलवले इस तरह हैं मजरूह यास;
शहद ख़ालिस में कोई जिस तरह हल कर दे खटास।
यूं बिसाते रंगे रोग़न है उलटने के क़रीब;
जैसे अंगारों पे बासी दूध फटने के करीब।
रूह की जो यूं मुज़महिल है रौ में महसूसात की;
हल्की फीकी चाँदनी जिस तरह पिछले रात की।

एक कुँवारी कम उम्र लड़की, जिस की आयु केवल चौदह वर्ष की है, मृत्यु के बिछौने पर लेटी हुई है, उस का पुष्प जैसे रग वाला मुख बीमारी के कारण इस प्रकार उतग हुआ है जिस प्रकार कि गोधूली के समय उषा का रंग हो। उस की नाड़ी जब उस के हृदय मे हूक उठती है, इस भाँति चलती है मानो किसी दार्शनिक के हृदय में सदेह मचल रहे हो। कम उमरी की अभिलाषाए और वलवले निराशाओं से इस प्रकार जख्मी है जैसे शुद्ध शहद में कोई खटास मिला दे। उस का रूप और उस की छटा इस प्रकार अदृश्य हो रही है जैसे बासी दूध आग पर रखने से फटने के करीब हो। उस के मुख का प्रकाश उस के विचारो मे इस तरह बेकार हो रहा है और ऐसा फीका मालूम होता है जिस तरह कि पिछले रात की चाँदनी हलकी और फीकी हो।

कवि ने कविता के प्रत्येक आरभ के चरण को दूसरे चरण से उपमाए लाकर किस प्रकार निबाहा है, यह तो कवि की कुशल कला का नमूना है। प्रत्येक उपमा अपने स्थान पर ठीक मालूम होती है और एक दूसरे चरण की लगावट को भलीभाँति प्रकट करती है। खयालात स्वय मस्तिष्क से कागज पर आते जाते है और कवि उन को इस प्रकार प्रकट कर देता है कि संदेह की कदापि गुंजाइश नही रहती।

अब आप की 'मुंह अँधेरे का जादू' शीर्षक कविता देखिए। कविता इतनी सरल है कि उस का प्रभाव तुरत हृदय पर पड़ता है।

**यह कौन उठा है शरमाता?**
**रैन का जागा नींद का माता।**
**नींद का माता धूम मचाता,**
**अंगड़ाइयां लेता, बल खाता।**
**यह कौन उठा है शरमाता?**
**रुख पर सुर्खी आंख में जादू;**
**भीनी भीनी बर में खुशबू।**
**बांकी चितवन सिमटे अबरू;**
**नीची नजरें बिखरे गेसू।**
**यह कौन उठा है शरमाता?**
**नींद की लहरें गंगा-जमुनी;**
**जिल्द के नीचे हलकी-हलकी।**

आंचल ढलका मसकी सारी
हलकी महदी धुंधली बेंदी।
यह कौन उठा है शरमाता?

अब गाग के 'किसान' शीर्षक कविता के कुछ पद देखिए —

पारा पारा अब्र सुर्ख़ी सुर्खियों में कुछ धुवां;
भूली भटकी सी जमीं खोया हुआ सा आसमां।
ख़ामुशी औ' ख़ामुशी में सनसनाहट की सदा;
शाम की खुनकी से गोया दिन की गरमी का गिला।

इन दोनो पदों मे कवि ने सध्या समय का चित्र खींचा है। बादल टुकडे-टुकडे हो गया है, उस मे लाली आ गई है, और लाली मे धुवा नजर आता है। पृथ्वी भूली-भटकी सी दीख पडती है और आकाश खोया हुआ सा ज्ञात होता है। बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ है और सन्नाटे मे कुछ सनसनाहट की आवाज ऐसी मालूम होती है मानो दिन की गरमी शाम की ठडक से शिकायत कर रही हो। फिर कवि किसान के सबध मे क्या कहता है—

दौड़ती है रात को जिस की नजर अफ़लाक पर;
दिन को जिस की उँगलियां रहती है नब्ज़े ख़ाक पर।

रात को उस की दृष्टि आकाश पर दौडती है और दिन में उस की उंगलिया पृथ्वी की नाडी पर रहती है।

टोकरा सर पर, बग़ल में फाबड़ा त्योरी पै बल;
सामने बैलो की जोड़ी दोश पर मजबूत हल।

इस पद मे किसान की एक तस्वीर खीच दी गई है। दोश से तात्पर्य कधा है।

डूबता है ख़ाक में जो रूह दौड़ाता हुआ;
मुज़महिल ज़र्रों की मौसीक़ी को चौकाता हुआ।
जिस की ताबानी के अंदर जौ हिलाले ईद की;
ख़ाक के मायूस मतले पर किरन उम्मीद की।
जिस का मस खाशाक में बुनता है यक चादर महीन;
जिस का लोहा मान कर सोना उगलती है जमीन।

अपनी दौलत को जिगर पर तीरग़म खाते हुए;
देखता हूँ मुल्क दुश्मन की तरफ़ जाते हुए।
सीमो ज़र, नानो नमक, आबो ग़िज़ा कुछ भी नही;
घर मे यक ख़ामोश मातम के सिवा कुछ भी नही।

किसान अपनी आत्मा को पृथ्वी पर दौड़ाता हुआ डूबता है और इस प्रकार पृथ्वी के कणो को अपनी सगीत सुधा से चौंका देता है। उस के प्रकाश में ईद के चाँद का प्रकाश है, और मिट्टी के निराशामय बादल में आशा की किरन है; उस के मिट्टी के स्पर्श करने से एक महीन चादर सी खाक पर बुन जाती है, और पृथ्वी उस का लोहा मान कर सोना उगलती है। अपनी कमाई की पूँजी को अपने जिगर पर दुख या तीर खाते हुए वैरी के देश की ओर जाते हुए देखता है। उस के पास चाँदी, सोना, रोटी, नमक, पानी, खाना कुछ भी नही है, तात्पर्य यह कि उस के घर मे एक खामोश मातम (शोक) के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। खामोश मातम' ने पद मे जान डाल दी है।

आप ने 'रवा' साहब उन्नावी के मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए 'मातम रवा' शीर्षक कविता लिखी। कितने गजब की है। इस से यहा पर अतिम उद्धरण दिया जाता है —

यक ऐसा सदमये जाँकाह पहुँचा है कि रह-रह कर;
खुद अपनी ज़िंदगी की तल्ख़ियो को भूल जाता हूं।
न जाने कौन मुतरिब उठ गया है बज़्म आलम से,
कि अपने दिल के अंदर एक सन्नाटा सा पाता हूं।
फ़िज़ा तारीक हो जाती है, तारे काँप उठते हैं।
'रवा' की मौत पर रातो को जब आँसू बहाता हूं।

'रवा' साहब उन्नाव के एक प्रसिद्ध उर्दू कवि थे। आप की मृत्यु से 'जोश' के हृदय में वज्रपात सा हुआ। दुख प्रकट करते हुए आप फरमाते है कि उस की मृत्यु से मेरे हृदय में एक ऐसा जीवन को भुलाने वाला दुख मिला है कि वह इस दुख के आगे स्वयं अपने दुखो को भूल जाता है। कवि कहता है कि नही मालूम कि इस संसार की महफिल से कौन सा गायक उठ गया है कि वह अपने हृदय मे एक सन्नाटा सा पाता है।

जिस समय म रात्रि म रवा की मौत पर आसू बहाता ह वायुम ल वि कुल अधकारमय हो जाता है और तारे काँप उठते है।

'जोश' साहब की रचनाएं वास्तव मे जोश पैदा करने वाली होती हैं। उन के अध्ययन से रोमाच उत्पन्न हो आता है, हृदय में क्रांति की लहर दौड जाती है, किंतु क्षणिक काल के लिए; क्योंकि यह देखा गया है कि मनुष्य एक कान से सुनते है और दूसरे से निकाल देते है। यदि उस पर अमल किया जाय तो यथार्थ मे एक जबरदस्त परिवर्तन हो सकता है; परतु सुनता ही कौन है ? खैर जो भी हो, 'जोश' साहब अपना एक विशेष उद्देश्य लेकर आए है, वह उद्देश्य है मुर्दा दिलो में जान फूँकना। उन्हें जगाना। वह अपने उद्देश्य मे उसी समय सफल होगे, जब समस्त भारतवासी उन के कहने पर अमल करेगे, अन्यथा यू तो बहुत आए और बहुत से चले गए।

# समालोचना

## कविता

हल्दीघाटी—रत्नाकार, श्री श्यामनारायण पांडेय, प्रकाशक, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, कई चित्रों सहित, सजिल्द। पृष्ठ-संख्या २५। २००।

'हल्दीघाटी' पुस्तक महाराणा प्रतापसिंह की काव्यात्मक जीवनी है। इस में उन के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया गया है। पुस्तक के प्रारंभ में 'समाधि के समीप' से १६-१७ पृष्ठों की भूमिका है जिस में लेखक ने महाराणा के वीर चरित्र और उन के जीवन के संकटों और परीक्षाओं का उल्लेख किया है। भूमिका महाराणा प्रताप को संबोधित कर के लिखी गई है, और लिखने का ढंग पुराना किंतु प्रभावशाली है। तत्पश्चात् मंगलाचरण और प्रस्तावना के दो-तीन पृष्ठ हैं। फिर १५ पृष्ठों में 'प्रताप', 'चित्तौड़', 'झालामाला', 'वीर सिपाही', 'चेतक', 'हल्दीघाटी' और महाराणा के 'भाला' का परिचय ओजस्वी रीति से कराया गया है। इस के बाद सर्गबद्ध कथा का आरंभ होता है जो सत्रह सर्गों में समाप्त होती है। पुस्तक में प्रत्येक सर्ग की पंक्ति-संख्या दी गई है जिन का कुल जोड़ ३४१२ होता है। अंत में १०८ पंक्तियों का परिशिष्ट है जिस में मेवाड़ के 'अभिमानी सिंहासन' की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप की आत्मा का आवाहन किया गया है। यह पंक्ति-संख्या पंक्तियों के मुद्रण के हिसाब से दी गई है, छंद के हिसाब से वह इस की आधी हो जायगी।

इस पुस्तक को लेखक ने 'वीररस प्रधान आदि महाकाव्य' शीर्षक दिया है, इस-लिए आशा की जा सकती थी कि पुस्तक जीवनी के ढंग पर न चल कर चरित्रप्रधान काव्य के पैमाने पर चलेगी और यदि महाकाव्य कहलाना उस का लक्ष्य है तो उस के कथानक और वर्णनशैली भी उदात्त और उत्कर्षप्राप्त होंगे (जो महाकाव्य के लिए अनिवार्य है) किंतु हम देखते हैं कि लेखक जीवनी के प्रति अपना मोह नहीं छोड़ सका है। इस दृष्टि से दो बातें विशेष रूप से खटकती हैं। प्रथम सर्ग की सारी कथा, जिस में शक्तिसिंह और

प्रताप का प्रसग है काव्य के लिए अनावश्यक तो है ही महाराणा के चारित्रिक उत्कर्ष के लिए घातक भी हो गई है। जो एकत्व ('यूनिटी') काव्य अथवा कथा के सघटन मे अत्यावश्यक है उस का कोई पता हमे प्रथम सर्ग मे नही मिलता। दूसरे सर्ग से लेकर अत तक कथा महाराणा के चरित्रोत्कर्ष से सबद्ध है। प्रथम सर्ग मे हम यह बात नही पाते। शेष काव्य से उस का क्या संबध है, यह स्पष्ट नही होता। जीवनी का यह अश काव्य का अश नही बनाया जा सका।

दूसरी घटना जो महाराणा के उदात्त चरित्र से मेल नही खाती—बच्चो के दु:ख से उन का रो पडना और उसी से क्षुब्ध हो कर अकबर के पास सन्धिपत्र भेजने को तैयार हो जाना है। इस अवसर पर महाराणा के मानवोचित कौटुबिक स्नेह और उन की पत्नी की चारित्रिक दृढता प्रकट हुई है, किंतु प्रताप के चरित्र का सम्यक् निर्वाह नही हो पाया।

ये दो प्रसग है जो महाराणा के चरित्र और काव्य के सघटन के अनुकल नही हुए। महाकाव्य के उत्कर्ष के संबंध मे यह कह सकते है कि महाकाव्य के लिए आवश्यक महत् प्रेरणा, नव्य दर्शन और तदनुकूल काव्य-प्रस्रवण लेखक मे नही है। महाराणा प्रताप का रोष उभाडने के लिए जिन घटनाओं का सघटन किया गया है वे अलग-अलग बिखरी हुई और छोटी परिधि पर खडी हुई है। राष्ट्रव्यापी उद्वेजन का आभास देने और दृश्य दिखाने मे लेखक सफल नही हुआ। विद्रोही और स्तब्ध वातावरण का निर्माण करने के उपयुक्त काव्यशक्ति उस ने नही दिखाई। अकबर के चरित्र में कामुकता और चुबन-आलिगन आदि का वर्णन न तो महाकाव्य के प्रतिनायक के ऐश्वर्य के अनुरूप है, और न दूसरा पक्ष विवशता और अनिवार्य वैमनस्य की स्थिति पर पहुँचाया गया है। घात और प्रतिघात दोनो ही क्षुद्र पैमाने पर चित्रित है।

इस पुस्तक की कुछ अपनी विशेषताए भी है। वीररस के साधन-स्वरूप इस मे एक तीव्रगति और उद्वेग सनिविष्ट है। क्रियाओ के बाहुल्य द्वारा गति की तीव्रता उत्पन्न की गई है। यह रचनाकार की अपनी चीज है—

**निर्बल बकरों से बाघ लड़े।**
**भिड़ गए सिंह मृग छौनों से।**
**घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी।**
**पैदल बिछ गए बिछौने से।**

क्रियाओ का बाहुल्य देखने लायक है।

एक दूसरी चीज जो हमे आकर्षित करती है वह है तुको का आनुकूल्य और इस प्रकार की द्विरुक्तियां—

राणा का जयकार भरा,
इस में स्वदेश का प्यार भरा।
शांत जलधि में ज्वार भरा,
नीरव में हाहाकार भरा।

ये कई जगह तो सस्ते ढग से व्यवहार की गई हैं किंतु जहा ऐसा नही हुआ वहा वे प्रभावशालिनी हुई है—

चेत करो अब चेत करो,
चेतक की टाप सुनाई दी।
भागो, भागो भाग चलो,
भाले की नोक दिखाई दी।

यह मैथिलीशरण जी की शैली के अनुरूप है। लेखक ने सफलतापूर्वक इस को निबाहा है। किंतु अतिरंजित और शिथिल वर्णनो की भी उस मे कमी नही है। 'चेतक' के मर जाने पर प्रताप का विलाप—

हा चेतक तू आँखें खोल,
कुछ तो उठ कर मुझ से बोल।
मुझ को तू न बना निरुपाय,
मत बन मुझ से निठुर अबोल।

ये पंक्तियां निरी तुकबंदी है। इन की प्रशंसा कविसम्मेलनो की भीड ही कर सकती है, कोई भी काव्यविवेचक नही। 'हल्दीघाटी' मे नई उपमाओ, नए भावविन्यास और नवीन मानसिक चित्रणो की कमी बहुत खटकती है।

अवश्य ही महाराणा प्रताप की कथा हिंदूमात्र के लिए जातीय गौरव का विषय है, किंतु उसे काव्य के साँचे मे ढालना और नवीन अभिव्यंजना से सज्जित करना—नए काव्य का स्वरूप देना—विशिष्ट कवि का काम है। प्रस्तुत पुस्तक पुरानी शैली पर

लिखी गई है और वह भी पर्याप्त प्रौढ नही है। हिंदी मे सर्वोत्तम रोमिंयो और प्रौढतम काव्यों के समकक्ष हम 'हल्दीघाटी' को नहीं रख सकते। फिर भी इसे 'देव पुरस्कार' द्वारा पुरस्कृत किया गया है। यहा हम इस विवाद मे नहीं पड़ना चाहते कि इस का कारण क्या है या क्या हो सकता है। सभव है निर्णायको का जातीय अभिमान काव्यविवेचन मे बाधक बन गया हो। यह भी असभव नही कि निर्णायक पुरानी शैली के हिमायती हो।

न० शा०

**अपराजिता**—रचयिता, रामेश्वर शुक्ल, 'अचल', प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, पृष्ठ संख्या २४+१७४, जिल्द-सहित मूल्य २) । १९३९ ।

'अपराजिता' नवीन काव्यधारा की सृष्टि है। यह मुक्तक काव्य है। इस मे प्रेमी के हृदयोद्गार के रूप मे ऐसी प्रेमिका के स्मृतिचित्र है जो प्रेमी से मिली ही भर है किंतु स्थिर सबध-स्थापन के पूर्व ही जो स्वर्ग प्रयाण कर गई है। (प्रचलित सामाजिक प्रतिबधो का सकेत)। इन चित्रो मे प्रचुर भावोन्माद भी मिलता है जो स्वस्थ काव्य के लिए अनुपयोगी है किंतु यह प्रयास नई दिशा मे है और कवि द्वारा नियोजित नए रूप-विन्यास, नवीन अलकार—उस की नव्य प्रतिभा के स्फुरण को देखते हुए हम कह सकते है कि अनावश्यक भावोन्माद शीघ्र ही प्रशमित होगा और कवि अपने काव्य को पूर्ण स्वस्थ और शक्तिशाली बना लेगा।

नई और अछूती अभिव्यक्ति की सूचना मिलने पर कवि की प्रतिभा पर आप ही जो विश्वास उत्पन्न होता है वह किसी भी पुरानी पगडडी पर चलने वाले के प्रति नहीं उत्पन्न हो पाता। 'बिना लीक वाले शायर' की महिमा आज से नही बहुत दिनो पूर्व से ही लोक-प्रचलित है। किंतु साथ ही हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह नई सृष्टि आरंभ से ही परिपुष्ट और सर्वगुणसपन्न भी होगी। आरंभ मे हमे देखना इतना ही पड़ता है कि वह रचनाकार किस गतिविधि से आगे बढ रहा है। उस के पास सबल कैसा है और उस की प्रवृत्तिया कैसी है।

'अपराजिता' के कवि की प्रवृत्तियो के सबध मे दो आरोप मुख्यत. किए जाते है। एक यह कि उस के भावों मे अस्पष्टता, धुँधलापन, और अनावश्यक फेन या उबाल है और साथ ही उस की शब्दयोजना में शैथिल्य और रचना मे अनाकांक्षित विस्तार है जिस से भावो का मार्मिक प्रभाव घट जाता है। दूसरा यह कि उस की अतर्निहित भावना यथेष्ट

परिमार्जित नही । ये दोनो दोष ऐसे है जो एक युवक कवि के लिए जो नवीन प्रयास मे व्यस्त है, क्षम्य ही नही बहुत अशो मे अनिवार्य भी है । किंतु इन के साथ ही हमे यह भी देखना है कि रचनाकार की शक्तिया कैसी है, वह इन अवरोधो को लाँघने मे समर्थ है या नही । प्रगतिशील जीवन से उस का सबध (अवश्य ही काव्यगत सबध) घनिष्ट है या नहीं । इन दृष्टियो से 'अपराजिता' का स्वागत होना चाहिए । 'अपराजिता' मे ऐसी प्रेरणाएं दिखाई देती है जो उफान के स्थान पर प्रोज्ज्वल विद्रोह की ओर उस के लिए अत्यावश्यक शांत और सुदृढ मनस्थिति की सघटना कर सके ।

यह तुम्हारी व्याप्ति जीवन में न जब तक शांति लाती ।
बस समझ लो है अधूरी प्राण तेरी ज्योति बाती ॥—अपराजिता

अचल जी की नई रचनाए 'रोती हों' 'वह मजूर की अधी लडकी' और 'दोपहर की बात' आदि उसकी पुष्टि करती है । न० वा०

## नाटक

**सत्याग्रही (या हरिश्चंद्र नाटक)**—लेखक, श्री व्रजनदन शर्मा, प्रकाशक, दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा, मद्रास, पृष्ठ-सख्या १२८, सादी जिल्द, मूल्य ।।।)

यह नाटक महाराज हरिश्चद्र की पौराणिक कथा मे फेरफार करके सभवतः इस उद्देश्य से लिखा गया है कि इस मे नवीन समस्याओ का दिग्दर्शन हो जाय, सत्याग्रह सबंधी लेखक के विचार प्रकाश मे आ जाए और साथ ही स्वप्न में राज्य खोने के अलौकिक हेतु के स्थान पर लौकिक और बौद्धिक हेतु की प्रतिष्ठा हो जाय । इसी लिए लेखक ने स्वप्नवाले प्रसग को छोड कर हरिश्चद्र से केवल लौकिक प्रतिज्ञा करवाई है यद्यपि यहा भी कोई ऐसा आधार नही मिलता जिस से हरिश्चंद्र का प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना बुद्धि सम्मत माना जाय। किसी के कहने मात्र से वचनबद्ध हो जाना न तो सत्याग्रही का गुण हो सकता है न बुद्धिवादी का। इस की अपेक्षा तो स्वप्न मे राज्य हार जाने पर उसे छोड़ देने का मानसिक और मनोवैज्ञानिक आधार अधिक परिपुष्ट है ।

किसानो का सुधार, बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा और सत्याग्रह, इन एकाधिक लक्ष्यों का समन्वय करने में नाटककार को सफलता नहीं मिल सकी है, जिस के कारण नाटक की रचना विशृंखल और उस का प्रभाव शिथिल हो गया है। विशेष कर विश्वामित्र

संबंधी कथांश में नाटकीयता का अभाव खटक जाता है। मूल पौराणिक कथा में अलौकिकता का जो नाटकीय आकर्षण है, वह भी इस में नही।

यदि आधुनिक सत्याग्रही स्वप्न की सत्यता पर विश्वास नही करता (पौराणिक कथा में स्वप्न को सत्य मान कर कितना सांकेतिक प्रभाव उत्पन्न किया गया है!) तो वह बिना पूरी बात को जाने और उस की सत्यनिष्ठता परखे, प्रतिज्ञा कर लेना भी सत्याग्रह के नियम के विपरीत मानेगा। कथा में नवीनता का आयोजन न तो नाटकीय दृष्टि से और न सत्याग्रह-संबंधी नवीन धारणा को स्पष्ट करने की दृष्टि से सफल हुआ है।

पुस्तक का पिछला हिस्सा जिस में मूल पौराणिक कथा का, जो अत्यधिक करुणापूर्ण और नाट्योपयोगी है, अनुकरण किया गया है, पूर्वांश की अपेक्षा अधिक अच्छा बन पड़ा है। मालूम होता है लेखक ने नए विचारों को भरने की चेष्टा में बहुत जल्दी की है, पुस्तक को कला की वस्तु बनाने में उन का समुचित उपयोग नही किया और नए विचारों में भी यथेष्ट प्रौढ़ता लाने का प्रयत्न नही किया। पूर्वार्द्ध की नई कथा और उत्तरार्द्ध की मूल कथा का नाटकीय, कलात्मक तथा विचारमूलक संबंध भी वह स्थापित नही कर सका। तो भी नवीन लेखक का यह प्रथम प्रयास उत्साहवर्द्धन के योग्य है।

न० वा०

## आलोचना

**साकेत—एक अध्ययन:**—लेखक, प्रो० नगेंद्र, एम० ए०; प्रकाशक, साहित्य-रत्न भंडार, आगरा; पृष्ठ संख्या २६४। सादे कागज की जिल्द। मूल्य १॥)

'साकेत' श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की सुप्रसिद्ध रचना है। उसी का एक अध्ययन प्रो० नगेंद्र ने इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। 'अध्ययन' शब्द का जो अर्थ पाश्चात्य समीक्षा में प्रचलित है और उस के जैसे निदर्शन हम वहां पाते हैं, उस का इस अध्ययन में बहुत अंशों तक अभाव दीखता है। वहां अध्ययन में पुस्तक के विभिन्न पहलुओं को केवल सामने ही नही रखते, सामग्री का केवल वर्गीकरण ही नही कर देते, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक आधार पर एक-एक पहलू की पूरी छानबीन करके पुस्तक की विशेषताएं प्रकाश में लाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में प्रो० नगेंद्र ने महाकाव्य के उपकरणों, गुप्त जी की काव्य-शक्ति, साकेत के निर्माणात्मक अंगों और पहलुओं और उस के काव्यजन्य समन्वय आदि पर अपना अध्ययन हमें नही दिया, यद्यपि

काव्य और कला-समीक्षा के ये केंद्रीय अंग हैं। 'साकेत की शैली और उस के प्रसाधन' वाले अध्याय मे, जहां हम इन की कुछ आशा रख सकते थे, इन का अभाव पाते हैं। काव्य-समीक्षा की दृष्टि से जो अपेक्षाकृत कम महत्व के विषय हैं, उन का बड़े विस्तार के साथ हवाला दिया गया है। किंतु यह हवाला भी संग्रह मात्र है, इस मे विवेचना का अंश बहुत थोड़ा है। 'साकेत के गार्हस्थ्य चित्र' और 'साकेत का सांस्कृतिक आधार' के अध्यायों मे तो ऐसा जान पड़ता है कि अध्ययनकर्ता उन चित्रों की काव्यात्मक विशेषता और उस संस्कृति के ऐतिहासिक आधारों का उल्लेख छोड़ कर अपने को उन्ही मे रमा लेना चाहते हैं। अवश्य ही यह अध्ययन का तरीका नही है। 'साकेत' के भावपूर्ण स्थलों के चुनाव मे भी व्यक्तिगत अभिरुचि का प्राधान्य है, काव्य के विश्लेषण का प्रयास नहीं। गुप्त जी के प्रति कोरी श्रद्धा उत्पन्न करने मे यह पुस्तक काम दे सकती है किंतु उस श्रद्धा का कोई सुदृढ आधार स्थापित करने का प्रयत्न लेखक ने नहीं किया (यदि आधारहीनता ही श्रद्धा का दूसरा नाम हो तो बात और है)। श्रद्धा की पराकाष्ठा प्रो० नगेंद्र ने अपने इस काव्य मे उपस्थित की है—'मानवत्व, मानव के पारस्परिक संबंध-संसर्गों का व्याख्यान, साकेत की अक्षय विभूति है।' क्या ही अच्छा होता यदि इस प्रकार के कही न ले जाने वाले निर्देशों को छोड कर प्रो० नगेंद्र इस पुस्तक की भूमिका मे पंडित अमरनाथ झा द्वारा सुझाई हुई गुप्त जी की काव्यशैली की ही एक क्रमबद्ध और सुस्पष्ट व्याख्या पाठकों के सम्मुख रखते। तब पुस्तक कम से कम विद्यार्थियों के लिए 'कुंजी' का काम दे सकती। प्रस्तुत रूप मे पुस्तक केवल पढ़ी जा सकती है, समझने का काम उस से नही लिया जा सकता। इस दृष्टि से लेखक द्वारा इस पुस्तक के लिए प्रयुक्त 'एक अध्ययन' शब्द एक दूसरे प्रकार से सार्थक हो गया है।

न० वा०

## आत्मचरित

**आत्मचरित-चंपू**—लेखक, प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र, प्रकाशक, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय। जिल्द और चित्रों सहित। पृष्ठ-संख्या १५०। मूल्य १॥)

प्रोफ़ेसर अक्षयवट मिश्र हिंदी के पुराने लेखकों मे से हैं। आजकल आप पेन्शन पा कर घर रहते हैं। घर आप का डुमरांव, बिहार प्रांत मे है। वृद्धावस्था के कारण, खेद है, आप का स्वास्थ्य इन दिनों अच्छा नही रहता। 'आत्मचरित' मे आप लिखते हैं—

'अब तो स्मृति अत्यंत क्षीण होती जा रही है, केवल हरिनाम स्मरण ही अवलंब है।' प्रस्तुत पुस्तक आप ने अपने मित्रों के अनुरोध से लिखी है।

यद्यपि इस पुस्तक को मिश्र जी ने चंपू नाम दिया है किंतु इस में प्रायः सब का सब गद्य है। केवल अध्यायों के आरंभ और अंत में दो एक छोटे-छोटे पद्य दे दिए गए हैं (जो भक्तिमूलक हैं, और जिन से पुस्तक की कथा का कुछ भी संबंध नहीं)। पुस्तक में प्रसंगवश कुछ कवियों के और स्वयं मिश्र जी के बनाए कुछ छंद भी उद्धृत हैं, किंतु पुस्तक का मूलभाग गद्य में ही है।

मिश्र जी के गद्य की भाषा बड़ी साफ़, सरल और स्पष्ट है। आप के लिखने का ढंग आत्मीयतापूर्ण और आकर्षक है। यही कारण है कि आप की इस जीवनी में उस समय की सामाजिक दशाओं का बड़ा ही जीता-जागता चित्र उतर आया है। आज बहुत से लेखक उन बातों को लिखने में संकोच करते जिन्हें मिश्र जी ने खुले दिल, बिना झिझक, बिना कलम पर बल पड़े, लिख दिया है। इस से, अनजान में ही, पुस्तक सत्य और स्वाभाविकता के बहुत निकट चली आई है।

अपनी पत्नी के संबंध में मिश्र जी लिखते हैं—"उस समय मेरी सुंदरी पत्नी की अवस्था केवल १३ वर्ष की थी। हृदय का आदान-प्रदान समस्त जीवन भर के लिए हो गया। रूप-शोभा देख कर चित्त वशीभूत हो गया। . . मेरे परिवार के सभी लोग इन के रूप-गुण और शील-स्वभाव से प्रसन्न हो गए। . . . मैं दांपत्य सुख से सुखी हूं। सदा इन को साथ रखता हूं। इन की प्रतिष्ठा भी बहुत करता हूं। अधिकार भी बहुत दे दिए हैं। जिस ने मेरे लिए जन्मभूमि, भाई, पिता-माता, कुलपरिवार, मान-मर्यादा, सब का त्याग किया उस के प्रति मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है।"

यही दिल की सच्ची बात चित्रों को सर्वत्र सजीव बना सकी है। साथ ही चित्र भी ज्यों के त्यों बिना किसी रंगामेजी के खिंच आए हैं। राजघरानों और पूँजीपतियों में संपर्क जोड़ने की प्रेरणा, उन की प्रशंसा में स्तुतियां बनाना, उन की सहायता से पढ़-लिख सकना और सामाजिक मानमर्यादा बढ़ा पाना, संस्कृत और हिंदी पढ़े लिखों की उस समय की कठिनाइयां, अंग्रेज़ अधिकारियों के पास जाकर आश्रय पाना, उन के गुणों का गान और उन की मैत्री का सम्मान करना आदि अपनी और अपने समय की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अच्छा खाका मिश्र जी ने खींचा है।

पुस्तक इतनी छोटी है कि चित्र खूब भरे-पूरे नही आ सके है। विविधता भी कम है। समसामयिक हिंदी साहित्य और साहित्यिकों की चर्चा बहुत ही थोडी है। हम चाहते है कि मिश्र जी इस संबध मे एक स्वतत्र ही पुस्तक लिखे जिस मे विहार और कलकत्ता के उस समय के साहित्यिको का पूरा हवाला हो। अतः हमारी परमेश्वर से प्रार्थना है कि मिश्र जी शीघ्र ही स्वस्थ हो कर इस काम को पूरा कर दे।

न० वा०

## स्फुट

**खेती की कहावतें**—प्रकाशक, ग्रथमाला कार्यालय, बॉकीपुर। सग्रहकर्ता, श्री 'व्यथित हृदय'; पृष्ठ-सख्या, ८७। मूल्य ।।=)

यह पुस्तक घाघ और भड्डुरी के नाम से प्रचलि कृपिविपयक पुरानी कहावतो का फुटकल सग्रह है। उन कहावतो का, जो पुराने पद्य मे है, अर्थ खड़ी बोली गद्य मे दे दिया गया है। घाघ और भड्डुरी की कहावतों का सग्रह हिंदुस्तानी एकेडमी से भी प्रकाशित हो चुका है। वह इस से कहीं बडा है। जनता के उपयोग में इस प्रकार की पुस्तकें तभी आ सकती है जव किसी कृपिविशेषज्ञ के द्वारा, आवश्यक टिप्पणियो और विवरणों के साथ ये प्रकाशित की जायँ। यही नहीं, नवीन अनुसंधान को भी उन मे स्थान दिया जाय। कृपि भारतवर्प का सर्वप्रधान उद्योग है। इस के सुधार के लिए सरकारी कमीशनें भी बैठ चुकी है और महकमे खुले हुए है। आवश्यकता यह है कि उन का काम फाइलो तक ही सीमित न रहे, सस्ती पुस्तको के रूप में किसानो के सामने वह रक्खा जाय। जव तक ऐसा नही होता तव तक 'खेती की कहावतें' जैसी पुस्तकें केवल साहित्यिक मनोरजन का काम दे सकती है।

न० वा०

---

# हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १॥)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १॥)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड्थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १॥)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास (दूसरा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२-२३) भारतीय इतिहास की रूपरेखा ( २ भाग )—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्य-कृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी० मूल्य ५)

(३१-३२) हिंदी कवि और काव्य (२ भाग)—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य प्रथम भाग ४॥); द्वितीय भाग ३॥)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य १)

(३४) जीवनवृत्ति-विज्ञान—लेखक, प्रोफेसर महाजोत सहाय। मूल्य १)

(३५) न्याय—जॉन गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २।)

(३६) चाँदीकी डिबिया—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य १॥)

(३७) धोखाधड़ी—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०। मूल्य १॥)

(३८) हड़ताल—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २)

(३९) भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष—मूल-लेखक सर सी० वाई० चिंतामणि। अनुवादक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा। मूल्य १)

(४०) हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी, एम० ए०। मूल्य २॥)

(४१) विज्ञान-हस्तामलक—लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए०। मूल्य ६)

(४२) यूरोप की सरकारें—लेखक, श्रीयुत चंद्रभाल जौहरी। मूल्य ३॥)

(४३) हिंदी भाषा और लिपि ( तीसरा संस्करण )—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ॥)

(४४) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

# नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की नवीन प्रकाशित पुस्तकें

## भारतीय मूर्तिकला

( लेखक—श्री राय कृष्णदास )

इस पुस्तक में मोहनजोदडो के समय से लेकर आज तक की भारतीय मूर्तिकला का वर्णन बडी सरल भाषा मे किया गया है। साथ ही इस कला के सौदर्य की विशेषताएँ एव तात्विक व्याख्या भी दी गई है। अपने ढग की हिंदी ही मे नही समस्त भारतीय भाषाओं मे पहली पुस्तक है। पृष्ठसख्या २३९+१३, ३९ चित्र तथा मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १), विशिष्ट सस्करण १।)

## भारत की चित्रकला

( लेखक—श्री राय कृष्णदास )

यह तथा भारतीय मूर्तिकला संबद्ध प्रकाशन है ; इसमे अपनी महान् चित्रकला का अथ से इति तक का इतिहास, सौदर्य-निरीक्षण, एवं उसके मर्म की बातें तो है ही, साथ ही लेखक ने लगभग ३० बरस के अपने गभीर अध्ययन का साराश भी दिया है जिससे भारतीय चित्रकला के इतिहास-विषयक कई महत्त्वपूर्ण नई बातो का उद्घाटन हुआ है और नया प्रकाश पड़ा है। यह भी अपने ढंग की हिंदी ही मे नही, समस्त भारतीय भाषाओं मे पहली पुस्तक है। पृष्ठसंख्या १८०+१६, चित्रसंख्या २७ (सादे) +१ (रगीन) मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १=), विशिष्ट सस्करण १।=)

## मआसिरुलउमरा ( दूसरा भाग )

( अनुवादक—बाबू ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल०बी० )

मूल ग्रथ फारसी भाषा मे है और उसमे मुगल-शासन-कालीन सरदारो और अमीरों की जीवनियाँ दी गई है। मुगल-कालीन इतिहास के अध्ययन के लिये ग्रथ बहुत उपयोगी है। इसका पहला भाग पहले ही प्रकाशित हो चुका है। इस भाग में लगभग ६०० से ऊपर पृष्ठ है और कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो के चित्र भी दिए गए हैं। पृष्ठसख्या ६०० से ऊपर। मूल्य ४)

## बाल-मनोविज्ञान

( लेखक—प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी० )

आजकल बालको की शिक्षा और सुधार के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान कितना आवश्यक है यह बतलाने की आवश्यकता नही। ठोंक-पीटकर बालको को पढाने और दुरुस्त करने का समय अब बहुत पीछे चला गया। अब सभी बुद्धिमान् लोग समझने लगे है कि बालको को ठोंकने-पीटने के बदले हमे उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो का पता लगाना चाहिए। उन्ही प्रवृत्तियों का अनुसरण करके हम उन्हे बड़े से बड़ा आदमी

बना सकते है। बाल-मनोविज्ञान मे बडी सरल और सुबोध भाषा मे लेखक ने बालकों की प्रवृत्तियो का विश्लेषण करके उन्हे समझाया है। पृष्ठसख्या २६०, मूल्य १)

## बिहार में हिंदुस्तानी

**( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )**

हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार आजकल बडे जोरो से किया जा रहा है। हिंदुस्तानी के समर्थक उसे सबके समझने योग्य सरल भाषा बतलाते हैं, पर वस्तुतः इस नाम की आड मे कही तो शुद्ध उर्दू का प्रचार करते हैं और कही हिंदी का अत्यत विकृत रूप उपस्थित करते है। बिहार प्रात मे हिंदुस्तानी का प्रचार किस कैड़े से करने का उद्योग किया गया है इसी की छान-बीन इस पुस्तक में की गई है। पृष्ठसंख्या ६१, मूल्य ।)

## कचहरी की भाषा और लिपि

**( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )**

कचहरियों मे इतिहास के भिन्न-भिन्न कालो मे किस प्रकार की लिपि और भाषा का प्रचार रहा है तथा इस समय वस्तुत कचहरी की भाषा और लिपि कौन सी होनी चाहिए, इसी का विवेचन इस पुस्तक मे किया गया है। पुस्तक अवश्य पठनीय है। पृष्ठसंख्या १७६, मूल्य ॥)

## भाषा का प्रश्न

**( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम०ए० )**

आजकल हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के झगड़े के कारण भाषा की समस्या बहुत ही जटिल हो गई है। किंतु लेखक ने कई लेख लिखकर इस पुस्तक मे इस प्रश्न को बहुत अच्छी तरह सुलझाया है। पृष्ठसख्या १८८, मूल्य ॥)

## संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर

**( संपादक—बा० रामचंद्र वर्मा )**

हिंदी का यही एक छोटा सस्ता, और सबसे अच्छा शब्दकोष है। यह बृहद् हिंदी शब्दसागर का ही संक्षिप्त रूप है। नया सस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसख्या १२००, मूल्य ४)

## कबीर-वचनावली

**( संपादक—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" )**

इस पुस्तक का खूब प्रचार हो चुका है। कबीर की रचनाओं का बहुत सुदर सग्रह है और भूमिका बहुत विद्वत्ता-पूर्ण है। आठवाँ सस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसख्या ३०० से ऊपर, मूल्य १)

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जुलाई, १९४०

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जुलाई, १९४०

संपादक—रामचंद्र टंडन



## लेख-सूची



वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

// हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग १० } जूलाई, १९४० { अंक ३

# शाकुंतल का नैतिक रहस्य : एक नया दृष्टिकोण

[ लेखक—श्रीयुत भगवतशरण उपाध्याय, एम्० ए० ]

पंद्रह सौ वर्ष से अधिक हुए जब महाभारत की एक सामान्य आख्यायिका को लेकर एक महाकवि ने उस में अमर प्राण फूँक दिए। तब से आज तक निरंतर हम ने उस के संपर्क से अनंत साहित्यिक आनंद का लाभ उठाया है। यह शाकुंतल क्या है? क्या एक शृंगारिक कवि की वासना का रौप्य व्यक्तीकरण? इतने दिनों से देशी-विदेशी विद्वान् इस शाकुंतल के स्रष्टा को असीम श्रद्धा और आश्चर्य से देखते आ रहे हैं, पर क्या उन्हों ने कभी 'अभिज्ञानशाकुंतल' सी अलभ्य कृति के बाह्यरूप के पीछे छिपी हुई उस की आत्मा पर एक दृष्टि डाली है? महाकवि बाणभट्ट कालिदास की सूक्तियों में 'मधु-मंजरी'[1] का आस्वादन करता है, पर इस मधुरिमा के भीतर झाँक कर कहीं वह देख सकता तो उसे ज्ञात हो जाता कि अध्यात्म की माधुरी इस साहित्यिक मंजरी से कहीं सुस्वादु

[1] निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

और टिकाऊ है मल्लिनाथ सा धुरधर टीकाकार भी कालिदास की सरस्वती की अतरात्मा तक पहुँचने से वञ्चित ही रह गया।[1]

'अभिज्ञानशाकुतल' नाटक एक आध्यात्मिक रहस्य है जिस की पहली झाँकी स्वय कालिदास ने ली है। दुष्यत महाभारत का लंपट और कामुक राजा नहीं, प्रत्युत कालिदास का उत्तम पात्र है जिस के चरित्रचित्रण मे उस ने अपना सब कौशल लगा दिया है। भले ही शकुतला के त्याग से हम उस की गर्हणा करे, परतु क्या कोई सहृदय कला-मर्मज्ञ सचमुच उसे इस प्रतारणा के योग्य ठहरा सकता है? कदापि नही। क्योकि कालिदास के दुष्यत का प्रेम-राग तो दुर्वासा के ब्रह्मवर्चस् अग्नि मे भस्म होकर पवित्र हो गया है। फिर उस बेचारे पर क्रोध करना कहा तक उचित है? यदि किसी पागल को कोई उस के अनाचार के कारण धिक्कारे तो वह क्या स्वयं पागल नही कहलाएगा? किस मे ऐसा सामर्थ्य है जो अपनी पत्नी पर, जानता हुआ भी भरे सभा-भवन मे उपेक्षा-पूर्वक अपचार का दोष लगा सके?

सपूर्ण नाटक मे केवल एक ही धारा वह रही है—वह है अध्यात्म की धारा। उस अध्यात्म के दो रूप है—एक नैतिक, दूसरा दार्शनिक। हम इस निबध मे केवल पहले पर ही विचार करने का प्रयत्न करेगे।

स्थूल-पार्थिव रूप मे भी दुष्यत सर्वथा क्षम्य है—यथार्थ मे तो इस में उस के दोष का प्रश्न ही नही उठता, क्योकि इस अवस्था मे एक सासारिक मानव की भाँति ही वह भी दुख-सुख का अधिकारी है, द्वद्वो का धनी है। वह राजा है। कालिदास के छ काव्य-ग्रंथो मे बीसो स्थलों पर राजा को वर्ण और आश्रम-धर्मो का गोप्ता कहा गया है। वह 'वर्णाश्रमाणां रक्षिता' है, वर्णाश्रमो के रक्षणकर्म मे अनवरत 'जागरूक' है। वर्णाश्रम धर्म की सीमा का जब कोई पात्र उल्लघन करता है तब महाकवि की क्षुब्ध लेखनी उस पर आग उगलने लगती है, चाहे ऐसा पात्र राजा अथवा 'तपस्विसुत' ही क्यो न हो। कालिदास के विचार मे सामाजिक व्यवस्था को मान कर उस पर 'नेमिवृत्ति' से आचरण न करने वाला वह व्यक्ति पापी है जो नियंता द्वारा प्रतिष्ठित सामाजिक

---

[1] कालिदासगिरां सारः कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवासाक्षाद् विदुर्नान्येतुमादृशः॥

प्रणाली का विरोध करता है। शासन और सामाजिक व्यवस्था मनुष्यों ने कैसे प्राप्त की थी ? एकमत होकर सारे देवताओं ने ब्रह्मा से एक ऐसा व्यक्ति माँगा जो शासन और दडनीति द्वारा समाज का नियत्रण कर सके, उस मे होनेवाले अपचार के कारणो को दड की आग मे जला सके। फलस्वरूप मनु मिले जिन्हों ने मानव-जाति को सर्व-प्रथम समाज और शासन की व्यवस्था दी। उस व्यवस्था को, जिस की मनुष्यो ने स्वय याचना की थी, भग करने की उन याचको मे ही क्योकर क्षमता हो सकती थी ? जो ऐसा करने का साहस करेगा वह कितना साहसिक होगा ! उस का दमन आवश्यक है। ऐसे ही व्यवस्था-भजको के दमनार्थ जब राजधर्म का सृजन हुआ है तब राजा वर्णाश्रम के अन्वीक्षण मे सतत जागरूक क्यो न हो ? इसी कारण जब-जब वर्णाश्रमधर्म की उपेक्षा की गई है, तब-तब कालिदास ने राजा को उस के रक्षणधर्म का स्मरण कराया है। मनुष्य मात्र को इस व्यवस्था-भजन के जघन्य पाप मे सावधान करने के लिए ही उस ने 'अभिज्ञान-शाकुतल' की सृष्टि की है। यह पूरा नाटक केवल एक स्रोत है जिस के पूर्वभाग का सबध वर्णाश्रमधर्म की क्षति से और उत्तरभाग का उस के दड से है। शाकुतल में कालिदास ने ससार के सामने रगमच पर खेल कर यह बात घोषित कर दी है, कि समाज की व्यवस्था तोड़ने वाला चाहे समर्थ राजा अथवा तपस्वी ऋषि की सुकुमारी कन्या ही क्यो न हो, उस पर दंडविधान का चक्र अवश्य प्रवृत्त होगा क्योंकि वह चक्र व्यक्तित्व की अपेक्षा नही करता।

मृगया करता हुआ दुष्यत कण्वाश्रम मे पहुँचता है। कुलपति नही हैं। परतु आश्रम के आचार की रक्षा के लिए अनेक तपस्वी है, और ऋषि-कन्या शकुतला अतिथि-सत्कार के लिए विशेष प्रकार से नियुक्त है। अतिथि का आचरण करने वाला दुष्यत इस कन्या द्वारा की गई पूजा सब प्रकार से स्वीकार करता है। अर्घ्यादि प्रदान करने के साथ ही आश्रमवासिनी सरला कन्या अपना सर्वस्व अर्पण कर बैठती है। दुष्यत उसे हृदय खोल कर स्वीकार करता है। स्वीकार क्या करता है, प्रेम की आराधना करता है। प्रेम का सचार पहले उसी के हृदय में होता है, और उस की वृत्ति चोर की-सी हो जाती है। साधारण ग्राम्यरूप उस के प्रेम का नही दीखता, बल्कि लुका-छिपा नागरिक के प्रेम का प्रत्यक्षीकरण होता है। ग्राम्य प्रेम खरा और निश्छल होता है, नागरिक प्रच्छन्न और मिश्रित। ग्राम्य प्रेम का अत प्राजापत्य विवाह मे होता है, और नागरिक

का प्राय गाधर्व में नागरिक प्रम से ओतप्रोत दुष्यत शकुतला के शरीरगठन की कम नीयता को चोर की भाँति छिप कर वृक्ष की ओट से देखता है। शकुतला जब दुष्यंत को देखती है, उस की हो जाती है। दोष किस का है? दुष्यंत का या शकुनला का? क्या यह दोष है भी? मनुष्य जहां होते है वही उन की दुर्बलताएं भी होती हैं। फिर भी तपोभूमि विराग का स्थल है, केलि-कानन नही। सासारिक सुखो का आस्वादन समाप्त कर चुकने पर मनुष्य इस आश्रम का वासी होता है। यह आश्रम वह स्थल है जहां शम, दम, नियमादि का पालन किया जाता है। यदि यहां भी सासारिक इद्रिय-लोलुपता घर कर ले तब तो बस आश्रम का अत हुआ समझिए। इसी कारण 'वेतसनिकुंज' के गांधर्व प्रेम के अनंतर अनुसूया घबरा उठती है—आश्रम के नियमो पर वरुण की भाँति दृष्टि रखने वाले कुलपति कण्व के आने पर यह अनाचार की बात उन से कैसे कही जायगी? इस पाप की जघन्यता क्या स्वय शकुंतला नही समझती? साधारण नियमो को देख-देख कर आज इस व्यवस्था-ह्रास के युग मे भी जब बिना सावधान किए ब्राह्मण का पाँच वर्ष का बालक यह जानता है कि जूठे हाथो घड़ा नही छूना चाहिए, बिना पाँव धोए चौके मे नही जाना चाहिए, तो क्या तपोधनी कण्व की कन्या आचारपूत आश्रम मे आजन्म रह कर भी, नित्यप्रति संपादित होने वाले क्रियाप्रबधादिको को देख कर भी, उचित-अनुचित नही समझती? असंभव! वह कला जानती है, प्रेम की पीडा पहचानती है, अनुकूल आकर्षण की प्रेरणा से उसे सात्विक स्वेद और रोमांच हो आते है, खुले दरबार मे शास्त्रो मे अकुठिता बुद्धि रखने वाले अप्रतिरथ सम्राट् को वह उस के अनौचित्य पर भर्त्सना देती है, फिर क्या उसे इतना भी नही बोध कि गाधर्व विवाह आश्रम की भूमि के उपयुक्त नही? इतना होने पर भी उस ने क्यों अनाचार करने पर कमर कस ली? उस के ऊपर राग का आवरण क्यो चढ गया? अपना तो सर्वस्व उस ने दे ही डाला, प्रथम कर्तव्य भी वह भूल गई। पिता कण्व ने उसे अतिथि-सेवा मे नियुक्त किया था, परतु वह प्रेम-वारुणी का पान करके अपनी सुध-बुध इस तरह खो बैठी कि उसे अपने धर्म का ज्ञान न रह गया। जब शरीरधारी ब्रह्मचर्य मानो दुर्वासा के रूप मे आश्रम मे उपस्थित होता है तब भी वह सुन्न है। अतिथि-सत्कार कैसा—वह भूल गई है। दुर्वासा के आगमन के समय शकुंतला दुष्यत के विरह मे उस की प्राप्ति के अर्थ सतप्त हो रही है। उस के विरह-ताप का कोई भान नहीं, उसे किसी अन्य विषय का मान नही, परम तेजस्वी रुद्र-

रूप दुर्वासा के आगमन का उसे किंचित मात्र भी ध्यान नहीं कुमारसंभव में पार्वती भी शिव के लिए [1] करती है उस में भी दुर्वासा की भांति ब्रह्मचर्य शिव के रूप मे ब्राह्मण का वेश धारण कर पार्वती के समक्ष जाता है। पार्वती की यही परीक्षा है, पर वह उस मे पूर्णतया उत्तीर्ण होती है। उस के 'स्फुरत्प्रभामंडल' मे कोई विकार नही होता। कठिन तपश्चरण के पश्चात् भी वह अपने को जानती है, अपने आश्रम को पहचानती है, अतिथि ब्रह्मचारी का सत्कार करती है, शिव मूल-रूप मे उस को प्राप्त होते है। शकुंतला के पास भी ब्रह्मचर्य परीक्षा के लिए आता है। पर वह उस को नही पहचानती। पार्वती तो पति की चिंता में थी, उसे तो प्रेम का व्यवहार ज्ञात था। उस का पतन यदि कही हुआ होता तो वह क्षम्य होता, क्योंकि उस ने तो जानबूझ कर ही इस मार्ग मे पॉव रक्खा था, परंतु शकुतला ने तो यह रूप कभी जाना ही न था। सदा आश्रम मे रहने वाली कन्या का अपने पद की रक्षा न करते हुए आश्रमवृत्ति के विरुद्ध आचरण कैसे क्षम्य हो सकता है ? यदि शकुतला ने मर्यादा का उल्लघन न किया होता, तो बहुत सभव था कि परीक्षक ब्रह्मचर्य दुर्वासा का रूप छोड कर दुष्यंत बन जाता परतु यहा तो स्वय ब्रह्मचर्य को आश्चर्य हो रहा था। यह क्या ? युगात तक कण्व सरीखे महात्मा द्वारा दीक्षिता कन्या भी अपचार का एक झोका न सह सके, कितने अनर्थ की बात है ! ब्रह्मचर्य १२ वर्ष से अधिक, इस कन्या का इस पुनीत आश्रम मे शरीर और चरित्र का गठन करता रहा परतु दुष्यत के दर्शन मात्र ने उस के शरीर मे यह कौन सी बिजली भर दी जिस से उस क्षणिक संबंधी दुष्यंत के सम्मुख इस चिर-परिचित ब्रह्मचर्य को भी शकुतला ने ठुकरा दिया। ब्रह्मचर्य क्षुब्ध हो उठा, कालिदास की धर्मभीरु आत्मा कॉप उठी, दुर्वासा का रुद्ररूप व्यक्त होकर पुकार उठा—

आः अतिथिपरिभाविनि,

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा

तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।

---

[1] मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा॥

—कुमारसंभव, ५। २९

**स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्**
**कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव[1]॥**

कितना बडा अनाचार है ! ब्रह्मचर्य का धैर्य छूट गया, क्यो न हो ! जहा शकुतला को आश्रम की निवासिनी होने के कारण ब्रह्मचर्य को सदा आश्रय देना चाहिए था, वहा उस की प्रतिष्ठा तो दूर रही उस के स्वय आकर उपस्थित होने पर भी वह उस की उपेक्षा करती है । वह चिल्ला कर कहता है कि मेरा धन तप है, (तप की आग से ब्रह्मचर्य के पास कोई फटक नही सकता) मैं तपोभूमि का धन हू, तुम मेरे राज्य की प्रजा हो, तुम्हे बराबर मेरी ही पूजा करनी चाहिए, क्योकि मेरे ही भीतर अपनी स्थिति रखने की तुम ने दीक्षा ली है, सो स्वय तो तुम मेरी प्रतिष्ठा क्या करोगी मेरे उपस्थित होने पर भी तुम मेरा तिरस्कार करती हो । मैं स्वय उपस्थित होकर तुम्हे अपनी सत्ता का बोध कराता हूं, फिर भी तुम अपनी अवस्था पर, अपने स्खलन पर आश्चर्य नही करती, इस लिए जिस की चिंता मे तुम इस समय निरत हो वह स्मरण कराने पर भी तुम को नही पहचानेगा । कालिदास ने कहा सही है—शकुतला की यह स्पर्धा ? शकुतला ने सोचा—वह क्या चीज़ है, मै ने जिस समय अवगुठन हटा कर अपना यह नयनाभिराम भुवनमोहन रूप दिखाया लोभायमान हो जायगा, चुबक की भॉति खिच आयगा ! परन्तु यह क्या ? व्यवस्थापक धर्मासन मे तिरस्कार पूर्वक निर्घोप कर उठा—

**भोस्तपोधनाः, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्या स्मरामि । तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्वलक्षणां प्रत्यात्मनं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये[2]।**

इस से बढ़ कर आर्यकन्या के लिए और कौन सा दड हो सकता है कि वह खुले आम व्यवहारासन पर बैठे पति द्वारा तिरस्कृत हो ! 'अभिव्यक्तसत्वलक्षणा' होती हुई भी, उस की ओर इगित करती हुई भी वह ठुकरा दी जाए । शकुतला इस दुख से जर्जर हो जाती है, फिर जब तप से तप कर वह शुद्ध होती है तब कही दुष्यत उसे प्राप्त होता है । तप से तपने के लिए वह कण्व के आश्रम मे नही जा सकती, वह तो ब्रह्मचर्य का पूर्वकाड है, उत्तरकांड तो मरीचि के आश्रम मे, काश्यप के आलोचनात्मक

---

[1] **अभिज्ञानशाकुंतल, ४ । १**
[2] **वही, ५**

नेत्रो के नीचे है। वह वानप्रस्थाश्रम है जहा के प्रशांत वातावरण में शकुंतला का पुत्र ही शैशव के शब्दो का उच्चारण करता है। वहा वास करती हुई शकुतला से उस का उपहास करता हुआ वानप्रस्थ नित्य पूछता होगा—'अप्रौढे, तेरा गार्हस्थ्य कहा है ?' गार्हस्थ्य तो शकुतला ने खो दिया था। ब्रह्मचर्यव्रत-भजन के साथ ही उस का भी नाश हो चुका था। फिर वह उसे क्योकर सुखी करता ? ब्रह्मचर्य का सौम्य और स्वाभाविक अत गार्हस्थ्य मे होता है, उस का वानप्रस्थ मे, और उस का भी सन्यास मे। जिस की नींव ही बिगड़ जाय, उस के और आश्रमो की अट्टालिका किस पर खडी हो ? इस आश्रम मे नित्य शकुंतला को ग्लानि होती होगी। धन्य कालिदास! तुम ने शकुतला को कण्वाश्रम मे नही भेजा मरीचि के आश्रम मे भेजा। काश्यप नित्य पतिव्रत का उपदेश करते है। एक-एक उपदेश देह धारण कर शकुतला से पूछता होगा—तेरा पति कहां है ? यह तेरा पुत्र कैसा ? तू स्वीकृता है अथवा परित्यक्ता ? उस का दड कितना भीपण है, कोई शकुतला से पूछे ?

राजसभा में शकुंतला औरों के साथ स्वयं भी राजा को धिक्कारती है, उस से झगडती है, परंतु एक बार भी यह नही कहती कि जिस दोष को व्यवस्थापक और परिपालक राजा होकर तुम ने स्वय किया उस का दंड मुझे तुम किस अधिकार से दे सकते हो ? कालिदास साधारण कवि नहीं है। दुष्यत राजा आज है, जब वह शकुतला को व्यवस्थाधर्म तोड़ने के अपराध मे दडित कर रहा है, चाहे वह उस की प्रेयसी ही क्यो न हो। जिस समय स्वय दुष्यंत ने कण्व के आश्रम में व्यवस्थाभग की थी उस समय वह राजा नही केवल एक साधारण प्रेमी मात्र था। कम से कम शकुतला उसे एक साधारण 'तपोवनधर्म की रक्षा में नियुक्त राजपुरुष'[१] मात्र ही जान कर स्वीकार करती है। इस लिए उसे क्या अधिकार है जो वह चुनौती-पूर्वक राजा से कह सके कि जब राजा होकर (जिस का कार्य व्यवस्था की रक्षा है) तुम ने स्वयं वही अनर्थ किया तो एक ही पाप के भागी दोनो मे से एक दड घोषित करे और दूसरा उसे भोगे यह कैसी दुर्व्यवस्था है ? पर नही अब दुष्यत प्रेमी नही है, वह केवल राजा है और कुछ नही। वह उस

---

[१] राज्ञः परिग्रहोऽयमिति राजपुरुषं मामवगच्छथ।
—अभिज्ञानशाकुंतल, १

आसन पर शासन की बागडोर धारण किए दंड-निग्रह के अर्थ बैठा है जिसे कालिदास ने कही धर्मासन, कही कार्यासन और कही व्यवहारासन कहा है। उस आसन का साथी न्याय और दंड हैं, पत्नी और प्रेयसी नही। शकुंतला का दंड हो चुका।

अब दुष्यंत को लीजिए। उस का दंड और भी कठोर है। यद्यपि वह एक साधारण नागरिक की हैसियत से प्रेम करता है और अपने उत्तरदायित्व को कम करने के लिए अपने को एक साधारण राजपुरुष घोषित करता है, परंतु नियति का नियामक चक्र उस को पहचानता है। व्यवस्था दुष्यंत और शकुंतला दोनो ने तोडी है, दोनो ने समान अपराध किया है, दंड दोनो को मिलेगा। शकुंतला को मिल चुका, पर दुष्यंत को दंड कौन दे? शकुंतला तो प्रजा थी, दुष्यंत राजा था। राजा सब को दंड दे सकता है, क्योंकि वह सब से बडा है, सब का नियामक है। पर उसे दंड कौन दे? कौन उस से बडा है? मनुष्य तो उसे दंड दे नही सकता, क्योंकि राजा 'सर्वातिरिक्तसार' एक विशेष व्यक्ति है, सर्वतेजोमय है, पृथ्वी के सारे 'सत्वो को मेरु की भाँति वह आक्रांत कर'[1] उन पर शासन करता है। वह देवताओं का अंश है। जब दिलीप की रानी सुदक्षिणा गर्भ धारण करती है तब उस के गर्भ में लोकपाल[2] प्रवेश करते हैं। सो इंद्रादि देवताओ के अंश रूप, ऐतरेय ब्राह्मण के मंत्रो से अभिषिक्त, शासन-शपथ के धनी कालिदास के इस राजा को कौन मानव दंड दे सकता है? कोई नही। उसे स्वयं वही दंड देगा। नियति उस पर अपना शासन चक्र रक्खेगी। उस के शरीर में देवताओ का निवास है; सब मिल कर उसे दंडित करेंगे।

छठे अंक के आरंभ में नागरिक शकुंतला को दी हुई राजा की अँगूठी दुष्यंत के पास ले जाता है। राजा के नेत्र अँगूठी देख कर भर आते है। यदि कोई साधारण कलाकार होता तो राजा को विक्षिप्त बना देता। परंतु कालिदास का राजा अपने गहरे दुःख

---

[1] सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना॥
—रघुवंश, १। १४

[2] नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः॥
—वही २। ७५

की स्मृति मे भी राजधर्म का संपादन करता है, और अन्यत्र कुछ समय बाद जब प्रथम बार उस का कंठ खुलता है, तब उस की दीन दशा का बोध कराने वाली उस करुणवाणी का सृजन होता है, जो कभी किसी प्रायश्चित्ती ने न कही होगी—

**प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम् ।**

**अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम्[1] ॥**

'उस समय मेरा हृदय किस नींद में सोया था जब प्रिया के बारंबार जगाने पर भी न उठा; अब वह अभागा असीम दु ख की चोट का अनुभव करने के लिए उठा ।' दड का आरंभ हो चुका है । इस की कठोरता और निर्ममता यदि किसी को देखनी हो तो वह छठे और सातवें अकों के दुष्यत को देखे । वहां उस के दड और प्रायश्चित्त का सूक्ष्म दर्शन हो सकता है । उस का हृदय दु खातिरेक से जाग उठा है, वही जो प्रिया की कोमल स्मृति के आघातों से नहीं जागा था । दुर्वासा के रूप मे ब्रह्मचर्य ने भी यही कहा था—तुम स्वयं मेरी अभ्यर्थना कहा तक करोगी—मद्यपी की नाई आचरण करती हो—मुझ स्वयं आए हुए को देख कर भी औचित्य नही पालती, इस लिए बारंबार स्मरण कराने पर भी तुम्हारा प्रेमी तुम्हे नही पहचानेगा । शकुतला के पक्ष मे तो यह शाप पूरा उतरा, परतु क्या दुष्यंत के पक्ष में भी सत्य सिद्ध हुआ ? हां, उसे शकुतला ने बारंबार याद दिलाया—'चेतो, उठो, देखो मै वही हूं—वही वेतसनिकुज वाली !' कितने अवसाद का स्थल है कि प्रेयसी अपना संकेत स्थान तक बता देती है, परतु दुष्यत का हृदय फिर भी नहीं जागता । दुष्यत की ओर से आश्रम की व्यवस्था रक्षित कहां हुई थी ? उस ने यद्यपि अपने को राजा नही बताया, पर आश्रमों की रक्षा में नियुक्त राजपुरुष तो बताया ही था । ऐसी अवस्था मे भी उस ने कौन सा कम पाप किया ? अब वह क्या करे ? दु खावेग निरंतर बढ़ता जाता है और उस की पराकाष्ठा तब होती है जब वह इद्रलोक से लौट कर मरीचि के आश्रम में आता है, और वहां अपने तनय सर्वदमन को गोद मे लेता है । मा के पहुँचने पर बालक उस से पूछता है—'मा, भला यह कौन है ?' दु.ख की मारी परित्यक्ता पत्नी, समाज की व्यवस्था का उल्लघन और उस के भयकर

---

[1] **'अभिज्ञानशाकुंतल'**, ६ । ७

दड का स्मरण कर पुत्र से कहती है 'ते भागधेयानि पृच्छ'[1] बेटे अपने भाग्य से अपने भाग्य-स्रष्टा से पूछ! बेटा अपने भाग्य से क्या पूछे? उस का भाग्य कहा है? किस ने उस का सृजन किया? उस के इस भाग्य का जिस के फलस्वरूप उस का पिता व्यवहारासन से—न्याय की कुर्सी से—न्यायालय मे चिल्ला कर कहता है—तुम मेरे नही हो—उस भाग्य का स्रष्टा कौन है? शकुतला और दुष्यत का अपावन प्रेम! वह प्रेम जिस ने ऋषिप्रणीत पवित्र अनुशासन की उपेक्षा करके आश्रम की व्यवस्था को भंग किया। 'ते भागधेयानि पृच्छ' ही 'अभिज्ञानशाकुतल' की कुंजी है जिस से इस रहस्य की पेटी के भेद का परदा हटता है। सारे दु खो को समेट कर शकुतला ने इस वाक्य का उच्चारण किया है। कालिदास की कला ने इस व्यग्य मे अकथनीय मार्मिक चोट भर दी है। एक बार दुष्यंत की सारी शक्ति क्षीण हो गई, वही शक्ति जो दुर्जय असुरो का अभी-अभी संहार कर विजयी हुई थी। वह अब खड़ा नही रह सकता, सोचता है—'क्या मै वही दुष्यत हू जिस ने उत्सुक समाज के समक्ष खुले दरबार मे कह दिया था—तू मेरी नहीं है, चली जा।' वह शकुतला के चरणो पर गिर जाता है, और वह उसे उठा कर हृदय मे लगा लेती है। दोनो ओर से आँसुओ की धाराएं निकल कर प्रायश्चित्त रूप में उन के पापो के ऊपर बह जाती है। इस दंड-रूप भट्टी में जल कर जब उन का पाप भस्म हो जाता है, तब पुत्र-रूपी राग उत्पन्न होकर उन के हृदयो के घावो को दोनो ओर बैठ कर भर देता है। भला पति की इच्छा मात्र पर प्राण देने वाली शकुंतला के चरणो पर दुष्यत गिरे। कितना बडा गौरव है! पतिरूपी देवता उस के चरणो पर गिरता है, इस का उसे कितना दु:ख है! 'अभिज्ञानशाकुंतल' का पार्थिव-रूप मे अर्थ सिद्ध हो गया। इसी प्रकार यह भी देखना है कि दुर्वासा ब्रह्मचर्य के रूप है, कण्व गृहस्थाश्रम के, और काश्यप वानप्रस्थ के।

यही 'अभिज्ञानशाकुतल' के नैतिक अध्यात्म का रहस्योद्घाटन है। शाकुतल का दार्शनिक अध्यात्म जिस का सबध शैवो के अद्वैत प्रत्यभिज्ञा-दर्शन से है एक पृथक् प्रसग है।

---

[1] 'अभिज्ञानशाकुंतल', ७

# चरक और सुश्रुत का काल

[ लेखक—डाक्टर देवसहाय त्रिवेद, एम्० ए०, पी-एच्० डी० ]

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

वाग्भट्ट, उत्तरस्थान, ४०—८८

श्री वाग्भट्ट के उपर्युक्त श्लोक से ज्ञात होता है कि उन के समय में भी चरक और सुश्रुत ऋषिप्रणीत ग्रंथ माने जाते थे और भेलादि अनेक पुस्तके प्रचलित होने पर भी पठनीय नहीं थी । किंतु शोक के साथ कहना पड़ता है कि जो प्राचीनतम आयुर्वेद ग्रथ भारत मे प्रचलित है उन को पाश्चात्य विद्वान् ईसा की १६वी शताब्दी तक खीच लाते हैं, यथा हेस महोदय । किंतु सभी विवेकी पडित जानते है कि इन पक्षपात-पूर्ण पाश्चात्य विद्वानों की उक्तियां कितनी विश्वसनीय हैं । आप लिखते है कि 'सुश्रुत' शब्द अरबी भाषा के सुकरात शब्द से बना है और यह किसी यूनानी भाषा की पुस्तक के आधार पर लिखा गया है । हम भारतीयो को सर्वदा निष्पक्ष होकर अपनी संस्कृतियो का अध्ययन तथा मनन करना चाहिए, तथा जो बात भारतीय परंपरा के प्रतिकूल हो वह किसी दशा में भी नहीं मानना चाहिए ।

## चरक

वर्तमान चरक और सुश्रुत दोनों प्राचीन आधार के सारांश है । वर्तमान 'चरक-संहिता' प्राचीन 'चरकसंहिता' के आधार पर दृढ़बल के द्वारा लिखी गई थी[1] । और 'चरकसंहिता' स्वय चरक द्वारा आत्रेय पुनर्वसु के शिष्य अग्निवेश की लिखी प्राचीन पुस्तक के आधार पर लिखी गई थी। चरक और सुश्रुत दोनो दृढ़बल, नागार्जुन और

[1] 'चरकचिकित्सा', ३० । २८९—९०

वाग्भट्ट के समय तक प्रक्षिप्त होते आए है तथापि संपूर्ण वर्तमान चरक टीकाकार चक्रपाणिदत्त से बहुत प्राचीन है।

चरक का अनुवाद पहले पहलवी मे (पैशाची भाषा मे) हुआ था। फिर उस से अली के पुत्र अब्दुल्ला ने अरबी अनुवाद किया था। चरक और सुश्रुत का अनुवाद अरबी और फ़ारसी में ८०० ईस्वी तक हो चुका था[१]।

चरक उपदेशक, दार्शनिक और कनिष्क का राजवैद्य था। स्वर्गीय श्री सिलवान लेवी ने भी चीनी त्रिपिटको से चरक वैद्य का नाम ढूँढ निकाला था। उन के अनुसार चरक कनिष्क के धर्माधिष्ठाता थे। अतः शीघ्र ही उन्हों ने चरक की पुस्तक मे भी यूनान का प्रभाव दिखाने के लिए चरक को कनिष्क का समकालीन प्रथम शताब्दी ईसा से पूर्व माना। किंतु कनिष्क का काल अत्यंत विवादपूर्ण है। 'राजतरंगिणी' के अनुसार उस ने कलि संवत् १८१५ से १८६५ तक (१२३६ से १२८६ ई० पू० तक) राज्य किया[२]। अपितु पतंजलि ने भी चरक पर टीका लिखी है। यथा:—

> आप्तो नाम अनुभवेन वस्तुतत्त्वस्य कार्त्स्न्येन निश्चयवान्।
> रागादिवशादपि नान्यथावादी य स इति चरके पतंजलि.[३] ॥

अपितु—

> पातंजलमहाभाष्यचरकप्रति संस्कृतैः।
> मनोवाक् कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः ॥[४]

तथा—

> योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
> योऽपाकरोत्तं प्रवरं[५] मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥[६]

---

[१] 'माडर्न रिव्यू', जून, १९३६, पृष्ठ ६८१

[२] मेरा लेख—'काश्मीर की संशोधित राजवंशावली', 'विज्ञान', प्रयाग, मीनार्क, १९९३। तथा 'जर्नल अव् इंडियन हिस्ट्री', भाग १८, पृ० ४९–६७ 'दि रिवाइज्ड क्रानोलाजी अव् काश्मीर किंगस्'।

[३] नागेश भट्ट की 'लघुमंजूषा' में उद्धृत।

[४] चरक की चक्रपाणिदत्तकृत आयुर्वेददीपिका टीका का मंगलाचरण।

[५] 'वरदम्' पाठांतर।

[६] 'योगवार्तिक' विज्ञानभिक्षु गणनाथ सेन संपादित, कलकत्ता १९२४, प्रत्यक्ष शारीरोपोद्घात, पृ० ७

यदि चरक के टीकाकार महाभाष्यकार पतंजलि हैं, जो पुष्यमित्र के समकालीन माने जाते हैं तो पतंजलि १२ शताब्दी विक्रम पूर्व हुए[1]। अत: चरक को इन से बहुत पूर्व होना चाहिए। पाणिनि ने भी अपनी अष्टाध्यायी[2] मे चरक का जिक्र किया है और चरक का अर्थ चरकानुयायी हुआ।

चरक एक वैदिक देवता का भी नाम[3] है। श्री भावमिश्र के 'भावप्रकाश'[4] मे चरक का प्रादुर्भाव निम्न प्रकार है। मत्स्यावतार से जब विष्णु भगवान् ने वेदो का उद्धार किया तब शेषनाग ने वही पर उन से सांगवेद और अथर्वांतर्गत आयुर्वेद प्राप्त किया। एक बार वह चर (जासूस) के समान पृथिवी देखने आए। वहां पर बहुत से मनुष्यो को रोगग्रस्त, व्याधिपीडित और व्यग्र होकर मरते देखा। उन को देख कर अत्यत दया से युक्त होकर उन्हो ने (अनत ने) रोग शांति का कारण सोचा। खूब सोच कर वह वही पर वेदवेदांग-ज्ञाता प्रसिद्ध विशुद्ध मुनि के पुत्र हुए। चर के समान आए और इस लिए किसी ने न जाना अत. वह चरक नाम से ससार मे ख्यात हुए। वे शेषनाग के (सहस्त्र-वदन के) अश थे जिन्हो ने रोगों का नाश किया। वह चरकाचार्य आकाश मे देवाचार्य के समान सुशोभित हुए। आत्रेय मुनि के अग्निवेशादि बहुत मुनि शिष्य हुए और सबो ने अपना-अपना तंत्र बनाया। उन के तन्त्रो का सुचारु रूप से संस्करण करके विद्वान् चरक ने अपने नाम से 'चरकसहिता' नामक ग्रथ बनाया।

चरक के[5] समय कम से कम अग्निवेश, भेल,[6] जातुकर्ण, पराशर, हारीत[7] और क्षारपाणि के ग्रथ विद्यमान थे, जिन के ग्रथों से चरक ने यत्र-तत्र उदाहरणार्थ अपने ग्रथ में उद्धृत किया है :—

---

[1] मेरे लेख—'दि डेट आफ़ योगदर्शन', 'योगप्रचारक', काशी, १९९४; 'मगध की नई वंशावली', नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, काशी, १९९४

[2] कठचरकाल्लक—पाणिनि, ४।३।१०७

[3] वैदिक कोष, कीथ और मैकडानल्ड संपादित, भाग १, पृ० २५६

[4] 'भावप्रकाश', पूर्वखंड, ५७–६५

[5] चरक सूत्रस्थान, १।२

[6] बर्नेलस् तंजोर के काटलाग में एक भेलसंहिता का वर्णन है, यद्यपि यह चिथड़े की हालत में है।

[7] वाग्भट्ट ने हारीत और भेल के ग्रंथों का जिक्र किया है। एक 'हारीतसंहिता' प्रकाशित भी हुई है, यद्यपि उस का प्राचीनत्व प्रश्नास्पद है।

सुश्रुत के समान चरक वैज्ञानिक पद्धति पर नहीं लिखा गया है इस में केवल वैदिक देवता और मंत्रो का वर्णन है। पौराणिक कथाओ का नामोनिशान भी नही है। यह न्यायदर्शन का प्रतिरूप है। चरक मे वेदानुसार मनुष्य शरीरास्थियो की सख्या ३६० ही है[1] और बचपन की हद ३० वर्ष तक है।[2] चरक मे हाथ के पंजे की अस्थियो की सख्या १५ बताई गई है किंतु आजकल हम लोगो के हाथ मे १४ ही हड्डियां पाई जाती है। अत चरक वहुत प्राचीन होने का दावा कर सकता है।

इस के सरल गद्यों में ब्राह्मण ग्रथों की रीति का आभास मिलता है। अत. यह पुस्तक अवश्य ही बहुत प्राचीन है। इस के प्राचीन रूप की रचना ३००० ई० पू० तथा वर्तमान रूप की रचना बौद्धकाल से पूर्व की है[3]। सभवत यह २००० ई० पू० रचा गया होगा। किंतु 'चरकचिकित्सास्थान' (५।४४ और ५।६३) से मालूम होता है कि धन्वतरी का सुश्रुत प्राचीनतर है—यथा 'तत्र धान्वतरीयाणामधिकार क्रिया विधौ' और 'दाहे धान्वतरीयाणामत्रापि भिषजां बलं'। किंतु सूत्र चार प्रकार के है यथा गुरुसूत्र, शिष्य-सूत्र, प्रतिसस्कृतसूत्र और एकीयसूत्र। नि सदेह उपर्युक्त प्रतिसस्कृतसूत्र है और प्रक्षिप्त है।

## सुश्रुत

वर्तमान 'सुश्रुतसहिता' धन्वतरी के शिष्य सुश्रुत की बृहत् 'सुश्रुतसहिता' का नागार्जुन द्वारा सशोधित सस्करण है। चरक और सुश्रुत के व्यावहारिक शब्दों में बहुत कम अतर है। कुछ अंश चरक से अक्षरशः मिलते है। 'भावप्रकाश' के परपरानुसार भी 'चरकसंहिता' 'सुश्रुतसहिता' से प्राचीनतर है। अत. चरक नि.सदेह सुश्रुत से प्राचीन-तर[3] है।

संभवतः यह नागार्जुन वही हैं, जिन्हो ने पतंजलि महाभाष्य टीका की रचना[4] की,

---

[1] त्रीणि सषष्ठीनि शतान्यस्थ्नां सह दन्तोलूखलनखेन। चरक ७।६। त्रीणि सषष्ठीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते। शल्यतन्त्रे तु त्रीण्येव शतानि। सुश्रुत शारीर ५।१८

[2] विवर्द्धमानधातुगुणं पुनः प्रायेणानवस्थितसत्वमात्रिंशद्वर्षमुपदिष्टम्। चरक-विमान ८।१२२

[3] श्रीप्रफुल्लचंद्रराय रचित 'हिंदू केमिस्ट्री', भाग १, भूमिका, कलकत्ता, १९०३

[4] भोजवृत्ति और चक्रपाणि देखिए।

जो सिद्ध नागार्जुन के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिन्हो ने 'लौहशास्त्र' तथा 'माध्यमिक सूत्र-वृत्ति' की रचना की[1]। वर्तमान सुश्रुत अवश्य ही टीकाकार डल्हण तथा 'रुग्विनिश्चय' के लेखक माधव से पुराना है। सुश्रुत की प्राचीनतम उपलब्ध टीका चक्रपाणिदत्त की (१११७ विक्रमी) 'भानुमति' है। डल्हण अपने प्राचीन सुश्रुत टीकाकार जेज्जट, गयादास, भास्कर और माधव का, जिन का समय यथेष्ट प्रमाणो के अभाव से नियत नही किया जा सकता है, उल्लेख करते हैं। हमारे प्राचीन टीकाकार भी पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार किसी भी पाठ को समालोचना की कसौटी पर कस कर ही ग्रहण करते थे। यथा[2]—

**अनार्योऽयं योगः जेज्जटाचार्येण नोक्तत्वात्। तस्मान्न पठनीयम्।**

नागार्जुन ने सुश्रुत मे उत्तर तंत्र जोडा था, तथा अन्य स्थानों में भी उस ने हेर-फेर[3] किया था। यदि यह नागार्जुन कनिष्क का समकालीन था तो नागार्जुन का समय कलि-संवत् १८०० या १३०० ई० पू० होना चाहिए तथा 'महावग्ग' इत्यादि ग्रथों मे भी कुमारभृत्य वैद्यो का ज़िक्र होने से सुश्रुत का समय कम से कम २५०० ई० पू० भगवान् गौतम बुद्ध[4] से पहले होना चाहिए।

किंतु 'भावप्रकाश'[5] मे यह वर्णन मिलता है। "इद्र ने मनुष्यों को अत्यत पीडित देख कर धन्वतरी को समस्तायुर्वेद की शिक्षा देकर मृत्युलोक मे भेजा। वह पृथ्वी पर आकर काशी मे दिवोदास नाम से प्रसिद्ध राजा हुए। विश्वामित्र इत्यादि ने ज्ञानबल से जान लिया कि काशी मे यह काशीराज धन्वतरी हैं। उन में से विश्वामित्र ने अपने पुत्र सुश्रुत से कहा। हे पुत्र शिवप्रिय वाराणसी को जाओ। वहा पर दिवोदास नामक काशी का क्षत्रिय राजा है। वह साक्षात् धन्वंतरी आयुर्वेद के जानने वालों मे श्रेष्ठ है। तुम ससार की भलाई के लिए आयुर्वेद पढ़ो। पिता के वचन को शिरोधार्य कर सुश्रुत काशी गए। और भी मुनियो के पुत्र उन के साथ पढ़ने के लिए गए। उन विनीतो ने श्रेष्ठ

---

[1] श्री प्रफुल्लचंद्र राय की 'हिंदू केमिस्ट्री', कलकत्ता, १९०९, भाग २, पृ० १३०

[2] 'सुश्रुत चिकित्सा', ७।३ डल्हण की टीका।

[3] यत्र यत्र परोक्षे लिट् प्रयोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं ज्ञातव्यमिति प्रतिसंस्कर्तापीह नागार्जुन एव। डल्हण टीका, सुश्रुत सूत्रस्थान १।२

[4] मेरा लेख—'दि डेट अव् गौतमबुद्ध', १८८५, ई० पू०, 'डेली हेरल्ड', लाहौर, २७ जनवरी, १९३६

[5] 'भावप्रकाश', पूर्वखंड १।७६—८९

मुनियो से प्रशंसित भगवान् धन्वंतरी दिवोदास को ............ में देखा। उन्हें देख कर यशोधन दिवोदास ने उन का स्वागत किया। कुशल पूछने के बाद आने का कारण पूछा। उन सबों ने सुश्रुत के द्वारा उत्तर दिया। हे भगवान्! व्याधि से पीडित मनुष्यो को चिल्लाते हुए और मरते हुए देख कर हम लोगो के हृदय मे अत्यंत पीड़ा होती है। हम लोग रोगों की शांति का उपाय जानने आए है। आप यत्नपूर्वक हम लोगो को आयुर्वेद पढ़ावे। उन का वचन अंगीकार करके राजा ने उन को शिक्षा दी। पठनोपरांत वे मुनि प्रसन्न हो कर राजा को जयाशीर्वाद देकर अपने-अपने घर गए। उस में सुश्रुत ने अपना सुश्रुत नामक तंत्र पहले बनाया। उन के मित्रो ने भी अलग-अलग अपना तंत्र बनाया। सुश्रुत के बनाए तंत्रों को बहुतो ने अच्छी तरह सुना अतः यह पृथ्वी पर सुश्रुत नाम से प्रसिद्ध हुआ।"

'गरुड़पुराण' तथा 'महाभारत' के अनुसार भी सुश्रुत विश्वामित्र के सुपुत्र थे। काशीराज दिवोदास का वर्णन ऋग्वेद मे भी है। अत. सुश्रुत का समय भी बहुत पहले होना चाहिए।

अत. यह सिद्ध होता है कि चरक और सुश्रुत दोनो आर्ष ग्रंथ हैं और पाश्चात्य विद्वानो का इन पुस्तकों की रचना सिकंदर के आक्रमण के बाद मानना ठीक नही है। जिस प्रकार चरक कायचिकित्सा के लिए सब से प्रामाणिक है, उसी प्रकार सुश्रुत शल्य-चिकित्सा के लिए अत्यंत प्रामाणिक है।

---

# द्वितीय पेशवा बाजीराव प्रथम की द्विशती

[ लेखक—श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी० ]

जिन नर-पुगवो के चरित्रों को लेकर मराठों का क्रमबद्ध इतिहास लिखा गया है या भविष्य मे लिखा जायगा यदि उन के नाम उन के महत्वपूर्ण कार्यों को दृष्टि में रखते हुए सख्या-क्रम से लिखे जायँ तो जिस प्रकार प्रथम नाम छत्रपति शिवाजी का अंकित किया जायगा, उसी प्रकार द्वितीय नाम प्राय. उतने ही समादर तथा सम्मान के साथ इस लेख के चरितनायक का लिखा जायगा। इन का अपने ही समय मे भारत के प्रमुख वीरो मे कितना आदर तथा मान था और इन की शक्ति तथा प्रताप की कैसी धाक जम गई थी, यह इसी से ज्ञात हो जाता है कि सुप्रसिद्ध देशभक्त बुदेला वीर-केसरी पन्नानरेश महाराज छत्रसाल ने, जिन की आयु का साठ वर्ष से अधिक काल रणचडी ही की सेवा में व्यतीत हो चुका था, आपत्तिकाल मे बाजीराव को निम्न-लिखित दोहा लिखते हुए इन की भगवान हरि से तुलना की थी—

**जो गति ग्राह गजेंद्र की सो गति भइ है आज ।**
**बाजी जात बुंदेल की बाजी राखो लाज ॥**

बाजीराव ने किस प्रकार अपने नाम की सार्थकता दिखलाते हुए महाराज छत्र-साल की हारी बाजी जिता दी थी, उस का इसी लेख मे आगे यथास्थान वर्णन दिया जायगा। किस स्थिति में बाजीराव ने मराठा-साम्राज्य के डगमगाते पोत का कर्णधारत्व अपने हाथ मे लिया था, उस का परिचय देने के लिए अति संक्षेप मे इन के पहले के मराठा-इतिहास की रूपरेखा यहां दे दी जाती है।

स० १७३७ वि० मे महाराज शिवाजी का देहावसान हुआ और इस के नौ वर्ष के अनतर इन के पुत्र शंभाजी कवि-कलश के सत्सग में सगमनेर में रहते हुए पकडे जाकर मारे गए। शंभाजी के अल्पवयस्क पुत्र शिवाजी द्वितीय द्वारा इस प्रकार के उप-द्रव-काल मे राज्य-परिचालन असभव था, इस लिए इन की माता येशूबाई की सम्मति पर

शंभाजी के छोटे भाई राजाराम इन के अभिभावक नियत हुए और उन्हो ने प्रबल मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब के पंजे मे पड़े हुए मराठा राज्य के उद्धार का प्रयास आरंभ किया। येशूबाई पुत्र के साथ रायगढ गई पर उस दुर्ग पर भी उसी वर्ष मुगलो का अधिकार हो गया और ये माता-पुत्र कैद हो गए। औरंगजेब ने शिवाजी द्वितीय को राजा साहू की पदवी दी और इन दोनो को अपनी पुत्री जीनतुन्निसा को सौंप दिया।

साहू के कैद होने पर मराठा राज्य पुन बिना कर्णधार का हो गया। राजाराम गद्दी पर बैठना अनुचित समझते थे पर अंत मे येशूबाई की उदार आज्ञा मिलने पर तथा यह घोषित करके कि साहू की अनुपस्थिति ही तक वह मराठा-राज्य के कर्णधार बन रहे है, वह जिंजी मे गद्दी पर बैठे। इस के अनंतर मुगलो ने जिंजी घेरा और उस पर उन का अधिकार भी हो गया। यह विशालगढ़ गए, जहा इन की स० १७५७ मे मृत्यु हो गई। इन की स्त्री ताराबाई ने अपने पुत्र को गद्दी पर बिठाया और अपनी सपत्नी को पुत्र सहित कैद कर दिया। मुगलो से मराठे सरदार यत्र-तत्र बिना संगठन के, पर एक आदर्श रखते हुए निरंतर लड़ते रहे। सात वर्ष बाद औरंगजेब की मृत्यु हुई और उस के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने राजा साहू को इस विचार से छुट्टी दे दी कि मराठा सरदारो मे भेद पड जायगा और उन मे दो दल हो जायँगे।

मुगल हरम में रहने तथा बाद में उन के सत्संग से साहू जी मे अनेक व्यसन आ गए थे और वह पूर्ण मराठा नही रह गए थे। छुट्टी पाते ही यह औरंगज़ेब की कब्र की 'ज़ियारत' को गए पर जो मराठे इन के पास एकत्र हो गए थे, उन्हो ने औरंगाबाद के बाहरी महालो को लूट लिया, जिस से त्रस्त हो यह सितारा मे जा बैठे और सांसारिक आनंद लेने मे लग गए। इतना अवश्य हुआ कि इन के राजगद्दी पर बैठते ही मराठो के दो दल हो गए पर अधिक लोगो के साहू जी का पक्ष ग्रहण कर लेने से यही वास्तव मे मराठाधिपति कहलाए।

इतने अधिक उलट-फेर के कारण मराठा सरदारो मे संगठित रूप मे मुगल-साम्राज्य की वीरवाहिनी का सामना करने का ध्येय नही रह गया था और वे स्वतंत्र रूप से अपने-अपने स्वार्थ के लिए यत्र-तत्र युद्ध तथा लूट-मार करते रहते थे। फलतः इन के कार्यों से केंद्रीय मराठा राज्य को विशेष लाभ न पहुँचता था और न उस का उत्कर्ष हो पाता था। सौभाग्य से राजा साहू के अष्टप्रधान मे बालाजी विश्वनाथ भट्ट नामक एक चितपावन

ब्राह्मण थे, जो पहले वीर सेनापति धनाजी जादव के सहकारी थे। यह सं० १७७१ वि० मे पेशवा नियत किए गए और इन्हो ने इन सरदारों की बँटी हुई शक्तियो को एकत्र करने का पूर्ण प्रयास किया तथा सफल भी हुए। सैयद हुसैन अली खा अमीरुल्उमरा दक्षिण का सूबेदार होकर जब आया तब उसे इसी सुगठित मराठा सेना का सामना करना पड़ा, जिस से उस ने अत मे चौथ तथा सिरदेशमुखी दिलाने का वचन दे कर संधि कर ली और बालाजी ने पद्रह सहस्र सवार सेना दक्षिण के सूबेदार की सहायता के लिए तैयार रखने का वचन दिया। फ़र्रुखसियर के इस संधि के अस्वीकार कर देने पर तथा सैयद अब्दुल्ला के विरुद्ध षड्यत्र करने पर हुसैन अली खां दिल्ली को रवाना हुआ और बालाजी विश्वनाथ भी उस की सहायता को १५००० सेना के साथ गए। फर्रुखसियर मारा गया, दो नाम-मात्र के मुगल सम्राट् छः मास मे मर गए, और तब सं० १७७७ वि० मे तत्कालीन बादशाह मुहम्मदशाह ने इस संधि को स्वीकार कर लिया और सनद ले कर पेशवा लौट आए। इसी वर्ष बालाजी की मृत्यु हो गई और यह मराठा-साम्राज्य का स्वप्न देखते हुए ही चले गए।

बालाजी विश्वनाथ के दो पुत्र वीसाजी प्रसिद्ध नाम बाजीराव तथा अताजी प्रसिद्ध नाम चिमनाजी आप्पा हुए। इन मे प्रथम का जन्म सं० १७५५ वि० में हुआ था और द्वितीय इन से दस वर्ष छोटे थे। इन्हे दो पुत्रिया भी थी, जिन मे बड़ी अबाबाई का व्यंकटराव जोशी से और छोटी भिउबाई का आबाजी जोशी से विवाह हुआ था। बाजीराव अपने पिता की मृत्यु के समय केवल बाईस वर्ष के युवक थे और राजा साहू इन्हे पेशवा पद पर अधिष्ठित करने में इसी कारण कुछ आनाकानी कर रहे थे, पर इन से वार्तालाप करने पर इन की योग्यता पर मुग्ध होकर इन्हे कुछ ही दिनो बाद उस पद पर नियत कर दिया, जिस से पेशवा का पद इस वंश मे परपरा के लिए निश्चित हो गया। इस प्रकार युवा बाजीराव ने मराठा आधिपत्य अपने हाथ मे लेकर किस प्रकार साधारण कोंकणस्थ राज्य को मराठा साम्राज्य मे परिणत कर दिया था, यही इन के जीवन की विशेषता है।

साहूजी के दरबार मे कोकणस्थ चितपावन ब्राह्मण दल के विरुद्ध देशस्थ सरदारो का एक दल प्रबल हो रहा था, जिस मे श्रीपतिराव प्रतिनिधि तथा फ़तहसिंह भोसले प्रमुख थे। इन लोगो ने बाजीराव के पेशवा नियत करने मे बाधा डालने का उपाय किया था पर फल कुछ न निकला। यद्यपि बाजीराव अपने पिता या वशजो के समान विद्वान न थे पर उन्हों ने अपनी किशोरावस्था पिता के साथ युद्ध-क्षेत्र ही मे व्यतीत की थी और

यह अच्छे शहसवार, अस्त्रविद्या में कुशल तथा राजनीति के ज्ञाता थे। यह अपने पिता के साथ दिल्ली गए थे और वहां की स्थिति का इन्हों ने अच्छा अध्ययन किया था। वहां से लौटने पर खानदेश की मराठा सेना के यह अध्यक्ष रहे। इन का साहस, धीरता तथा सहन-शीलता सब पर व्यक्त थी, और इन्हीं सब को दृष्टि में रखते हुए साहूजी ने देशस्थ दल की सम्मति की अवज्ञा कर सात महीने बाद इन्हें पेशवा पद पर नियत कर दिया था। इस पद पर नियत होते ही बाजीराव ने दरबार में अपनी आगे की कार्य-प्रणाली तथा नीति भी प्रकट की और विरोधी दल के मुखिया श्रीपतिराव ने उस का खंडन तीव्र भाषा में किया। दोनों में बहुत मतभेद था। बाजीराव का विचार उत्तर की ओर दिल्ली साम्राज्य को अंग-भंग करने का था और श्रीपतिराव की दृष्टि दक्षिण की ओर थी। इन का कथन था कि पहले अपने अस्तव्यस्त राज्य को दृढ़ कर तथा दक्षिण के प्रांत पर अधिकार कर तब उत्तर की ओर प्रबल शत्रु को छेड़ने के लिए बढ़ना चाहिए पर बाजीराव का कहना था कि उक्त प्रथम दो कार्यों के लिए पहले धनधान्य-पूर्ण उत्तरी प्रांतों को लूटना ही नितांत आवश्यक है। इन्हों ने अपनी बात का अत्यंत ओजपूर्ण व्याख्यान द्वारा समर्थन किया और अंत करते-करते कहा कि 'मुरझाते वृक्ष के तने पर चोट पर चोट दो, जिस से शाखाएं आप से आप गिर जायँगी। केवल मेरी सम्मति मानिए, मैं अटक की दीवालों पर मराठा झंडा फहरा दूंगा।'

राजा साहू बाजीराव के भाषण से इतने प्रभावित तथा उत्साहित हुए कि उन्हों ने उत्तेजित हो कर कहा कि 'ईश्वर की कृपा से तुम किन्नर खंड (हिमालय) में झंडा फहरा दोगे।'

बाजीराव ने पहले अपने पिता द्वारा किए गए कार्यों को आगे बढ़ाया और चौथ तथा सिरदेशमुखी करों को उगाहने में पूरा प्रयत्न रक्खा। दक्षिण के प्रत्येक प्रांत में इन्हों ने अपने कर्मचारी भी नियत किए, जो इन करों का हिसाब जाँच कर उन्हें मराठा केंद्र-स्थान को भेजते रहते थे। बाजीराव ने इस सिलसिले को और आगे बढ़ाया तथा उत्तरी भारत के अनेक प्रांतों में, जहां मराठे सरदार-गण स्वतंत्र रूप से लूट-मार मचा रहे थे, उन लोगों की सहायता कर उन्हें अधीनस्थ बनाते तथा मराठा साम्राज्य की सीमा का विस्तार करते हुए अपने ध्येय की तैयारी करते रहे।

फर्रुखसियर के मारे जाने के बाद जब मुहम्मदशाह दिल्ली की राजगद्दी पर

बैठा तब उस ने सैयद भ्राताओ—अब्दुल्ला और हुसैन अली खा—को नष्ट करने का षड्यत्र रचा, जिन्हो ने सारे अधिकार अपने हाथ मे कर रक्खे थे। इस षड्यत्र मे जिन सरदारो ने सहयोग दिया था, उन मे निजामुल्मुल्क आसफ़जाह प्रधान था, जो सैयद भ्राताओं से मनोमालिन्य रखता था। यह मालवा का प्रांताध्यक्ष था और उस ने सु-अवसर के लिए अच्छी सेना एकत्र कर रक्खी थी। इस की दृष्टि दक्षिण मे राज्य स्थापित करने की थी और सैयद भ्रातृद्वय इसे इसी कारण मालवा से दूर हटाना चाहते थे। उन्हो ने इसे उत्तरी भारत के किसी प्रात को देने के लिए बुलाया पर यह कुशल नीतिज्ञ अवसर चूकने वाला न था। यह अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उज्जैन से आगरे को रवाना हुआ और तीन दिन कूच करने के बाद एकाएक दक्षिण की ओर घूमा तथा शीघ्रता से कूच करता हुआ नर्मदा पार कर इस ने असीरगढ तथा बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया। सैयद भ्राताओ के सकेत पर दिलावर अली खा बख्शी तथा दक्षिण का सूबेदार आलम अली खां क्रमश मालवा तथा औरगाबाद से ससैन्य युद्ध को आए पर दोनो ही युद्ध मे मारे गए। आलम अली खा के साथ सधि के अनुसार १६, १७ सहस्र मराठा सेना खडेराव धावर्दे, संताजी सीधिया आदि के अधीन थी पर इन की सम्मति न मानने से तथा औद्धत्य के कारण वह १ अगस्त सन् १७२० ई० को परास्त हो गया। इस प्रकार विजय प्राप्त कर आसफजाह दक्षिण का सूबेदार हो गया। इसी के बाद दक्षिण जाते हुए हुसैन अली खा घातक द्वारा मारा गया और अब्दुल्ला दिल्ली मे कैद हो गया।

उक्त सभी घटनाओ में मुहम्मदशाह बादशाह का हाथ था, इस लिए निज़ामुल्मुल्क आसफजाह को दक्षिण की सूबेदारी की स्वीकृति मिल गई। इस के एक वर्ष बाद ही मुगल-साम्राज्य के प्रधान-मंत्री का स्थान रिक्त होने पर यह दिल्ली बुलाया गया और सन् १७२२ के आरभ में उक्त पद पर नियत हो गया। इस के साथ दक्षिण तथा मालवा की सूबेदारी भी इस के नाम बहाल रही। यहा का वातावरण इस के उपयुक्त न था और मुहम्मदशाह इस की गभीरता तथा उपदेशो से इस से चिढ़ गया था, इस लिए इसे गुजरात का सूबेदार बना कर वहा शाति स्थापित करने भेजा तथा वहा के सूबेदार हैदर कुली खा को निजामुल्मुल्क को नष्ट करने का गुप्त आदेश भी भेजा। परतु धूर्तता से निज़ाम ने ऐसा उपाय किया कि हैदर की प्रायः कुल सेना इस से आ मिली और वह दिल्ली भागा। निज़ाम भी पीछे-पीछे वहा पहुँचा और मत्रिकार्य करने लगा। परतु दक्षिण तथा गुजरात

और मालवा प्रांतों से विद्रोह तथा उपद्रव के समाचार आ रहे थे इस लिए इस ने आज्ञा लेकर दक्षिण जाना ही निश्चय किया। मुहम्मदशाह ने भी प्रसन्नता से आज्ञा दे दी।

मालवा तथा गुजरात में शांति स्थापित करता हुआ, जहां मराठों का उपद्रव बढ़ गया था, आसफजाह दक्षिण पहुंच गया और २ अक्तूबर सन् १७२४ ई० को मुबारिज खां को सकरखेड़ के पास परास्त कर मार डाला। अब इस ने दक्षिण का प्रबंध अपने हाथ में लिया और सन् १७२६ में दरबार के षड्यन्त्र से छुट्टी पाकर मराठों को चौथ न देने के लिए बहाने खोजने लगा। इस की अनुपस्थिति में मुबारिज खां भी शांति से चौथ न देता था पर मराठे किसी तरह वसूल कर लेते थे। निजाम ने चौथ देना स्वीकार करते हुए भी यह भेदनीति प्रकट की कि उसे लेने का स्वत्व साहूजी को है या राजाराम के पुत्र शंभाजी द्वितीय को है। जब तक कि आपस में ये निपट न लें कि वास्तव में उन दो में कौन स्वत्वाधिकारी है या दोनों के स्वत्वों को समझ कर वही यह निश्चय न कर ले तब तक चौथ किसी को नहीं दिया जा सकता। यद्यपि पेशवाओं के और मुख्यतः बाजीराव के प्रयत्नों से शंभाजी सतारा के दक्षिण में एक छोटे राज्य का स्वामी मात्र रह गया था पर निजाम उसे महत्व देकर अपना स्वार्थ निकाल रहा था। साहूजी ने इस आशंका के उठाने पर क्षुब्ध हो इस का कोई उत्तर नहीं दिया और उस को दमन कर चौथ उगाहने का निश्चय किया।

निजाम ने दक्षिण में पहुँचते ही अपने प्रांत या राज्य के विस्तार करने में हाथ लगा दिया और सन् १७२३ ई० में तंजौर-नरेश सर्फोजी के राज्य के एक नगर त्रिचिनापल्ली पर अधिकार कर लिया। सर्फोजी छत्रपति महाराज शिवाजी के भाई व्यंकोजी के पुत्र थे इस लिए इन्हों ने साहूजी को सहायता के लिए लिखा। इस पर सन् १७२७ ई० में राजा साहू ने एक विशाल सेना फतहसिंह भोंसले के अधीन वहां भेजी। इसे राजा साहू ने अपना पोष्य-पुत्र बना लिया था और कर्णाटक पर इसे विशेष स्नेह भी था। बाजीराव तथा श्रीपतिराव प्रतिनिधि इस के सहकारी होकर साथ गए। मराठा सेना ने बेदनौर, गडग तथा श्रीरंगपत्तन के सरदारों से पुराना कर उगाहा और अनेक स्थानों पर अधिकार भी कर लिया। परंतु बाजीराव तथा श्रीपतिराव के मनोमालिन्य और फ़तहसिंह के आलस्य के कारण मराठा सेना को हानि भी उठानी पड़ी और उन के चले आने पर निजाम ने पुनः कई स्थानों पर अधिकार कर लिया। इस के अनंतर निजाम औरंगाबाद से हैदराबाद चला आया और श्रीपतिराव को अपनी राजधानी के चौथ के बदले में बरार में जागीर देने

को कह कर अपने पक्ष में कर लिया। बाजीराव के विरोध करने पर भी राजा साहू ने श्रीपतिराव जी की बात मान ली। इसी के बाद निज़ाम ने राजा साहू तथा शंभाजी के स्वत्व का प्रश्न उठाया और राजा साहू के उगाहने वाले कर्मचारियों को अपने राज्य से निकाल कर दोनों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया कि वे उस के सामने उपस्थित हो कर अपना-अपना स्वत्व समर्थित करें। श्रीपतिराव ने ऐसा करने की सम्मति दी पर बाजीराव ने घृणा की हँसी से इस प्रश्न को रोक दिया और राजा साहू ने भी युद्ध की आज्ञा दे दी।

बाजीराव ने बडी शीघ्रता से अपनी सेना सुसज्जित कर ठीक वर्षाकाल में ७ अगस्त सन् १७२७ ई० को यात्रा आरंभ कर दी। औरंगाबाद के अंतर्गत जालना को इन्हों ने लूटा और निज़ाम की भेजी हुई सेना से, जो एवज़ खां के अधीन थी, युद्ध कर माहुर पहुँचे। वहां से पुन. औरंगाबाद की ओर घूमे और यह प्रसिद्ध कर दिया कि वे बुरहानपुर लूटने चल रहे हैं। उस नगर की रक्षा के लिए स्वयं निजाम इस ओर आया पर बाजीराव खान-देश में लूटमार करते हुए गुजरात पहुँच गए। निज़ाम ने इस पर क्षुब्ध हो कर पूना पर आक्रमण करने का निश्चय किया और अपनी सारी सेना के साथ उस ओर चला। यह सुनते ही बाजीराव फिर लौटे और गोदावरी के किनारे-किनारे निजाम के राज्य को लूटते चले। इस पर पूना की ओर जाना छोड़ कर निज़ाम फुर्ती से यात्रा करता हुआ बाजीराव का मार्ग रोकने के लिए आया और आगे बढ कर गोदावरी उतर पडाव डाल दिया। इस प्रकार शत्रु को दौड़ा कर थका देने के बाद बाजीराव अब युद्ध करने के लिए डट गए पर मराठी चाल पर पीछे हटते हुए निजाम की सेना को पालखेड़ के पास पार्वत्य स्थान में फँसा कर घेर लिया। बराबर युद्ध होता रहा और निज़ाम को विवश हो अपने सहायक राजा शंभाजी के साथ आत्म-समर्पण कर देना पडता यदि उस का तोपखाना साथ न होता। वह इन्हीं तोपों की सहायता से मार्ग बनाता हुआ पीछे हटता फिर नदी तक पहुँच गया पर अंत में निरुपाय होकर उसे संधि करनी पड़ी। यह संधि मूँगीशेगाँव में ६ मार्च सन् १७२८ को हुई और इस के द्वारा निज़ाम ने राजा साहू को मराठों का छत्रपति मान लिया, बक़ाया चौथ तथा सिरदेशमुखी चुका दिया और शंभाजी को विदा कर दिया।

इस के अनंतर बाजीराव ने अपने भाई चिमनाजी को गुजरात भेजा, जिस कारण वहां के मुगल प्रांताध्यक्ष ने सन् १७२६ ई० में चौथ आदि देना स्वीकार कर लिया।

इस पर खंडेराव का पुत्र                    जो उस समय मालवा में था अत्यंत क्षुब्ध हो गया कि गुजरात में उस के पिता के तथा उस के कुल प्रयत्न निष्फल हो गए और वहां की कुल आय राजकोष के लिए बाजीराव ने ले लिया। उस ने राजा साहू को पत्र लिखा जिस पर उसे मालवा छोड़ कर गुजरात चले जाने की आज्ञा हुई। वह इसी चिंता में पड़ा था कि निजाम ने यह अवसर अच्छा समझ कर उसे अपनी ओर मिला लिया और यह निश्चय हुआ कि वह अपनी पूर्ण शक्ति के साथ अहमदनगर के पास निजाम की सेना से आ मिले। राजा शंभाजी को भी सहायता के लिए लिखा गया परंतु उन में से एक बात भी बाजीराव से छिपी न थी क्योंकि उन के कुशल चर बराबर समाचार ला रहे थे। राजा साहू को यह समाचार सुनाया गया और धाबडे के पक्ष वालों ने उस की सी सुनाई पर साहूजी ने अंत में यही कहा कि त्र्यंबकराव का शत्रु से मिल जाना अक्षम्य है और इस राजद्रोह का उसे दंड अवश्य मिलना चाहिए।

यह होते भी साहूजी सरदारों की आपस की लड़ाई से अपनी ही हानि समझ रहे थे और उन्हों ने बाजीराव तथा चिमनाजी को युद्ध के लिए भेजते समय समझा दिया था कि यथाशक्ति वे पहले धाबडे को शांत करने ही का प्रयत्न करें। इन दोनों ने भी इसे स्वीकार कर लिया और अंत तक इस का प्रयत्न भी करते रहे। वर्षा तथा चिमनाजी की पत्नी की मृत्यु के कारण ये दोनों प्रायः तीन मास तक रुके रहे और विजयादशमी को युद्ध-यात्रा आरंभ की। बाजीराव के साथ केवल पच्चीस सहस्र सेना थी और त्र्यंबकराव ने पैंतालीस सहस्र सेना एकत्र कर रक्खी थी। इस कारण बाजीराव के शांति के प्रयत्नों को त्र्यंबकराव ने स्वीकार नहीं किया पर उस की सेना में कोल-भीलों की नई सेना बहुत थी, जिस से बाजीराव अच्छी प्रकार जानते थे कि वह युद्ध में किसी काम की नहीं है। नर्मदा नदी पार करते समय पेशवा की अग्गल सेना पर दामाजी गायकवाड़ ने ससैन्य आक्रमण कर दिया और उसे बहुत हानि पहुँचाई पर बाजीराव के कुल सेना के साथ आगे बढ़ने पर विद्रोही सेना हट गई। दाभाई में दोनों सेनाएं आमने-सामने डट गईं और बाजीराव के अनुमान के अनुसार युद्ध आरंभ होते ही कोल-भील भाग खड़े हुए और कथा कदमबंदे भी साथ छोड़ कर हट गया। परंतु धाबडे वंश के पुराने वीर सैनिक बड़े साहस तथा धैर्य से लड़ते रहे। त्र्यंबकराव ने भी असीम वीरता दिखलाई और अपनी सेना का संचालन हाथी पर सवार होकर बड़ी धीरता से करता रहा। उस ने हाथी के पैर तोप की गाड़ी में बँधवा दिए थे

कि वह भाग न सके और शत्रु पर निरतर तीरों की वर्षा करता रहा। बाजीराव उस का यह साहस देख कर हाथी से घोड़े पर सवार होकर कुछ सिद्धहस्त तलवारियो के साथ त्र्यबकराव के हाथी तक मार्ग काट कर पहुँचे। इन्हों ने एक सवार को सधि का झडा लेकर उस के पास भेजा और कहलाया कि ऐसी वीरता महाराज के शत्रु को दिखलानी चाहिए थी। अब भी कुछ नही हुआ है, युद्ध रोक कर हम लोग आपस मे सधि कर ले। त्र्यबकराव ने कुछ नहीं सुना और अपने हाथी को पैर खुलवा कर पेशवा पर हूल दिया। इन के साथ के खड्गवीरो ने हाथी को घेर कर महावत को मार डाला और धाबदे पर आक्रमण करने लगे। वह वीर भी महावत के स्थान पर आ बैठा और तीर चलाने लगा। बाजीराव ने आज्ञा दे रक्खी थी कि उसे जीवित पकड़ ले, मारें नही। परतु वह युद्ध से हटता ही न था। इसी समय त्र्यंबकराव के मामा भाऊसिहराव तोके ने उसे पीछे से गोली चला कर मार डाला, जिस से उस की सेना भाग खड़ी हुई और बाजीराव की पूर्ण विजय हुई। इस के अनतर दाभदे की शक्ति बिलकुल क्षीण हो गई और गुजरात मे पीलाजी गायकवाड के वशजो का प्रभुत्व हो गया।

उक्त घटनाओ के समय ही राजा साहू ने दक्षिण मे भी विजय प्राप्त की। शभाजी ने अपने राज्य को लौट जाने के बाद भी साहू की अधीनता स्वीकार न की और फिर त्र्यबकराव तथा निजाम के लिखने पर उन का पक्ष ग्रहण करने को उद्यत हो गया। उस के एक सरदार ऊदाजी चवन ने उसे उभाडा और राजा साहू को मारने के लिए चार घातक भेजे, जो उन के खेमे मे घुस गए पर राजकीय तेज के आगे उन का साहस छूट गया और सारी बात कह कर तथा क्षमा पाकर वे लौट गए। साहूजी ने अब शभाजी पर सेना भेजना निश्चय किया। श्रीपतिराव ने, जो स्वामी की दृष्टि में गिर गया था, अपना सम्मान बढाने के लिए राजा से प्रार्थना की कि उसे दक्षिण जाने वाली सेना का अध्यक्ष नियत किया जाय। राजा साहू ने यह स्वीकार कर लिया पर उस के सहकारी के स्थान पर धन्नाजी जादव के पुत्र अनुभवी सरदार शभूसिंह जादव को नियत कर साथ भेजा। शभूसिह की सम्मति से श्रीपति ने शीघ्रता से कूच कर वारना के पडाव पर सन् १७३० के जनवरी मे आक्रमण कर दिया और शभाजी तथा ऊदाजी के पन्हाला भागने पर उस की सेना भी पूर्णतया परास्त हो भाग गई। प्रतिनिधि ने अक्तूबर मे विशालगढ पर भी अधिकार कर लिया तब शभाजी ने अधीनता स्वीकार कर ली। शभाजी आज्ञा मिलने पर भाई से

मिलन आए और कृष्णा नदी के किनारे कहद में दोनों भाइयों की भेंट हुई। इन में दोनों ओर बड़ी धूमधाम रही। सतारा में कुछ दिन रहने के बाद संधिपत्र पर हस्ताक्षर हो जाने पर शंभाजी पन्हाला लौट गए और फिर उन्होंने अपने भाई के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया।

मराठों का मालवा पर पहले-पहल आक्रमण सं० १७५५ में ऊदाजी पँवार की अधीनता में हुआ था पर यह लूटमार करने मात्र का एक धावा था। मुगल-साम्राज्य की अवनति तथा मुसलमानों की उद्दंडता से चारों ओर अशांति बढ़ती जा रही थी। बाजीराव के पेशवा होने के बाद उन्हीं की अधीनता में ऊदाजी पँवार, रानोजी सिंधिया तथा मल्हारराव होलकर ने सं० १७८० में मालवा पर चढ़ाई की और इंदौर पर अधिकार कर लिया। इसी के साथ ऊदाजी पँवार ने धार पर अधिकार कर लिया। इसी समय निजामुल्मुल्क आसफजाह को मालवा प्रांत की अध्यक्षता मिली थी, पर यह भी मराठों के उपद्रव को शांत न कर सका और जब स्वयं यह दक्षिण चला गया तब सं० १७८२ के लगभग राजा गिरिधर बहादुर मालवा का सूबेदार नियत हुआ। इस ने मराठों को दमन करने का प्रयत्न किया पर दो वर्ष बाद सारंगपुर के पास इस के पड़ाव पर चिमना जी आप्पा तथा ऊदाजी ने धावा कर इसे युद्ध में मार डाला। इस का चचेरा भाई दयाबहादुर मालवा का प्रबंध करता रहा पर यह भी दो वर्ष बाद धार के पास थालग्राम में मल्हारराव होलकर से युद्ध करता हुआ मारा गया। इस के बाद एक रुहेला सरदार मुहम्मद खाँ बंगश गजन-फर जंग मालवा का सूबेदार बनाया गया, जो इलाहाबाद का सूबेदार था।

मुहम्मद खाँ ने रुहेलों की भारी सेना एकत्र की और दुर्गों की तोपों को उतार कर एक अच्छा तोपखाना भी तैयार कर लिया। सं० १७६० में यह इस सुसज्जित सेना को लेकर मध्यप्रदेश में आया पर वहाँ के राजपूत सरदारों को अपने पक्ष में मिलाने के बदले में उन से शत्रुता करने लगा। इस ने इस प्रांत को 'दारुल्हर्ब' समझ कर पहले बुंदेलखंड पर अधिकार करना निश्चय किया, और वहाँ के एक प्रमुख राज्य पन्ना पर चढ़ाई कर दी।

महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य के कई भाग कर एक-एक अपने पुत्रों को दिए थे, जिन में जैतपुरा इन के बड़े पुत्र जगतराज को मिला। मुहम्मद खाँ बंगश ने जैतपुरा पर पहले भी कई चढ़ाई की थी पर सफल नहीं हुआ था। इस बार इस ने जैतगढ़ विजय कर उस पर अधिकार कर लिया। जगतराज परास्त होकर अपने पिता के पास चले आए। छत्रसाल की अवस्था इस समय ८३ वर्ष की हो गई थी। उन में न लड़ने का सामर्थ्य

था और न कोई बुंदेला वीर उस समय ऐसा था कि जिस से वह ऐसे प्रबल शत्रु के विरुद्ध सहायता प्राप्त कर सकते थे। अत मे इन्हो ने बाजीराव से सहायता माँगने का निश्चय कर उन्हे वही दोहा लिख भेजा, जिस का इस लेख के आरंभ में उल्लेख हो चुका है। इस पत्र को पाते ही बाजीराव ने अपनी वीर-वाहिनी सुसज्जित कर यात्रा आरंभ की और मारा-मार चलते हुए सत्रह दिन मे पूना से जैतपुरा आ पहुँचे। मुहम्मद खा बगश से जैतगढ के पास घोर युद्ध हुआ, जिस में वह परास्त होकर दुर्ग मे जा बैठा। मराठो तथा बुंदेलो ने दुर्ग घेर लिया। अंत में युद्धीय तथा खाद्य सामान्य के चुक जाने पर बंगश को हार माननी पडी और वह दुर्ग तथा जैतपुरा का राज्य छत्रसाल को लौटा कर चला गया। वृद्ध वीर छत्रसाल ने बाजीराव को धन्यवाद दिया और अपना पुत्र माना। इसी के अनुसार इन्हो ने स्व-अर्जित राज्य के तीन भाग किए और दो अपने दो पुत्र जगतराज तथा हृदयसाह को दिया, जिन के वश से क्रमश जैतपुरा तथा पन्ना का राज्य अब तक वर्तमान है तथा तीसरा भाग बाजीराव को दिया, जिस के अतर्गत झाँसी, बाँदा तथा सागर थे। इस राज्य को बाजीराव ने अपनी मुसलमान प्रेमिका मस्तानी के पुत्र को दे दिया।

इस प्रकार मुहम्मद खां बंगश के भाग जाने पर मुहम्मदशाह बादशाह ने उस से सब सूबेदारी छीन ली, और उस के स्थान पर राजा जयसिह सवाई को स० १७९१ मे मालवा का सूबेदार नियत किया। कुछ युद्ध के बाद राजा जयसिह ने जब यह देख लिया कि मालवा से मराठो को निकाल बाहर करना उन की शक्ति के बाहर है तब उन्हो ने मुहम्मदशाह को लिख भेजा कि मालवा की सूबेदारी बाजीराव को दे देने ही मे उस प्रात की भलाई है। इस पर बादशाह ने राजा जयसिह को वजीर खानदौरा खा के भाई मुजफ्फर खा के साथ यथाशक्ति भारी सेना देकर मराठों को दमन करने के लिए भेजा। यह सेना सिरौज तक बढती चली आई। बाजीराव ने भी इस सेना के वहां तक पहुँचने मे कोई बाधा नही डाली पर उस के वहा पहुँचने पर इन्हों ने उस सेना को घेर लिया, रसद आने-जाने का मार्ग बद कर दिया तथा धावे कर सेना को क्रमश- नष्ट करने लगे। अत मे मुज़फ्फ़र खा अपने भाई को सहायता के लिए बार-बार लिखने लगा तब खानदौरा खा ने दिल्ली की बची हुई सेना भी सहायतार्थ भेज दी। इस की सहायता से मुज़फ्फ़र खा को घेरे से छुटकारा मिल गया। इस के बाद बादशाही सेना इधर-उधर कुछ कूच कर तथा यह प्रकट कर कि शत्रु दक्षिण लौट गया, राजधानी चली गई।

मराठा सेना का उपद्रव जारी था और वह कहीं चली न गई थी इस लिए मुहम्मद शाह ने एक भारी सेना हाथियों तथा तोपखाना के साथ एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खां के अधीन आगरे की ओर से भेजा और दूसरी सेना तोपखाने सहित अमीरुल्उमरा समसामुद्दौला नसरत जंग के अधीन कई सरदारों के साथ भेजी गई, जो ६० सहस्र थी। यह मेवात की ओर से रवाना हुई। इस के पहले संधि की बातचीत चल रही थी पर बाजीराव की कड़ी शर्तों को न मान सकने पर ये सेनाएं भेजी गईं। ये सेनाएं शाही सेनाएं थीं और शाही चाल से इधर-उधर कूच करती रह गईं। छोटे-मोटे फुटकर युद्ध कभी-कभी हो जाते थे, जिन से शाही सेना की बहुत हानि होती थी। इसी बीच बाजीराव ने मल्हारराव होलकर को ४५ सहस्र सेना के साथ जयसिंह के राज्य में भेज दिया, जिस ने राजा के कई परगने लूट लिए और साँभर को घेर कर डेढ लाख रुपए दंड ले कर मालवा लौट आए। अमीरुल्उमरा बिना युद्ध किए ही राजधानी लौट गया और एतमादुद्दौला भी नरवर के पास पीलाजी गायकवाड़ से एक लड़ाई लड कर बिना कार्य पूरा किए लौट गया।

मराठा सेना का एक भाग सन् १७३७ में राजपूताने पहुँचा और मेवाड में उदयपुर पहुँच कर राणा से कर लेकर मारवाड गया। मेड़ता को लूट कर तथा नागौर के राजा बख्तसिंह से कर उगाह कर यह अजमेर पहुँचा। इस नगर को लूट कर यह रूपनगर होता हुआ जयपुर पहुँचा, जहां राजा जयसिंह ने अन्य मुसलमान सरदारों की राय से बादशाह की ओर से बीस लाख रुपए देकर उसे दक्षिण लौटा दिया और स्वयं दिल्ली गए।

इस के दूसरे वर्ष बाजीराव ने भदावर पर चढ़ाई की, जहां के राजा अमृतसिंह ने २७ सहस्र सेना के साथ इन का सामना किया यद्यपि इन के पास एक लाख सेना से कम न थी पर यह युद्ध महीनों तक चलता रहा और यह समाचार बादशाह दिल्ली के, जिन की राजधानी भदावर के पास ही थी, कर्णगोचर न हो सका, तथा उन्हों ने राजा की सहायता कुछ भी न की। राजा का एक भाई मराठों से मिल गया और उस के संकेत पर बाजीराव ने कुछ सेना राजा की राजधानी अटेर लूटने भेज दी। यह समाचार पाते ही राजा लडता हुआ अपनी राजधानी को लौटा और कुशलपूर्वक दुर्ग में पहुँच गया। बीस लाख रुपए तथा दस हाथी दंड देकर उस ने अपनी तथा अपने राज्य की रक्षा की।

इसी वर्ष इस के बाद मल्हारराव होलकर ने भारी घुड़सवार सेना लेकर रापरी गॉव के पास मे जमुना नदी पार कर शिकोहाबाद दुर्ग को घेर लिया। वहा के दुर्गाध्यक्ष ने डेढ लाख रुपए और एक हाथी देकर अपनी रक्षा की। इस के बाद मराठो ने आगरा के अंतर्गत फीरोज़ाबाद तथा एतमादपुर को लूटा और जालेसर की ओर बढे। बुरहानुल्मुल्क सआदत खा ने इटावे से आ कर मराठा सेना का सामना किया। पहले उस का भतीजा अबुल् मंसूर खा सफदरजग बारह सहस्र सवारो के साथ लड़ने को आया और जब मराठो ने उसे घेरना चाहा तब वह पीछे हटता वहा पहुँचा जहा बुरहानुल्मुल्क ५० सहस्र सवारो के साथ डटा हुआ था। उस ने तुरत धावा कर दिया, जिस से मराठे परास्त होकर भागे। मल्हारराव होलकर इस प्रकार पराजित होकर जमुना उतर बची हुई सेना के साथ बाजीराव के पास चला आया। बुरहानुल्मुल्क ने इस विजय का समाचार बडे जोश के साथ खूब बढा कर दरबार लिख भेजा कि उस ने मराठों को परास्त कर दक्षिण भगा दिया है। इस के अनतर वह दिल्ली की ओर चला पर मार्ग मे उस से अमीरुल् उमरा खानदौरा से मथुरा के पास भेट हुई, जो बादशाही सेना तथा मुहम्मद खां बंगश के साथ मराठो को दमन करने आ रहा था। ये लोग मिल कर यहीं ठहर गए और विजय के उपलक्ष मे जलसे करने लगे।

बाजीराव ने यह सब समाचार सुन कर कहा कि बादशाह ने जो समाचार सुना है वह कहा तक झूठ है यह दिल्ली के फाटकों के पास मराठा सवारो तथा जलते गॉवो को दिखला कर साबित कर दूँगा। इस के अनंतर बाजीराव फुर्ती से यात्रा करते हुए दिल्ली पहुँच गए और तुगलकाबाद मे पडाव डाल दिया। इन्हों ने उस के चारों ओर लूटमार आरभ कर दी। बादशाह ने यह समाचार पाते ही नगर की कुछ बची हुई सेना अमीर खा, राजा शिवसिह आदि के अधीन मराठो को रोकने को भेजी। युद्ध मे कई सौ शाही सैनिक तथा मीर हुसैन खा आदि कई सरदार मारे गए। इन सब सफलताओ के होते भी बाजीराव के लिए अपने राज्य से दूर दिल्ली के पास ठहरे रहना संभव न था क्योंकि वह एक विशाल शाही सेना को पीछे छोड कर बढ़ आए थे और यह भी पता लगा था कि समाचार पाकर बुरहानुल्मुल्क आदि ससैन्य दिल्ली की ओर रवाना हो चुके है। दक्षिण मे निजामुल्मुल्क के अपराजित रहते हुए अपने राज्य से इतनी दूर समग्र शाही शक्ति से युद्ध करना नीतियुक्त न समझ कर बाजीराव पहले मालवा लौट आए और वहीं से दक्षिण चले गए।

निज़ामुल्मुल्क ने यह सब समाचार पाने पर बादशाह ० ० को लिखा कि यदि उस पर पुनः कृपा की जाय तो वह यथाशक्ति मराठों को दमन करने में कुछ उठा न रक्खेगा। उस ने बादशाह का साथ छोड़ कर दक्षिण में स्वतंत्रता का झंडा फहरा दिया था, इस लिए उसे भय था कि कहीं बादशाह बाजीराव को दक्षिण की सूबेदारी देकर अपने दोनों शत्रुओं को भिड़ा दे तो उस समय उसे अकेले ही दोनों—शाही तथा मराठा सेना—का सामना करना पड़ जायगा, इस लिए उस ने अवसर पाते ही बादशाह को क्षमा का प्रार्थना-पत्र लिख भेजा। उस का बाजीराव का पीछा करने का भी विचार था, जब यह उत्तर में फँसे हुए थे, पर बाजीराव के छोटे भाई चिमनाजी उन्हीं की आज्ञानुसार भारी सेना के साथ निजाम की चालों पर दृष्टि रक्खे हुए थे, जिस से वह कुछ न कर सका। मुहम्मदशाह ने पत्र पाते ही निजाम को दरबार आने की आज्ञा भेज दी और वह भी सन् १७३३ ई० के मध्य में दरबार पहुँच गया।

बादशाह ने निजाम का बहुत सत्कार किया और मालवा तथा आगरा प्रांत का उस को और गुजरात का उस के पुत्र गाजीउद्दीन खाँ को प्रांताध्यक्ष नियत कर कुल शाही शक्ति भी उसे सौंप दी। इस ने अपना पूरा तोपखाना दक्षिण से मँगवाया और सेना सुसज्जित कर इलाहाबाद से जमुना पार कर बुंदेलखंड पहुँच गया। इस के साथ कोटा-नरेश तथा अबुल्मसूर खाँ सफ़दरजंग भी थे। छत्रसाल के पुत्रों को परास्त करता यह मालवा में भूपाल के पास पहुँचा, जहाँ का ताल सुप्रसिद्ध था। कहा जाता था कि 'ताल तो भूपाल ताल और सब तलैया'। पर मुसलमानों ने इसे तोड़-फोड़ तथा सुखा कर खेत बना डाले और अब वह केवल दो मील लंबी झील मात्र रह गई है। निजाम ने अपनी सेना इस ताल तथा नदी के बीच में रख कर मराठों से युद्ध करने की तैयारी की। बाजीराव इस तैयारी का समाचार पाते ही अस्सी सहस्र सेना के साथ भूपाल आ पहुँचे और निजाम की इस स्थिति को देख कर उसे ससैन्य घेर लिया। शाही सेना पर पूरा विश्वास न होने के कारण निजाम युद्ध के लिए बाहर न निकला। यद्यपि बहुत से शत्रु मारे गए पर मराठे भी उस के तोपखाने के कारण उसे नष्ट न कर सके। मल्हारराव होलकर तथा यशवंतराव पवार ने सफदरजंग को परास्त कर उसे उत्तर लौट जाने को बाध्य किया, जो मुख्य सेना से पीछे हट कर पड़ाव डाले हुए था। सयाजी गूजर, रानोजी राव सिंधिया आदि सरदार बराबर धावे कर शत्रु-सेना का नाश कर रहे थे। दिल्ली से कोई सहायता

की आशा न रही और हैदराबाद से सहायता पहुँचने में बहुत समय चाहिए था। बाजीराव स्वय अपने श्वेत घोडे पर सवार होकर सेना का बराबर परिचालन कर रहे थे। इस लिए अत मे निजाम ने शाही आज्ञानुसार मालवा बाजीराव को देकर सन् १७३८ ई० में सधि पर हस्ताक्षर कर दिया और दिल्ली लौट गया। बादशाह ने यह आज्ञा नादिरशाह की चढाई का समाचार सुन कर ही बाध्य होकर दी थी। इस प्रकार मराठों का मालवा तक साम्राज्य फैल गया।

बाजीराव भी मालवा मे सरदारो को नियत कर तथा एक सेना कोटा भेज कर दक्षिण लौट गए। कोटा के महाराव भाग कर गागरूनगढ़ चले गए। कोटावासियो ने कुछ दिन युद्ध करने के बाद कई लाख रुपए दड देकर सधि कर ली।

सन् १७२० ई० में महाराव अजीतसिंह को हटा कर हैदरकुली खां गुजरात का प्राताध्यक्ष नियत किया गया था, पर उस प्रात मे उस के अत्याचारों का समाचार पाने पर बादशाह ने निजामुल्मुल्क के पुत्र गाजीउद्दीन खां को वहां का प्राताध्यक्ष नियत कर दिया। उस ने अधिकार देना न चाहा तब निजाम स्वयं वहा पहुँचा, जिस से वह दिल्ली चला गया और यह अपने चाचा हामिद खा को पुत्र का प्रतिनिधि बना कर लौट आया। परतु हैदरक़ुली के नायब रुस्तम अली खा, शुजाअत खां और इब्राहीम क़ुली तीन भाई थे, जिन मे प्रथम सूरत मे था। अतिम दो भाई हामिद खां से युद्ध कर मारे गए तब रुस्तम-अली पीलाजी गायकवाड़ की सहायता लेकर, जिस से वह बराबर चौथ के लिए लडता रहा था, हामिद खा से युद्ध करने आया। हामिद खां भी कथाजी कदमबदे मराठा की सहायता प्राप्त कर युद्ध को पहुँचा पर परास्त हो गया। इस के अनतर हामिद ने पीलाजी को अपनी ओर मिला लिया और तब युद्ध कर रुस्तम अली को मार डाला। मराठों ने रुस्तम अली का सामान लूट लिया तथा अहमदाबाद और बड़ौदा भी लूटा।

मुहम्मदशाह ने यह समाचार पाकर सरबुलंद खा को गुजरात का प्राताध्यक्ष नियत कर भेजा तब निजाम ने हामिद खा को बुला लिया, और सर बुलद ने वहा अधिकार कर लिया। इस ने काफी प्रयत्न किए पर यह मराठों का उपद्रव शांत न कर सका, जो प्रात भर में फैले हुए थे और पीलाजी गायकवाड़ तथा कथा कदमबदे के अधीन थे। बाजीराव ने मूँगीशेगाँव की सधि के बाद चिमनाजी आप्पा को गुजरात भेजा। सर बुलद खां प्रथम दो को डाकू मात्र समझता था पर चिमनाजी को राजा साहू तथा पेशवा का प्रतिनिधि

म पहुँच कर सीदी रहान को परास्त कर मार डाला ताल तथा गोस्साा गढों को विजय कर लिया और राजपुरी स्थानों को लूटा। मानाजी आंग्रे ने जजीरा के पास सीदी बेड़े को गहरी पराजय दी और ८ जून को बाजीराव ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया, जिसे औरगज़ेब ने सन् १६८९ ई० में सीदियों को दे दिया था। अब सीदियों के पास केवल चार दुर्ग बच गए थे जिन की वे दृढता से रक्षा करने लगे और अंग्रेजों, पुर्तगीजों तथा मुगल बेड़े से सहायता माँगी। शेखोजी बंबई पर अधिकार करने का प्रयत्न कर रहे थे कि उन की उसी वर्ष २८ अगस्त को मृत्यु हो गई।

बाजीराव ने शेखोजी की मृत्यु के कारण सीदियों से युद्ध करना उचित न समझ कर संधि कर ली, जिस से ब्रह्मेंद्र स्वामी तुष्ट न हुए तब सन् १७३६ ई० में १९ अप्रैल को चिमनाजी आप्पा ने सेना सहित धावा कर चरई ग्राम के पास मंदिर को नष्ट करने वाले सत् सीदी को परास्त कर मार डाला। इसी युद्ध में अंडेरी का अध्यक्ष ग्यारह सहस्र सेना के साथ मारा गया, जिस से सीदियों की शक्ति सदा के लिए नष्ट हो गई और स्वामी जी भी संतुष्ट हो गए।

शेखोजी के चारो पुत्रों में आधिपत्य के लिए इस के बाद झगड़ा चला और शंभाजी के विरुद्ध मानाजी ने सुवर्णदुर्ग में अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया तथा पुर्तगीजों से सहायता ली। शंभाजी इस कारण हार गए तब बाजीराव को मध्यस्थ बनाया। इन्हों ने आंग्रे के अधीनस्थ प्रांत को दोनों में बाँट देने की राय दी, जिस से असंतुष्ट हो शंभाजी ने इस बार पुर्तगीजों की सहायता लेकर मानाजी को कोलाबा में घेर लिया। मानाजी ने कोथल तथा राजमाची दुर्ग देकर बाजीराव को सहायतार्थ बुलाया, जिन्हों ने ससैन्य पहुँच कर कोलाबा का घेरा उठा दिया और पुर्तगीजों से युद्ध करने की घोषणा की। गोआ के वाइसराय ने संधि प्रस्ताव किया, जिसे इन्हों ने स्वीकार कर लिया।

उक्त संधि की एक शर्त को न मानने तथा बाजीराव के भेजे हुए विशिष्ट राजदूत व्यंकटराव जोशी का अपमान करने से संधि टूट गई और पुनः युद्ध आरंभ हो गया। बाजीराव ने चिमनाजी आप्पा को सेनापति नियत कर ससैन्य पुर्तगीजों पर आक्रमण करने को भेजा। मराठा सेना ने एकाएक ६ अप्रैल सन् १७३७ ई० को थाना दुर्ग पर आक्रमण कर दिया और उस पर अधिकार कर सालसट पर भी धावा कर दिया। इसी समय नारायण जोशी ने पारसीक और धारवि पर, शंकरजी केशव ने अर्नाला दुर्ग पर और एक सेना

ने गोर बदर पर आक्रमण कर दिया। इन सब पर दूसरे दिन तक अधिकार हो गया, इस के अनतर वर्षा के पहले मडवी, मनोरा आदि छोटे-छोटे ग्रामों पर अधिकार कर लिए गए और वसीन के घेरे का प्रबध दृढ़ कर चिमनाजी पूना लौट गए।

अगस्त महीने मे बाजीराव ने वसीन पर आक्रमण करने का प्रबंध किया। इस बीच युवक लुई बौटेलहो के स्थान पर एक अनुभवी वीर सैनिक वसीन का अध्यक्ष होकर आया और इस ने उस की रक्षा का सुप्रबध किया तथा वसीन पर किए गए कई मराठा धावो को इस ने विफल कर दिया। इस प्रकार यह लड़ाई बहुत दिनो तक चलती रही। पुर्तगाल से भी दो जहाज भर कर सेना आ पहुँची, जिस से माहिम तथा आशरिन के घेरे उठा दिए गए। पेड्रो ड मेलो के अधीन पाँच सहस्र सेना ने गुप्त रूप से थाना पर सन् १७३८ के सितबर में आक्रमण किया, पर इस का पता बाजीराव को मिल गया, जिस से यह सेना पगस्त कर दी गई, पेड्रो ड मेलो मारा गया और बची सेना भाग गई। सन् १७३९ के प्रारंभ में बाजीराव ने गोआ से निरंतर आती हुई सहायता को रोकने के लिए व्यकटराव घोरपदे को सोलह सहस्र सेना के साथ वहा भेजा, जिस ने मारगाओ पर अधिकार कर राछोल दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। वहा घोर युद्ध हो रहा था कि इसी बीच नादिरशाह की चढ़ाई का समाचार सारे भारत मे फैल गया। बाजीराव ने उत्तर जाकर भारत के उस बाह्य शत्रु को पगस्त करने का निश्चय किया और उस की तैयारी मे लग गए। उन की शक्ति इतनी थी कि वह पुर्तगीजों का युद्ध जारी रखते हुए भी उस का प्रबंध करने लगे।

पुर्तगीजों की कभी-कभी कहीं विजय हो जाती थी पर एक के बाद एक उन के अधीनस्थ स्थानों तथा दुर्गों पर मराठों का अधिकार होता जा रहा था। वसीन का घेरा जारी था, उस का वीर दुर्गाध्यक्ष एनटोनियो ड सिलवीरा मारा गया, और अत मे कई खानो के उडने पर निरुपाय हो कर पुर्तगीजो ने मई मे वसीन मराठो को सौप दिया। वसीन पर अधिकार होते ही बाजीराव ससैन्य उत्तर की ओर रवाना हो गए पर यह समाचार मिलते ही कि नादिरशाह दिल्ली लूट कर स्वदेश लौट गया, यह पुन. लौट कर पुर्तगीजो के युद्ध को निपटाने मे दत्तचित्त हुए। गोआ घेर लिया गया और तब पुर्तगीजो ने सधि प्रस्ताव करना ही उचित समझा। अंत मे अग्रेज़ो के बीच मे पडने से चौल तथा मराठो द्वारा विजित स्थानो तथा दुर्गों को दे देने पर सधि हो गई। इसी के अनतर

मान कर उस ने उन से संधि प्रस्ताव किया सन १७२९ ई० मे बाजीराव ने चौथ तथा सिरदेशमुखी के बदले में गुजरात मे शांति रखने का वचन देकर संधि कर ली।

मुहम्मदशाह ने यह समाचार पा कर सर बुलंद खां को गुजरात से हटा कर स० १७८६ में मारवाड-नरेश महाराज अभयसिंह को वहां का अध्यक्ष नियत किया। जब यह प्राय एक वर्ष बाद तैयारी कर अहमदाबाद पहुँचे और स० १७८७ के आश्विन मे सर बुलंद को मुचेडगाँव के पास परास्त कर दिया तब वह अंत में इन्हें प्रांत सौंप कर दिल्ली चला गया।

जिस प्रकार हर एक प्रांत मे मुगल प्रांताध्यक्ष नियत होते थे उसी प्रकार मराठो के एक-एक सरदार भी एक-एक प्रांत मे अपना प्रभाव स्थापित कर वहां हर प्रकार से अपनी चौथ उगाहा करते थे। खानदेश तथा गुजरात मे खंडेराव धाबदे नामक एक मराठा सरदार ने लूट-मार कर अपना प्रभाव फैला रक्खा था। इसे बालाजी विश्वनाथ ने सेनापति की पदवी दे कर सतारा दरबार का एक अधीनस्थ सरदार बना लिया था। इन की मृत्यु पर इन के पुत्र त्र्यंबकराव धाबदे के सहकारी पीलाजी गायकवाड़ तथा कथा कदमबदे इस कार्य को चलाते थे। सन् १७२९ ई० मे बाजीराव को सर बुलंद खां ने चौथ आदि देना स्वीकार कर लिया। अभयसिंह के प्रांताध्यक्ष होने के बाद सन् १७३१ ई० मे त्र्यंबकराव धाबदे बाजीराव से युद्ध कर मारे जा चुके थे अतः पीलाजी गायकवाड को अकेले ही अभयसिंह का सामना करना पडा। बाजीराव उत्तर में फँसे हुए थे और चिमनाजी दक्षिण के विभिन्न कार्यों मे व्यस्त थे। अभयसिंह ने सेना भेज कर बडौदा छीन कर उस पर अधिकार कर लिया पर इस के बाद वह कई युद्धो मे परास्त हो गए। इन के एक दूत ने पीलाजी को डाकोर नामक तीर्थ-स्थान मे संधि की बातचीत करते समय सन् १७३२ ई० मे मार डाला पर इस से कुछ भी लाभ न हुआ। इस के भाई महादजी ने जबूसर से आक्रमण कर उसी वर्ष बड़ौदा पर अधिकार कर लिया और इस के पुत्र दामाजी ने पूर्वीय गुजरात पर अधिकार कर जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। अभयसिंह अपने राज्य की रक्षा करने के लिए मारवाड चले गए। सन् १७३५ ई० मे अहमदाबाद पर भी दामाजी का अधिकार हो गया, और यह प्रांत सदा के लिए मुगल साम्राज्य से अलग हो गया।

मराठा नौ-सेना के अधिपति कान्होजी आग्रे के पिता तुकोजी सन् १६९० ई०

मे इन्ही एक पुत्र को छोड कर मर गए और इन की उक्त सेना मे नियुक्ति हो गई। सुवर्ण दुर्ग पर सीदी तथा अचलोजी मोहितो ने जब धावा किया, और वहा का अध्यक्ष दुर्ग दे देने का विचार करने लगा तब कान्होजी ने दुर्ग-रक्षा अपने हाथ मे ले ली और उस को बचा भी लिया। इस कार्य से प्रसन्न हो शभाजी ने इन्हे शीघ्र बेड़े मे ऊँचा पद दे दिया पर शभाजी के मारे जाने पर समुद्र-तटस्थ कुल दुर्गो को पहले कान्होजी तथा भीवाजी गूजर ने आपस मे बाँट लिया पर सन् १६९७ मे भीवाजी को कैद कर यही कुल कोकण के स्वामी हो गए। साहू जी के स्वतत्र होने पर ताराबाई का आज्ञा का बहाना कर कान्होजी ने कल्याण तथा वहा के प्रदेशों पर और भोरघाट के नीचे के विशालगढ़ तथा राजमाची और उस पर के लोहगढ पर अधिकार कर लिया। इस पर सन् १७१३ ई० मे साहू जी ने बाहिरोजी पिंजले पेशवा को इस पर भेजा, पर वह परास्त हो कैद हो गया। तब बालाजी विश्वनाथ भेजे गए, जिन्हो ने लोनवाला मे आग्रे से भेट कर अपनी बाचालता से उसे साहू जी की अधीनता मानने को वाध्य किया। इस पर वह सरखेल की पदवी से विभूषित किया गया और प्रायः उस के विजित कुल प्रात उसे मिल गए।

कान्होजी वास्तव मे स्वतंत्र रह कर सीदियो, अग्रेजो तथा पुर्तगीजो से युद्ध तथा लूटमार करते रहते थे। सन् १७२० ई० मे अंग्रेजो तथा पुर्तगीजो के सम्मिलित बेड़े तथा सेना ने कान्होजी आग्रे के दुर्गो पर आक्रमण किया और इगलैंड के राजकीय बेडे के कई पोतो ने कमोडोर मैथ्यूज की अधीनता मे सहायता भी दी पर वे एक दुर्ग भी न ले सके। अत में आपस ही मे झगड़ा हो गया, जिस से पुर्तगीज अलग हो गए। बाजीराव कान्होजी की सहायता को ससैन्य आ पहुंचे थे इस लिए पुर्तगीजों ने इन के द्वारा १२ जनवरी १७२२ ई० को राजा साहू से सधि कर ली। इस प्रकार पुर्तगीजों के हट जाने पर भी अंग्रेजो से युद्ध छिट-फुट जारी रहा। इसी प्रकार सीदी तथा डचो के भी प्रयत्नो को निष्फल करते हुए कान्होजी की सन् १७२९ ई० मे मृत्यु हो गई।

कान्होजी के बाद उन के पुत्र शेखोजी बेडाध्यक्ष हुए और इन्हों ने अग्रेजों से युद्ध जारी रक्खा। सीदियों से बहुत दिनो तक संधि रही पर शेखोजी उन के विरुद्ध थे। एक हाथी के कारण सीदियो ने शिवरात्रि के दिन ब्रह्मेद्र स्वामी के बनवाए हुए परशुरामेश्वर महादेव के मंदिर को नष्ट कर डाला, जिस से क्रुद्ध हो स्वामीजी ने बाजीराव को सीदियों को नष्ट करने के लिए उभाडा सन् १७३३ ई० मे मराठा सेना ने सीदी राज्य

में पहुँच कर सानी रहान को परास्त कर मार डाला ता ा तथा गोस्साल गढा को विजय कर लिया और राजपुरी स्थानों को लूटा। मानाजी आंग्रे ने जजीरा के पास सीदी बेडे को गहरी पराजय दी और ८ जून को बाजीराव ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया, जिसे औरगजेब ने सन् १६८९ ई० मे सीदियो को दे दिया था। अब सीदियो के पास केवल चार दुर्ग बच गए थे जिन की वे दृढता से रक्षा करने लगे और अग्रेजो, पुर्तगीजो तथा मुगल बेडे से सहायता माँगी। शेखोजी बबई पर अधिकार करने का प्रयत्न कर रहे थे कि उन की उसी वर्ष २८ अगस्त को मृत्यु हो गई।

बाजीराव ने शेखोजी की मृत्यु के कारण सीदियो से युद्ध करना उचित न समझ कर सधि कर ली, जिस से ब्रह्मेंद्र स्वामी तुष्ट न हुए तब सन् १७३६ ई० मे १९ अप्रैल को चिमनाजी आप्पा ने सेना सहित धावा कर चरई ग्राम के पास मदिर को नष्ट करने वाले सत् सीदी को परास्त कर मार डाला। इसी युद्ध मे अंडेरी का अध्यक्ष ग्यारह सहस्र सेना के साथ मारा गया, जिस से सीदियों की शक्ति सदा के लिए नष्ट हो गई और स्वामी जी भी सतुष्ट हो गए।

शेखोजी के चारों पुत्रो मे आधिपत्य के लिए इस के बाद झगडा चला और शभाजी के विरुद्ध मानाजी ने सुवर्णदुर्ग मे अपने को स्वतत्र घोषित कर दिया तथा पुर्तगीजो से सहायता ली। शभाजी इस कारण हार गए तब बाजीराव को मध्यस्थ बनाया। इन्हो ने आंग्रे के अधीनस्थ प्रात को दोनो मे बाँट देने की राय दी, जिस से असतुष्ट हो शभाजी ने इस बार पुर्तगीजो की सहायता लेकर मानाजी को कोलाबा मे घेर लिया। मानाजी ने कोथल तथा राजमाची दुर्ग देकर बाजीराव को सहायतार्थ बुलाया, जिन्हो ने ससैन्य पहुँच कर कोलाबा का घेरा उठा दिया और पुर्तगीजो से युद्ध करने की घोषणा की। गोआ के वाइसराय ने सधि प्रस्ताव किया, जिसे इन्हो ने स्वीकार कर लिया।

उक्त सधि की एक शर्त को न मानने तथा बाजीराव के भेजे हुए विशिष्ट राजदूत व्यकटराव जोशी का अपमान करने से सधि टूट गई और पुन युद्ध आरभ हो गया। बाजीराव ने चिमनाजी आप्पा को सेनापति नियत कर ससैन्य पुर्तगीजों पर आक्रमण करने को भेजा। मराठा सेना ने एकाएक ६ अप्रैल सन् १७३७ ई० को थाना दुर्ग पर आक्रमण कर दिया और उस पर अधिकार कर सालसट पर भी धावा कर दिया। इसी समय नारायण जोशी ने पारसीक और धारवि पर, शकरजी केशव ने अर्नाला दुर्ग पर और एक सेना

ने गोर बदर पर आक्रमण कर दिया। इन सब पर दूसरे दिन तक अधिकार हो गया, इस के अनतर वर्षा के पहले मडवी, मनोरा आदि छोटे-छोटे ग्रामों पर अधिकार कर लिए गए और बसीन के घेरे का प्रबंध दृढ कर चिमनाजी पूना लौट गए।

अगस्त महीने मे बाजीराव ने बसीन पर आक्रमण करने का प्रबंध किया। इस बीच युवक लुई बौटेलहो के स्थान पर एक अनुभवी वीर सैनिक बसीन का अध्यक्ष होकर आया और इस ने उस की रक्षा का सुप्रबंध किया तथा बसीन पर किए गए कई मराठा धावों को इस ने विफल कर दिया। इस प्रकार यह लड़ाई बहुत दिनों तक चलती रही। पुर्तगाल से भी दो जहाज भर कर सेना आ पहुँची, जिस से माहिम तथा आशरिन के घेरे उठा दिए गए। पेड्रो ड मेलो के अधीन पाँच सहस्र सेना ने गुप्त रूप से थाना पर सन् १७३८ के सितंबर मे आक्रमण किया, पर इस का पता बाजीराव को मिल गया, जिस से यह सेना परास्त कर दी गई, पेड्रो ड मेलो मारा गया और बची सेना भाग गई। सन् १७३९ के आरभ मे बाजीराव ने गोआ से निरतर आती हुई सहायता को रोकने के लिए व्यकटराव घोरपडे को सोलह सहस्र सेना के साथ वहां भेजा, जिस ने मारगाओ पर अधिकार कर राछोल दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। वहां घोर युद्ध हो रहा था कि इसी बीच नादिरशाह की चढ़ाई का समाचार सारे भारत में फैल गया। बाजीराव ने उत्तर जाकर भारत के उस बाह्य शत्रु को परास्त करने का निश्चय किया और उस की तैयारी मे लग गए। उन की शक्ति इतनी थी कि वह पुर्तगीजो का युद्ध जारी रखते हुए भी उस का प्रबंध करने लगे।

पुर्तगीजों की कभी-कभी कही विजय हो जाती थी पर एक के बाद एक उन के अधीनस्थ स्थानो तथा दुर्गों पर मराठो का अधिकार होता जा रहा था। बसीन का घेरा जारी था, उस का वीर दुर्गाध्यक्ष एनटोनियो ड सिलवीरा मारा गया, और अत मे कई सानो के उडने पर निरुपाय हो कर पुर्तगीजो ने मई मे बसीन मराठो को सौंप दिया। बसीन पर अधिकार होते ही बाजीराव ससैन्य उत्तर की ओर रवाना हो गए पर यह समाचार मिलते ही कि नादिरशाह दिल्ली लूट कर स्वदेश लौट गया, यह पुन. लौट कर पुर्तगीजों के युद्ध को निपटाने मे दत्तचित्त हुए। गोआ घेर लिया गया और तब पुर्तगीजो ने सधि प्रस्ताव करना ही उचित समझा। अत मे अग्रेजो के बीच मे पडने से चौल तथा मराठो द्वारा विजित स्थानो तथा दुर्गों को दे देने पर संधि हो गई। इसी के अनतर

अंग्रेजों ने भी अपने राजदूत भेजे जिस का राजा साहू ने सत्कार किया और उन की आज्ञानुसार बाजीराव ने व्यापारिक स्वतंत्रता देकर अंग्रेजों से संधि कर ली[1]।

इस प्रकार बाजीराव अपने सभी प्रयत्नों में सफल हो कर २६ जुलाई को पूना लौट आए। एक महीने बाद इन के पुत्र बालाजी भी राजा साहू के स्वयं मेराज दुर्ग विजय करके लौटने पर उन की आज्ञा से पिता के पास पहुँच गए। बाजीराव की प्रेमिका एक सुंदरी मुसलमान युवती मस्तानी नाम की थी, जिस के वह वशीभूत हो रहे थे और उन के स्वास्थ्य पर इस संसर्ग का अच्छा असर नहीं पड रहा था। साथ ही वह अपनी स्त्री काशीबाई की ओर से उदासीन भी हो रहे थे। इन कारणों से इन की माता राधाबाई तथा भाई चिमनाजी आप्पा ने इन्हें बहुत समझाया कि उसे त्याग दें पर उन्हों ने कुछ नहीं सुना। इस मस्तानी के विषय में अनेक प्रकार की दंतकथा सुनी जाती है। प्रथम यह है कि मस्तानी किसी शुजाअत खाँ की उपपत्नी थी, जो मालवा में एक मुगल सेनानी था और चिमनाजी ने उसे परास्त कर मस्तानी को अन्य लूट के साथ बाजीराव के पास भेज दिया था। दूसरी यह है कि निज़ामुलमुल्क ने इसे अपनी ओर से बाजीराव को भेंट में दिया था, जो उस के परिवार ही की थी। तीसरी यह है कि मस्तानी छत्रसाल की मुसलमान उपपत्नी की पुत्री थी और उन से बाजीराव को मिली थी। जो कुछ हो, बाजीराव उसे देख कर उस के प्रेम में ऐसे फँसे कि उसे यावज्जीवन के लिए स्वीकार कर अपनी उपपत्नी बना लिया। वह सुंदरी चंचला होते गायन-वादन में भी अत्यंत कुशल थी। यह भी बाजीराव के साथ बराबर रहती और अनेक युद्ध यात्राओं में भी साथ देती थी। अंत में जब चिमनाजी ने देखा कि उन के भाई समझाने से नहीं मानते तब उन्हो ने मस्तानी को एक दिन क़ैद कर शनवारवाडा में सुरक्षित रख दिया, परन्तु मस्तानी वहाँ से भाग कर पुनः बाजीराव के पास पहुँच गई। चिमनाजी ने इस पर उसे फिर क़ैद कर दिया तब बाजीराव अपने जीवन ही से तंग आ गए और उन्हों ने युद्ध में प्राण-विसर्जन करने की ठान ली।

मूँगीशेगाँव की संधि के अनुसार निज़ाम ने बाजीराव को निजी संपत्ति के रूप में जागीर देने को कहा था पर बारह वर्ष होते आए उस ने यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं की थी। अतः बाजीराव ने सेना सुसज्जित कर पूना से प्रस्थान कर दिया और चिमनाजी भी सहायक

---

[1] एचिसन, 'ट्रीटीज़', जिल्द १४

सेना लेकर आ मिले। निज़ाम उत्तरी भारत मे था और उस का पुत्र नासिर जग इस चढाई का समाचार सुन कर ४० सहस्र सेना के साथ युद्ध करने के लिए आया। गोदावरी के तट पर दो मास तक युद्ध होता रहा। अत मे नासिर जग बाध्य होकर औरगाबाद लौटा और उस दुर्ग मे घिर गया। बड़े घेरे के कारण निरुपाय होकर नासिर जग ने इंदौर के दक्षिण हाडिया तथा खारगॉव देकर सधि कर ली। इस के बाद बाजीराव ने चिमनाजी को पूना भेज दिया और बालाजी को आग्रे परिवार के झगडे को तै करने के लिए कोलाबा जाने की आज्ञा दी। स्वय वह अपनी इस नवार्जित सपत्ति का प्रवध करने के लिए वहा गए। यही यह ज्वर से पीडित हुए और बयालीस वर्ष की अवस्था मे २५ अप्रैल सन् १७४० ई० को इन की मृत्यु हो गई। उस समय इन के पास इन की पत्नी काशीबाई तथा द्वितीय पुत्र जानर्दन पंत उपस्थित थे। यह समाचार शीघ्र ही चिमनाजी तथा बालाजी को भेजा गया, जो सस्कार के समय तक आ पहुँचे। मस्तानी भी इन लोगों के साथ आई और बडी वीरता से प्रचड अग्नि मे इन के साथ सती हो कर उस ने इन का सहगमन किया। काशीबाई बहुत दिनों तक वैधव्य भोग कर सन् १७५८ के २७ नवबर को परलोक सिधारी।

बाजीराव के चार औरस पुत्र थे—बालाजी, रामचद्र, रघुनाथ और जनार्दन। मस्तानी से एक पुत्र शमशेर बहादुर हुआ, जिसे बाजीराव ने छत्रसाल से मिला हुआ बुंदेलखड में बॉदा का राज्य दे दिया था। बाजीराव बहुत चाहते थे कि उन के इस पुत्र को ब्राह्मण बना लिया जाय पर हिंदू समाज इतना कठोर तथा प्रबल था कि ऐसे शक्तिमान वीर का भी किया कुछ न हो सका। अंत मे वह मुसलमान ही रह गया। यह भी बडा वीर था और इक्कीस वर्ष की अवस्था मे पानीपत युद्ध मे मारा गया। इस का पुत्र अलीबहादुर था, जो बॉदा के नवाबो का पूर्वज कहलाया।

बाजीराव के भाई चिमनाजी भी अपने भाई की मृत्यु के बाद आठ मास ही के भीतर १७ दिसंबर, १७४० ई० को परलोक सिधारे। इन के दो विवाह हुए थे। पहला रुक्माबाई से हुआ था, जिन की अपने एकमात्र पुत्र सदाशिवराव को जन्म देने के बाद ३१ अगस्त, १७३० ई० को मृत्यु हो गई। दूसरा विवाह अन्नपूर्णा बाई से हुआ, जिन से केवल एक पुत्री हुई थी। यह अपने पति के साथ सती हो गई। चिमनाजी अच्छे विद्वान् तथा विद्याप्रेमी थे और साहस, वीरता तथा सेनापतित्व मे भाई से किसी प्रकार कम न थे पर बाजीराव की प्रसिद्धि के आगे इन की ख्याति दब सी गई थी। इन के व्यक्तित्व

म शील मृदुता तथा मिलनसारी अधिक थी और दूसरों की बात सुन कर उस पर विचार भी करते थे। बाजीराव की संतानों के पठन-पाठन, शिक्षा, संस्कार, विवाहादि का सारा प्रबंध इन्ही को करना पड़ता था, क्योंकि बाजीराव को राजनैतिक उच्चाभिलाषा के कारण इस ओर दृष्टि डालने का सदा अनवकाश रहा। चिमनाजी प्रकृत्या सरल होते भी ऐसे शुद्ध आचार तथा चरित्र के थे कि अपने बड़े भाई को भी मस्तानी के संबंध में बहुत कुछ कह डाला और दो बार उसे कैद कर इन से दूर भी किया। मराठा साम्राज्य के लिए वह बड़े शोक का दिन था, जिस दिन चिमनाजी की इतनी अल्पावस्था में मृत्यु हो गई। यदि कुछ दिन यह और जीते तो उन घरेलू झगड़ों को न होने देते तथा अपने भाई के पुत्रों को बहुत कुछ अनुभवी बना जाते।

मराठा इतिहास में यदि बाजीराव की विजय-गाथा निकाल दी जाय तो स्पष्ट ही वह मराठा-साम्राज्य का इतिहास न रह कर एक साधारण राज्य का इतिहास मात्र रह जायगा। उन की उत्तरी भारत में अर्जित विजयों, उन के मराठा सेना की अजेयता की ख्याति तथा उन के बीस वर्ष के अजस्र प्रयत्नों ही ने मराठा-साम्राज्य की स्थापना की थी। कूटनीति-कुशल निज़ाम तथा अन्य योग्य मुगल सेनानियों की चालों को दूरदर्शिता तथा अनुभव से समझ कर निष्फल करते हुए मुगल साम्राज्य का नाममात्र अवशिष्ट रहने देना इन की राजनैतिक विशेषता थी। दक्षिण में पुर्तगीज़, अंग्रेज़ तथा सीदियों की सम्मिलित शक्तियों को इन्हों ने अपने नीति-कौशल, बाहुबल तथा अध्यवसाय ही से ध्वंसप्राय कर दिया था। उक्त कारणों ही से ग्रांटडफ, एलफ़िन्स्टन, बेवरिज, कीन आदि इतिहासज्ञों ने बाजीराव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

बाजीराव गौरवर्ण तथा लंबे क़द के पुरुष थे, और अपने सौंदर्य के लिए भी प्रसिद्ध थे। यह वस्त्र आदि में बहुत सादगी रखते थे तथा खानपान में भी विशेष व्यय नहीं करते। युद्धयात्रा में तो इतनी सादगी भोजन में रहती थी कि कभी-कभी घोड़े पर सवार चलते हुए दाना फाँक कर समय काट देते थे। इन में विनम्रता के स्थान पर औद्धत्य की मात्रा अधिक थी और अधीनस्थों को पत्र में भर्त्सना के सिवा स्यात् कभी ही प्रशंसा के एकाध वाक्य लिख दिए होंगे। परंतु साथ ही यह भी था कि वह दूसरों की वीरता, साहस तथा कर्मठता का बिना जातिपाँति का विचार किए पूरी दाद देते और यही कारण है कि इन के सहकारी-गण इन पर भय-मिश्रित श्रद्धा तथा भक्ति रखते थे।

बाजीराव कुशल घुड़सवार थे और तलवार चलाने तथा अचूक तीर चलाने में भी सिद्धहस्त थे। यह अत्यंत धीर थे और कभी युद्ध में विजय हाथ से जाते देख कर भी घबडाते न थे प्रत्युत् उसे अपने धैर्य ही के कारण फिर अपना लेते थे। इन्हों ने पूना में शनवार वाड़ा बनवाया था; जिस में कई बडे बड़े हॉल थे पर यह प्रासाद सन् १८२८ ई० में अग्नि से नष्ट हो गया। इसी के फाटक के पास इन की स्मारक समाधि बनी हुई है, जो अब तक है।

---

# महाकवि नंददास का जीवन-चरित्र

[ लेखक—श्रीयुत दीनदयालु गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ]

विक्रम की १५वी, १६वी तथा १७वी शताब्दियां हिंदी साहित्य का धार्मिक काल कहलाती है। इस काल मे महात्मा रामानंद, कबीर, श्री वल्लभाचार्य, श्री चैतन्य महाप्रभु, गोस्वामी हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, आदि अनेक धर्म-प्रचारक, आचार्य, और भक्तो ने भक्तिरस का एक ऐसा अपूर्व श्रोत बहाया था कि जिस में मज्जन कर देश की पीड़ित और दु खित जनता को सुख-शांति मिली थी। इन आचार्यो के शांतिदायी प्रभाव के नीचे अनेक ऐसे आध्यात्मिक साधक हुए जिन्हों ने हिंदी भाषा मे अपने अनुभूत भावो को प्रकट कर हिंदी साहित्य की उत्कृष्टता को बढ़ाया, और उस के माधुर्य का सिक्का उत्तरी भारत की संपूर्ण भाषाओं पर जमा दिया। वल्लभ-सप्रदाय में भी बहुत से उच्च कोटि के प्राचीन भक्त कवि हो गए है। हिंदी ससार के "सूर सूर" (महात्मा सूरदास), वल्लभ-सप्रदाय के ही थे। श्री वल्लभाचार्य जी के बाद आचार्य की गद्दी पर सवत् १५८७ वि० मे उन के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी बैठे, जो सवत् १६४२ वि० मे गोलोकवासी हुए। उन्हों ने, चार अपने शिष्यो में से तथा चार अपने गुरु और पिता श्री वल्लभाचार्य के शिष्यो में से, आठ परम भक्त और प्रतिभा-सपन्न उच्चकोटि के कवियो को चुन कर 'अष्टछाप' की उपाधि से विभूषित किया। महात्मा सूरदास, परमानददास, कृष्णदास और कुंभनदास श्री वल्लभाचार्य के शिष्य थे और महाकवि नददास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविद स्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। ये अष्टछाप कवि वल्लभ-सप्रदाय मे अष्टसखा कहलाते है। इन अष्टछाप कवियो की दो श्रेणियां है—एक 'स्वामी' दूसरी 'दास'। सूरदास (सूर स्वामी), परमानददास (परमानद स्वामी), छीत स्वामी और गोविद स्वामी, 'स्वामी' श्रेणी मे आते है और कृष्णदास, कुंभनदास, नददास तथा चतुर्भुजदास, 'दास' श्रेणी में कहे जाते है। इन के रचे हुए पद सप्रदाय के अतिरिक्त संपूर्ण उत्तरी भारत मे गाए जाते है।

महाकवि नंददास अपने भाषा-लालित्य के लिए हिंदी संसार में एक उच्चकोटि के कवि समझे जाते हैं। इन की कविता के विषय में एक कहावत भी प्रसिद्ध है, "और सब गढ़िया, नंददास जड़िया।" वास्तव में नंददास की कविता अपूर्व माधुर्य और रसपूर्ण है। इस महान कवि की कोई प्रामाणिक जीवनी अब तक नहीं निकली। प्रस्तुत जीवनी कई वर्ष की खोज का प्रतिफल है।

कविवर नंददास की जीवनी के निम्न-लिखित मुख्य आधार हैं :

१. कवि द्वारा अपने ग्रंथों में अपने जीवन-विषयक फुटकर उल्लेख।

२. अन्य ग्रंथों में नंददास संबंधी उल्लेख।

३. जनश्रुतियां जो मौखिक रूप से परंपरागत चली आ रही हैं।

## कवि के ग्रंथों में अपने जीवन विषयक उल्लेख

सभी भारतीय भाषाओं के कवियों की यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे आत्म-चरित बहुत कम देते हैं। उन के जीवन से संबंध रखने वाला जो कुछ भी उल्लेख और विवरण उन के ग्रंथों में मिलता है वह जहां-तहां बिखरा हुआ ही मिलता है। हिंदी साहित्य के कवियों में भी बहुत थोड़े ही कवि ऐसे हैं, जिन्हों ने अपने कुल, जाति, जन्म-स्थान, आदि के बारे में पूर्ण परिचय दिया है। हमें देखना है कि नंददास ने अपने ग्रंथों में अपने विषय में क्या कहा है। महात्मा नंददास के वंश, कुल, जाति, जन्मस्थान आदि के विषय में अब तक के उन के उपलब्ध ग्रंथों में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। अपने शिक्षागुरु के विषय में भी उन्हों ने कुछ नहीं कहा है। हां, अपने सांप्रदायिक गुरु श्री विट्ठलनाथ जी के विषय में, अपने 'ब्रजप्रेम' और 'यमुना जी की महिमा' में तो उन्हों ने अनेक पद लिखे हैं। नंददास के पदों का अभी कोई पूर्ण संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। परंतु वल्लभ-संप्रदाय के पद-संग्रहों में, 'रागकल्पद्रुम' में तथा अन्य कीर्तन के पद-संग्रहों में नंददास जी के पद दिए हैं।[1] उन पदों में वल्लभसुत गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के विषय के भी पद हैं। इन में से कुछ पद यहां दिए जाते हैं—

---

[1] मथुरा के पंडित जवाहरलाल जी ने एक पद-संग्रह तैयार किया है। खेद है कि उन के परिश्रम का प्रतिफल अभी तक एक पुस्तक रूप में हिंदी संसार के सामने नहीं आया, यद्यपि यह संग्रह बहुत परिश्रम और योग्यता से तैयार किया गया है।

राग विभास

प्रात समे श्री वल्लभ सुत को, वदन कमल को दर्शन कीजे।
तीन लोक बंदित पुरुषोत्तम, उपमा काहि (जो) पटतर दीजे।
श्री वल्लभ सुत कुल उदित चंद्रमा, लखि छवि नैन चकोरन पीजे।
'नंददास' श्री वल्लभ सुत पर, तन मन धन न्योछावर कीजे।

('पुष्टिमार्गीय पदसंग्रह', भाग ३, पृष्ठ ६; संग्रहकर्ता वैष्णव ठाकुरदास सूरदास)

नंददास जी की जीवनी के बाह्य प्रमाणों से विदित होता है कि नंददास जी श्री विट्ठलनाथ जी के प्रथम दर्शनों ही से इतने प्रभावित हो गए थे कि उन का मन सब विषयों से हट कर उन के चरणारविंद में लग गया था, और उन्हों ने विट्ठल-चरणों पर तन, मन, धन सब अर्पण कर दिया था। उपरोक्त पद से भी नंददास की गुरुभक्ति का परिचय मिलता है।

और भी :

राग रामकली

श्री वल्लभ सुत के चरण भजो।
नंद[1] सुकुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करन भजो।

. . . . . . . . .

पुष्टि मर्याद, भजन सुख सीसा, निज जन पोषन करन भजो।
'नंददास' प्रभु प्रकट भए दोउ, श्री विट्ठलेस गिरधरन भजो।

('पुष्टिमार्गीय पदसंग्रह', पृष्ठ ७, संग्रहकर्ता वैष्णव ठाकुरदास सूरदास )

नंददास की जीवनी के प्रमाणों से यह विदित होता है कि नंददास जी पुष्टिमार्गीय संप्रदाय के थे। इस पद में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है। और उन की भक्ति विट्ठल जी के सिवा उन के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर जी में भी थी, जिन का जन्म-काल सं० १५९७ माना जाता है। नंददास ने इस पद में इन की भी वंदना की है।

और भी :

---

[1] पाठांतर 'अति'।

**राग विभास**

प्रात समै श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊं ।
सुंदर सुभग बदन गिरधर को, निरखि निरखि मैं दृगन सिराऊं ।
मोहन मधुर बचन श्री मुख के श्रवननि सुनि सुनि हृदय बसाऊं ।
तन मन प्रान निवेदन करिकै सकल अपुनपौ सुफल कराऊं ।
रहौ सदा चरनन के आगे महाप्रसाद सो जूठन पाऊं ।

(संग्रहकर्ता, पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, मथुरा)

उपरोक्त पद से विट्ठलनाथ जी के प्रति अनन्य भक्ति के अतिरिक्त यह भी विदि
ोता है कि नंददास जी, श्री विट्ठलनाथ जी के पास ही रहा करते थे और उन के कृपापा
, यथा, 'रहौ सदा चरनन के आगे महाप्रसाद सो जूठन पाऊं ।'

अपने ब्रजप्रेम के विषय में कवि ने एक पद में कहा है :—

जो गिरि रुचै तो बसो श्री गोवर्धन, ग्राम रुचै तो बसो नंदगाम ।
नगर रुचै तो बसो श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम ।।
सरिता रुचै तो बसो श्री यमुना-तट, सकल मनोरथ पूरनकाम ।
'नंददास' कानन रुचै तौ बसौ भूमि बृंदाबन धाम ।।

इस पद के विषय में '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में उल्लेख है कि नंददास ने अप
डे भाई (चचेरे) महात्मा तुलसीदास को यह पद उन के एक पत्र के उत्तर में लिख क
‍या था, जिस में उन्हों ने अपनी ब्रजभक्ति का परिचय दिया था। ब्रज के स्थान
 वृंदाविपिन, गोकुल और नंदगाँव नंददास को बहुत प्रिय थे। इस बात का प्रमाण उ
 अनेक पदों से मिलता है :—

नंदगाँव नीको लागत री ।
प्रात समय दधि मथत ग्वालिनी, विपुल मधुर धुनि गाजत री ।
... ... ...
जहां बसत सुरदेव महामुनि एकों फल नहिं लागत री;
'नंददास' प्रभु कृपा को इहि फल, गिरिधर देखि मन जागति री ।।

जमुने जमुने जमुने जो गावौ ।

सेस सहस मुख गावत निश दिन पार नहीं पावत ताहि पावौ ।
सकल सुख देन हार ताते करो उचार, कहत हौ बार बार भूलि जिन जावौ ।
'नंददास' की आस जमुने पूरण करी ताते कहूं घरी घरी चित लावौ ॥
(नंददास की वार्ता, हस्तलिखित, और प० जवाहरलाल चतुर्वेदी का संग्रह)

भाग्य सौभाग्य जमुना जो देरी ।
बात लौकिक तजे पुष्टि यमुना भजे, लाल गिरधरन को ताहि वर मिले री ॥
भगवती संग करि बात उन को ले सदा सन्निद्ध रहे केलि में री ।
'नंददास' जो जाहि वल्लभ कृपा करें ताके यमुना सदा वश जो रहे री ॥

उपर्युक्त दो पदों में श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है। नंददास की कृष्ण-भक्ति तो उन के पदों तथा और ग्रथो में प्रत्यक्ष है तथा सर्वविदित है। पर कुछ पदों में उन्हों ने भगवान के रामरूप में भी अपनी आस्था प्रकट की है। जैसे—

राम कृष्ण कहिए उठि भोर ।
ओहि अवधेश ओही ब्रजजीवन, धनुषधरन औ' माखनचोर ।

... ... ...

इतमें चरण अहिल्या तारी, उत कुब्जा से कियो है किलोल ।
इतमें जानकी बायें बिराजें उत राधे सँग युगल किशोर ।

... ... ...

इतमें राज विभीषण दीनो, उग्रसेन कियो अपनी ओर ।
'नंददास' जी के ये दोउ ठाकुर दशरथ सुत बाबा नंदकिशोर ॥
(पाठांतर से 'रागकल्पद्रुम' तथा प० जवाहरलाल जी का पदसंग्रह)

अपने कुछ ग्रथो मे नंददास ने अपने एक रसिक मित्र का उल्लेख किया है, और लिखा है कि इसी मित्र की आज्ञा से अथवा उस के कहने से मै ग्रंथ-रचना कर रहा हू। इस मित्र का नाम स्पष्ट रूप से उन्हो ने किसी भी ग्रथ मे नही दिया है।

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी ।
ताही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी ।
('रासपंचाध्यायी')

रसमंजरी' ग्रंथ की रचना के विषय में कवि इस प्रकार कहता है

एक मीत हमसों अस गुन्यो, मैं नाइका भेद नहिं सुन्यो।

... ... ...

रसमंजरी अनुसार कै, नंद सुमति अनुसार।
बरनत बनिता भेद जहँ, प्रेमसार बिस्तार।

इस मे भी कवि ने अपने एक मित्र का हवाला दिया है। 'दशम स्क
इसी मित्र के कहने से लिखा था। 'दशम स्कंध', 'अनेकार्थ' और
कवि के कथन से विदित होता है कि उसे संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञा
तथा अन्य उन सज्जनों के लिए जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं
कंध' और 'नाममाला' की हिंदी में रचना की।

'दशम स्कंध' के आरंभ मे कवि कहता है :

परम बिचित्र मित्र इक रहे, कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहे
तिन कहि दशम स्कंध जो आहि, भाषा करि कछु बरनौ ताहि
सबद संस्कृत के हैं जैसें, मो पै समुझि परत नहिं तैसें
ताते सरल सुभाषा कीजे, परम अमृत पीजे सुख जीजे
तासों नंद कहत है तहां, अहो मित्र एती मति कहां
जामें बड़े कविजन अरुझे, ते वे अजहूं नाहि न सरुझे
तहां हौं कवन निपट मतिमंद, बौना पहिं पकरावहि चंद
अरु जु महामति श्रीधर स्वामी, सब ग्रंथन को अंतरजामी
तिन कही यह भागवत ग्रंथ, जैसे दूध उदधि को मंथ

... ... ...

तिहि मधि हौं केहि बिधि अनुसरौं, क्यों सिद्धांत रतन उद्धरौं
मित्र कहत है तो यह ऐसें, अहो नंद तुम कहत हो जैसें।
पै पर जथासक्ति कछु कीजे, अमृत की इक बुंदहि दीजे

इस दशम स्कंध भागवत के बहुत से अध्यायों के आरंभ में कवि अ
धन करता है। जैसे 'अब अष्टम अध्याय सुनि मित्र नाम करन मन

परंतु इस मित्र का नाम कही पर भी कवि ने नही दिया है। वल्लभ-संप्रदायी अष्टकवि तथा अन्य पुष्टिमार्गीय वैष्णव उन के समकालीन मित्र तो थे ही, परंतु इस रसिक मित्र का उल्लेख कवि ने कई स्थानों पर विशेष रूप से किया है। अष्टकवियों में यह मित्र नहीं हो सकता क्योंकि वह रसिक मित्र सस्कृत का ज्ञाता नही है, और वह कृष्णभक्ति के रहस्य को जानने का भी उत्सुक है। पुष्टिमार्गीय अष्टकवि सभी विद्वान् थे और वल्लभ-संप्रदायी मार्ग के पूर्ण ज्ञाता थे।

'रूपमजरी' ग्रथ में कवि ने रूपमजरी की एक सहेली का जिक्र किया है। ग्रथ के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह सहेली 'इदुमती' स्वयं नददास ही है। वाह्य आधारो से ज्ञात हुआ है कि 'रूपमंजरी' एक अति सुंदरी कृष्ण-भक्तिनी थी। इस से नददास की बहुत मित्रता थी। संभव है कि यही रूपमजरी कवि का रसिक मित्र हो। इस विषय मे निश्चय रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

## अन्य लेखकों के ग्रंथों में नंददास संबंधी उल्लेख

निम्न-लिखित ग्रथ और लेख नंददास के जीवन-वृत्तांत का निर्देश करते हैं:—

१. भक्तमाल—नाभादास-कृत, स० १६४०

२ भक्तमाल टीका—सेवादास-कृत सं० १८९४.

३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—गोकुलनाथ द्वारा कथित सं० १८२९.

४. रत्नावली-चरित—कवि मुरलीधर-कृत।

५. रत्नावली-दोहासंग्रह।

६. श्री सूकरक्षेत्रमाहात्म्य—कृष्णदास-कृत स० १६७०.

७. वर्षफल—कृष्णदास-कृत सं० १६५७

८. रामचरितमानस की हस्त-लिखित प्रति, सोरो की, सं० १६४३.

९. मूलगोसाईंचरित—वेणीमाधवदास-कृत, सं० १६८७.

१०. भक्तनामावली[1]—ध्रुवदास-कृत, सं० १६८०-१७००.

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ बाद के लिखे हुए नंददास के विषय में उल्लेख और

---

[1] पं० जी चतुर्वेदी के पास हस्तलिखित प्राचीन प्रति है

वृत्तांत हैं, जिन का आधार 'भक्तमाल' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' ही है कुछ किंवदंतियों का सहयोग भी इन वृत्तांतों में किया गया है। गार्सां द तासे एक फ्रांसीसी लेखक ने अपने 'इस्त्वार द ला लितरेत्यार हिंदी एत् हिंदुस्तानी' में कुछ कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया है। इस का प्रथम संस्करण संवत् १८९६ में निकला था। इस में नंददास के विषय में कुछ नहीं कहा गया है, केवल उन के ग्रंथों के नाम दिए गए हैं। इस के अतिरिक्त शिवसिंह सेंगर का 'शिवसिंहसरोज', भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'भक्तमाल', ज्यार्ज ए० ग्रियर्सन का 'वरनाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान', मिश्रबंधुओं का 'मिश्रबंधुविनोद' तथा आधुनिक हिंदी साहित्य के आधुनिक इतिहासकारों ने भी नंददास का संक्षिप्त परिचय दिया है। इतिहास-ग्रंथों के अतिरिक्त नंददास की प्रकाशित ग्रंथों की भूमिकाओं में भी नंददास का वृत्तांत दिया गया है। अब हम इन ग्रंथों में दिए हुए नंददास संबंधी उल्लेखों पर विचार करेंगे।

**१. भक्तमाल (सं० १६४०)**—अब तक हिंदी के सभी विद्वानों ने इस ग्रंथ को प्रमाणिक माना है। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास जी नंददास के समकालीन थे। उन्हों ने जो कुछ भी वृत्तांत नंददास के बारे में दिया है वह अवश्य विश्वसनीय है। 'भक्तमाल' में दो नंददासों का उल्लेख है। एक नंददास बरेली निवासी और दूसरे रामपुर निवासी। बरेली वाले नंददास जी का केवल एक पंक्ति में उल्लेख किया गया है .

**नाभा ज्यों नंददास, मुई इक बच्छ जिवाई।**[1]

इन के काव्य-विवेक आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं है। इन के परिचय का, 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी ने एक कवित्त अपनी टीका में दिया है। इस का आशय निम्न-लिखित है :—

'नंददास ब्राह्मण थे, और बरेली के रहने वाले थे। परम भक्त थे और साधु-सेवा में रहा करते थे। खेती करना उन का व्यवसाय था। परंतु जो खेती की आय आती उसे वे साधु-सेवा में लगा दिया करते थे। एक दिन एक दुष्ट ने उन से बैर मान कर एक मरी हुई बछिया उन के खेत में डाल दी, और उन पर हत्या का लांछन लगाया। नंददास

---

[1] **'भक्तमाल टीका', भक्तिसुधा स्वाद तिलक, श्री सीतारामशरण भगवान-प्रसाद रूपकला जी, पृ० ४६०**

जी ने इस बछिया को जिला दिया। तब सब लोग उन की भक्ति के कायल हुए।'

'भक्तमाल' में दूसरे नंददास के विषय में निम्न-लिखित छप्पय है :

**लीला-पद-रस-रीति-ग्रंथ-रचना में नागर।**
**सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रसगान उजागर।**
**प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।**
**सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी।**
**चंद्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै में पगे।**
**श्री नंददास आनंदनिधि, रसिक सु प्रभु हित रंगमंगे।**

('भक्तमाल', भक्तिसुधास्वाद तिलक, पृ० ६०२)

'भक्तमाल' के बरेली वाले नंददास, अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नंददास नहीं हो सकते, क्योंकि नंददास के समकालीन भक्त नाभादास जी ने पहले छंद में वर्णित भक्त की रचना और काव्य के विषय में कुछ नहीं कहा है। दूसरे छंद में, रामपुर वाले नंददास के विषय में अष्टछापीय नंददास के सभी काव्य-गुणों का उल्लेख पाया जाता है। छंद की प्रथम पंक्ति से विदित होता है कि नंददास जी रसिक थे। 'रासपंचाध्यायी' ग्रंथ में नंददास ने पंचाध्यायी के लिखने का कारण दिया है :

**परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी।**
**ताही ते यह कथा जथामति भाषा कीनी॥**

नंददास के एक रसिक मित्र ने उन से 'रासपंचाध्यायी', जिस का मुख्य भाव प्रेम-शृंगार है, लिखने को कहा। 'रसिक' के अर्थमाधुर्य भाव से उपासना करने वाला भक्त और लौकिक शृंगार भाव में आनंद लेने वाला व्यक्ति दो हो सकते हैं। भक्ति-प्रेम-रस का अपार समुद्र नंददास के हृदय में हिलोरें मारा करता था, इसी से 'भक्तमाल' रचयिता ने उन्हें रसिक कहा है। नंददास की रचनाओं को देखने से तथा उन के रसिकों के संग से ज्ञात होता है कि नंददास वास्तव में एक रसिक पुरुष थे। उन्हों ने अपने हृदय के लौकिक रस को लोक से हटा कर भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं में देखा था। इसी भाव से वे कृष्ण की भक्ति करते थे। उन की लौकिक रसिकता भक्ति-रसिकता में परिणत हो गई थी

'भक्तमाल' की दूसरी पंक्ति से ज्ञात होता है कि नंददास ने दो प्रकार के ग्रंथो की रचनाएं की हैं—भगवान की लीला के पद, तथा रसरीति ग्रंथ-रचनाएं।

भगवान की लीला के पद नंददास ने बहुत से लिखे है। 'रस-रीति-ग्रंथ-रचना मे नागर' का अर्थ भक्ति-रसरीति के ग्रंथों की रचना मे कुशल और काव्य-रसरीति ग्रंथरचना मे चतुर दोनो हो सकता है। नंददास के उपलब्ध ग्रंथो को देखने से ज्ञात होता है कि उन्हो ने काव्यलक्षण ग्रंथो की परिपाटी पर भी कुछ रचनाएं की है। पर इस विषय मे उन्हो ने काव्यरीति के कुछ ही प्रसंग जैसे नायिका-भेद आदि पर ही रचनाएं की है, काव्य-रचना के सभी अंगों का लक्षण सहित विवेचन नही किया है। इस कोटि के ग्रंथो मे उन का 'रसमंजरी' ग्रंथ आता है, जो नायक-नायिका भेद पर लिखा गया है। 'अनेकार्थमंजरी', और 'नाममाला', अनेक अर्थ तथा पर्यायवाची शब्दों के कोषग्रंथ है। 'रूपमंजरी' काव्य-ग्रंथ है परंतु उस मे वर्णित हाव-भावों का चित्रण और 'बारहमासा' भी काव्य-रीति ग्रंथ पद्धति को ही लिए हुए है। इस प्रकार नाभा जी का नंददास जी को ग्रंथ-रचना मे चतुर कहना दोनों अर्थों मे सिद्ध होता है। नंददास ने भक्तिरस के लक्षण और भक्तिरस की रचनाएं दोनो की हैं। इस प्रकार नाभा जी की यह पंक्ति नंददास के स्वभाव और उन की रचनाओ के विषय का परिचय देती है। नंददास भक्त कवि थे, और साथ ही एक साधारण काव्य-आचार्य भी थे।

तृतीय पंक्ति मे उन की रचना के गुणों की प्रशंसा है। उन की सरस उक्तियां है। वे भक्तिरस के गाने मे प्रसिद्ध है। इस कथन से सिद्ध होता है कि नंददास उच्च कोटि के कवि और अच्छे गवैये भी थे। यहां तक तो नाभा जी ने उन की काव्य-रचना का परिचय दिया है। आगे की पंक्तियां उन के जीवन-संबंधी कुछ बातों पर प्रकाश डालती है। उन का यश समुद्र-पर्यंत व्याप्त है, और वे रामपुर के रहने वाले है। 'रामपुर' स्थान के विषय में हिंदी साहित्य के इतिहास-वेत्ताओ ने कई अनुमान लगा रक्खे थे। और अंत मे लोग यही कहते थे कि 'रामपुर स्थान की खोज अभी तक नहीं हुई है।' 'सूकरक्षेत्र-महात्म्य' और 'रत्नावली-चरित्र' ग्रंथो से जो अभी हाल की खोज में मिले है यह स्पष्ट हो जाता है कि रामपुर सोरो जिला एटा के निकट एक गाँव है, जिसे अब श्यामपुर और श्यामसर भी कहते हैं। इस का प्रमाण नंददास के पुत्र कवि कृष्णदास के रचे ग्रंथ 'सूकर-क्षेत्रमहात्म्य' तथा 'वर्षफल' मे दिया है। इन का हवाला हम आगे देंगे। इस गाँव का

नाम रामपुर से श्यामपुर, नददास जी ही ने बदल कर किया था ।

'सकल मुकुल सवलित भक्त पदरेनु उपासी ।' पक्ति से ज्ञात होता है कि नददास जी शुक्ल वंश मे उत्पन्न हुए थे, और उच्च वंश में होते हुए भी, भक्तों की पदरज के, चाहे वे भक्त किसी भी जाति के क्यो न हों उपासक थे। 'सुकुल सवलित' के अर्थ उच्च कुल मे उत्पन्न और शुक्ल आस्पद वाले ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, दो हो सकते है। नंददास के समय मे श्री रामानंद संप्रदाय के आचार्यों ने, वल्लभाचार्य जी ने तथा अन्य संत भक्तो ने ब्राह्मण से लेकर नाई, चमार, डोम आदि सभी जातियो को ऊँच-नीच का भेद घटा कर भगवान की भक्ति का अधिकारी बताया था। नंददास जी इतने उच्च कोटि के भक्त थे कि उन्हो ने जाति-बधन तोड़ कर भक्तों की, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हो, चरण-धूलि शीश चढाई थी। शुक्ल आस्पद कान्यकुब्ज, सरयूपारी तथा सनाढच सभी ब्राह्मणो मे होता है। नाभा जी ने इस विषय को स्पष्ट नही किया है कि नददास किस जाति के थे। अन्य प्रमाणो से ज्ञात हुआ है कि नंददास जी सनाढच ब्राह्मण थे, और उन का 'शुक्ल' आस्पद था। 'श्री चद्रहास अग्रज, सुहृद, परम प्रेम पय मे पगे।' 'चद्रहास अग्रज सुहृद' का अर्थ लोगो ने कई प्रकार से किया है। 'ब्रजमाधुरीसार' के सकलनकर्ता, श्री वियोगीहरि ने नंददास को चद्रहास के बडे भाई का मित्र माना है। इस अर्थ के अनुसार चद्रहास उस समय के कोई प्रसिद्ध व्यक्ति होने चाहिए, क्योंकि नाभाजी, इस कथन के अनुसार सीधे शब्दो मे नददास के मित्र का नाम न देकर मित्र के छोटे भाई चंद्रहास का नाम देते है। चंद्रहास उस समय के कोई भक्त न थे। इतिहास मे भी चद्रहास नाम का कोई प्रसिद्ध व्यक्ति सुनने मे नही आता। इस लिए हमारे विचार तथा अन्य प्रमाणों के आधार से उपर्युक्त अर्थ ठीक नही है। राजा प्रतापसिंह ने 'भक्तकल्पद्रुम' मे इस पक्ति के आधार पर नंददास को चद्रहास का पुत्र लिखा है[1]। हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक और साहित्य के इतिहास-कार पडित रामचद्र शुक्ल ने अपने हिंदी 'साहित्य के इतिहास' के पृष्ठ १६८ पर लिखा है उस से इतना ही सूचित होता है कि इन के भाई का नाम चंद्रहास था। हमारे विचार में इस पक्ति का सीधा अर्थ यही है कि नददास चद्रहास के बडे भाई थे। इस बात की पुष्टि कृष्णदास-कृत 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और कवि मुरलीधर-कृत 'रत्नावली-चरित्र'

---

[1]'भक्तकल्पद्रुम', श्री प्रतापसिंह-रचित, पृ० ११४

ग्रथ करते है इन ग्रथो पर आगे विचार किया गया है

**२. भक्तमाल टीका (सं० १८९४)**—'भक्तमाल' की रचना के लगभग ९० वर्ष बाद सवत् १७६९ मे नाभादास जी के शिष्य प्रियादास जी ने 'भक्तिरसबोधिनी' नाम की टीका लिखी। इस टीका मे नाभा जी के दिए हुए वृत्तात के अतिरिक्त भक्तो के स्वतत्र वृत्तात भी अपनी ओर से दिए है। इस 'भक्तिरसबोधिनी' टीका के बाद 'भक्तमाल' पर अनेक टीकाए हुई, जिन का मूल आधार प्रियादास की टीका ही रही है। नददास जी के विषय में प्रियादास ने कोई वृत्तात नही दिया। बरेली निवासी नंददास के बछिया जिलाने वाले प्रसंग पर तो टीका है। प्रियादास के बाद की 'भक्तमाल' की टीकाओं मे भी अष्टछाप वाले नददास का विशेष हाल इसी से नही मिलता। 'भक्त-माल' पर एक टीका भक्त सेवादास ने की है। सेवादास का यह ग्रथ छपा नही है। इस की एक प्रति सोरों, जिला एटा, मे पडित गोविंदवल्लभ भट्ट जी के सग्रह मे है। यह ग्रथ सवत् १८९४ का लिखा हुआ है। इस में नददास के प्रसग मे 'भक्तमाल' के नददास विषयक छंद की कुछ पक्तियो का भाव स्पष्ट किया है। इस ग्रथ के पृष्ठ १४३ पर उल्लेख है, कि एक बार तुलसीदास जी ने नंददास जी से कहा कि 'तू व्रज मे मत जाय'। इस पर नददास ने उत्तर दिया कि 'जब विध चुके तब आना जाना कैसा'। तुलसीदास को नददास ने अपने उत्तर से चुप कर दिया। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि महात्मा तुलसीदास का तथा नददास का कुछ सबंध था।

**३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता**—वल्लभ-सप्रदायी कवियों की जीवनी का मुख्य सूत्र 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' है। नददास जी का जीवन-वृत्तात 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे दिया हुआ है। वार्ता के आधार पर नददास का जीवन-वृत्त देने से पहले इस ग्रथ की प्रामाणिकता पर विचार करना उचित होगा। पडित रामचद्र शुक्ल, अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास'[1] मे कहते है कि 'गोस्वामी जी और नददास जी से कोई सबध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को जो वास्तव मे भक्तों का गौरव प्रचलित करने के लिए पीछे से लिखी गई है, हम प्रमाण कोटि में नही ले सकते।' डाक्टर धीरेंद्र वर्मा इस ग्रथ की भाषा को

---

[1]पृ० २११, नवीन संस्करण।

गोकुलनाथ जी कृत अथवा उन के समय की नही मानते। इस आशय का आपका एक लेख अप्रैल १९३२ की 'हिंदुस्तानी' मे निकला था। डाक्टर वर्मा ने भाषा की दृष्टि से 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' की अपेक्षा अधिक पुराना बनाया है। दोनों ग्रथो की भाषा डाक्टर वर्मा के कथन की पुष्टि करती है। 'चौरासी' और 'दो सौ बावन' वैष्णवों की वार्ताएं वास्तव मे श्री गोकुलनाथ जी के हाथ की लिखी हुई नही है यह बात तो पूर्ण-रूप से सिद्ध है। पर उन मे वर्णित सामग्री केवल इसी से निराधार नही हो जाती और न उन के उल्लेखो की ऐतिहासिक उपयोगिता शून्य मे विलीन हो जाती है। डाक्टर वर्मा 'अष्टछाप' के आरभिक वक्तव्य मे लिखते है —

"इस सग्रह को हिंदी जनता के सम्मुख रखने मे मेरे दो मुख्य उद्देश हैं। भाषा-सबधी उद्देश तो है, सत्रहवीं सदी के व्रजभाषा गद्य को सर्वसाधारण के लिए सुलभ करना तथा साहित्यिक उद्देश सूरदास आदि कुछ प्रसिद्ध हिंदी कवियों की जीवनियो के इन प्राय: समकालीन जीते-जागते वर्णनों से हिंदी प्रेमियो का घनिष्ट परिचय कराना।...... इस के अतिरिक्त यह जीवनिया देश की तत्कालिक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति पर भी अत्यत महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। राष्ट्रीय जीवन के इन आवश्यक अगों का सच्चा इतिहास लिखने के लिए हिंदी साहित्य में कितना भडार भरा पड़ा है, इस का दिग्दर्शन इस छोटे से संग्रह को आद्योपात पढने से भली प्रकार हो सकेगा।" उक्त वक्तव्य ८४ और २५२ वार्ताओं की ऐतिहासिक महत्ता का अनुमान स्पष्ट शब्दो मे कराता है।

श्री गोकुलनाथ जी अपने सप्रदाय के भक्तों की वार्ताए अपने शिष्यों को सुनाया करते थे। इन दो वार्ताओं के अतिरिक्त व्रजभाषा गद्य मे वल्लभ-संप्रदायी बहुत सा साहित्य वार्ता-रूप मे है। जैसे 'श्री द्वारकानाथ जी के प्राकटच की वार्ता', 'श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकटच की वार्ता', 'निज वार्ता', 'घरू वार्ता' आदि। जो वार्ताए श्री गोकुलनाथ जी की बताई जाती है, उन को श्री गोकुलनाथ जी ने अपने हाथ से नहीं रचा। वे मौखिक रूप से अपने शिष्यों को सुनाया करते थे। कुछ वार्ताएं तो उन के जीवन-काल मे ही उन के शिष्यों ने लिपिबद्ध कर ली थी, और कुछ उन के बाद लिपिबद्ध हुई। गुजराती भाषा मे श्री बसंतराम शास्त्री जी ने पुष्टिमार्ग का एक इतिहास-ग्रंथ लिखा है। इस में वल्लभ-कुल के आचार्यों के चरित्र दिए है। गोकुलनाथ जी के चरित्र मे पुस्तक के पृष्ठ

८३ पर चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ताओं के विषय में इस प्रकार लिखा है। हम गुजराती कथन का हिंदी भावार्थ देते हैं—

"श्री गोकुलनाथ जी हमेशा रात्रि को अपने शिष्यों से कथा-प्रसंग कहा करते थे। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और श्री गोसाईं विट्ठलनाथ जी के अनन्य सेवकों के अलौकिक चरित्रों का निरूपण किया करते थे। एक वैष्णव उन प्रसंगों को नित्य लिख लिया करता था। एक समय श्री गोकुलनाथ जी ने एक कथा आरंभ की तब उस वैष्णव ने कहा कि 'महाराज यह प्रसंग तो हो चुका।' इस के समर्थन में उस ने अपना लेख दिखाया। श्री गोकुलनाथ जी को इन वार्ताओं को लिपिबद्ध करना अभीष्ट न था। उन्हों ने उस दिन से वार्ता कहना बंद कर दिया।"

'निज वार्ता', 'घरू वार्ता' और 'चौरासी बैठक के चरित्र' नामक ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में लिखे हुए हैं। इस ग्रंथ का भी वल्लभ-संप्रदाय में बहुत मान है। इस ग्रंथ के पृष्ठ ६३ पर श्री गोकुलनाथ जी के इन वार्ताओं को मौखिक रूप से कहने का उल्लेख है।

"श्री गोकुलनाथ जी आप भगवदीयन ते इतनी कथा कहि विराम करते भए, तब भगवदीयन ने बीनती कीनी महाराज! आपने श्री आचार्य जी महाप्रभु की तीनों पृथ्वी परिक्रमा के चरित्र संक्षेप में सुनाए। परि या चरितामृत तें हम को तृप्ति नाहीं होत। तातें औरहू श्री आचार्य जी के चरित्र सुनाइवे की कृपा करोगे। तब श्री गोकुलनाथ जी आज्ञा करत भये जो श्री आचार्य जी महाप्रभून के चरित्र तो अनंत हैं पर औरहू संक्षेप सों तुम को सुनावत हों। ऐसे कहिके आप और हू चरितामृत अपने भगवदीयन को पान करावत भए।"

वल्लभ-संप्रदाय में श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित तथा श्री गोस्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट 'वैष्णवन् के बत्तीस लक्षण' नामक ग्रंथ भी प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ हस्तलिखित रूप में ही मिलता है। इस ग्रंथ के आरंभ में भी यही लिखा है कि श्री महाप्रभु श्री गोकुलनाथ जी से कल्याण भट्ट[1] ने प्रार्थना की; महाराजाधिराज, भगवदीय वैष्णवों के लक्षण बताइए। तब श्री गोकुलनाथ जी ने वैष्णवों के ३२ लक्षण मौखिक रूप से कहे। कहा जाता है कि इस ग्रंथ को कल्याण भट्ट जी ने लिपिबद्ध किया था। वल्लभ-संप्रदाय के विद्वानों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि ८४ और २५२ वार्ताओं को भी कल्याण भट्ट ने ही

---

[1] गुसाईं श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य। २५२ वार्ता, नं० २३३

लिखा था। इस प्रकार हम इन लेखो के सहारे यह मानते है कि ये वार्ताएं गोकुलनाथ जी ने नही लिखी। पुष्टिमार्गीय गुरु तथा भक्त इन कथाओ को परंपरागत रूप में सुनाते रहे। इस परपरागत कथन मे अवश्य ही कुछ प्रसगो मे घटा-बढी हो गई होगी। इस का प्रमाण यह है कि इन वार्ताओ की भिन्न-भिन्न जगह की प्रति-लिपियों मे दो प्रकार के वृत्तात हमारे देखने मे आए है। हम ने गोकुल, मथुरा, कामवन आदि स्थानो में ८४ तथा २५२ वार्ता-ग्रथ की अनेक प्रति-लिपिया देखी है। ८४ तथा २५२ वार्ताओ के अतिरिक्त 'आचार्य जी के मुख्य सेवक तथा गोसाई जी के मुख्य सेवक तिनकी वार्ता' नाम से भी व्रज मे प्राचीन ग्रथ व्रजभाषा गद्य मे लिखे मिलते है। उन में भी अष्टकवियों के दो प्रकार के वृत्तात देखने मे आते है। इस प्रकार हम यह जानते है कि इन ग्रथों के चरित्रो मे अलौकिक भावो का भी आरोप अवश्य हुआ है।

जैसा कि हम पहले कह आए है वार्ता के चरित्रो के दो रूप देखने मे आते है। एक प्रकार के ग्रथ मे अष्टछाप कवियों का वही वृत्तात दिया हुआ है जो डाकोर जी वाली प्रति के आधार पर छपी हुई ८४ तथा २५२ वैष्णवो की वार्ता अथवा डाक्टर धीरेंद्र वर्मा द्वारा सपादित 'अष्टछाप' नामक ग्रंथ मे दिया हुआ है। दूसरे प्रकार के वृत्तांतो ने भक्तो के चरित्रों को अधिक विस्तार से और अधिक परिचय के साथ लिखा है। पहले प्रकार की वार्ताओ की बहुत पुरानी प्रतिया हमारे देखने मे नही आई। दूसरे प्रकार की वार्ता की प्रतिलिपिया जिन की सख्या हमारे देखने मे अधिक आई, अधिक प्राचीन थीं। इन दो प्रकार के वृत्तातो की विभिन्नता के बारे मे हम ने वल्लभ-सम्प्रदायी आचार्यो तथा विशेषज्ञो से पूछा। ज्ञात हुआ कि एक प्रकार के वृत्तात तो साधारण वृत्तात है, और दूसरे प्रकार के वृत्तात भाव की स्पष्टता के साथ है। जो 'भावना' सहित है उन में से अधिक गोकुलनाथ जी के समय मे जीवित वल्लभ-सम्प्रदायी भक्त हरिराम जी के है। वेंक्टेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर की भूमिका मे स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी ने इस प्रकार की वार्ताओ को मूल वार्ताओ की टीका लिखा है। हरिराम जी का एक ग्रंथ 'भावप्रकाश' व्रजभाषा, का कॉकरौली विद्याविभाग की ओर से 'प्राचीनवार्ता-रहस्य' नामक ग्रथ मे प्रकाशित हो रहा है। हम ८४ और २५२ वार्ता के वृत्तांतो को बहुत अश मे प्रामाणिक मानते है। इस का प्रथम भाग प्रकाशित हो गया है। वेंक्टेश्वर प्रेस से छपी हुई वार्ता तथा डाक्टर धीरेंद्र वर्मा द्वारा सपादित 'अष्टछाप' में दी हुई की जीवनी का हम खडी बोली म

देते हैं इस के पांच प्रसंग हैं इस के अतिरिक्त उक्त वार्ता में 'रूपमंजरी' की वार्ता में भी नंददास का थोड़ा वृत्तांत दिया हुआ है।

प्रथम प्रसंग—नंददास जी तुलसीदास के छोटे भाई थे। उन को गाना सुनने और तमाशा देखने का बहुत शौक था। एक बार उन के दिल में रणछोर जी के दर्शनों के लिए द्वारका जाने की इच्छा हुई। उन्हों ने तुलसीदास से पूछा। तुलसीदास जी श्री रामचंद्र जी के अनन्य भक्त थे, इस से उन्हों ने नंददास को द्वारिका जाने से रोका। परंतु नंददास जी ने न माना और यात्रा को चल दिए। वे सीधे मथुरा पहुँचे। यहां से वे अपने साथियों को, जो उन के साथ द्वारिका जा रहे थे, छोड़ कर अकेले ही चल पड़े। चलते चलते वे द्वारिका का रास्ता भूल गए और कुरुक्षेत्र से आगे 'सीहनंद' नामक ग्राम में पहुँच गए। वहां एक क्षत्री साहूकार रहता था। नंददास जी उस के घर भिक्षा माँगने गए। उस साहूकार की स्त्री बहुत रूपवती थी। नंददास जी उस स्त्री पर मोहित हो गए। वे नित्य उस क्षत्राणी के मुख को देखने उस के घर जाते। बिना मुख देखे वे अपने स्थान पर वापिस नहीं आते थे। इस प्रकार उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गए। यह क्षत्री वैष्णव था। जब नंददास के इस मोह की चर्चा ग्राम में उस साहूकार की जाति बिरादरी में फैल गई तो साहूकार ने नंददास से बचने का उपाय सोचा। वह अपने परिवार सहित श्रीगोकुल-यात्रा को चल दिया। जब नंददास को इस बात की खबर लगी तो वह भी उन के पीछे पीछे लग दिए। व्रज में पहुँच कर साहूकार तो सकुटुंब नाव द्वारा यमुना पार हो गया, परंतु नंददास दूसरे पार ही रह गए। साहूकार ने मल्लाहों से कहा कि इस ब्राह्मण (नंददास) को मत पार उतारो क्योंकि यह हमें बहुत दुःख देता है। फलतः मल्लाहों ने नंददास को पार नहीं उतारा। साहूकार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पास पहुँचा। वहां गुसांई जी ने अपने आत्मिक ज्ञान से जान लिया कि एक ब्राह्मण इस साहूकार के कहने से पार नहीं उतारा गया है। उन्हों ने साहूकार से कहा। और उन्हों ने एक आदमी भेज कर नंददास को बुलवा लिया। जब नंददास ने गुसाईं जी के दर्शन किए तो उन के ऊपर गुसाईं जी के व्यक्तित्व और रूप का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन का मन उस साहूकार की स्त्री के रूप से छुट कर गोस्वामी जी के चरणारविंद में लग गया। नंददास के विनय करने पर गोस्वामी जी ने उन्हें नवनीत प्रिया जी (बालकृष्ण मूर्ति) के समक्ष 'नाम-निवेदन' कराया और अपने मार्ग में उन्हें ले लिया। नंददास जी गुसाईं जी के प्रभाव से कृष्णभक्ति में लवलीन हो

गए। तब उन्हों ने नवनीत प्रिया जी के समक्ष बाललीला के पद बना कर गाए। स्वामी जी के प्रभाव से इन के मन की वृत्ति ऐसी बदली कि साहूकार की स्त्री के निकट रहते और उसे नित्य देखते हुए भी उन का मन तनिक भी उस की ओर आकृष्ट न होता था।

दूसरा प्रसग—गोस्वामी विट्ठलनाथ जी श्री द्वार जी (गोवर्धन पर्वत) गए। और नददास को भी अपने साथ ले गए। वहा उन्हे श्री गोवर्धननाथ के दर्शन कराए। उस समय नंददास जी के हृदय में कृष्ण की किशोर लीलाओ की स्फूर्ति अधिक बढी और वहा पर उन्हों ने वहुत से पद बना कर गाए। कभी नददास जी गिरिराज ऊपर रहते और कभी श्रीगोकुल। उन को ससार से भारी विरक्ति हो गई थी। 'जिनकू ससार ऐसो फीको लागतो, जैसे मनुष्य कू उल्टी देख के बुरो लगे।' इस लिए वे अपनी जन्मभूमि भी नही जाते थे। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी, श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी, गिरिराज जी, श्री यमुना जी और ब्रजभूमि वस इन्हीं में उन का मन लगा रहता था। ईश्वर के अन्य अवतारों के स्थानों मे उन का मन नही लगता था। 'प्रभू के दूसरे ऋवतारन पर्यन कोई ठिकानो उन को मन नही लागतो।'

तीसरा प्रसग—नंददास जी ब्रज को छोड़ कर कही अन्यत्र नही जाते थे। उन के बडे भाई तुलसीदास जी ने जो काशी मे रहते थे, सुना कि नददास जी गुसाईं जी के सेवक हो गए है। उन्हो ने नंददास जी को एक पत्र लिखा कि तुम रामचंद्र जी को पति मानते थे उस पतिव्रत-धर्म को छोड कर कृष्णभक्त क्यो हो गए हो। नंददास ने इस पत्र के उत्तर मे लिखा कि श्री रामचद्र जी तो एकपत्नी-व्रतधारी है सो बहुत सी पत्नियो को कैसे सभाल सकते है और श्रीकृष्ण तो अनत अवलाओं के स्वामी है। उन की पत्नी होने पर किसी प्रकार का भय नही रहता। इस लिए मै ने कृष्ण को पति बनाया है। तुलसीदास जी को इस पत्र के पढने के वाद दृढ़ विश्वास हो गया कि नंददास का कृष्णप्रेम अटल हो गया है।

चौथा प्रसग—एक दिन नददास जी ने सोचा कि जैसे तुलसीदास जी ने रामायण भाषा मे लिखी है, उसी प्रकार हम भी भागवत को भाषा मे प्रकाशित करे। जब ब्राह्मणों ने सुना तो उन्हो ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से प्रार्थना की कि नंददास जी भागवत भाषा मे न लिखे इस से उन की जीविका जाती रहेगी। गुसाईं जी की आज्ञा से नददास जी ने

भागवत भाषा में लिखना छोड़ दिया[1]

पाँचवां प्रसंग—एक समय नंददास जी के बड़े भाई तुलसीदास जी उन से मिलने के लिए काशी से मथुरा आए। वे वहां से श्री गिरिराज जी गए। गिरिराज पर दोनों भाई मिले। तुलसीदास जी ने उन से अयोध्या, काशी, चित्रकूट, दंडकारण्य जहां रुचे वहां चलने को कहा। परंतु नंददास का मन तो ब्रज में रमा हुआ था। उन्हों ने जाने से इन्कार कर दिया। तुलसीदास जी ने नंददास से यह भी कहा कि वे श्री रामचंद्र जी का भजन करें। नंददास ने एक पद में उत्तर दिया :

> कृष्ण नाम जब तें मैं श्रवण सुन्योरी आली,
> भूली री भवन हों तो बावरी भई री।
> भर भर आवें नैन, चितहूं न परै चैन
> मुखहूं न आवै बैन, तन की दशा कछु और भई री।
> जेतिक नेम धर्म व्रत कीने री मैं,
> बहु विधि अंगो अंग भई मैं तो श्रवण भई री।
> नंददास प्रभु जाके श्रवण सुने यह गति
> माधुरी मूरत कै धौ कैसी दई री॥

यह उत्तर सुन कर तुलसीदास चुप हो गए। एक दिन नंददास जी श्रीनाथ जी के दर्शन को गए। उन के साथ महात्मा तुलसीदास जी भी गए। जब गोवर्धननाथ जी के दर्शन किए तो तुलसीदास जी ने उन के समक्ष सिर न नवाया। नंददास जी जान गए कि ये राम के सिवाय और किसी को नहीं नमते हैं। नंददास ने श्री गोवर्धननाथ जी से विनती की—

> आज की शोभा कहा कहूं, भले विराजे नाथ,
> तुलसी मस्तक जब नमें धनुष बान लेउ हाथ।

---

[1] अलीगढ़ निवासी स्वर्गीय पंडित मयाशंकर याज्ञिक के संग्रहालय में नंददास-कृत दशमस्कंध भागवत की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति है। पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी, मथुरा, के पास भी इस की एक प्रति है। अमृतसर से श्री कर्मचंद्र गुल्लानी ने दशम स्कंध भागवत नंददास-कृत छापी है। ये सब प्रतियां रासलीला तक ही मिलती हैं।

यह विनती सुन कर श्री गोवर्धननाथ जी ने राम-रूप धारण किया। तब तुलसीदास ने दंडवत की। वहा से लौट कर दोनो भाइयो ने गोकुल में श्री गुसाई जी श्री विट्ठलनाथ जी के दर्शन किए। वहां भी विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र रघुनाथ जी और उन की धर्मपत्नी जानकी जी के, जिन का विवाह हुए थोड़े ही दिवस हुए थे, तुलसीदास जी ने राम-जानकी रूप मे दर्शन किए। इस के बाद तुलसीदास जी अपने देश को लौट गए। नंददास जी ब्रज मे ही रहते रहे।

इस वार्ता से नंददास के संबंध मे निम्न-लिखित बाते ज्ञात होती है :—

१. नंददास जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समकालीन और उन के शिष्य थे।

२. वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

३. वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले वे रामभक्त भी थे।

४. वल्लभ-संप्रदाय मे आने से पहले वे गोकुल-गोवर्धन मे नही रहते थे कहीं अन्यत्र उन का स्थान था।

५. वे जाति के ब्राह्मण थे, और सौंदर्य-प्रेमी थे।

६. 'रामचरितमानस' के रचयिता और राम के अनन्य भक्त महात्मा तुलसीदास के वे छोटे भाई थे।

७. नंददास ने संपूर्ण भागवत भाषा मे लिखना चाहा परंतु अपने गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्हों ने उस का लिखना बंद कर दिया।

८. नंददास जी एक उच्चकोटि के गवैये थे और श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन किया करते थे।

९. उन्हों ने बाललीला के बहुत से पदों की रचना की थी।

१०. उन के बडे भाई तुलसीदास जी ने, जो काशी में रहते थे, (जिन को अयोध्या, काशी, चित्रकूट और दंडकारण्य स्थान बहुत प्रिय थे) नंददास को एक बार काशी से एक पत्र लिखा था।

११. एक बार तुलसीदास अपने छोटे भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज मे आए थे।

'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' की सब से पुरानी प्रति कामवन मे है। दाऊ जी के मंदिर, मथुरा में 'गुसाईं जी के मुख्य सेवक हते तिन की वार्ता' नामक एक ग्रंथ

श्री गोवर्धनदास भगवदीय के पास है। यह प्रतिलिपि लगभग ८० वर्ष पुरानी है। '२५२ वार्ता' की एक प्रति मथुरा में है तथा एक प्रति गोकुल में आचार्य जी की बैठकों में रक्खी है। इन के अतिरिक्त गोकुल में हम ने अनेक सज्जनों के यहां '२५२ वार्ता' की पाँच-छै प्रतियां देखी और उन में नंददास जी का वृत्तांत पढ़ा। भाषा की अशुद्धियों की विभिन्नता को छोड़ कर उपर्युक्त सभी वार्ताओं में एक-सा ही वृत्तांत दिया हुआ था। ज्ञात होता है कि ये वार्ताएं 'भावना' सहित वाली है। उस वृत्तांत का आशय हम नीचे देते हैं। इस वार्ता में नंददास विषयक छः प्रसंग हैं।

अथ श्री गुसाईं जी के सेवक नंददास सनौढिया ब्राह्मण तिन की वार्ता। तिन के पद गाईयत है।

**वार्ता १** वे नंददास पूर्व[1] में रहते थे। ये दो भाई थे, बड़े तुलसीदास और छोटे नंददास। तुलसीदास रामानंदी थे, उन्हीं के प्रभाव से नंददास भी रामानंद-सम्प्रदायी हो गए थे। नंददास को लौकिक विषयों से विशेष आसक्ति थी। नाच-तमाशे देखने और वेश्या-गान सुनने वे बहुत जाते थे। तुलसीदास के उपदेश का उन पर कुछ भी असर न होता था। कुछ समय बाद एक संग रणछोर जी (द्वारिका जी) के दर्शन को चला। नंददास ने भी उस के साथ जाने की तुलसीदास से आज्ञा माँगी। पहले तो तुलसीदास ने समझाया, पर फिर उन के आग्रह को देख कर उन्हें संग के मुखिया के सुपुर्द कर दिया। वह संग चल कर मथुरा आया। यहां संग का विचार कुछ दिन ठहरने का हुआ। नंददास का भी मन वहां बहुत लगा और उन्हों ने वहां अधिक समय तक रहने का विचार किया। परंतु साथ ही रणछोर जी के दर्शन की उत्सुकता होने के कारण उन्हें संग का ठहरना अच्छा न लगा। उन्हों ने विचारा कि पहले जल्दी से रणछोर जी हो आवें फिर मथुरा में निश्चित रूप से रहेंगे। इस विचार से वे उस संग को छोड़ अकेले ही रणछोर जी को चल दिए। परंतु मार्ग भूल जाने पर 'सीहनद' नामक एक गाँव में जा निकले। उस गाँव में एक वैष्णव क्षत्री रहता था। नंददास जब उस के घर की ओर से निकले तब उस की स्त्री नहा करके बाल सुखा रही थी। यद्यपि नंददास ने उस को केवल पीछे ही से देखा पर फिर भी वे उस पर मोहित हो गए। उन्हों ने निश्चय किया कि इस स्त्री की पीठ तो

---

[1] **मथुरा-गोकुल से सोरो ठीक पूर्व में है।**

देखी है पर अब जब इस का मुख देख लूँगा तभी जलपान करूँगा। यह सोच कर नंददास उस क्षत्राणी के द्वार पर खडे हो गए। सध्या से रात्रि हुई पर मुग्ध नंददास उस क्षत्राणी के मुख की एक झलक के लिए रात्रि भर वहीं खड़े रहे। दूसरे दिन भी खड़े-खड़े उन्हे तीसरा पहर हो गया। पर उस क्षत्राणी के मुख को न देख पाए। उन को सवेरे से खडा देख कर घर की लौंडी ने खड़े होने का कारण पूछा। नंददास ने निष्कपट रूप से कह दिया कि जब तुम्हारी बहू का मुँह देख लूँगा तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगा। यह बात उस लौंडी ने अपनी बहू जी से जा कर कही। पहले तो उसे क्रोध आया पर जब नंददास को खडे-खडे शाम हो गई, और लौंडी ने समझाया तब वह अपने बारजे मे आई और नंददास उस को देख कर चले गए। दूसरे दिन प्रात काल ही नंददास उस के द्वार पर फिर पहुँच गए और उस को घर से निकलते देख कर लौट गए। इस प्रकार नंददास प्रति दिवस उन क्षत्राणी को एक बार देख आते। उन के प्रति दिन जाने से यह बात उस स्त्री के पति को मालूम हुई। उस ने नंददास को रोका और कहा कि तुम्हारे इस व्यवहार से हमारी हँसी होती है। पर नंददास ने कहा मैं किसी से कुछ कहता नहीं, माँगता नहीं, केवल दिन मे एक बार हो जाता हूं। अधिक कहने पर उन्हो ने कहा कि मैं यहां प्राण तज दूँगा और तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप पड़ेगा। अस्तु, वह क्षत्री नंददास को उन के हठ से न हटा सका। जब यह बात सब गाँव मे फैल गई तो हार कर उन लोगों ने उस गाँव को छोड़ना ही निश्चय किया और चुपचाप घर, तथा अन्य वस्तुएं बेच दीं और तय किया कि अब गोकुल जाकर रहेगे। एक दिन जब प्रात.काल नंददास उस बहू को देख कर लौट गए, उस के बाद वह क्षत्री अपनी बेटा-बहू, लौंडी तथा नौकरों को लेकर चुपचाप ही गाड़ी पर चल दिया। दूसरे दिन जब नंददास वहा पहुँचे तो ताला लगा देखा। तब पड़ोसी से पूछा और सब वृत्तात सुन कर ये भी गोकुल को चल दिए, और चलते-चलते उस क्षत्री के पास पहुँच गए। उस के बहुत लडने-झगडने पर भी नहीं माने और पीछे-पीछे चलते गए। ऐसे ही वे लोग गोकुल से एक कोस दूर एक गाँव मे पहुँचे। इस गाँव और गोकुल के बीच में यमुना जी बहती है। यहा वह क्षत्री स्वय तो सकुटुब पार उतर गया, पर मल्लाहों को कुछ द्रव्य देकर उन्हें नंददास को पार उतारने से रोक दिया। वे लोग गोकुल में श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के दर्शन को गए और नंददास यमुना के किनारे बैठ यमुना-स्तुति के पद गाने लगे।

राग रामकली। ताल चचरी

नेह कारन श्री जमुने प्रथम आई।

भक्त के चित्त की वृत्ति सब जानही ताही ते अति आतुर जो धाई।

जेसी जाके मन हती अब इच्छा ताहि तेंसी साध जो पुराई।

'नंददास' प्रभू नाथ ताही पर रीझत जो श्री यमुना जू के गुन गाई।

राग रामकली

यमुने यमुने जो गावों।

सेस सहस मुख गावत ताही निस दिन पार न पावें।

सकल सुख देनहार ताते करों हों ऊचार कहत हों बार बार भूलि जिन जावो।

'नंददास' की आस पूरन यमुने करी ताते कहों घरी घरी चित लावों॥

राग रामकली

भक्त पर करि कृपा श्री यमुने ऐसी।

छांड़ि निज धाम विश्राम भूतल की यों प्रगट लीला दिखाई जु तेंसी॥१॥

परम परमारथ करत हैं सबन पे रूप अद्भुत देत आप लें सी।

नंददासनि जानि जी दृढ़ करि चरण ग्रहे एक रसना कहा कहूं बिसेषी।

उधर जब वह क्षत्री अपने बेटा-बहू के संग श्री गोस्वामी जी के दर्शन को पहुँचा तो, गोस्वामी जी ने राग-भोग के बाद इन के लिए प्रसाद की चार पत्तले धरवाईं। उस क्षत्री ने कहा महाराज हम तो तीन ही जने हैं, चौथी पत्तल किस के लिए। तब गोस्वामी जी ने उत्तर दिया कि यह उस ब्राह्मण के लिए है जिसे तुम यमुना पार छोड़ आए हो। इस पर वे लोग बहुत लज्जित हुए और सोचा कि यहा भी इस क्लेश से मुक्ति नहीं मिली। तब गोस्वामी जी ने धैर्य दिया और कहा वह ब्राह्मण अब तुम को दु:ख नहीं देगा। फिर एक सेवक को नाव पर भेज कर उन्हों ने नददास को बुलवा लिया। गोस्वामी जी के कोटि कदर्प लावण्यरूप के दर्शन करते ही नददास का मोह छूट गया और उन्हो ने विनती की, "जो महाराज जब ते गुलाम को जनम भयो हैं और जब ते कछू सुधि भई है तब ते महा बुरी जो कृत कहीयें, बिसेख कर मे ने किए है। और विसे (विषयवासना) मे तनमय ही रह्यो हू। और आप तो परम कृपाल हो। मो पर कृपा करि के अपनी सरन राखीयें।" गोस्वामी जी ने, नंददास को यमुना-स्नान करा के नाम-निवेदन करवाया (इष्ट मंत्र दिया)।

नंददास का मोह तो छूट ही चुका था, इष्ट मंत्र मिलते ही उन के हृदय में अपूर्व भक्ति का सचार हुआ और उन्हो ने (मोह भंग करने वाले तथा भावना के संसार में लाने वाले) गोस्वामी जी की स्तुति के पद गाए।

राग सारंग

जयति रुक्मिनी[1] नाथ पद्मावती[2] प्राणपति विप्रकुल छत्र आनंदकारी।
दीप वल्लभ बंस जगत निस्तम करन कोट उडराज सम ताप हारी।
जयति भक्त पतित पावन करन कामीजन कामना पूरन चारी।
मुक्ति कांक्षीय जन भक्ति दायक प्रभू सकल सामर्थ गुन गनित भारी।
जयति सकल तीरथ फल नाम सुमिरण मात्र वास व्रज नित्य गोकुल बिहारी।
नंददासनि नाथ पिता गिरधर आदि प्रगट अवतार गिरराज धारी।

नंददास की पद-रचना से गोस्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए। फिर जब नददास महाप्रसाद पाने बैठे तो तन्मय हो गए और भगवान की लीलाओं का अनुभव करते हुए रात भर बैठे रहे। सवेरे गोस्वामी जी ने आकर कहा कि 'नंददास उठो दर्शन का समय हुआ है।' तब नंददास की तन्मयता का अंत हुआ और सज्ञा आई। उन्हों ने तुरंत ही गोस्वामी जी को साष्टाग प्रणाम करके उन की वदना के ये पद गाए।

राग बिभास

प्रात समें श्री वल्लभ सुत कों उठतहि रसना लीजें नाम।
आनंदकारी प्रभु मंगलकारी असुभ-हरन जन पूरन काम॥
यहि लोक परलोक के बंधू को कहि सकें तिहारे गुनग्राम।
'नंददास' प्रभु रसिक सिरोमनि राज करौं श्री गोकुल धाम॥

राग बिभास

प्रात समें श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊं।
सुंदर बदन सुभग गिरधर कों निरखि निरखि दोउ दृगन सिराऊं॥

---

[1] विट्ठलनाथ जी की प्रथम स्त्री।
[2] विट्ठलनाथ जी की द्वितीय स्त्री जिस का विवाह संवत् १६२० में हुआ।

मोहन वचन मधुर श्रीमुख के श्रवणन सुनि सुनि हृदे बसाऊं ।
तन मन प्रान निवेदन विधि यह आपुन पों सुफल कराऊं ।।
रहों सदा चरणन के आगे महाप्रसाद ऊच्छिष्ट सो पाऊं ।
'नंददास' यह मांगत हो श्री वल्लभ सुत को दास कहाऊं ।।

तब से नंददास पूर्ण वल्लभ-सम्प्रदायी हो गए और गोस्वामी जी के संसर्ग में रहते हुए भक्ति के पद गाते रहे। श्री नवनीत प्रिया के दर्शन के बाद उन्हों ने निम्न-लिखित पद गाया था —

राग बिलावल

बाल गोपाल ललन को मोद भरि जसुमति हुलरावति ।
मुख चुंबत देखत सुंदर तन आनंद भरि भरि गावति ।
कबहूं पलना मेलि झुलावति कबहू अस्तन पान करावति ।
'नंददास' प्रभु गिरधर कों रानी निरखि निरखि सुख पावति ।

वार्ता २. कुछ समय पश्चात् गोस्वामी जी श्रीनाथ जी के दर्शन को गोवर्धन पर गए और साथ में नंददास को भी ले गए। वहां श्रीनाथ जी के दर्शनों के उपरांत नंददास ने कुछ पद गाए, जिन में से कुछ नीचे दिए जाते हैं :

राग नट

सोहत सुरंग दुरंग पाग कुरंग लला के से लोइन लोने ।
कपोल बिलोकन में झलकें कल कंचन कुंडल कानन कोने ।।
रंग रंगीले के अंग सबें रंगे रंग भरे एसे भये न होने ।
'नंददास' सखी मेरी कहा चली कांम को आहट टावक टोने ।।

राग गोंरी

बनते सखन संग गाइन के पाछें पाछें आवत मोहन लाल कन्हाई ।
गोरज छुरित अलिकन की छवि मोहिय छवि बरनत बरनी न जाई ।।
पीत बसन कटि सोहे, किंकिनी की धुनि मोहे, तामें पुनि मधुर मधुर मुरली के शब्द सुहाई ।
'नंददास' प्रभु अंचल सों जसुमति बदन पोंछ कर मुख चुंबत मुसक्याई ।।

राग गोंरी

बन ते आवत गावत गोंरी

हाथ लकुटिया गाइन के पाछें ढोटा जसुमति कौ री ॥
मुरली अधर धरें मन मोहन मानों लगी ठगोरी ।
या ही ते कुल कान हरी हें ओढ़ें पीत पिछोरी ॥
ब्रज की बधू अटन चढ़ि निरखत रूप देखि भई बौरी ।
'नंददास' जिन हरि मुख निरख्यो तिनको भाग बडोरी ॥

राग गौरी

देखि सखी हरि कौ बदन सरोज ।
प्रफुलित बदन सुधारस में लुब्ध मधुप मनोज ॥
गोरज छुरित पराग रह्यो फबि सुंदर अधर सुकोस ।
'नंददास' नासा मुक्ता मानों रही एक कण ओस ॥

राग गौरी

घर नंद महेंरि के मिस ही मिस आवें गोकुल की नारी ।
सुंदर बदन बिनु देखें कल न परत भूल्यो धाम काम आछो बदन निहारी ॥
दीपक लें चली वर वाट में बडों करि डारि फिर आवें छबि सों आरि को देह गारी ।
'नंददास' नंदलाल सो लागे हें नेंना पलक ओट मानो बीते जुग चारी ॥

स प्रकार से भजन करते और पद गाते हुए नददास प्राय. एक महीना श्रीनाथ जी द्वार
। रहे और एक महीना गोकुल मे ।

वार्ता ३. इसी समय मे एक संग गोकुल से जगन्नाथपुरी को चला । मार्ग
ो यह सग काशी मे ठहरा । इस सग से पूछने पर तुलसीदास को पता चला कि एक नददास
जेस का मन पहले विपय-वासना मे बहुत लगता था, अब गोस्वामी जी का शिष्य हो गया
' और वह पढ़ा बहुत है। तुलसीदास ने अनुमान किया 'यही मेरा भाई नंददास है।'
उन्हे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि गोस्वामी जी की कृपा से नददास का मन लौकिक बातो
ो छूट कर पारलौकिक बातो मे लग गया है। तुलसीदास ने फिर एक पत्र में नददास से
कृष्णभक्त होने का कारण पूछा और रामभक्ति का उपदेश देने के लिए अपने पास बुलाया।
रन्तु नंददास ने उत्तर दिया आप ने पहले तो मेरा विवाह श्री रामचद्र जी ही से किया
ा पर अनेक अबलाओं के स्वामी सर्वशक्तिमान श्रीकृष्ण ने आकर मुझे लूट लिया।
ब तो मैं तन मन धन से कृष्ण का भक्त हू और साथ ही निम्न लिखित पद भी लिखा

राग आसावरी

कृष्ण नाम जब तें सुन्यों श्रवणन तब तें भूली भवन हों तो बावरी भई री।
भरि आवे नेंन चित न रंचिक चेंन मुख हूं न आवें बेंन तन की दसा कछू औरै भई री॥
जितेक नेम धर्म में कीने री वोहों विधि अंग अंग भई श्रवण मई री।
'नंददास' जाके श्रवण सुने यह गति माधुरी मूरति हें धों केंसी दई री॥

तुलसीदास को यह पढ कर निश्चय हो गया कि नददास इधर नही आएगा। नददास की भक्ति गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मे इतनी दृढ हो गई थी कि वे ब्रज को छोड कर कही नही जाते थे।

**वार्ता ४.** नददास ने संपूर्ण दसम स्कध भागवत की लीला भाषा छदो मे गाई। यह जान कर मथुरा के कथावाचक पौराणिक ब्राह्मणो ने गोस्वामी जी से विनती की कि 'इस भाषा भागवत से तो हमारी जीविका चली जायगी।' तब नददास ने गोस्वामी जी की आज्ञा से—'रासलीला' तक का ग्रथ छोड़ कर बाकी सब ग्रथ यमुना मे पधरा दिया। अस्तु, परमभक्त नददास गोस्वामी की आज्ञा का पूर्ण पालन करते थे।

**वार्ता ५.** एक बार जब नददास गोस्वामी जी के साथ श्रीनाथ जी द्वार मे थे, तब तुलसीदास भी गोकुल होकर वहा आए। वहा वे नददास से गोविद कुंड पर मिले, और कहा कि तुम मेरे साथ चलो और अयोध्या, काशी या चित्रकूट जहां मन लगे वहा रहो। तब नददास ने उत्तर में यह पद गाया।

राग सारंग

जो गिरि रुचें तो वसों श्री गोवर्धन, गाम रुचे तो बसो नंद गांम।
नगर रुचें तो बसो श्री मधुपुरी सोभा सागर अति अभिराम॥
सरिता रुचें तो बसो श्री जमुनातट सकल मनोरथ पूरन काम।
'नंददास' कानन रुचि बसबो सिखर भूमि श्री वृंदावन धाम॥

तुलसीदास ने गोस्वामी जी से भी नददास की विषयासक्ति छूट जाने और भक्त होने का कारण पूछा। तब उन्हों ने उत्तर दिया कि नददास पहले ही से उत्तम पात्र था। पुष्टिमार्ग मे आने से इस की व्यसनी अवस्था सिद्ध अवस्था मे बदल गई है और अब यह दृढ हो गई है।

वार्ता ६. एक समय बादशाह अकबर, बीरबल सहित मथुरा-गोकुल आए, और उन्हो ने मानसी गंगा के पास डेरा किया। वहा से बीरबल गोस्वामी जी के दर्शन को श्रीनाथ जी गए। वहा नददास को बीरबल से मालूम हुआ कि अकबर ने मानसी गगा पर डेरा किया है। अकबर की एक लौडी वैष्णव थी। नंददास की उस से बहुत मित्रता थी, अस्तु वे (नंददास) मिलने मानसी गंगा पर आए, और उस को एक वृक्ष के नीचे रसोई करते पाया तब उन्हो ने यह पद गाया :—

**राग टोडी**

**चित्र सराहत गोपी बहुत सयानी।**
**एक टक में झुक बदन निहारत पलक न मारत जान गई नंद रानी ॥**
**धर गये परदा ललित तिवारी कंचन थार जब आंनी।**
**'नंददास' प्रभु भोजन घर में ऊपर कर धरचो वे उतते मुसिक्यानीं ॥**

उन दोनो ने परस्पर भगवद्चर्चा करते रात्रि व्यतीत की। उस वैष्णव लौडी ने नददास से यह भी कहा कि मानसी गंगा अति उत्तम स्थान है और अब हम दोनों यही साथ-साथ रहे। पर नददास ने कहा कि अब इन आँखों से लौकिक देखना अच्छा नही है। प्रात.काल नददास श्रीनाथ जी लौट आए।

उसी रात को तानसेन ने अकबर के सामने नददास का यह पद गाया .—

**राग केदारो**

**देखो देखोरी नागर नट निर्तत कालिंदी के तट,**
**गोपिन मध्य राजे मुकट-लटक।**
**काछनी, किंकिनी कटि पीतांबर की चटक,**
**कुंडल किरन में रवि रथ की अटक।**
**ताथेई ताथेई सब्द सकल उघटत,**
**उरप तिरप मांनो पद की पटक।**
**रास में श्री राधे राधे, मुरली में याही रट,**
**'नंददास' जहां गावे निपट निकट।**

यह पद सुन कर अकबर ने नददास को बीरबल द्वारा बुलवाया और पूछा कि आप ने इस पद में गाया है कि 'नददास जहा गावे निपट निकट' तो आप रास के निकट कैसे

पहुँचे ? नददास ने कहा आप अपनी अमुक लौंडी (जो नददास की मित्र थी) से पूछिए। बादशाह ने डेरा मे जाकर उस से पूछा। वह बादशाह का प्रश्न सुनते ही मूर्च्छित होकर गिरी और उस के प्राण छूट गए। इधर नंददास जी का भी देहावसान हो गया। यह देख कर अकबर को बड़ा आश्चर्य हुआ। जब गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को यह समाचार मिला तो उन्हों ने दोनो वैष्णवो की बड़ी सराहना की।

इस वृत्तात मे वेंक्टेश्वर प्रेस से छपी वार्ता से कुछ अधिक सूचना मिलती है।

१. नददास और तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे।

२ वल्लभ-सप्रदाय मे आने के पहले नददास भी तुलसीदास की तरह राम के उपासक थे और श्री रामानद जी के सप्रदाय के शिष्य थे।

३. नंददास की वल्लभ-संप्रदाय में आने से पहले लौकिक विषयों मे बहुत आसक्ति थी।

४. नददास जी वल्लभ-संप्रदाय मे आने से पहले ही पद-रचना करते थे।

५. नददास ने अपना सपूर्ण भागवत भाषा ग्रथ यमुना जी मे नही बहाया। रासलीला तक का दशम स्कध रख लिया।

६ इस वार्ता में नददास की भक्ति की अनन्यता का अधिक परिचय मिलता है।

छपी वार्ता के छूटे हुए प्रसंग ये है।

१ तुलसीदास के सामने कृष्ण के धनुर्धारी वेश-धारण की कथा।

२. विट्ठलनाथ जी के पुत्र रघुनाथ जी तथा रघुनाथ जी की स्त्री जानकी का राम-जानकी रूप मे तुलसीदास को दर्शन देने की कथा।

नददास की मृत्यु की कथा छपी वार्ता मे रूपमजरी के प्रसंग में दी है। हमारी देखी हुई हस्तलिखित वार्ताओं मे नददास की मृत्यु की वार्ता छठे प्रसग मे दी हुई है।

इन दोनो वार्ताओ मे यह नही बताया कि नददास अष्टछाप मे गिने जाते थे। उन के विषय में कोई तिथि, उन के माता, पिता, जन्मस्थान आदि के विषय मे कोई उल्लेख नही है। छपी वार्ता के पृष्ठ ४६१ पर श्रीनाथ जी की एक सेविका रूपमंजरी का वृत्तांत दिया हुआ है, यह हम ने पीछे कहा है। उस में लिखा है कि रूपमंजरी से नददास की मित्रता थी और उन की मृत्यु दिल्ली के बादशाह अकबर के सामने हुई थी। इस वार्ता का भी भावार्थ हम नीचे देते हैं :—

'रूपमजरी हिंदूराज की बेटी थी, और अकबर बादशाह को ब्याही थी। वह बहुत सुदरी थी, परंतु अकबर को अपना अंग स्पर्श नहीं करने देती थी। वह कृष्ण की भक्तिन थी, और वह नित्य नददास जी से मिलने आया करती थी। एक बार किसी गायक ने नददास का एक पद अकबर के सामने सुनाया। अकबर बादशाह उस पद पर मुग्ध हो गए, और नददास से मिलने के लिए गोपालपुर के निकट मानसी गंगा पर आए। उस स्थान पर नददास जी बादशाह से मिले। बादशाह ने पूछा कि तुम ने अमुक पद प्रभु के निकट बैठ कर कैसे गाया, उसे फिर सुनाओ। नंददास जी ने विचार किया कि अन्य मार्गीय से कैसे बात की जाय। नंददास जी ने ऊपर को देखा और देह छोड़ दी। बादशाह के साथ रूपमंजरी भी थी। राजा को बड़ी खिन्नता हुई। रूपमजरी के पास आया और उस को सब वृत्तांत सुनाया। रूपमजरी ने जब नददास की मृत्यु के बारे मे सुना तब उसे बड़ा दुःख हुआ। उस ने भी अपनी वहीं देह छोड़ दी।'

इस कथा से ज्ञात होता है कि नददास की मृत्यु अकबर के सामने हुई थी। और रूपमजरी नामक एक स्त्री से उन का प्रेम था, और वह स्त्री कृष्ण की उपासिका थी। 'गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' में भी पृष्ठ ४६ पर नददास जी और रूपमंजरी का उल्लेख है। उस से यह ज्ञात होता है कि नददास जी तथा श्रीनाथ जी की सेविका रूप-मजरी का साथ था। रूपमजरी की कथा को लेकर नंददास ने 'रूपमजरी' नामक एक ग्रथ की रचना भी की है। जिस में उन्हों ने अपने को रूपमजरी की सहेली कहा है। हम इसी रूपमजरी को नंददास का 'मित्र' कह सकते है, जिस का उन्हो ने अपने ग्रथो मे कई स्थानों पर उल्लेख किया है।

४. **'रत्नावली-चरित', कवि मुरलीधर-कृत :—**मुरलीधर चतुर्वेदी सोरो, जिला एटा मे एक कवि हो गए है। इन के लिखे दो ग्रथ सोरो में मिले हैं। एक 'रत्नावली-चरित' और दूसरा 'बारहसेनी जातिवृक्ष'। 'रत्नावली-चरित'[1] का रचनाकाल कवि मुरलीधर ने संवत् १८२९ दिया है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने जिस मुरलीधर कवि का वृत्तांत दिया है, उन से यह भिन्न हैं। साहित्य के इतिहासों मे दिए हुए कवि मुरलीधर अथवा श्रीधर का समय संवत् १७६७ है, और निवास-स्थान प्रयाग है। उस

---

[1] **इस की प्रामाणिकता पर हम अक्तूबर १९३९ की 'हिंदुस्तानी' में लिख चुके है।**

के रचित ग्रथो का विषय नायिका-भद कृष्णलीला गान आदि है प्रस्तुत ग्रथ के रच पिता मुरलीधर का उल्लेख हिंदी साहित्य के इतिहास मे नही हुआ है। 'रत्नावली-चरित' की एक प्रतिलिपि तथा एक मूल प्रति स्वयं मुरलीधर के हाथ की लिखी पडित गोविंद-वल्लभ भट्ट सोरो के पास है। प्रतिलिपि सवत् १८६४ विक्रमी की है। मुरलीधर के शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने नकल की है। जो मुरलीधर मिश्र के हाथ की लिखी है, वह सवत् १८२६ विक्रमी की है। कवि ने ग्रथरचना-काल यानी १८२६ संवत् मे अपनी आयु ८० वर्ष की दी है। मै ने दो बार सोरो जाकर इन ग्रथो का अवलोकन किया है। मुझे ग्रथ प्रामाणिक जान पड़े है। 'रत्नावली-चरित' और 'बारह-सेनी जातिवृक्ष' मे कवि मुरलीधर ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है —

विपुल सिद्ध मुनि वृद्ध संतजन वृंद बसत जहं।
श्री हरिवदन प्रसूत हरिपदी लोल लसत जहं ।।
तासु कूल सोपान सेवि नयनाभिराम जहं।
भक्ति ज्ञान वैराग्य पुंज बाराह धाम जहं ।।
बहु पुन्यन सों पाइयत दरस क्षेत्र बाराह महिं।
केतिक पुन्यन फल लह्यो द्विज मुरली जहं जनम गहि ।।

('रत्नावली-चरित')

सुष दुख बीते असी लगे मुरली इक्यासी।
बसत सौकरव पास कटे बंधन चौरासी ।।
दीठि भई अब मंद दुरत सिर कँपत कछुक कर।
तदपि न मानत लिखन, कहत मन कविता सुंदर ।।
सो अब कस बानक बनहिं मन बहलावन करि रहे।
जिमि जन बिन दसनन चनक पीसि पीसि मुष भरि रहे ।।

('रत्नावली-चरित')

स्वहस्तलिखित प्रति मे कवि ने कृष्णदास-कृत—'कृष्णदास-वंशावली', वर्ष-पत्रिका बनाने के चार छप्पय, और अपना वर्षपत्र दिया है।

'बारहसेनी जातिवृक्ष' में कवि मुरलीधर कहता है :—

**चतुरवेद मुरलीधर सुनाम, संतति सनाढ्य तव वेद धाम।**
**हो रहहुं सु सूकर खेत गाम, प्रभु बराह पद पावन ललाम॥**

कवि ने अपनी इस ग्रंथ की सामग्री का आधार जनश्रुति माना है। वह कहता है कि:—

**नवकर बसु भू विक्रमीय, सूकर तीरथ वंदनीय।**
**साध्वी रतनावलि कहानि, बिरधन मुख जस परी जानि।**
**दुज मुरलीधर चतुरवेद, लिखि प्रगटो जगहित सभेद।**

इस ग्रंथ मे रत्नावली और उस के पति महात्मा तुलसीदास के चरित्रो का वर्णन है। तुलसीदास के वैराग्य लेने के बाद का चरित्र इस मे नही है। बीच-बीच मे नददास जी के बारे मे भी उल्लेख है। वास्तव मे महात्मा तुलसीदास और नंददास जी के प्रारंभिक जीवन के आधारभूत ग्रथों मे यह ग्रंथ बडे महत्व का है। इस से इन कवियों की जीवनियो पर जो अब तक अधकार मे थी एक नवीन प्रकाश पड़ा है। इस ग्रथ की तथा इस के साथ मिले हुए दो और ग्रथो की खोज से पहले हिंदी के विद्वान् 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के इस कथन को कि तुलसीदास और नददास भाई-भाई थे, सत्य नही मानते थे। उन का कहना था कि नददास और तुलसीदास गुरुभाई थे, वे सगे अथवा चचेरे भाई नही थे। इस ग्रथ में बताया है कि नंददास और तुलसीदास दोनो चचेरे भाई थे, और गुरुभाई भी थे। इस ग्रथ मे तुलसीदास और नंददास के विषय मे निम्न-लिखित चरित्र दिया है—

'गोस्वामी तुलसीदास सोरो जिला एटा के निवासी पडित आत्माराम के पुत्र थे। वे जाति के आस्पदधारी सनाढ्य ब्राह्मण थे। नददास उन के चचेरे भाई थे। तुलसी-दास और नददास दोनो नृसिह जी से विद्या पढा करते थे। गुरु नृसिह जी उन के सजातीय स्मार्त वैष्णव थे, जिन की सोरों में चक्रतीर्थ के निकट पाठशाला थी। तुलसी की माता का नाम हुलसी था। तुलसीदास के माता-पिता उन की बहुत छोटी अवस्था मे ही परलोक-वासी हो गए थे। उन की दादी ने उन्हे बडे कष्ट और ग़रीबी मे पाला। उन के चचेरे भाई नददास और चंद्रहास सोरो के निकट रामपुर गॉव मे रहते थे। आगे इस ग्रथ मे रत्नावली और तुलसीदास का चरित्र लिखा है। तुलसीदास के वैराग्य लेने पर रत्नावली कभी अपने मायके मे रहती थी और कभी नददास के घर रहती थी। इस ग्रथ से यह भी

लता है कि नंददास के पिता का भी देहांत उन के पढ़ते समय सोरों
ंकि रत्नावली-चरितकार ने लिखा है कि तुलसीदास दादी के मरने
हते रहे। परंतु नंददास और उन के छोटे भाई चंद्रहास अपनी माता
रहते थे। कवि ने यह नहीं कहा कि वे अपने पिता के पास रामपुर
की जीवनी से संबंध रखने वाले अंश हम यहां उद्धृत करते हैं।

रत्नावली के पिता दीनबंधु पाठक, रत्नावली के लिए वर की
किसी मित्र ने उन्हें बताया कि पंडित नृसिंह जी की पाठशाला में रामपु
ा के दो लड़के पढ़ते हैं। इसी प्रसंग में नंददास का परिचय दिया हुआ

तीरथ सूकरखेत नाम, भयो विदित जग मुकति धाम।
बहु तीरथ जहं रहे राजि, सेवत अघगन जात भाजि।

... ... ...

जहं सुरसरि की बहत धार, जनु बराह पद रहि पखार।
बहुरि विप्र जहं करत वास, रहे बेद धरमहिं प्रकास।

... ... ...

तबै मीत इक दई आस, गुरु नृसिंह के जाहु पास।
स्मारत बैष्नव सो पुनीत, अखिल वेद आगम अधीत।
चक्रतीर्थ ढिग पाठशाल, तहीं पढ़ावत विपुल बाल।
तहां रामपुर के सनाढच, सुकुल वंश घर द्वै गुनाढच।
तुलसिदास अरु नंददास, पढ़त करत विद्या विलास।
एक पितामह पौत्र दोउ, चंद्रहास लघु अपर सोउ।
तुलसी आत्माराम पूत, उदर हुलासो के प्रसूत।
गए दोउ ते अमर लोक, दादी पोतहिं करि ससोक।
बसत जोग मारग समीप, विप्र बंस कर दिव्य दीप।

ली और तुलसीदास का विवाह हो गया।

रत्नावलि सी नारि पाइ, तुलसी घर सुख गयो छाय।
पितामही बहु दुख उठाइ, पोषे तुलसी उर लगाइ।

दंपति सेवा सो सिहाय, सुरग गई कछु दिन बिताय।

नंददास और चंद्रहास, रहहिं रामपुर मातु पास।

दंपति बिस बाराह धाम, लहत मोद आठहु याम।

तुलसीदास ने स० १६२४ से वैराग्य ले लिया और वियोगिनी रत्नावली, पति-वियोग के दुःख में समय व्यतीत करने लगी।

कबहुं रामपुर बसति जाइ, कबहुं बदरिका रहति आइ।

... ... ...

पति वियोग से साधि जोग, त्याग दिये सब जगत भोग।

भू सर रस भू बरस पूरि, सुरग गई लहि सुजस भूरि।

५. रत्नावली-दोहासंग्रह[1]—इस ग्रंथ मे नंददास का बहुत थोड़ा उल्लेख है। एक स्थान पर तुलसीदास की वियोगिनी पत्नी रत्नावली एक दोहे मे कहती है—

मोइ दीनो संदेश पिय, अनुज नंद के हाथ।

रतन समुझि जनि पृथक मोइ, जो सुमिरत रघुनाथ।

इस दोहे मे कहा है कि तुलसीदास ने अपने छोटे भाई नंददास अथवा छोटे भाई के नंद (पुत्र) के हाथ रत्नावली के पास संदेशा भेजा कि रत्नावली जो तू रघुनाथ का भजन करती है, तो तू मुझ से अलग नहीं है। 'दो सौ बावन वार्ता' से यह भी मालूम होता है कि तुलसीदास के काशी-निवास के समय नंददास जी भी सोरो से उन के पास काशी पहुँच गए थे, और उन के पास रहा करते थे। उस समय, वार्ता के कथनानुसार उन का चित्त लौकिक विषयों मे बहुत लगता था, यानी वे महात्मा तुलसीदास की तरह संसार से विरक्त नही थे। संभव है वे उसी समय अपने संबंधियो से मिलने सोरों आते रहे हो। तुलसीदास ने काशी से नंददास को उन के व्रजवास-ग्रहण करने के बाद एक पत्र लिखा था, और एक बार वे नंददास से मिलने वृंदावन भी गए थे। संभव है उस समय यह संदेशा नंददास के हाथ अपनी स्त्री रत्नावली के पास भेजा हो अथवा इस किंवदंती के अनुसार कि एक बार नंददास के पुत्र और तुलसीदास जी के भतीजे कृष्णदास तुलसीदास

---

[1] इस ग्रंथ के परिचय और प्रामाणिकता पर हम 'हिंदुस्तानी' के जनवरी १९४०, और अक्तूबर १९३९ के अंकों में विचार कर चुके हैं।

को काशी से सोरों लाने के लिए गए थे, उस समय यह सदेशा भेजा गया हो। रत्ना-वली ने तुलसीदास के वैराग्य लेने का सवत् और अपनी आयु के विषय में इस प्रकार कहा है—

> बैस बारहीं कर गह्यो, सोरहिं गौन कराय,
>
> सत्ताइस लागत करी नाथ, रतन असहाय ॥
>
> सागर[१] कर[२] रस[६] ससि[१] रतन, संवत मो दुप दाय,
>
> पिय वियोग जननी मरन, करन न भूल्यो जाय ॥

इस प्रकार संवत् १६२४ मे जब रत्नावली की आयु २७ वर्ष की थी, तुलसीदास ने वैराग्य लिया था।

६. **सूकरक्षेत्रमहात्म्य**[१]—नंददास की जीवनी के अत्र तक के आधारभूत ग्रथो मे नंददास के पुत्र कृष्णदास का नाम कही नही आया। इस 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और सवत् १६४३ की 'रामचरितमानस' की एक प्रति मे यह उल्लेख मिलता है कि एक कृष्णदास नंददास के पुत्र थे। सोरों जिला एटा मे इन कृष्णदास के वशजो मे से अब भी एक घर विद्यमान बताया जाता है। इन्ही कृष्णदास रचित दो ग्रथ सोरो मे प्राप्त हुए हैं। एक 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' दूसरा 'वर्षफल'। 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' स० १६७० में लिखा गया था। कृष्णदास ने इस ग्रथ के अत मे अपनी वशावली दी है जो तुलसीदास और नंददास के जीवन-चरित्रो को एक नया रूप दे रही है। आरभ मे कवि ने वंदना रूप में अपनी माता यानी कवि नंददास की पत्नी तथा अपने ताऊ तुलसीदास की पत्नी रत्नावली के नाम भी दिए है। जिन छंदों में यह परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

**सोरठा**

> गणपति गिरा गिरीस, गिरजा गंगा गुरु चरन।
>
> बंदहुं पुनि जगदीश, छबि बराह महि उद्धरन ॥
>
> बंदहुं तुलसीदास, पितु बड़ भ्राता पद जलज।
>
> जिन निज बुद्धि विलास, रामचरितमानस रच्यो ॥

---

[१]एटा से यह पुस्तक छप चुकी ह

सानुज श्री नंददास, पितु की बंदहुं चरन रज।
कीनी सुजस प्रकाश, रास पंच अध्यायि भनि ॥
बंदहुं कृपानिकेत, पितु गुरु श्री नरसिंह पद।
बंदहुं शिष्य समेत, बल्लभ आचारज सुषद ॥
बंदहुं कमला मात, बंदहुं पद रत्नावली।
जासु चरन जलजात, सुमिरि लहहिं सिय सुरथली ॥
सुकुल बंस द्रुज मूल, पितरन पद सरसिज नमहुं।
रहहिं सदा अनुकूल, कृष्णदास निज अंस गनि ॥
महि बराह संवाद, सूकरक्षेत्रमहात्म कर।
हों धरि उर आह्लाद, कृष्णदास भाषा करहुं ॥

ग्रंथ के अंत में दी हुई कृष्णदास की वंशावली इस प्रकार है—

खेत बराह समीप सुचि, गाम रामपुर एक।
तहं पंडित मंडित बसत, सुकुल बंश सविबेक ॥
पंडित नारायन सुकुल, तासु पुरुष परधान।
धारयो सत्य सनाढ्य पद, ह्वै तप बेद निधान ॥
शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल, भे गुरु द्रोन समान।
ब्रम्ह रंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्बान ॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्त पिता अनुहारि।
पंडित श्रीधर शेषधर, सनक सनातन चारि ॥
भये सनातन देव सुत, पंडित परमानंद।
व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चितानंद ॥
तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परबीन।
लघु सुत जीवाराम भे, पंडित धरम धुरीन ॥
पुत्र आत्माराम के, पंडित तुलसीदास।
तिमि सुत जीवाराम के, नंददास चंदहास ॥
मथि मथि वेद पुरान सब, काव्य शास्त्र इतिहास।
रामचरितमानस रच्यो, पंडित तुलसीदास ॥

वल्लभ कुल वल्लभ भये, तासु अनुज नंददास।
धरि वल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास॥
नंददास सुत हो भयो, कृष्णदास मतिमंद।
चंद्रहास सुध सुत अहै, चिरजीवी व्रजचंद॥

इस वंशावली के अनुसार तुलसीदास और नंददास चचेरे भाई ठहरते हैं।

ग्रंथ को समाप्त करते हुए कृष्णदास ने ग्रंथ का रचनाकाल दिया है, और अपने पिता नंददास द्वारा अपने निवास-स्थान रामपुर का श्यामपुर नाम रखने का उल्लेख किया है।

सोरह सौ सत्तर प्रमित, सम्वत सितदल मांह।
कृष्णदास पूरन करयो, क्षेत्र महात्म वराह॥
तीरथ वर सौकर निकर, गाम रामपुर वास।
सोइ रामपुर श्यामपुर, करयो पिता नंददास॥

उपर्युक्त ग्रंथ से नंददास के जीवन-संबंधी निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

नंददास जी सूकरक्षेत्र के निकट रामपुर स्थान के रहने वाले थे। उन की जाति सुकुल आस्पदधारी सनाढ्य ब्राह्मण थी। 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास उन के चचेरे भाई थे। नंददास के पूर्वजों में एक नारायण शुक्ल हुए जो सनाढ्य ब्राह्मण थे। उन के चार पुत्र हुए, पंडित श्रीधर, शेषधर, सनक और सनातन। सनातनदेव के पुत्र पंडित परमानंद हुए। परमानंद के पुत्र पंडित सच्चिदानंद हुए। इन के दो पुत्र हुए, बड़े आत्माराम और छोटे जीवाराम। आत्माराम के पुत्र पंडित तुलसीदास जिन्हों ने 'रामचरितमानस' की रचना की और जीवाराम के पुत्र नंददास और चंद्रहास हुए। नंददास के पुत्र कृष्णदास और चंद्रहास के पुत्र व्रजचंद्र हुए। कृष्णदास से व्रजचंद्र छोटे थे, क्योंकि कृष्णदास ने व्रजचंद्र को 'चिरजीवी' कहा है। इस वंशावली में तुलसीदास की किसी संतान का उल्लेख नहीं है। 'रत्नावली-चरित' से ज्ञात होता है कि तुलसीदास के एक पुत्र हुआ था, परंतु वह जीवित नहीं रहा।

नंददास वल्लभ-संप्रदायी थे। वे कवि थे, और उन्हों ने 'रासपंचाध्यायी' की रचना की, इन की प्रसिद्धि उन के जीवन-काल में ही हो गई थी। उन की धर्मपत्नी का नाम कमला था। नंददास के बड़े भाई तुलसीदास की पत्नी का नाम रत्नावली था। इस ग्रंथ

से यह भी ज्ञात होता है कि नंददास ने कृष्णभक्त होने के बाद अपने गाँव रामपुर का नाम श्यामपुर रख दिया था। नंददास के पुत्र कृष्णदास भी एक कवि थे। इस ग्रंथ से यह भी पता लगता है कि नंददास और तुलसीदास दोनों के शिक्षागुरु कोई नृसिंह पंडित थे।

श्यामपुर गाँव आजकल, श्यामपुर और रामपुर दोनों नामों से प्रसिद्ध है। इस गाँव में एक श्यामसर नामक तालाब भी है, जहां बलदेव छठ के दिन प्रत्येक वर्ष मेला लगता है। कहा जाता है कि यह तालाब भी नंददास ही ने बनवाया था। पटवारियों के सरकारी कागजों में इस गाँव का नाम श्यामसर लिखा जाता है। इस गाँव के नाम बदलने की कथा भी सोरों तथा उस के आसपास के गाँवों में प्रसिद्ध है। आजकल यह गाँव लगभग पचास घरों की बस्ती है। यहां ब्राह्मणों के दो-एक ही घर हैं, परन्तु वे अपने को नंददास अथवा चंद्रहास का वंशज नहीं कहते। कहा जाता है कि नंददास के वंशज सोरों ही में रहते हैं। मैं जब सोरों गया तो मैंने नंददास के वंशधरों का पता लगाया। मुझे एक ब्राह्मण घर बताया गया जो अपने को तुलसीदास और नंददास का वंशज बताता है। सोरों के आस-पास के गाँवों में सनाढ्य ब्राह्मण ही रहते हैं। अन्य प्रकार के ब्राह्मण जैसे सरयूपारी अथवा कान्यकुब्ज वहां नहीं हैं।

**७. कवि कृष्णदास-कृत 'वर्षफल'**—नंददास के पुत्र कृष्णदास का यह दूसरा ग्रंथ है। यह ज्योतिष-ग्रंथ है, जो सं० १६५७ में कवि ने लिखा था। पुस्तक में कुल १७ पृष्ठ हैं। इस में सूर्य से लेकर राहु तक आठों ग्रहों का फल कहा गया है। इन के अतिरिक्त अरिष्ट योग, अरिष्ट भंग योग, राजयोग, राजभंग आदि योगफल भी कहे हैं। इस ग्रंथ के अंतिम दोहों से भी नंददास के जीवन पर प्रकाश पड़ता है और 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' के कथन की पुष्टि होती है।

ग्रंथ का आरंभ इस प्रकार होता है—

**कवित्त**

**गनपति गिरीस गंग गौरी गुरु गीरवान**
**गोपवेस गोकुलेस गोपीगुन गाइके।**
**भूमि देव देव दिवि गाम धाम देवी देव**
**तात मात पाद कंज मंजु सीस नाइके।**

**सूर सोम भौम सौम बेव गरु दत्य गरु**

शुक्र शनि राहु केतु खेट मन लाइके ।

बालबोध आस कबिदास दास कृष्णदास

भाषतु हों वर्षफल वर्षग्रन्थ ध्याइके ।

ग्रंथ के अंतिम छंद जिन से नददास के जीवन पर प्रकाश पर पड़ता है, तथा ग्रथ की पुष्पिका, इस प्रकार है—

दोहा

तात अनुज चँददास बुध, बर निरदेसहि धारि ।

लिष्यो जथामति बर्षफल, बालबोध संचारि ।।

कवित्त

कीरति की मूरति जहां राजै भगीरथ की,

तीरथ बराह भूमि बेदनु जे गाई है ।

जाई धाम रामपुर स्यामपुर कीनो तात,

स्यामायन स्यामपुर बास सुषदाई है ।।

सुकुल विप्र बंस भे बिग्य तहां जीवाराम,

तासु पुत्र नंददास कीरति कवि पाई है ।

ता सुन हों कृष्णदास वर्षफल भाषा रच्यो,

चूक होइ सोधें मम जानि लघुताई है ।।

---

सोरह सौ सत्तासलि, विक्रम के वर्ष मांझि,

भई अति कोप दृष्टि विस्व के विधाता की ।

बीतत असाढ़ बाढ़ लाई बड़ देव धुनि,

बूढ़ी जल जन्म भूमि रत्नावलि माता की ।

नारी नर बूढ़े कछु सेस बड़ भाग रहे,

चिन्ह मिटे बदरी के दुखद कथा ताकी ।

आजु नभ कृष्ण मास तेरस शनि कृष्णदास,

वर्षफल पूरचो भई दया बोध दाता की ।।

पुष्पिका—इति श्री कृष्णदास विरचितम भाषा वर्षफलम् सम्पूर्णम् ॥ संवत् १८७२ मार्ग सिर कृष्णा त्रतिया गुरु वासरे, सहसवान नगरे शुभम्, शुभम्, शुभम् ।

इस ग्रंथ में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

नंददास सुकुल विप्रवंश के थे। इन के पिता का नाम जीवाराम था जो भागीरथी गंगा के निकट वाराहभूमि तीर्थ के निकट रामपुर गाँव के रहने वाले थे। कृष्णदास कवि उन के पुत्र थे। उन के छोटे भाई चंदहास थे जिन की आज्ञा से उन के पुत्र कृष्णदास ने इस 'वर्षफल' की रचना की थी। नंददास ने अपनी जन्मभूमि रामपुर गाँव का नाम रामपुर से श्यामपुर रख दिया था। नंददास के वंशज कृष्णदास आदि इसी गाँव श्यामसर या सोरों में रहा करते थे। नंददास जी प्रसिद्ध कवि थे। संवत १६५७ में ईश्वरीय कोप हुआ, जिस से अति वृष्टि हुई और गंगा में बाढ आ गई। जिस से 'रत्नावलि माता' की जन्मभूमि बदरिया जल में डूब गई। 'रत्नावलि' को कवि ने माता शब्द से संबोधित किया है। इस से सीधे अर्थ यह होते हैं कि कृष्णदास की माता अर्थात् नंददास की धर्मपत्नी रत्नावली थी। परंतु अन्य कई प्रमाणों तथा कृष्णदास-कृत अन्य ग्रंथों से नंददास की धर्मपत्नी का नाम 'कमला' ज्ञात होता है। रत्नावली कृष्णदास की ताई थी। आदर भाव से तथा प्रतिष्ठा के विचार से ताई को यहाँ माता कहा है। यह ग्रंथ भी पिछले ग्रंथों के वृत्तांतों का समर्थन ही करता है।

८. **'रामचरितमानस' की एक हस्त-लिखित प्रति**—अष्टछाप कवियों के जीवनचरित्रों के आधारभूत ग्रंथों में सोरों में 'रामचरितमानस' की एक प्राचीन प्रति भी है। इस प्राचीन प्रति के लेख से इस बात की पुष्टि होती है कि 'रामचरितमानस' के रचयिता महात्मा तुलसीदास नंददास के चचेरे भाई थे, तथा कृष्णदास नंददास के पुत्र का नाम था। वे सोरों (सूकरक्षेत्र) के रहने वाले थे। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की यह प्रति काशी में अपने शिष्यों से नक़ल करा कर कृष्णदास को दी थी, और वे उसे सोरों लाए थे। इस प्रति को मैं ने स्वयं देखा है, और इस की जाँच भी की है। यहाँ इस का कुछ ब्यौरा देना उचित जान पड़ता है।

सोरों ज़िला एटा के पंडित गोविंदवल्लभ शास्त्री काव्यतीर्थ के पास संवत् १६४३ वि० के लिखे हुए 'रामचरितमानस' के तीन कांडों की खंडित प्रतियाँ हैं। ये कांड बालकांड, अयोध्याकांड और अरण्यकांड हैं। अयोध्याकांड का अंतिम पृष्ठ नष्ट हो गया

है। बाल तथा अरण्यकांडो मे भी बहुत से पृष्ठ नष्ट हो गए है। बचे पृष्ठ भी किनारे से जले हुए है। उन मे से दो काडों मे उन की प्रतिलिपि का सवत् १६४३ दिया है। सोरो में 'रामचरितमानस' की इस प्रति के बारे में यह कहा जाता है कि 'रामचरितमानस' का प्रचार सर्व-प्रथम सोरों मे गोस्वामी तुलसीदास के भाई नददास के पुत्र कृष्णदास ने किया था। कहा जाता है कि कृष्णदास एक बार अपने ताऊ तुलसीदास को सोरो लाने के लिए काशी गए, परतु तुलसीदास सोरों नही आए। उसी समय तुलसीदास ने कृष्णदास को 'रामचरिमानस' की एक प्रति दी। यह सोरो वाली रामायण, वही काशी से कृष्णदास की लाई हुई है। इन तीन अवशेष काडो को देखने से प्रतीत होता है कि सात काड 'रामचरितमानस' महात्मा तुलसीदास ने कई आदमियो से लिखवा कर कृष्णदास को दिए होगे। अरण्यकाड के लेखक का नाम लछिमनदास दिया हुआ है, और बालकाड के लेखक का नाम रघुनाथदास है।

अरण्यकाड की पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री रामायने सकल कलिकलुषविध्वसने विमल वैराग्य सपादिनी वट मुजन सम्वोद रामवन चरित्र वर्ननो नाम तृतीय सोपान अरण्यकाण्ड समाप्त ॥३॥ श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सो उन के भ्राता सुत कृष्णदास सोरो क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास काशी जी मध्ये संवत् १६४३ आषाढ़ शुद्ध ४ शुक्र इति।"

और बालकाड की पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वसने विमल वैराग्य सम्पादिनी नाम १ सोपान समाप्त सवत् १६४३ शाके १५०८ (आगे कुछ अक्षर नष्ट हो गए हैं) ...नददास पुत्र कृष्णदास हेत लिपी रघुनाथदास ने काशीपुरी मे।"

इस ३५३ वर्ष पुरानी 'रामचरितमानस' की प्रति के अंतिम लेख से पीछे कहे हुए कुछ कथनो का समर्थन होता है।

**६. 'गुसाईचरित' तथा 'मूलगुसाईचरित'**—'गुसाईचरित' ग्रंथ अप्राप्य है। 'मूलगुसाईचरित' को हम महात्मा तुलसीदास और नंददास की जीवन-घटनाओं का विश्वस्त आधार नही मानते। इस ग्रथ मे कथित नददास विषयक उल्लेखो को हम चरितकार के शब्दो म ही नीच देते हैं

**नंददास कनौजिया प्रेम मढ़े, जिन शेष सनातन तीर पढ़े।**
**सिच्छा गुरु बन्धु भये तेहिते, अति प्रेम सो आय मिले यहिते ॥**

इस ग्रथ के अनुसार ज्ञात होता है कि नददास जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। काशी मे इन्हो ने शेष-सनातन से विद्या पढ़ी थी। वहीं तुलसीदास उन के सहपाठी थे। तुलसीदास और नददास सगे अथवा चचेरे भाई नहीं थे, वे केवल गुरुभाई थे। इस ग्रथ से यह भी ज्ञात होता है कि संवत् १६४९ वि० मे तुलसीदास ने नैमिषारण्य की यात्रा की और तभी ब्रज मे आकर नददास से वे मिले। सूकरक्षेत्र की स्थिति इस ग्रंथ मे सरयू और घाघरा के सगम के तीर पर मानी है, जहां तुलसीदास ने अपने गुरु नरहर्यानद से विद्या पढी थी। नददास और तुलसीदास के जीवन-विषयक उपर्युक्त वृत्तात की एक भी बात प्रचलित किवदती अथवा पिछले दिए हुए 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता', 'रत्नावली-चरित', 'रत्नावली-दोहासग्रह', 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' आदि ग्रंथो के वृत्तात से मेल नही खाती। पीछे कहे हुए ग्रथो के आधार पर नददास शुक्ल आस्पदधारी सनाढ्य ब्राह्मण है, 'मूलगुसाईचरित' मे उन्हें कान्यकुब्ज लिखा है। उन ग्रथों मे वे 'रामचरितमानस'-कार तुलसीदास के चचेरे तथा गुरुभाई है। इस मे उन्हे केवल गुरुभाई लिखा है। इन ग्रथो मे सोरों (सूकरक्षेत्र) गगा के तट का है जहां इन दोनों भक्त कवियों के गुरु नृसिंह जी रहते थे। इस वृत्तात मे सूकरक्षेत्र घाघरा और सरयू के संगम का है। इस प्रकार या तो केवल 'मूलगुसाईचरित' का वृत्तात ठीक होना चाहिए अथवा सूकरक्षेत्र महात्म्य आदि ग्रथ-समूह का वर्णन। तुलना करने पर हमे 'मूलगुसाईचरित' के वृत्तात ग्राह्य नही प्रतीत होते।

१०. भक्तनामावली ध्रुवदास-कृत—'भक्तनामावली' का रचनाकाल सवत् १६८० के लगभग माना जाता है। इस के दोहे नं० ७७-९ में नंददास जी का उल्लेख है। वे दोहे इस प्रकार है—

**नंददास जो कछु कह्यो, राग रंग सों पागि।**
**अच्छर सरस सनेहमय, सुनत स्रवन उठ जागि ॥**
**रसिक दसा अद्भुत हुती, कर कवित्त सुढार।**
**बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जल धार ॥**

**बावरो सो रस में फिरै, खोजत नेह की बात।**

**आछे रस के बचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात ॥**

इन छदो मे नददास के जीवन से सबध रखने वाला कोई वृत्तात नही दिया। उन की जाति, जन्मस्थान आदि प्रसगो पर कुछ भी नहीं कहा। इन मे कवि की भक्ति की प्रशंसा, उस के काव्य के गुणो का वर्णन और उस के मन की रसिक वृत्ति का ही परि-परिचय दिया है। नंददास ने जो कुछ भी कहा है (काव्य की रचना की है) वह सब 'राग रग', अनुराग अथवा प्रेम के रग में रँगा हुआ कहा है। उन की रचना के अक्षर सरस है और सुनते ही चित्त को चमत्कृत कर देते है। उन के मन की रसिक दशा है। नददास के रसिक होने के विषय मे तो आंतरिक और बाह्य दोनों प्रमाण स्पष्ट बताते है कि नददास माधुर्य अथवा शृगार भाव से भगवान् की उपासना करते थे। उन के कवित्त सुदर रूप मे ढले हुए होते है। उन का मन प्रेम से लबालब भरा रहता है। कृष्णरस मे वे मानो पागल हो गए है। ध्रुवदास जी के समय तक नददास की ख्याति अच्छी तरह फैल चुकी थी। इसी लिए उन्हों ने अपने समकालीन भक्त नददास की प्रशंसा की है।

## आधुनिक ग्रंथों में परिचय

इन प्राचीन ग्रथो के अतिरिक्त कुछ आधुनिक लेखकों ने भी नददास के विषय मे लिखा है। परंतु इन सब परिचयों का आधार वेंकटेश्वर प्रेस से छपी '२५२ वार्ता' 'भक्तमाल', 'मूलगुसाईचरित' तथा ध्रुवदासकृत 'भक्तनामावली' ही मुख्यत. है। इन ग्रथों मे से भी कुछ ग्रथो का विवरण देना अनुचित न होगा।

**शिवसिंहसरोज**—सरोजकार ने नददास का कोई विशेष वृत्तात नहीं लिखा। उन्हो ने पृष्ठ ४४२ पर केवल इतना लिखा है—

"नददास ब्राह्मण रामपुर निवासी, विट्ठलनाथ जी के शिष्य सं० १५८५ मे उदय। इन की गणना अष्टछाप में की गई है। इन की बावत यह मसल मशहूर है कि 'और सब गढिया नंददास जडिया।' इस के वाद नददास के बनाए हुए कुछ ग्रंथों के नाम दिए है।

**भारतेंदु-रचित भक्तमाल**—भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने भी नाभाजी के 'भक्तमाल' के आधार पर 'भक्तमाल' की रचना की है। उस मे ८०वें छप्पय में नंददास जी के बारे मे इस प्रकार लिखा है

**तुलसीदास के अनुज सदा विट्ठल पद चारी।**
**अंतरंग हरि सखा, नित्य जेहि प्रिय गिरधारी।**
**भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई।**
**गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल माहिं डुबाई।**
**पंचाध्यायी हठ करि रखी, तब गुरुवर द्विजभय हरत।**
**श्री नंददास रस-रास-रत, प्रान तज्यो सुधि सो करत।**

उक्त छंद से ज्ञात होता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने नंददास के वृत्तांत में 'दो सौ बावन वार्ता' और नाभा जी के 'भक्तमाल' का ही आश्रय लिया है। नंददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। उन्हों ने भाषा में 'भागवत' तथा 'रासपंचाध्यायी' की रचना की और रास-रस में सदैव अनुरक्त रहते थे। इस वृत्तांत से यह बात ज्ञात होती है कि भारतेंदु जी इस बात को मानते थे कि नंददास जी तुलसीदास के छोटे भाई थे।

संवत् १९८९ में सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'दि वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिंदुस्तान' नामक एक हिंदी साहित्य का इतिहास-ग्रंथ लिखा। इस में नंददास का जो उल्लेख है उस का आधार मुख्यत. 'शिवसिंहसरोज' का वृत्तांत है जो बहुत ही थोड़ा है। नंददास का रचनाकाल ग्रियर्सन ने सन् १५६० ई० माना है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक इतिहास-लेखकों ने नंददास की काव्य-रचनाओं के विषय में तो कुछ लिखा है परंतु उन के जीवन के संबंध में अधिक हाल नहीं दिया है। 'मिश्रबंधुविनोद' नामक ग्रंथ में विद्वान लेखकों ने नंददास को किसी तुलसीदास का भाई अवश्य माना है, परंतु यह स्पष्ट नहीं किया कि 'रामचरितमानस'-कार तुलसीदास ही उन के भाई थे अथवा कोई अन्य व्यक्ति। हमारे देखने में कविवर नंददास के जीवन से संबंध रखनेवाली जो नवीन सामग्री आई है, उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'वार्ता' में नंददास के भाई कहे जाने वाले तुलसीदास और हमारे महान् कवि 'रामचरितमानस'-कार तुलसीदास एक ही हैं। श्रद्धेय मिश्रबंधुओं के 'विनोद' लिखने के समय तुलसीदास और नंददास के संबंध की बहुत थोड़ी सामग्री उपलब्ध थी। न्यून सामग्री पर कोई धारणा स्थित न करना और भावी संशोधकों के लिए मार्ग खुला रखना मिश्रबंधुओं के सफल इतिहासकार होने का परिचायक है। अब जो सामग्री हम उपस्थित कर रहे हैं, उस के अवलोकन से हमें आशा है कि वे सज्जन जो नंददास और 'रामचरितमानस'-कार तुलसीदास

के भाई होने मे सदेह कर रहे थे, अपने विचारो मे परिवर्तन कर लेंगे। परतु अध्यापक रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' मे 'वार्ता' के कथन को बिल्कुल स्वीकार नहीं किया है, और उन्हो ने नददास और तुलसीदास का आपस मे कोई सबध नही माना है। वे अपने इतिहास मे लिखते है कि "गोस्वामी जी का नददास से कोई सबंध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है।" उन्हो ने 'वार्ता' के कथन को प्रामाणिक नही माना। बाकी वृत्तांत बहुत सक्षेप से लिखा है।[1]

अब तक नददास और तुलसीदास के जीवन संबधी जो सामग्री उपलब्ध थी उसी के आधार पर हिंदी के विद्वानो की धारणा थी, कि इन दोनों कवियो का आपस मे कोई सबध नही था। केवल 'सुकवि-सरोज' जो सं० १९९० में प्रकाशित हुआ था तथा 'बुदेलवैभव' ग्रथों मे इन दोनो कवियो को एक दूसरे का चचेरा भाई माना है। इन ग्रथो मे यह भी लिखा है कि नददास और तुलसीदास कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारी ब्राह्मण नही थे, वरन् वे सनाढ्य ब्राह्मण थे और सोरो जिला एटा के रहने वाले थे। परतु विद्वानों ने इस कथन की पुष्टि मे विश्वस्त प्रमाण नही पाए और इसी से उन्हों ने इन कथनों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। उपरोक्त प्राचीन ग्रथों पर हम ने पूर्ण-रूप से विचार किया है, और उन की प्रामाणिकता पर विचार करने तथा उन मे उल्लिखित कथनों की तुलना करने के पश्चात् हम नंददास की प्रामाणिक जीवनी बहुत अंशों मे पा सके हैं।

## जीवन-चरित्र की संक्षिप्त रूपरेखा

पीछे कहे आधारो के अनुसार नददास के जीवन-चरित्र की सक्षिप्त रूप-रेखा इस प्रकार होगी।

**जन्मस्थान**—महाकवि नंददास का निवास-स्थान 'भक्तमाल' मे रामपुर ग्राम दिया है। कवि ने स्वय अपनी रचनाओं मे इस का कही उल्लेख नही किया। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' उसे पूर्व देश का निवासी बताती है। 'रत्नावली-चरित' तथा 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' और 'वर्षफल' ग्रथो से ज्ञात होता है कि नददास भागीरथी गगा के निकट वाराह-भूमि तीर्थ (सूकरक्षेत्र अथवा सोरो) के निकट रामपुर गॉव के रहने वाले

[1] रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ० २११ (नवीन संस्करण)

थे और यही उन के पिता और पूर्वजों का निवास-स्थान था। इन से यह भी ज्ञात होता है कि नंददास सोरों में भी रहते थे। ये तीनों ग्रंथ 'भक्तमाल' में निर्दिष्ट रामपुर की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। रामपुर सोरों ज़िला एटा में एक गाँव अब भी वर्तमान है जो अब श्यामसर अथवा श्यामपुर के नाम से प्रसिद्ध है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' और 'वर्षफल' से यह भी ज्ञात होता है कि रामपुर गाँव का नाम श्यामपुर नंददास ने ही बदल कर रक्खा था। 'भक्तमाल' की टीकाएं तथा 'भक्तनामावली' नंददास के निवास-स्थान और जन्म-स्थान के विषय में मौन हैं। 'वार्ता' में कथित पूर्वदेश हमारे विचार से यही रामपुर स्थान है। 'वार्ता' गोकुल में कहीं और लिखी गई थी। मथुरा तथा गोकुल से रामपुर ठीक पूर्व देश में है। कुछ लोगों का कहना है कि वार्ता में 'पूर्वदेश' सुदूर पूर्वदेश के लिए प्रयुक्त हुआ होगा। हमारे विचार से इस प्रकार का मतलब निराधार है। अलीगढ़ बुलंदशहर से बहुत निकट है, और पूर्व में स्थित है। बुलंदशहर निवासी अलीगढ़ वालों को पुरबिया कहा करते हैं इस लिए नंददास की वार्ता में कथित पूर्वदेश का तात्पर्य गोकुल से पूर्वदेश में स्थित किसी स्थान से है, वह चाहे पास हो चाहे दूर। पीछे कहे प्रमाणों के आधार से ज्ञात रामपुर की सूचना 'वार्ता' के कथन का विरोध नहीं करती, वरन् रामपुर की स्थिति गोकुल से पूर्व की ओर बता रही है। इन सब आधारों के मिलान से हम कह सकते हैं कि नंददास का जन्मस्थान सोरों जिला एटा के निकट रामपुर था और उन के रहने का स्थान भी सोरों था।

**जाति-कुल**—'भक्तमाल' में नंददास को सुकुल (शुक्ल आस्पद अथवा उच्च कुल) कुल का व्यक्ति बताया है। भावसहित 'दो सौ बावन वार्ता' में उन्हें सनौढिया लिखा है। 'रत्नावलीचरित', 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और 'वर्षफल' से ज्ञात होता है कि वे शुक्ल आस्पद-धारी सनाढ्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। 'रत्नावली-दोहासंग्रह' भी इस बात की पुष्टि करता है कि तुलसीदास और नंददास जो चचेरे भाई थे शुक्ल आस्पद वाले कुल से उत्पन्न हुए थे। इस लिए 'भक्तमाल' का सुकुल शब्द उच्च कुल का द्योतक न होकर शुक्ल आस्पद का द्योतक है। 'मूलगुसाईंचरित' में नंददास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है, परंतु 'वार्ता' तथा अन्य कई प्रमाण इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बताते हैं। 'वार्ता' के कथन की पुष्टि 'रत्नावली-चरित', 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और 'वर्षफल' ग्रंथों से होती है। '[illegible]क्तमाल' का कथन भी किसी हद तक उक्त ग्रंथों का समर्थन करता है। इस लिए 'मूल-

गुसाइंचरित' का कथन ग्राह्य नहीं है। श्रद्धेय मिश्रबंधुओं ने कवि को केवल ब्राह्मण बताया है। परंतु उपर्युक्त प्रमाण, हमारे विचार से, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि नंददास का जन्म शुक्ल आस्पद वाले सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था।

'वार्ता' ने नंददास के माता-पिता, वंश आदि के विषय में कुछ नहीं बताया और न 'भक्तमाल' में ही इस संबंध में कोई उल्लेख है। 'रत्नावली-चरित', 'रत्नावली-दोहा-संग्रह', 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' तथा 'वर्षफल' में दी हुई वंशावली और उल्लेखों से नंददास की वंशावली ज्ञात होती है। अन्य प्रमाणों के अभाव में हमें नंददास की यही वंशावली जो उक्त तीन ग्रंथों में है, मान्य है। वह इस प्रकार है। नंददास के पूर्वज पंडित सनातनदेव सनाढ्य ब्राह्मण थे। उन के पुत्र का नाम परमानंद था। परमानंद के पुत्र पंडित सच्चिदानंद हुए। इन के दो पुत्र हुए, बड़े आत्माराम और छोटे जीवाराम। आत्माराम के पुत्र 'रामचरितमानस' के रचयिता महात्मा तुलसीदास हुए और जीवाराम के पुत्र नंददास और चंद्रहास। नंददास बड़े थे और चंद्रहास छोटे। इन उपर्युक्त तीन ग्रंथों के कथन की पुष्टि भक्तमाल के वाक्य, 'चंद्रहास-अग्रज' से होती है। 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और 'वर्षफल' पुस्तकों के रचयिता कृष्णदास नंददास के पुत्र हुए और चंद्रहास के पुत्र ब्रजचंद हुए।

वंशवृक्ष
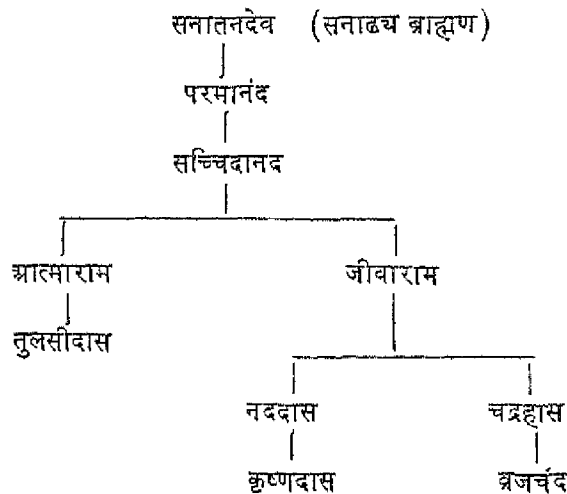
नंददास जी का कुल विद्या और पांडित्य के लिए अपने गाँव के आस-पास प्रसिद्ध था।

**माता-पिता, कुटुंब तथा गृहस्थ**—उपर्युक्त वंशावली से ज्ञात होता है कि नंददास के पिता का नाम जीवाराम था, जो एक धर्मात्मा और विद्वान पुरुष थे। नंददास के आत्म-चारित्रिक उल्लेखो मे अथवा उन की जीवनी के आधारभूत ग्रंथों में उन की माता के नाम का कही उल्लेख नहीं है। 'रत्नावली-चरित' मे यह लिखा है कि तुलसीदास अपने माता पिता के परलोकवास के बाद अपनी दादी के साथ सोरो मे रहा करते थे और नंददास और चंद्रहास अपनी माता के पास रामपुर में ही रहते थे। इस से ज्ञात होता है कि नंददास के पिता का देहांत भी उन के बाल्यकाल में ही हो गया था। उन की संरक्षिका एक तो उन की माता थीं, दूसरे संरक्षक उन के सजातीय गुरु नृसिंह जी।

नंददास के पिता और तुलसीदास के पिता के सम्मिलित कुटुंब का बटवारा उन दोनो के जीवन काल से ही हो गया होगा, क्योंकि पीछे कहे कुछ ग्रथो से ज्ञात होता है कि तुलसीदास सोरो में अपनी दादी के पास रहते थे और नंददास अपनी माता के पास रामपुर में। परन्तु उन बँटे हुए दोनों घरो मे परस्पर प्रेमभाव और कभी-कभी एक जगह रहन-सहन भी होता था। तुलसीदास के वैराग्य लेने के बाद उन की धर्मपत्नी रत्नावली रामपुर भी जाकर नंददास के कुटुंब मे रहा करती थी। उधर नंददास तो कुछ समय काशी में तुलसीदास के पास रहे ही थे तथा तुलसीदास जी नंददास के ऊपर रक्षा का हाथ रखते थे। नंददास का विवाह किस समय हुआ? यह किसी सूत्र से ज्ञात नहीं होता, परंतु पीछे कहे प्रमाणों से यह निश्चय है कि उन का विवाह हुआ था। 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और 'वर्षफल' ग्रंथ के रचयिता कवि कृष्णदास ने अपने को नंद का पुत्र कहा है और उन्हो ने अपनी माता का नाम 'कमला' दिया है। नंददास की पत्नी कमला विदुषी थी अथवा नही इस का कोई उल्लेख नही मिलता। महात्मा तुलसीदास की स्त्री रत्नावली परम पंडिता और कवयित्री थी, इस के प्रमाण तो मिलते है। चंद्रहास नंददास के छोटे भाई थे जिन के पुत्र ब्रजचंद थे। यह दोनों परिवार सम्मिलित रहते थे। नंददास के वैराग्य लेने के बाद भी ये दोनों परिवार सम्मिलित रहे, क्योंकि कृष्णदास 'वर्षफल' लिखने में अपने चचा चंद्रहास की आज्ञा का पालन करते है, दूसरे चंद्रहास के पुत्र ब्रजचंद का नाम वे बहुत ही अनुराग भरे शब्दों में लेते है जो सम्मिलित कुटुंब का अनुमान देते हैं। नंददास ने कितने दिन गृहस्थी का भोग किया यह निश्चय-पूर्वक नही कहा जा सकता। परंतु रत्नावली और तुलसीदास के जीवन के संबंध से हम अनुमान से कह सकते है कि नंददास भी

तुलसीदास के वैराग्य लेने के दो-तीन साल बाद घर से निकल दिए होंगे क्योंकि वल्लभ सम्प्रदाय में जाने से पहले वे काशी में महात्मा तुलसीदास के पास कुछ समय रहे और रामानंदीय सम्प्रदाय के शिष्य बने। इस विषय का विचार हम नंददास के 'वल्लभ-सम्प्रदाय में आने की तिथि' नामक शीर्षक के अंतर्गत करेंगे। उपर्युक्त ग्रंथों के आधार पर हम उन के गार्हस्थ्य-जीवन के विषय में इतना ही निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि नंददास की स्त्री का नाम 'कमला' था और उन के एक पुत्र का नाम कृष्णदास था जो एक कवि और पंडित थे। उन की अन्य संतान कोई थी अथवा नहीं इस का कोई प्रमाण नहीं है।

सोरों में जैसे ब्राह्मणों के यहां प्राचीन काल से यजमानी वृत्ति चली आती है, उस प्रकार की वृत्ति नंददास अथवा महात्मा तुलसीदास के कुल में नहीं थी। तुलसीदास की पुराण-कथा बाँचने की वृत्ति का तो 'रत्नावली-चरित' में जिक्र है परंतु नंददास की भी यह वृत्ति थी अथवा नहीं, इस का कोई उल्लेख नहीं मिलता। सोरों में जो कुटुंब नंददास का वंशज मुझे बताया गया, उस से मुझे ज्ञात हुआ कि उस कुटुंब में यजमानी वृत्ति कभी नहीं हुई।

**नंददास की शिक्षा**—'रत्नावली-चरित' से ज्ञात होता है कि नंददास और उन के बड़े चचेरे भाई तुलसीदास दोनों सोरों में 'नरसिंह' पंडित के यहां विद्याध्ययन करते थे। कृष्णदास ने 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' ग्रंथ में अपने पिता नंददास के गुरु 'नरसिंह' जी की वंदना की है। 'रत्नावली-चरित' में लिखा है कि 'नरसिंह' महात्मा तुलसीदास के सजातीय पंडित थे, और वे स्मार्त वैष्णव थे। 'मूलगुसाईंचरित' में महात्मा तुलसीदास के गुरु का नाम 'नरहरियानंद' दिया है, जिन्हों ने तुलसीदास को घाघरा सरयू के संगम पर स्थित सूकरखेत में विद्याध्ययन कराया था। उस से ज्ञात होता है कि तुलसीदास की आरंभिक शिक्षा और नंददास की आरंभिक शिक्षा में एक दूसरे का कोई संबंध न था। तथा नंददास का तुलसीदास से गुरुभाई होने का संबंध तो काशी में शेष-सनातन के शिष्यत्व में जुड़ा था। जैसा कि हम ने पीछे कहा है 'मूलगुसाईंचरित' एकाकी एक ओर और अन्य पाँच छः प्रमाण एकमत होकर दूसरी ओर हैं। यदि 'मूलगुसाईंचरित' का वर्णन स्वीकार किया जाय तो, ('२५२ वार्ता', 'रत्नावली-चरित', 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य', 'वर्षफल' आदि ग्रंथ झूठे साबित होते हैं। हम ने 'मूलगुसाईंचरित' को विश्वस्त प्रमाण नहीं माना।

महात्मा तुलसीदास अपने 'रामचरितमानस' के इस उल्लेख में कि 'मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकरखेत' अपने शिक्षा-गुरु का उल्लेख कर रहे है। 'निज गुरु' शब्द बताता है कि वे किसी विशेष शिक्षा-गुरु को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। 'मूलगुसाईंचरित' के अनुसार उन के दो गुरु थे। एक सूकरखेत में नरहरियानंद जिन के प्रति तुलसीदास की यह वंदना "वंदहु गुरुपद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि" घटाई जा सकती है, दूसरे शेष-सनातन जिन के चरणों में नंददास और तुलसीदास दोनों ने विद्या पढ़ी थी।

**नंददास कनौजिया प्रेम मढ़े, जिन शेष सनातन तीर पढ़े।**

**शिक्षा गुरु बंधु भए तेहिते, अति प्रेम सों आय मिले यहि ते।[1]**

'मूलगुसाईंचरित' से इतर प्रमाणों द्वारा ज्ञात होता है कि तुलसीदास के नृसिंह जी ही 'सूकरखेत' (ज़िला एटा) ने शिक्षागुरु थे, जहां उन के चचेरे भाई नंददास उन के 'शिक्षा-बंधु' थे। हमारे विचार में तुलसीदास का गुरु की वंदना में पीछे कहा हुआ यह कथन 'वंदहु गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हरि' उन के गुरु नृसिंह की ओर ही संकेत करता है। 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' और 'वार्ता' से विदित है कि नंददास के दीक्षागुरु श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य (और पुत्र) श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है कि नंददास ने सोरों में अपने सजातीय ब्राह्मण नरसिंह जी से शिक्षा पाई थी। विचार करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नंददास का अध्ययन गंभीर था, तथा अपनी विद्वत्ता के लिए उन का बड़ा मान था। साथ ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि वे संस्कृत के भी अच्छे विद्वान थे और उन को हिंदी भाषा से बहुत प्रेम था। उन का संस्कृत का अध्ययन तथा भाषा प्रेम तो इस से स्पष्ट है कि उन्हों ने दशम स्कंध की कथा संस्कृत से भाषा में इस लिए की कि संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ व्यक्ति भी उस का आनंद पा सकें। संस्कृत साधारण वर्ग के लिए दुरूह हो गई थी, नंददास का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया, सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर उन्हों ने संपूर्ण दशम स्कंध भाषा में किया भी, पर ब्राह्मणों के संकुचित विचार तथा स्वार्थपरता से उस का अधिक भाग नष्ट कर दिया। इस 'वार्ता' के इस प्रसंग से नंददास के संस्कृत ज्ञान और उन की मनोवृत्ति का परिचय

---

[1] पृ० २६

अच्छी तरह पाते ह। इस से विदित होता है कि तत्कालीन वैष्णव उन की विद्वत्ता के कायल भी थे, क्योंकि' तुलसीदास को सूचना देते हुए सघ के मुखियो ने कहा था 'वह नददास बहुत पढा है।'

**वैराग्य और वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश**—'भक्तमाल' ,भक्तमाल की टीकाए, 'रत्नावली-चरित', 'रत्नावली-दोहासग्रह', 'भक्तनामावली' आदि ग्रथ नददास के वैराग्य लेने और उन के वल्लभ-सप्रदाय मे जाने की घटना का कोई उल्लेख नही करते। उन मे से कुछ ग्रंथ उन के आरभिक जीवन पर प्रकाश डालते है। 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' मे कृष्णदास ने अपने पिता नददास के वल्लभ-संप्रदायी होने का सकेत मात्र किया है, जब उन्हों ने श्री वल्लभाचार्य और उन के उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ की वदना की है। इस प्रसग का पूर्ण वृत्तांत '२५२ वार्ता' देती है। परंतु 'वार्ता' का दिया हुआ यह वृत्तात काशी से ही आरंभ होता है। घर छोड कर नददास काशी कैसे और कब पहुँचे, यह सूचना किसी सूत्र से नही मिलती। इस बीच के वृत्तात को हम अनुमान से पूर्वापर-सबध द्वारा पूरा कर सकते है। हमारा अनुमान है कि तुलसीदास के वैराग्य लेने के बाद नददास ने सुना कि तुलसीदास काशी मे है। उस समय तक नददास के सतान भी हो गई थी। वे या तो भाई के प्रेम मे खिच कर अथवा उन की वैराग्यवृत्ति से प्रभावित होकर घर छोड़ कर काशी चल दिए। काशी पहुँच कर वे तुलसीदास के साथ रहने लगे। यहा से नददास का चरित्र '२५२ वार्ता' मे आरंभ हो जाता है। महात्मा तुलसीदास के प्रभाव से वे 'रामानद' सप्रदाय के अनुयायी बन गए। कुछ समय बाद एक सग काशी से रणछोर जी के दर्शनो को चला। नंददास भी अपने बड़े भाई तुलसीदास की आग्रहपूर्वक अनुमति पाकर उस सग के साथ चल दिए। वे सीधे मथुरा पहुँचे। यहा से वे, अपने साथियो को छोड़ कर अकेले ही रणछोर जी को चल पडे। चलते-चलते वे 'द्वारका' का रास्ता भूल गए और कुरुक्षेत्र के आगे एक 'सहीनंद' नामक ग्राम मे पहुँच गए। वहां एक क्षत्री साहूकार रहता था। नंददास जी उस के घर भिक्षा माँगने गए। उस साहूकार की स्त्री बड़ी रूपवती थी। नंददास जी उस स्त्री पर मोहित हो गए। वे नित्य उस क्षत्राणी के मुख को देखने उस के घर जाते। यह क्षत्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का शिष्य था। लोकापवाद के भय

---

[1] **देखिए २५२ वैष्णवन की वार्ता।**

से वह सकुटुंब गोकुलयात्रा को चल दिया। नंददास भी उस क्षत्री के पीछे-पीछे चल दिए। रास्ते मे यमुना-तट पर आए। वह क्षत्री तो नाव मे बैठ कर यमुना पार हो गया परतु उस के कहने पर मल्लाहो ने नददास को पार नही उतारा। यह घटना नंददास के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना है, क्योकि लौकिक विषय मे आसक्त रसिक नददास के जीवन का यह अंतिम परिच्छेद है। यही हम कवि नददास का सर्वप्रथम परिचय पाते हैं। लौकिक प्रेम मे मुग्ध नंददास ने यमुना के किनारे बैठ कर यमुना-स्तुति के पद गाए। ये पद उन के, वल्लभ-संप्रदाय मे जाने से पहले ही उन के, उच्च कोटि के कवि होने का परिचय देते है। यमुना-महिमा-वर्णन भी इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि नददास एक धर्मभीरु व्यक्ति थे और तत्कालीन कृष्णभक्ति की लहर, जिस ने समस्त भारत को आप्लावित कर दिया था, उन के हृदय मे पहले ही से घर कर गई थी। रणछोर जी (द्वारका जी) के दर्शनो के उत्सुक नददास के जीवन की धार्मिक गति को उस रूपवती क्षत्राणी ने कुछ समय के लिए रुद्ध कर दिया था। यमुना के किनारे गाए हुए यमुना-स्तुति के पदों से यह स्पष्ट है कि नंददास के मोह के बधन उसी समय टूट गए थे, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो ये पद उस क्षत्राणी का सग छूट जाने की विरह-वेदना का वर्णन करते। इन पदों मे रूपासक्ति, कामुकता, कातरता, विह्वलता, विछोह दु:ख आदि भाव व्यक्त नहीं है। उन मे तो निराशा-पूर्ण हृदय की आत्मिक शाति के आश्रय की खोज है। वास्तव में ये पद नददास के चरित्र की कसौटी हैं। इन पदो से स्पष्ट हो जाता है कि नददास अपार मोहाग्नि मे जल कर खरे सोने की तरह चमक उठे थे। वियोग-जन्य दु:ख से वे अधीर नहीं हुए। कवि नददास के जीवन के अनुभवो में यह एक ऐसी घटना थी जिसने उन की कवित्व शक्ति को परिपक्व किया, उन के वर्णन को सूक्ष्म और उन की अतर्दृष्टि को तीक्ष्ण बनाया। कवि ने इस रूपवती क्षत्राणी के दर्शन और चितन मे सौंदर्य देखा था, प्रेम की भावना को आँका था, वासना को तोला था, विरहातुरता समझी थी, सम्मिलन की सुखद कल्पना की थी और अत में उस ने ससार में लिप्त मनुष्य के हृदय की विकलता को समझा था। तभी तो 'रासपचाध्यायी' आदि ग्रथो मे उन के वर्णन इतने सजीव और सच्चे बन पड़े है।

इस संताप का अब अत आ चुका था। क्योंकि यमुना के किनारे यमुना-स्तुति करते हुए निरुपाय नंददास को गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सेवक द्वारा बुलवा लिया। उन के दर्शनो तथा उन के उपदेशो से नददास का मन सांसारिक जाल से छूट कर भगवान

कृष्ण के चरणो म जा लगा उन्हे गुरुवदना और बालकृष्ण के पद गान ही म जीवन का सार मिलने लगा

एक बार मोह-बधन छूट जाने पर विरागी नददास ने फिर ससार की ओर दृष्टि नही उठाई। यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि उन की जीवनी के आधार-रूप ग्रथो मे उन के गृहस्थी मे वापस जाने का कही उल्लेख नही है, और स्पष्ट-रूप से लिखा मिलता है कि वे ब्रज को छोड कर कही नही जाते थे। नददास ने भी अपने एक पद मे श्री विट्ठलनाथ जी की वदना करते हुए कहा है "रहो सदा चरनन के आगे" इस से भी स्पष्ट है कि वे सदा गोस्वामी जी के पास ही रहते थे। जब अकबर की वैष्णव लौडी (रूपमजरी) ने उन के साथ मानसी गगा पर रहने को कहा तब भी नददास ने यही उत्तर दिया कि इन आँखो से अब लौकिक देखना ठीक नही है। विरागी नददास अपने मानस-पटल पर सदा ही कृष्ण की लावण्यमयी मूर्ति को रास मे थिरकते हुए देखते थे :—

**मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोर मुकट की।**
**सदा बसौ मन मेरे, फरकनि पियरे पटकी॥**
('रासपचाध्यायी')

**स्वभाव और चरित्र**—'भक्तमाल' और '२५२ वैष्णवन की वार्ता' से विदित होता है कि नंददास रसिक थे। उन के 'परम रसिक मित्र' के सग से भी इस बात की पुष्टि होती है। रसिक होने के साथ नददास दृढ सकल्पी भी थे, क्योकि वे तुलसीदास के मना करने पर भी रणछोर जी के दर्शनो को चल दिए थे। साथ ही उन के क्षत्राणी के ऊपर मोहित होने की घटना से भी उन के हठी होने का परिचय मिलता है क्योकि वे बार-बार मना करने पर भी वहा जाते ही रहे। उन का यह हठ केवल बालक का हठ नही था, वे धुन के पक्के व्यक्ति थे और अपनी इच्छित वस्तु को पाने का शक्ति भर प्रयत्न करते थे। तभी तो उन्हों ने परलोक-सिद्धि पाई। असफल होने पर निराश भी नहीं होते थे। नददास के स्वभाव मे चपलता और उतावलापन भी था, क्योंकि जब वह सग जिस के साथ वे रणछोर जी के दर्शनों को जा रहे थे, कुछ समय के लिए मथुरा मे रुक गया तो इन्हें सब्र न हुआ और अकेले ही चल पड़े। नददास सौदर्य-प्रेमी भी थे। 'रणछोर' जी की यात्रा मे वे पहले तो मथुरा की रचना पर रीझे और फिर क्षत्राणी के रूप-सौदर्य पर। रूपमजरी की कथा भी उन के सौदर्य-प्रेमी होने का प्रमाण देती है। यह सब होते हुए

नंददास अवश्य एक धर्मभीरु व्यक्ति थे। उन के मोह की अवस्था में भी किसी ऐसी बात का उल्लेख नहीं मिलता, जिस से मालूम पड़े कि वे सदाचार से डिग गए थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उन की यह धर्मभीरुता उन के क्षत्राणी के संग छूटने के बाद गाए हुए यमुना-स्तुति वाले पदों से भी स्पष्ट है।

इन सब बातों पर विचार करने के बाद हम कह सकते हैं कि नंददास एक सहृदय, सौंदर्य-प्रेमी तथा रसिक व्यक्ति थे। इन के चरित्र में दृढ़ता थी परंतु कुछ चपलता का भी समावेश था और वे धर्मभीरु थे।

**वैराग्य के बाद का जीवन तथा मृत्यु**—उन के वल्लभ-संप्रदाय में आने के बाद, उन का जीवन कृष्णभक्ति में तथा गोकुल और गोवर्धन पर स्थित मंदिरों की कृष्ण-मूर्तियों के दर्शन और सेवा में ही बीता। उन की जीवनचर्या केवल भगवद्चर्चा तथा पद और छंद-रचना कर भगवान के समक्ष गाना ही थी। इस बीच में नंददास ने अनेक ग्रंथों की रचना की।

उन के वल्लभ-भक्ति के जीवन में निम्नलिखित घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है :—

(१) तुलसीदास का उन को रामभक्त बनाने का प्रयत्न करना, तथा उन से मिलने ब्रज में आना।

(२) नंददास का अकबर की वैष्णव लौंडी से मिलने उस के डेरे मानसी गंगा पर जाना।

(३) बीरबल का उन से मिलने आना।

(४) अकबर का उन्हें बुलाना।

तुलसीदास का नंददास को रामभक्ति की ओर आकर्षित करने का असफल प्रयत्न संभव है वल्लभ-संप्रदाय के गौरव को बढ़ाने के लिए सांप्रदायिक कल्पना हो, परंतु इतना माना जा सकता है कि तुलसीदास एक बार अपने चचेरे भाई नंददास से ब्रज में अवश्य मिले थे। अकबर के मानसी गंगा पर डेरा डालने पर नंददास उस की एक वैष्णव लौंडी (रूप-मंजरी) से मिलने गए। 'वार्ता' के इस प्रसंग से नंददास के एक अत्यंत प्रेमी मित्र 'रूपमंजरी' के होने की सूचना मिलती है। उसी समय राजा बीरबल भी नंददास से मिले। बीरबल का इन से मिलने जाना संभव हो सकता है, क्योंकि 'बीरबल' एक

धर्मनिष्ठ हिंदू था। वह संतो, भक्तो तथा कवियो के सत्संग का इच्छुक रहता था और उन का आदर करता था। अकबर का इन्हें बुलाना भी संभव हो सकता है, क्योंकि 'तानसेन' के गाए हुए पद ('देखो देखो री नागर नट निर्तत कालिंदी तट') से अकबर ने इन्हे एक भक्तकवि के रूप मे ही जाना था। इतिहास मे इस बात का प्रमाण है कि अकबर कवियो और दूसरे धर्मानुयायियो का भी निष्पक्ष रूप से आदर करता था। इस लिए अकबर द्वारा नंददास के बुलाए जाने की घटना को असंगत कहना अथवा उस मे कोई शंका करना निराधार प्रतीत होता है। 'वार्ता' मे लिखा है कि नंददास की मृत्यु अकबर के सामने हुई थी। जिस प्रकार से यह प्रसंग वार्ता मे दिया है, वह साम्प्रदायिक महत्व की दृष्टि से देखा जा सकता है। परंतु अन्य सब वृत्तांत को छोड कर हम इतना ऐतिहासिक तात्पर्य निकाल सकते है कि नंददास की मृत्यु अकबर तथा बीरबल के जीवनकाल मे ही मानसी गंगा पर हुई थी। इस बात की किंवदंती भी मानसी गंगा पर मेरे सुनने मे आई कि यही नंददास का गोलोकवास हुआ था, और वे यही अपनी यशकाया से निवास करते है।

## नंददास के जीवन विषयक तिथियां

**नंददास की जन्म-तिथि**—पिछले प्रमाणो से यह सिद्ध हो चुका है कि नंददास तुलसीदास के चचेरे और छोटे भाई थे। दोनों सोरों मे नृसिंह जी की पाठशाला मे पढते थे। जब रत्नावली विवाह-योग्य हुई, तब रत्नावली के पिता के किसी मित्र ने रामपुरवासी ब्राह्मणो के दो लड़के तुलसीदास और नंददास कन्या के वरण योग्य बतलाए। दोनो वर बारह बरस की कन्या के योग्य वर थे। इस से हम अनुमान कर सकते है कि नंददास जी तुलसीदास जी से अधिक छोटे नही थे। उधर, 'वार्ता' मे लिखा है कि जब काशी से नंददास रणछोर जी के दर्शनो को चले, तब तुलसीदास ने नंददास को अकेले जाने से रोका। जब नंददास न माने, तब वे उन्हे रणछोर जी जाने वाले एक संग के सुपुर्द स्वयं कर के आए। इस से यह अनुमान होता है कि नंददास तुलसीदास से इतने छोटे अवश्य रहे होंगे, कि जिस मे वे अपने छोटे भाई पर संरक्षण का अधिकार रख सकते हों। इस प्रकार हम नंददास को तुलसीदास से चार या पाँच वर्ष छोटा मान सकते है। 'मूलगुसाईंचरित' मे तुलसीदास का जन्मसंवत् १५५४ दिया है। इस तिथि को हम सही नही मान सकते। 'रत्नावली-दोहा-संग्रह, से ज्ञात होता है कि रत्नावली विवाह के समय बारह वर्ष की थी।

और जब वह सत्ताईस २७ वर्ष की हुई तो उस का तुलसीदास से वियोग हो गया। उस वियोग घटना का सवत् 'रत्नावली-दोहासंग्रह' मे सवत् १६२४ दिया हुआ है।

**सागर कर रस ससि रतन, संवत भो दुखदाय।**

**पिय वियोग जननी मरन, करन न भूल्यो जाय॥**

**बैस बारहीं कर गह्यो, सोरह गौन कराय।**

**सत्ताइस लागत करी, नाथ रतन असहाय॥**

इस हिसाब से रत्नावली का जन्मसंवत् १५९७ निश्चित होता है। संवत् १६०९ मे तुलसीदास से रत्नावली का विवाह हुआ। यदि 'मूलगुसाईंचरित' मे दिए हुए तुलसीदास के जन्मसवत् १५५४ को माने, और 'रत्नावली-दोहासग्रह' की तिथियो से मेल करें, तो तुलसीदास की आयु विवाह समय ५४ वर्ष की आती है जो नितांत असंगत है। विवाह के समय तुलसीदास की आयु अधिक से अधिक २० वर्ष की होगी। इस हिसाब से तुलसीदास का जन्मसंवत् १६०९ में से २० घटाने से संवत् १५८९ आता है। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामभक्त और रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदी[1] भक्तों की जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास का जन्मसवत् १५८९ ही मानते है। डाक्टर ग्रियर्सन ने भी यही सवत् स्वीकार किया है। अस्तु, किसी निश्चित् तिथि के अभाव मे हमे तुलसीदास का जन्मसंवत् लगभग १५८९ ही मानना पडेगा। इस प्रकार नंददास जो उन से अनुमानतः ४ या ५ वर्ष छोटे रहे होंगे लगभग संवत् १५९४ मे जन्मे होंगे।

**नंददास के वल्लभ-संप्रदाय में आने की तिथि**—'२५२ वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि नंददास जी गोकुल मे जाकर श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए, जहाँ गोस्वामी जी अपने परिवार सहित रहते थे। वल्लभ-सप्रदायी ग्रंथ 'निजवार्ता', 'घरूवार्ता' तथा 'बैठक चरित्र' तथा 'श्री द्वारकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' (पृ० ६७) से ज्ञात होता है कि गुसाईं विट्ठलनाथ जी सवत् १५९१ मे अपने बडे भाई श्री गोपीनाथ की मृत्यु के बाद आचार्य की गद्दी पर बैठे थे, और संवत् १६२२ तक प्रयाग के निकट अरैल स्थान मे ही रहे। सवत् १६२२ मे वे अपने कुटुंब सहित ब्रज मे आए। लगभग तीन महीने गोकुल मे ठहरन

[1] देखिए, 'हिंदी साहित्य का इतिहास'—पं० रामचंद्र शुक्ल नवीन संस्करण पृ० १५३

के बाद मथुरा चले गए और संवत् १६२८ तक मथुरा में ही रहे। संवत् १६२८ में वे कुटुंब सहित फिर गोकुल आए और उस स्थान को अपना स्थायी निवासस्थान बनाया। श्री मधुकर भट्ट-कृत गोस्वामी जी की वंशावली में श्री गोस्वामी जी के गोकुल-निवास के विषय में लिखा है—

> अब्देऽष्टनेत्राङ्गी मही प्रमाणे (१६२८) तपस्यमारुह्य तमिस्रपक्षे ।
> दिने (७) दिनेशस्य शुभे मुहूर्ते श्रीगोकुलग्रामनिवास आसीत् ॥७॥[1]

इस से ज्ञात होता है कि नंददास जी सं० १६२८ में या इस के बाद गुसाईं जी के शिष्य हुए होंगे। 'वार्ता' से ज्ञात होता है कि नंददास काशी से रणछोर जी के दर्शनों को अपने बड़े भाई तुलसीदास की आज्ञा लेकर चले थे, और रास्ते में एक क्षत्री की स्त्री के रूप पर मुग्ध होने की घटना के बाद गोकुल में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए थे। तुलसीदास का काशीवास उन के वैराग्य लेकर घर से निकल जाने के बाद हुआ था। रत्नावली के एक दोहे से ज्ञात होता है कि तुलसीदास ने सं० १६२४ (सागर कर रस ससि) में वैराग्य लिया था। अनुमान से हम यह भी कह सकते हैं कि नंददास तुलसीदास के पास काशी में उन के भली-भाँति ठहर जाने पर पहुँचे होंगे। इस में तुलसीदास को लगभग दो-चार वर्ष लग गए होंगे। इस समय तक नंददास के विवाह के बाद उन के संतान भी हो गई थी, क्योंकि कृष्णदास कवि ने अपने को नंददास का पुत्र कहा है। और 'वार्ता' से अनुमान होता है कि नंददास ने काशी आकर फिर गृहस्थाश्रम का भोग नहीं किया। काशी से चल कर महात्मा तुलसीदास अयोध्या में रहे। वहाँ इन्हों ने संवत् १६३१ में 'रामचरितमानस' की रचना आरंभ की। हमारा अनुमान है कि नंददास काशी से गोस्वामी तुलसीदास के अयोध्यावास और 'रामचरितमानस' की रचना से पहले ही ब्रज को चले गए होंगे। इस तरह नंददास के वल्लभ-संप्रदाय में आने की तिथि सं० १६२८ से लेकर सं० १६३१ के बीच में कहीं होनी चाहिए। इस तिथि को हम लगभग सं० १६२९ कह सकते हैं। इस समय नंददास की आयु लगभग ३५ वर्ष की रही होगी।

**नंददास जी की गोलोकवास की तिथि**—नंददास की मृत्यु अकबर बादशाह के समक्ष हुई थी, यह बात '२५२ वैष्णवन की वार्ता' से विदित है। इतिहास बताता है

---

[1] देखिए, 'इंपीरियल फ़रमान्स', एम० के० झावेरी- पृ० १६५

कि अकबर बादशाह की मृत्यु सं० १६६२ मे हुई थी। इस लिए नंददास की मृत्यु सं० १६६२ से पहले होनी चाहिए। 'वार्ता' मे यह भी लिखा है कि अकबर बीरबल को साथ लेकर ब्रज गया था और ब्रज में अपने आने की सूचना बीरबल के द्वारा ही नद-दास के पास भिजवाई थी। इस से ज्ञात होता है कि नददास की मृत्यु बीरबल के जीवन-काल ही में हुई थी। बीरबल की मृत्यु स० १६४७ में हुई थी। इस लिए नददास की मृत्यु का समय १६४७ से पहले होना चाहिए।

उन हस्तलिखित '२५२ वार्ताओ' मे जिन का हम ने पीछे हवाला दिया है, और 'गुसाईं जी के मुख्य सेवक तिन की वार्ता' नामक ग्रंथ मे नददास जी की वार्ता के छठे प्रसग मे नददास की मृत्यु कैसे हुई इस का वर्णन है। यह प्रसग जैसा कि हम ने पीछे कहा है वेंक-टेश्वर प्रेस से छपी 'वार्ता' मे रूपमजरी की वार्ता मे है। उपर्युक्त हस्तलिखित 'वार्ता' मे लिखा है कि नददास और रूपमजरी की मृत्यु का समाचार वैष्णवो ने गोस्वामी विट्ठल-नाथ जी को सुनाया, जिन्हो ने नददास की भूरि-भूरि प्रशसा की। इस से विदित होता है कि नददास की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सामने हुई थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास सं० १६४२ मे हुआ। इसी लिए नददास की मृत्यु सं० १६४२ से पहले ही हुई होगी। हमारे विचार से नददास के निधन की तिथि लगभग सं० १६४० है।

---

# सिद्ध तेलोपा

[लेखक—श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल-एल्० बी०]

प्रसिद्ध चौरासी सिद्धो की परंपरा बहुत दिनों तक चली थी और सिद्धांत एव साधना सबधी सूक्ष्म मतभेदो के कारण उस के अतर्गत अनेक आम्नाय वा भिन्न-भिन्न उप-सम्प्रदाय भी बन गए थे। सिद्ध तेलोपा वा तिलोपा को, तदनुसार, सिद्धाचार्य लुईपा का 'वशधर' बतलाया जाता[1] है और यह भी कहा जाता है कि उन के गुरु कोई विजयपा नामक सिद्ध थे। परतु लुईपा एक प्राचीन सिद्ध थे जो, 'चर्याचर्य विनिश्चय' की संस्कृत टीका तथा चौरासी सिद्धों की उपलब्ध चित्रावली के अनुसार भी, 'आदि सिद्धाचार्य' समझे जाते हैं, और विजयपा का नाम चौरासी सिद्धो की किसी सूची में स्पष्टरूप से, नही मिलता। इधर नेपाल मे पाई गई, किसी ताड़पत्र पर लिखे ग्रथ की एक खडित प्रति के अनुसार, यह भी जान पड़ता[2] है कि सिद्ध तेलोपा का संबंध सिद्ध इंदुभूति के आम्नाय से था, और एक अन्य परपरा के अनुसार, इन्हें उक्त सिद्ध का शिष्य तक माना गया मिलता[3] है। अतएव यह भी अनुमान किया जा सकता है कि विजयपा, कदाचित्, सिद्ध इदुभूति का ही एक दूसरा नाम रहा होगा। किंतु सिद्ध इदुभूति उड़ीसा प्रात वा किसी 'लकापुर' के राजा भी रह चुके थे और उन का समय सन् ७१७ ई० अथवा आठवी शताब्दी के आरभ मे प्राय: निश्चित-सा समझा जाता[4] है; इस लिए, यद्यपि सिद्ध तेलोपा भी 'तजूर' की सूची मे एक स्थल पर 'उडिष्यावासी' लिखे गए है तो भी, इन के, सर्वसम्मति से, सिद्ध नारोपा (मृत्यु सन् १०३९ ई०) का गुरु माने जाने एवं साथ ही बंगाल के राजा महीपाल

---

[1] हरप्रसाद शास्त्री: 'बौद्ध गान ओ दोहा', मुखबंध, पृ० १९
[2] ग्वि० तुची: 'जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', १९३०, पृ० १५०
[3] डा० प्रबोधचंद्र बागची: 'कौल ज्ञान-निर्णय', भूमिका, पृ० २७
[4] डा० विनयतोष भट्टाचार्य: 'टू वज्रयान वर्क्स', भूमिका, पृ० ११-२

(सन् ९७८-१०३० ई०) का समकालीन होने से भी, इन का जीवन-काल १०वीं ईस्वी शताब्दी के पहले नहीं लाया जा सकता। हां, यह संभव है कि सिद्ध तेलोपा सिद्ध इंद्रभूति-प्रवर्तित आम्नाय के अनुयायी मात्र रहे और उन के गुरु यदि विजयपा ही रहे (जैसा 'स-स्क्य-ब्क-वुम्' की वंशावली से भी जान पड़ता है) तो यह नाम इन के किसी अन्य समकालीन सिद्ध का था। श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपने 'चौरासी सिद्धों का वंशवृक्ष' में इन के एक दूसरे गुरु का नाम पद्मसंभव भी दिया है।

कहते हैं कि सिद्ध तेलोपा का जन्म किसी 'भृगुनगर' में हुआ था और सिद्ध नारोपा इन से दीक्षा ग्रहण करने के लिए किसी 'विष्णुनगर' में पहुँचे थे[1]। परंतु इन 'भृगुनगर' वा 'विष्णुनगर' में से किसी की भी भौगोलिक स्थिति ज्ञात नहीं। यदि दोनों (अथवा इन में से कोई एक भी) उड़ीसा प्रांत में रहे हों तो सिद्ध तेलोपा का उपरोक्त 'उडिय्यावासी' कहलाना भी सार्थक हो सकता है।

सिद्ध तेलोपा को जाति के अनुसार, ब्राह्मण अथवा 'राजवंशिक' कहा गया है और यह भी बतलाया गया है कि इन का भिक्षु-नाम 'प्रज्ञाभद्र' था, परंतु चर्या में ये तिल कूटा करते रहे इस लिए इन का नाम 'तिलोपा' पड़ गया[2]। सिद्धों की प्रकाशित चित्रावली के अंतर्गत इन के दाहिने हाथ में कोई कूटने का हथियार-सा दिखलाया गया है और बाएं में एक खप्पर-सी भी वस्तु दीख पड़ती है, किंतु उस खप्पर के अंदर की चीज साधारण तिल-सी नहीं जान पड़ती। यदि खप्पर 'तेली की खोपड़ी' समझा जाय तो बात ही और है। सिद्ध तेलोपा वा नारोपा के चित्रों में एक यह भी विशेषता है कि उन के शरीरों पर कोई मनुष्य की खाल, पीठ की ओर पड़ी हुई-सी जान पड़ती है, शिर के अंश पूरे-पूरे दाहिनी बगल में दिखलाई देते हैं, और पैरों की खालें कंधों के ऊपर पड़ी हुई वा उठाई हुई दिखलाई गई हैं। संभव है सिद्ध तेलोपा ने श्मशान पर कोई साधना की हो जिस का फलस्वरूप उन का विशेष नामकरण हुआ और उन के शिष्य नारोपा को भी उस की स्मृति के रूप में मनुष्य की खाल ओढ़नी पड़ी। जो हो, 'तंजूर' की सूची में इन का नाम, तिलोपा वा तेलोपा के अतिरिक्त, तेलिप व तैलिक

---

[1] **राहुल सांकृत्यायन : 'गंगा', पुरातत्त्वांक, पृ० २५७**
[2] **हरप्रसाद शास्त्री : 'बौद्ध गान ओ दोहा', सूची, पृ० २**

पाद के रूपो में भी लिखा मिलता है और इन की पदवी आचार्य, महाचार्य वा सिद्ध महाचार्य की भी पाई जाती है।

सिद्ध तेलोपा की रचनाओं की सख्या श्री राहुल सांकृत्यायन ने, 'तजूर' के अनुसार, ११ बतलाई है, परंतु 'बौद्ध गान ओ दोहा' के अत में दी हुई 'बौद्ध तान्त्रिक ग्रंथकार नाम-सूची' के अतर्गत इन के केवल छ ग्रंथों का ही उल्लेख है[1] और ये छ ग्रथ भी उस मे, तेलोपा के उक्त भिन्न-भिन्न नामों एव पदवियो के सामने, अलग-अलग दिए गए हें। इन्हीं छ ग्रथो में वे चारों रचनाए भी सम्मिलित हैं, जिन्हे उन्हो ने 'मगही हिंदी मे' लिखित होना कहा है। इन चारो ग्रंथो में से भी इस समय हमे केवल 'दोहाकोष' मात्र उपलब्ध है। 'दोहाकोष' की एक पुरानी हस्तलिखित प्रति डाक्टर बागची को नेपाल के राजगुरु प्रसिद्ध हेमराज शर्मा के संग्रहों मे सन् १९२९ ई० मे मिली थी। डाक्टर बागची ने उस का लेखन-काल १३वीं ईस्वी शताब्दी बतलाते हुए, उसे 'बिल्कुल नई'[2] भी कहा है, किंतु उन्हो ने उस के पूरा वा अधूरा होने की चर्चा नही की है। इधर श्री राहुल सांकृत्यायन ने, कदाचित् उसी प्रति का उल्लेख करते हुए लिखा है—"राजगुरु के पास अपना भी प्राचीन ग्रथो का एक अच्छा सग्रह है उस मे दसवीं शताब्दी के सिद्ध तिल्लोपा का एक दोहाकोश मिला। ग्रथ खडित है।"[3] तो भी जान पड़ता है, डाक्टर बागची ने, अपने उक्त 'दोहाकोष' का सस्करण निकालते समय, मूल पाठ के लिए, उसी प्रति का सहारा लिया है। इन के 'दोहाकोष' ग्रथ में, तेलोपा के दोहाकोष के अतिरिक्त, सिद्ध काण्हपा व सिद्ध सरहपा के भी दोहाकोष संपादित है और साथ ही कुछ फुटकर पद्य भी सगृहीत है। सिद्ध तेलोपा के दोहाकोष मे मूलपाठ के नीचे, टिप्पणी के रूप मे, संपादक द्वारा किया गया प्रत्येक पद्य का सस्कृत रूपातर है और ग्रथ के अतिम भाग मे उक्त कोष की एक सस्कृत टीका भी दी हुई है। टीका पुराने ढग पर लिखी जान पडती है, परंतु उस की प्रारम्भिक प्रथम पक्ति के न रहने के कारण, टीकाकार के विषय मे कुछ पता नही चलता। टीका के अत मे भी केवल "श्री महायोगीश्वर तिल्लोपादस्य दोहाकोष पञ्जिका सारार्थ पञ्जिका नाम"

---

[1] हरप्रसाद शास्त्री : 'बौद्ध गान ओ दोहा', सूची, पृ० २
[2] डा० प्रबोधचंद्र बागची : 'दोहाकोष', भूमिका, पृ० १
[3] राहुल सांकृत्यायन : 'मेरी तिब्बत यात्रा', पृ० १५८

मात्र छपा है[1]। डाक्टर बागची के अनुसार दोहाकोष के 'अपभ्रंश भाग' का कोई तिब्बती अनुवाद भी 'तंजूर' के 'नार्थग संस्करण' में सुरक्षित है और उन्हों ने अपने उक्त संस्करण के संपादन में उस से भी सहायता ली है। 'अपभ्रंश भाग' से डाक्टर बागची का तात्पर्य कदाचित् 'दोहाकोष' के मूलपाठ से है।

सिद्ध तेलोपा के उक्त 'दोहाकोष' में कुल मिला कर ३५ रचनाएं हैं जिन में से केवल ६ दोहे और शेष २९ चौपाई की अर्द्धालियों के रूप में हैं। इन दोहे एवं अर्द्धालियों की भी रचना प्रचलित नियमानुसार नहीं हुई है। छंद शास्त्र के अनुसार कदाचित् ५ अर्द्धाली और एक दोहा ही शुद्ध उतर सकें। इसी प्रकार चौपाई और दोहे के प्रचलित क्रम का भी कोई अनुसरण किया गया नहीं जान पड़ता। कहीं-कहीं केवल अर्द्धालियां चलती हैं तो बीच में कहीं दो-तीन दोहे आ जाते हैं और फिर एक दो अर्द्धाली। वास्तव में 'दोहाकोष' सिद्ध तेलोपा की फुटकर रचनाओं का एक छोटा-सा संग्रह मात्र है जिस के पद्यों के क्रमादि को सुव्यवस्थित रखने की कोई चेष्टा नहीं की गई है। इस के सिवाय जिस प्रति के आधार पर डाक्टर बागची ने इसे संपादित किया है वह भी कदाचित् अधूरी है। ग्रंथ का विषय सहज तत्व है, और उस की सिद्धि के लिए की जाने वाली साधना एवं कतिपय छोटी-मोटी अन्य गौण बातों का भी प्रसंगानुसार समावेश कर दिया गया है। विषय-निर्वाह की कुव्यवस्था खटकती है। सिद्ध काण्हपा व सिद्ध सरहपा के 'दोहा-कोष' इस दृष्टि से कहीं अच्छे हैं। इस 'दोहाकोष' की उपयोगिता इस की भाषा की सरलता एवं भावों की स्पष्टता में है।

सिद्ध तेलोपा के 'दोहाकोष' के अनुसार उन के सिद्धांतों का सारांश हम इस प्रकार दे सकते हैं :—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान नामक पाँचों स्कंध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश नामक पांचों भूत एवं आँख, कान, नाक, जीभ, काय व मन नामक छहों आयतन इंद्रियां—ये सभी—सहज द्वारा प्रभावित (बँधी हुई-सी) हैं। यह सहज न तो लाल, हरा, आदि किसी रंग का है और न छोटी-बड़ी, आदि किसी आकृति वाला ही ही है। तौ भी यह सभी प्रकार के रूपों व आकारों में एक-सा ही व्याप्त है। इस 'निर्मल सहज' में न तो पाप वा पुण्य का समावेश है और न यह कहीं से आता, कहीं जाता अथवा

[1] डा० प्रबोधचंद्र बागची : 'दोहाकोष' भूमिका पृ० ७१

कही ठहरता ही है। यह गुरुदेव की कृपा से अपने भीतर केवल हृदयगम किया जा सकता है। सहज के विषय मे भाव अथवा अभाव अर्थात् भव एवं निर्वाण का प्रश्न ही नही उठता, क्योंकि वास्तव मे, यह शून्य एव करुणा की पूर्ण स्थिति का ही दूसरा नाम है और इसे ऐसा ही मानते हुए, हमें 'समरस' के लिए प्रयत्न करना चाहिए। सशोधित मन वा परमार्थ बोधिचित्त भगवान् स्वरूप है और खसम (वा तद्व्यापक महासुख) भगवती के समान है और इस प्रकार का ज्ञान रखने वाला दिन रात सहजावस्था मे लीन रहा करता है। योगी की भावना तो ऐसी होनी चाहिए कि "मैं ही जगत् हूं, मै ही बुद्ध हू, मैं ही निरजन हूं और मै ही भवभंजन" अर्थात् संसार की भावना दूर करने वाला 'अमनसकार' वा शुद्धचित्त भी हू। क्योकि "यह मैं हू, और यह जगत् है" ऐसी भावना वाला निर्मल चित्त का स्वभाव नही पहचान सकता।

परतु चित्त की शुद्धि किस प्रकार की जाय? सिद्ध तेलोपा का कहना है कि सब से पहले, अपने (सकल्पाभिनिविष्ट) चित्त को त्रिभुवन शून्य निरजन मे ले जाकर मार डालो अर्थात् नि.स्वभाव कर दो क्योंकि अपने सकल्पविकल्पी चित्त का भलीभांति, इस प्रकार, सशोधन कर लेने पर इस जन्म मे ही हमे मोक्ष का रहस्य मिल जाता है और सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है। जब उपरोक्त प्रकार का चित्त संकल्प-विकल्प-रहित होकर शुद्ध होने लगता है तो पवन भी आप ही आप लीन होता जाता है। इस 'अमनसकार' वा मनोमारण क्रिया द्वारा एक निरालंब की स्थिति प्राप्त हो जाती है और वही निर्विकल्पक सहज ज्ञान की भी अवस्था है। फिर तो चित्त जहां कही भी जाय वह अचित्त हो गया सा ही प्रतीत होता है और इस प्रकार भावाभाव-रहित समरस की स्थिति स्वय उत्पन्न हो जाती है अर्थात् चित्त शून्यरूप होकर समसुख मे स्थित हो जाता है और इद्रियो के विषय मात्र तक नही दीख पड़ते। सिद्ध तेलोपा ने चित्तशुद्धि के लिए की गई साधना को महामुद्रा की साधना भी कहा है और बतलाया है कि उक्त साधना द्वारा ही हमे (विचित्र, विपाक, निर्मल व विलक्षण नामक चारों) क्षणों का अनुभव प्राप्त होता है तथा उन के द्वारा मिलने वाले (क्रमशः प्रथमानद, परमानंद, विरमानंद एवं सहजानद नामक चारों प्रकार के) आनदों के रहस्य का भी पता चलता है। सहजानद की अवस्था ही सहज ज्ञान की अवस्था है जिसे प्राप्त कर साधक इसी जन्म में योगी वा सिद्ध बन जाता है

वास्तव म किसी वस्तु को सचल वा निश्चल केवल व्यवहार की बात

है और जन्म व मरण का भी भावना [illegible] मात्र [illegible] । निरंजन सहजरूप है और वही सब कुछ है इस में संदेह नहीं । [illegible] की सेवा करना व्यर्थ है, और ब्रह्मा, विष्णु वा महेश्वर अथवा [illegible] की आराधना भी मूर्खता के सिवाय कुछ नहीं । आराध्य वस्तु केवल [illegible] अपना आप है जिस के साथ एकाकार होकर अक्षय चित्त कल्पवृक्ष की भांति तीनों भुवनों में अपना विस्तार कर लेता है, करुणा फूलने व फल देने लगती है और अपने या दूसरे का उपकार करने की भावना तक नहीं रह जाती । यही स्थिति वस्तुतः स्वसंवेदन की अवस्था है जिस के अनुभव का वर्णन किया नहीं जा सकता और जो केवल गुरुदेव की कृपा द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है । सिद्ध तेलोपा ने इसे सारे गुणों व दोषों से रहित 'परमार्थ' की भी संज्ञा दी है । स्वसंवेदन की सिद्धि प्राप्त कर लेने पर ससार के बंधनों का कुछ भी भय नहीं रह जाता, क्योंकि "जिस प्रकार विषतत्त्व का जानकार मनुष्य विष-भक्षण कर के भी नहीं मरता उसी प्रकार योगी भी ससार के विषय सुख को भोगा करता है और उसे ससार का बंधन प्राप्त नहीं होता ।" अतएव सिद्ध तेलोपा का अंतिम उपदेश यह जान पड़ता है—

पर अप्पाण न भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
तिहुअण णिम्मल परमपउ, चित्त सहावें सुद्ध ।।

अर्थात् अपने व पराए की भ्रांति न करो, सब कुछ स्वभावत बुद्धरूप है; त्रिभुवन मात्र निर्मल व परमपद है और चित्त भी स्वभावतः शुद्ध है ।

---

# नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की नवीन प्रकाशित पुस्तकें

## भारतीय मूर्तिकला

( लेखक—श्री राय कृष्णदास )

इस पुस्तक में मोहनजोदडो के समय से लेकर आज तक की भारतीय मूर्तिकला का वर्णन बडी सरल भाषा मे किया गया है। साथ ही इस कला के सौदर्य की विशेषताए एव तात्त्विक व्याख्या भी दी गई है। अपने ढग की हिंदी ही मे नही समस्त भारतीय भाषाओ मे पहली पुस्तक है। पृष्ठसख्या २३६+१३, ३८ चित्र तथा मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य ३), विशिष्ट सस्करण ४)

## भारत की चित्रकला

( लेखक—श्री राय कृष्णदास )

यह तथा भारतीय मूर्तिकला सबद्ध प्रकाशन है ; इसमे अपनी महान् चित्रकला का अथ से इति तक का इतिहास, सौंदर्य-निरीक्षण, एव उसके मर्म की बाते तो है ही, साथ ही लेखक ने लगभग ३० बरस के अपने गभीर अध्ययन का सारांश भी दिया है जिससे भारतीय चित्रकला के इतिहास-विषयक कई महत्त्वपूर्ण नई बातो का उद्‌घाटन हुआ है और नया प्रकाश पड़ा है। यह भी अपने ढग की हिंदी ही में नही, समस्त भारतीय भाषाओ मे पहली पुस्तक है। पृष्ठसख्या १८०+१६, चित्रसख्या २७ (सादे) +१ (रगीन) मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १=), विशिष्ट संस्करण १।=)

## मआसिरुलउमरा ( दूसरा भाग )

( अनुवादक—बाबू ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल० बी० )

मूल ग्रथ फारसी भाषा मे है और उसमे मुगल-शासन-कालीन सरदारों और अमीरों की जीवनियाँ दी गई है। मुगल-कालीन इतिहास के अध्ययन के लिये ग्रथ बहुत उपयोगी है। इसका पहला भाग पहले ही प्रकाशित हो चुका है। इस भाग मे लगभग ६०० से ऊपर पृष्ठ है और कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो के चित्र भी दिए गए है। पृष्ठसख्या ६०० से ऊपर। मूल्य ४)

## बाल-मनोविज्ञान

( लेखक—प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी० )

आजकल बालकों की शिक्षा और सुधार के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान कितना आवश्यक है यह बतलाने की आवश्यकता नही। ठोंक-पीटकर बालको को पढाने और दुरुस्त करने का समय अब बहुत पीछे चला गया। अब सभी बुद्धिमान् लोग समझने लगे है कि बालकों को ठोंकने-पीटने के बदले हमे उन की स्वाभाविक प्रवृत्तियो का पता लगाना चाहिए। उन्ही प्रवृत्तियो का अनुसरण कर के हम उन्हे बडे से बडा आदमी

बना सकते हैं बाल-मनोविज्ञान म बडी सरल और सुबोध भाषा म लेखक न बालको की प्रवृत्तियो का विश्लेषण कर के उन्हें समझाया है। पृष्ठसंख्या २६०, मूल्य १।)

## बिहार में हिंदुस्तानी

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार आजकल बड़े जोरों से किया जा रहा है। हिंदुस्तानी के समर्थक उसे सब के समझने योग्य सरल भाषा बतलाते हैं, पर वस्तुत. इस नाम की आड मे कही तो शुद्ध उर्दू का प्रचार करते है और कही हिंदी का अत्यत विकृत रूप उपस्थित करते है। बिहार प्रात में हिंदुस्तानी का प्रचार किस कैडे से करने का उद्योग किया गया है इसी की छान-बीन इस पुस्तक मे की गई है। पृष्ठसख्या ६१, मूल्य ।)

## कचहरी की भाषा और लिपि

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

कचहरियों में इतिहास के भिन्न-भिन्न कालों मे किस प्रकार की लिपि और भाषा का प्रचार रहा है तथा इस समय वस्तुत' कचहरी की भाषा और लिपि कौन सी होनी चाहिए, इसी का विवेचन इस पुस्तक मे किया गया है। पुस्तक अवश्य पठनीय है। पृष्ठसख्या १७६, मूल्य ।।।)

## भाषा का प्रश्न

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

आजकल हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के झगड़े के कारण भाषा की समस्या बहुत ही जटिल हो गई है। किंतु लेखक ने कई लेख लिखकर इस पुस्तक मे इस प्रश्न को बहुत अच्छी तरह सुलझाया है। पृष्ठसख्या १८८, मूल्य ।।।)

## संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर

( संपादक—बा० रामचंद्र वर्मा )

हिंदी का यही एक छोटा सस्ता, और सब से अच्छा शब्दकोष है। यह बृहद् हिंदी शब्दसागर का ही संक्षिप्त रूप है। नया सस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसख्या १२००, मूल्य ४)

## कबीर-वचनावली

( संपादक—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" )

इस पुस्तक का खूब प्रचार हो चुका है। कबीर की रचनाओं का बहुत सुंदर संग्रह है और भूमिका बहुत विद्वत्ता-पूर्ण है। आठवाँ सस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसख्या ३०० से ऊपर, मूल्य १।)

मिलने का पता—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

# हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास (दूसरा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२-२३) भारतीय इतिहास की रूपरेखा ( २ भाग )—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्य-कृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३ )

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास बी० ए०, एल एल० बी०। मूल्य ५)

(३१-३२) हिंदी कवि और काव्य (२ भाग)—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य प्रथम भाग ४।); द्वितीय भाग ३।)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य १)

(३४) जीवनवृत्ति-विज्ञान—लेखक, प्रोफ़ेसर महाजोत सहाय। मूल्य १)

(३५) न्याय—जॉन गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २।)

(३६) चाँदी की डिबिया—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य १।)

(३७) धोखाधड़ी—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०। मूल्य १।)

(३८) हड़ताल—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २)

(३९) भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष—मूल-लेखक सर सी० वाई० चिंतामणि। अनुवादक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा। मूल्य १)

(४०) हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी, एम० ए०। मूल्य २।)

(४१) विज्ञान-हस्तामलक—लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए०। मूल्य ६)

(४२) यूरोप की सरकारें—लेखक, श्रीयुत चंद्रभाल जौहरी। मूल्य ३।)

(४३) हिंदी भाषा और लिपि ( तीसरा संस्करण )—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ।)

(४४) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६।)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

## हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अक्तूबर, १९४०

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, अक्तूबर, १६४०



## लेख-सूची

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग १० } अक्तूबर, १९४० { अंक ४

# गिलक्राइस्ट और हिंदी

[ लेखक—डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम्० ए०, डी० फ़िल्० ]

लल्लूलाल और उन के 'प्रेमसागर' के नाते डॉ० जॉन बौथंविक् गिलक्राइस्ट का नाम हिंदी साहित्य के इतिहास मे गद्य के जन्मदाता और उन्नायक के रूप मे लिया जाता है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपने 'दि मॉडर्न लिट्रेरी हिस्ट्री अव् हिंदुस्तान' के प्राक्कथन मे लिखा है कि अँगरेजो ने हिंदी भाषा को जन्म दिया, और सब से पहले गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता मे 'प्रेमसागर' के रचयिता लल्लूलाल ने सन् १८०३ ई० मे उस का साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रयोग किया। 'ए लिट्रेरी हिस्ट्री अव् इंडिया' के लेखक आर० डब्ल्यू० फ्रेजर ने भी ग्रियर्सन महोदय के कथन का समर्थन किया है। सन् १९२४ ई० के 'कलकत्ता रिव्यू' मे लिखते हुए श्री नलिनीमोहन सान्याल ने कहा है कि हिंदी भाषा अर्थात् खड़ी-बोली लल्लूलाल और सदल मिश्र की देन मानी जा सकती है। इसी भाँति, ग्रीव्ज तथा हिंदी के अन्य भारतीय इतिहास-लेखको मे भी ऐसी ही धारणा फैली हुई है। न मालूम इन विद्वानो के कथनो का क्या आधार है। सभवत 'प्रेमसागर' की भूमिका मे गिलक्राइस्ट का नाम जोड़ देने से ऐसा हुआ हो। मै गिलक्राइस्ट द्वारा चुनी हुई भाषा के कुछ नमूने, उन के भाषा-संबंधी विचार, और 'प्रेमसागर' का इस सबध मे महत्व दिखला कर उपर्युक्त कथनों की भ्रमात्मकता सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा।

जॉन बौयविक गिलक्राइस्ट[1] का जन्म सन् १७५९ ई० म एडिनबरा में हुआ था। स्थानीय जॉर्ज हैरियट्स अस्पताल में डॉक्टरी का अध्ययन कर चुकने के बाद ३ अप्रैल सन् १७८३ ई० में वे ईस्ट इंडिया कंपनी में सहायक सर्जन नियुक्त हुए, और उसी वर्ष कलकत्ता पहुँच गए। सन् १७९४ ई० मे वे सर्जन बना दिए गए।

जिस समय गिलक्राइस्ट भारतवर्ष में आए उस समय कपनी फ़ारसी भाषा का प्रयोग करती थी। कंपनी के अधिकारी अच्छी तरह या कामचलाऊ फारसी जानने वाले कर्मचारियों पर विशेष कृपा रखते थे। उच्च पदाधिकारियों की समझ में फारसी न आने के कारण राज्यकार्य में उन को बड़ी दिक़्क़ती का सामना करना पड़ता था। उस को दूर करने के लिए दुभाषियो से काम लिया जाता था। ये दुभाषिये या तो कंपनी के कर्मचारियो मे से ही होते थे, या विज्ञापन द्वारा किसी फ़ारसी जानने वाले की नियुक्ति होती थी। लेकिन गिलक्राइस्ट ने देखा कि कंपनी जिस भाषा का व्यवहार करती थी वह देश की भाषा नहीं थी। दिल्ली-दरबार की अवनति के साथ-साथ फ़ारसी भाषा का प्रचार कम हो चला था और उस के स्थान पर हिंदुस्तानी का चलन हो गया था। उन्हो ने इस बात को महसूस किया कि राज्य कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए समाज की उच्च श्रेणी के जिन हिंदू और मुसलमानों के सहयोग की आवश्यकता थी उन मे हिंदुस्तानी का ही प्रचार अधिक रह गया था। इस लिए कंपनी के कमचारियो को हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान होना परमावश्यक समझा गया। उन्हों ने स्वयं उस का अध्ययन करना शुरू कर दिया। कई वर्ष तक वे हिंदुस्तानी प्रदेश मे घूमते रहे। इस बीच मे उन्हो ने सस्कृत, फारसी तथा कुछ और पूर्वी भाषाओ का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन की देखा-देखी कंपनी के और कर्मचारियो ने भी हिंदुस्तानी का अध्ययन शुरू कर दिया। इन

---

[1] स्वास्थ्य ख़राब हो जाने के कारण सन् १८०४ में वे घर लौट गए। ३० अक्तूबर सन् १८०४ में एडिनबरा यूनिवर्सिटी ने उन को एल्० एल्० डी० की उपाधि दी। ६ जनवरी सन् १८०६ में वे ३०० पाउंड की पेंशन पर कंपनी की नौकरी से अलग हो गए। सन् १८१६ में वे एडिनबरा से लंदन चले गए। वहां दो वर्ष बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने कर्मचारियों को हिंदुस्तानी पढ़ाने के लिए उन्हें प्रोफ़ेसर नियुक्त किया। सन् १८२६ में उन्हों ने अपना काम सैन्फ़ोर्ड आरनौट और डंकन फ़ौर्ब्स को सौंप दिया ९ जनवरी सन् १८४१ में पेरिस में उन की मृत्यु हो गई। वे बड़े भारी रिपब्लिकन और स्वभाव के उग्र थे।

नौसिखियो और नए भरती किए गए 'राइटरों' (लेखको) की सुविधा के लिए उन्हो ने कई ग्रथों की रचना की। सन् १७८७-९० ई० में 'ए डिक्शनरी, इँगलिश एंड हिंदुस्तानी', २ भाग, सन् १७९६ ई० में 'ए ग्रामर अव् दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज', और सन् १७९८ ई० मे 'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट' नामक तीन प्रमुख ग्रंथो का उन्हों ने निर्माण किया। मार्क्विस वेलेजली को इस ओर कुछ दिलचस्पी थी। उन्हो ने गिलक्राइस्ट के हिंदुस्तानी भाषा के अध्ययन और प्रचार-कार्य की अत्यत प्रशसा की और यथाशक्ति वे उन को आर्थिक सहायता भी देने रहे। सन् १८०० ई० मे फोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना होने पर उन्हो ने गिलक्राइस्ट को हिंदुस्तानी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया।

यही से गिलक्राइस्ट का हिंदी साहित्य में पदार्पण होता है। परंतु यदि हम उन के भाषा-सबधी विचारो का अध्ययन करे तो उन की वास्तविक स्थिति का पता चलते देर न लगेगी।

गिलक्राइस्ट का हिंदुस्तानी से उस भाषा से तात्पर्य था जिस के व्याकरण के सिद्धात, क्रिया-रूप आदि तो हलहेड द्वारा कही जाने वाली विशुद्ध या मौलिक हिंदुस्तानी ('प्योर ऑर ओरिजिनल हिंदुस्तानी'), और स्वयं उन के द्वारा कही जाने वाली 'हिंदुवी' या 'बृजभाषा' के आधार पर स्थित थे, लेकिन जिस में अरबी-फ़ारसी के संज्ञा-शब्दो की भरमार रहती थी। इस भाषा को केवल वे ही हिंदू और मुसलमान बोलते थे जो पढ़े-लिखे थे, और जिन का सबंध राज-दरबारो से था, या जो सरकारी नौकर थे। लिखने मे फारसी लिपि का प्रयोग किया जाता था। हिंदुस्तानी को उन्हों ने 'हिंदी', 'उर्दू', 'उर्दुवी' और 'रेख़्ता' भी कहा है। इन मे केवल 'हिंदी' शब्द ही ऐसा है जो साहित्यिको के दिमाग मे उलझन पैदा कर देता है। हिंदी का 'हिंद की' के अर्थ मे प्रयोग किया गया है, जो बिल्कुल ठीक है। हिंदुस्तानी उसी प्रकार हिंद की भाषा थी जिस प्रकार आधुनिक 'इँगलिस्तानी', यद्यपि उस का साहित्य मे प्रयोग नही किया जाता। दूसरे, हिंदुस्तानी में खड़ीबोली का प्रयोग होने से भी वह 'हिंदी' कही जा सकती थी क्योकि खड़ीबोली हिंदुस्तान की ही भाषा तो है। लेकिन 'हिंदी' के स्थान पर 'हिंदुस्तानी' शब्द उन्हो ने इस लिए पसद किया कि 'हिंदुवी' 'हिंद्वी' या 'हिंदुई' और 'हिंदी' शब्दो से, जो बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं, कोई गड़बड़ी पैदा न हो सके। 'हिंदुवी' को वे केवल हिंदुओ की भाषा मानते थे। मुसलमानी से पहले यही भाषा देश मे प्रचलित थी और इसी के

आधार पर हिंदुस्तानी का भवन खड़ा हुआ था यहा पर यह बतला देना जरूरी है कि 'हिंदी'-'हिंदुवी' शब्दों का यह भेद जन-साधारण मे प्रचलित नही था।[1] इस प्रकार 'हिंदुवी' और 'हिंदुस्तानी' का भेद मान कर गिलक्राइस्ट ने तीन प्रचलित शैलिया निर्धारित की—(१) दरबारी या फारसी शैली, (२) हिंदुस्तानी शैली और (३) हिंदुवी शैली। फारसी शैली दुरूह होने और सर्वसाधारण की समझ में न आ सकने के कारण उन्हें अग्राह्य थी। 'हिंदुवी' शैली को वे गँवारू कह कर पुकारते थे। सिर्फ़ 'हिंदुस्तानी' शैली उन को पसद आई जो उन के मतानुसार हिंदुस्तान की महान् लोकप्रिय बोली ('दि ग्राड पापुलर स्पीच अव् हिंदुस्तान') थी। इस शैली मे दक्षता प्राप्त करने के लिए फ़ारसी भाषा और लिपि का ज्ञान अनिवार्य था। वे स्वय तो रोमन लिपि के कट्टर पक्षपाती थे। लेकिन फारसी लिपि से उन्हे कोई आपत्ति नही थी क्योकि 'हिंदुस्तानी' (या उर्दू) के पुराने कवियो, जैसे, मीर, दर्द, सौदा आदि, ने इसी लिपि का प्रयोग किया था। अच्छी हिंदुस्तानी लिखने के लिए फारसी शब्दों का मिश्रण आवश्यक समझा गया। और अच्छी हिंदुस्तानी के उदाहरण या तो सौदा की रचनाओ मे या स्वय गिलक्राइस्ट की बनाई किताबों मे दिए गए हिंदुस्तानी भाषा के नमूनो में या आया, खानसामा और मुशी की भाषा मे मिल सकते थे। इस लिए कोई हिंदू भी अच्छा 'हिंदुस्तानी मुशी' बन सकता है, यह बात वे मानने के लिए तैयार नही थे। संक्षेप में उन्हों ने हिंदुस्तानी का यह सूत्र (फॉरम्यूला) दिया है—

---

[1] जनसाधारण की भाँति श्रीरामपुर मिशनरियों ने भी 'हिंदुई' और 'हिंदी' में कोई भेद नहीं माना। सन् १८१२ ई० में प्रकाशित अपने चौथे संस्मरण में उन्हों ने लिखा है—

"हम हिंदुई या हिंदी नाम हिंदुस्तानी की उस बोली को देते हैं जो मुख्यतया संस्कृत से निकली है, और जो मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व सारे हिंदुस्तान में बोली जाती थी। जन-साधारण में सब से अधिक समझी जाने वाली अब भी यही भाषा है।"

"We apply the Hindooee, or Hindee, to that dialect of the Hindoosthanee which is derived principally from the Sungskrit, and which, before the invasion of the Musulmans, was spoken throughout Hindoosthan. It is still the language most extensively understood, particularly among the common people."

साथ ही उन्हों ने 'हिंदी' और 'हिंदुस्तानी' का एक अर्थ में भी प्रयोग किया है। हिंदी से उन का अर्थ पश्चिमी हिंदी से था जिस को अँगरेज़ी में उन्हों ने इस प्रकार लिखा है— Hindee. (देखिए फ़ुटनोट २ पृ० ३३६)

उपर्युक्त अवतरण का अंतिम वाक्य ध्यान देने योग्य है।

हिंदुवी+अरबी+फ़ारसी=हिंदुस्तानी[1]

ही 'फॉरम्यूला' यदि इस रूप में रख दिया जाय तो उस में कोई अंतर न पड़ेगा—

हिंदुवी+अरबी+फारसी=उर्दू

याद रखना चाहिए कि गार्सां द तासी ने 'ऐंदुई' और 'ऐंदुस्तानी' का गिलक्राइस्ट
 'हिंदुवी' और 'हिंदुस्तानी' शब्दों के अर्थ में ही प्रयोग किया है।

अब उन के बनाए हुए ग्रंथों का निरीक्षण करना चाहिए ताकि ऊपर कही गई
ातें और साफ़ हो जायँ। गिलक्राइस्ट की सहायता से प्रधान सेनापति के फारसी भाषा
 दुभाषिया विलियम स्कॉट ने सन् १७९० ई० में 'आर्टिकिल्स अव् वार' का हिंदुस्तानी
 अनुवाद किया था। 'दि ओरिएटल लिंग्विस्ट' के सन् १७९८ और १८०२ ई० के
ोनों संस्करणों में ये शामिल हैं। उन में से एक अवतरण नीचे उद्धृत किया जाता है—

"पहली आईन आठवीं बाब की

"जिस वक्त किसी ओहदेदार, या सिपाही पर, बड़े गुनाह की नालिश हो, या किसू रय्यत के बदन या माल के कुछ विदत, या नुकसान करने की फ़रीआद होवे, जिस की सजा रेजीमेंट, रिसाले, कपनी या तईनाती में वुह आसामी, या वे आसामी एलाक़ा रखते हो, जिन पर फरीआद हुई है; तौ ऊस ही के सर्दार, और ओहदेदारों को चाहिएं, इस आईन के मुआ-फिक मुनासिब दरख़्वास्त पर, ऊस फरीआदी या फरीआदियो से, या ऊन के तरफ से, कि अपनी मकदूर भर ऊस आसामी या आसामियों को, जिन पर नालिश हुई है, मुल्की हाकिम को सौंपे; और इस के चाहिए कि अदालत के ओहदेदार को मदद ओ सहारा देवे, ऊस आसामी या आसामियो के पकडने, और सलामत पहुँचाने में, वास्ते तहकीकात इस नाल्शिी मुकद्दमे के. अगर कोई सर्दार या ओहदेदार देख सून के न माने, या गफलत करे उसी दरख़्वास्त की रू से मुल्की हाकिम को ऊस आसामी या आसामियो के सौपने में या इस आसामी, या आसामियो के पकडने में अदालत के लोगो

---

[1] 'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट', भूमिका, पृ० १

की कूमक न करे तौ वुह सर्दार या व ओहदेदार तक़सीरमंद ओहदे और नौकरी से बरतरफ़ होंगे। (१७९० ई०)

(रोमन लिपि से)

मेजर ब्राउटन के 'सेलेक्शंस फ़्राम दि पॉप्यूलर पोएट्री अव् दि हिंदुज़' की भूमिका से उद्धृत करते हुए उर्दू (या हिंदुस्तानी) भाषा और हिंदी सिपाही के विषय में टॉम्पसन साहब की 'हिंदी एंड इँगलिश डिक्शनरी' का एक समीक्षक लिखता है—

'लेकिन' हमारे हिंदी सिपाहिओं में से बहुत कम अपने गाँवों को छोड़ते समय इस भाषा का ज्ञान रखते हैं। लंबी नौकरी के बीच निःसंदेह वह इस से कुछ अधिक परिचित हो जाते हैं, पर आजन्म वह अपनी मौलिक बोली का इतना व्यवहार बनाए रखते हैं कि एक पुराने सिपाही और उन के अनुभवी अफ़सरों के बीच एक दुभाषिये की बहुधा आवश्यकता पड़ती है।"

इसी आधार पर कुछ लोगों ने, मुख्यतया श्रीरामपुर के पादरियों ने, इस भाषा का विरोध भी किया था।[2]

---

[1] With this language, however, few of our Hindi Sipahis are conversant when they quit their native villages. In the course of long service they doubtless acquire more of it, but throughout their lives, they generally retain so much of their original dialect, that it not unfrequently requires a third person to interpret between a veteran soldier and his experienced officer— 'कलकत्ता रिव्यू', १८४८ ई०

[2] ५ मार्च सन् १८१६ ई० के छठे संस्मरण में श्रीरामपुर के पादरियों ने लिखा है—

"सच बात तो यह है कि नवीनतम शोधों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी किसी भी प्रदेश को अपना विशेष प्रदेश नहीं बता सकती। मुसलमानी दरबारों और बाज़ारों की भाषा होने के कारण यह उन शहरों और क़स्बों में बोली जाती है जो कि मुसलमानी शासकों की राजधानी रह चुके हैं या अब हैं अथवा उन मुसलमानों द्वारा बोली जाती है जो कि यूरोपियन संभ्रांत व्यक्तियों के सारे हिंदुस्तान में ताबेदार हैं। इसी लिए यह वह भाषा है कि जिस से सब से पहले यूरोपियन लोग परिचित होते हैं और जिस पर प्रायः उन की भाषा-संबंधी खोज का अंत हो जाता है। परिस्थितियों से ऐसा विश्वास फैल गया है कि यह भाषा अधिकांश हिंदुस्तान की भाषा है; लेकिन वास्तव में यह भाषा बड़े शहरों से २० मील की दूरी पर भी जन-साधारण के लिए सदा सुबोध नहीं होती है। वह अपनी-अपनी बोली अलग बोलते हैं जैसे बंगाल में बंगाली, और अन्य प्रदेशों में अन्य भाषाएं। इस से एक परिस्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है जिस से कि न्याय-विभाग के अधिकारीगण परिचित हैं अर्थात् कंपनी सरकार के नियमों की विज्ञप्तियों पर इस लिए

सन् १७९६ ई० मे उन्हो ने 'ए ग्रामर अव् दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज' की रचना की। इस व्याकरण के सिद्धांत तो 'हिदुवी' पर आधारित है परंतु और सब बातें हिदुस्तानी (या उर्दू) की हैं। उदाहरण के लिए छंद उन्हों ने 'फाइलुन', 'फ़ाइलातुन', 'मफाइलुन', 'फाइलात' आदि चुने हैं। फारसी या अरबी लिपि के उन्हों ने 'नस्तालीक', 'नस्ख', 'शिकस्तआमेज', 'शिकस्ता', 'शफीअ' और 'शुल्स' भेदों का वर्णन किया है। सब से आश्चर्यजनक बात तो गिलक्राइस्ट ने यह कही है कि 'हिंदुवी' लिपि को मुसलमान तो कोई नही समझ पाता और हिंदू भी बहुत थोड़ी संख्या मे उसे समझ पाते है। न मालूम उन के इस कथन का क्या आधार है। उदाहरण के लिए अवतरण भी उन्हो ने उर्दू साहित्य से चुने है और वली, दर्द, ताबा, मिस्कीन, अफज़ल, जुरत, मीर, सौदा, बेदार आदि की हिदुस्तानी कवियो मे गणना की है। विस्तार के भय से और उदाहरण तो नही दिए जा सकते, लेकिन इतनी ही बातों से साफ जाहिर है कि गिलक्राइस्ट का हिंदुस्तानी से

---

बहुधा आपत्ति की जाती है कि वे हिंदुस्तानी में होती है और देश में जनसाधारण के समझ में नहीं आती है।

". . .The fact is, indeed, that the latest and most exact researches have shown, that the Hindee has no country which it can exclusively claim as its own Being the language of the Musalman courts and camps, it is spoken in those cities and towns which have been formerly or are now, the seat of Musalman princes; and in general by those Musalmans who attend on the persons of European gentlemen in almost every part of India. Hence it is the language of which most Europeans get an idea before any other, and which indeed in many instances terminates their philological researches. The circumstances have led to the supposition, that it is the language of the greater part of Hindoostan, while the fact is, that it is not always understood among the common people at the distance of only twenty miles from the great towns in which it is spoken They speak their own vernacular language, in Bengal the Bengalee, and in other countries that which is appropriately the language of the country, which may account for a circumstance well-known to those gentlemen who fill the judicial department; namely, that the publishing of the Honourable Company's Regulations in Hindoosthanee has been often objected to, on the ground that in that language they would be unintelligible to the bulk of the people in the various provinces of Hindoostan"

यहां पर 'हिंदी' और 'हिंदुस्तानी' का एक अर्थ में प्रयोग किया गया है। फुटनोट १ पृ० ३३४ की 'हिंदी' उपर्युक्त 'हिंदी' से भिन्न है। ध्यानपूर्वक दोनों अवतरणों को पढ़ने से यह भेद स्पष्ट ज्ञात हो जायगा।

मतलब उर्दू का था

सन् १७९८ ई० में 'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। इस में 'दि रुडीमैंट्स अव् दि हिंदुस्तानी टंग' ('हिंदुस्तानी भाषा की मौलिक बातें') नामक एक छोटा सा ग्रंथ भी शामिल है। इस के अतिरिक्त साहबो के लाभार्थ हिंदुस्तानी मे बातचीत ('डायालाग्ज') फौजी शब्दावली ('मिलिटरी टर्म्स'), फौजी कानून ('आर्टिकिल्स अव् वार'), किस्से-कहानियो ('टेल्स एंड अनेकडोट्स',) कविताओ ('ओड्स'), और रेख्ता और गजल के रूप मे हिंदुस्तानी संगीत के उदाहरण दिए गए है। अँगरेजी-हिंदुस्तानी कोष ('वोकाब्यूलरी—इँगलिश एंड हिंदुस्तानी') सन् १७९८ई० और सन् १८०२ ई० वाले दोनो संस्करणो मे है। १८०२ ई० के संस्करण मे पारिभाषिक शब्द, हिंदुस्तानी गिनती, दिन आदि कुछ नए विषयो के अतिरिक्त कुछ नई कविताएं और कहानियां भी दे दी गई है। इन सब की भाषा हिंदुस्तानी है। नमूने के तौर पर कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते है—

"जो जड और डाल पात किसू किस्से के लोगो के दिलो पर बहुत असीर-पजीर है, तौ ऊस को थोड़ा ही सा उज्र आदमीयों के सुनाने के लीए चहीए. यिह कहानी भरी हुई है कई एक दिलरेश वारिदात से, कि नतीजा औ तासीर मे ऊस की हम सब थोड़ा बहुत शरीक है मैं कहा, "ऐ बड़े मिआं तुम्हे किआ दुख है ?" "हाए ! साहिब, मेरी लड़की को तुम ने देखा है ?" जिस शख्स ने यिह ऐसा जवाब मुझे दीआ, सो वुह एक गरीब अंधा मर्द बैठा था, खोखरे दरख्त की एक जड़वत पर, जिस के नीचे एक फुट हरी सी नाली बहती थी, ऊस के सिर की चाँदी की सब सोभा लूटी हुई थी, लुटेरे वक्त के सख्त हाथ से,—औ झोली पैबन्दी ऊस की भी खाली थी लछमी की मिहरबानी से,—एक बाँस की लाठी जिस पर ऊस्के निर्बल हाथ टिके हुए थे, औ देही उस की भूख की कठिन चोट से मेरी नजर मे जो डूबने पर थी गश मे,—औ फूटी आँखे औ थरथराती आवाज़ ऊस की यिह दरोबस्त देख, अंत एक इबरत अदाबाना दिल मे मेरे पैदा हुई. फिर ऊस सुरत जाहिरी की तरफ जो मूझे इस हैरत मे पाबंद कीआ मैं तक रहा, तौ जी मे बूझा, कि क़ुदरत इलाही ने इस जईफ़ की पर्वरिश से एक कलम हाथ उठाया.

जो निर्मल नाला ऊसके पैरों के तन्ने खलखलाता था वुह् भी आफ़त की जबान हमावाज़ हो, ची अब्रूई से खडखड़ाता रहा, गोया कि वाकिफ था ऊस के पैहम हादिसो से......" (१७९८ ई०)

(रोमन लिपि से)

"यूं सुना है कि हिद मे किसी वक़्त एक पादशाही अदील था, उसे यिह् खबर पहुँची, कि फलाने शहर का हाकिम बड़ा ज़ालिम था, सो मर गया; तब ऊसने दिल मे यिह् मन्सूबा कीआ कि अपने खासुलखास अमीरो से जो बड़ा मुन्सिफ़ हो, सो भेजा चाहीए, कि लोग वहां के फिर अजीयत न पावे. उन्ह् मे से एक को तजवीज़ कीआ और मुशाह्रा ऊसका औरों की निस्बत ज़ीआदा ठह्राया और जागीर भी अच्छी मुकर्रर की, तिस पीछे रुख़्सत कीआ, और उसे कहा. जो अदील रहेगा तो यिह् हमेशा बहाल रहेगी, आखीरश अन्करीब फिर यिह् बात मशहूर हुई कि बदस्तूर-इ-साबिक़ शहर की रय्यत पर वुही बीदत रहती है, शाह् ने सुन कर कुछ इल्तिफात न की, क्योंकि ऊस की दानिस्त में वुह् बडा अमीन था.... " (१८०२ ई०)

(रोमन लिपि से)

दूसरे उद्धरण वाली कहानी फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के विद्यार्थियो को अभ्यास के रूप मे दी गई थी। यह् याद रखना चाहिए कि यह् क़िस्से-कहानियों की भाषा है जिस मे 'सोभा', 'निर्बल', 'चतुर', 'कठिन', 'लगभग', 'लजाना', 'पात' आदि शब्द भी आ गए है। परतु इन से हमारे कथन मे कोई अंतर नही पडता। उन की चुनी हुई भाषा 'ईसवीअत का तवक्कुल काफिर हूआ, इस असेब की अजीअत फरो कर्ने में' जैसी शब्दावली से भरी हुई है। सन् १८०२ के सस्करण मे अँगरेज़ी पारिभाषिक शब्दो का हिंदुस्तानी मे जो अनुवाद किया गया वह भी हमारे कथन की पुष्टि करता है।[1]

---

[1] Abbreviation — इख़्तिसार
Abstract — ख़ुलासा, इंतिख़ाब
Accusative — मफ़ूल
Adjective — सिफ़त
Adverb — ह्र्फ़ ज़र्फ़, तमीज़

फोर्ट विलियम कॉलिज के विद्यार्थियो मे जिस भाषा का प्रचार किया जा रहा था उस से भी हमारे कथन की पुष्टि होती है। विलियम बटरवर्थ बेली, जो सन् १७९९ ई० मे 'राइटर' (लेखक) की हैसियत से भारतवर्ष आए थे और जो १३ मार्च सन् १८२८ ई० से ४ जुलाई सन् १८२८ ई० तक स्थानापन्न गवर्नर रह कर बाद को कोर्ट के डाइरेक्टर तक हो गए थे, गिलक्राइस्ट के विद्यार्थी थे। कॉलिज के नियमानुसार होने वाले वार्षिकोत्सव पर ६ फरवरी सन् १८०२ ई० मे हिंदुस्तानी पर उन्हो ने एक 'थीसिस' (प्रबंध) पढा था जो सन् १८०४ ई० के लगभग प्रकाशित विद्यार्थियो द्वारा लिखे हुए लेखो के संग्रह ('एसेज एंड थीसेस कपोज्ड') मे छपी थी। उक्त 'थीसिस' की कुछ पंक्तिया नीचे उद्धृत की जाती है—

"आखिरुल अमर यिह बोली हिंदुस्तान सब को अजीज़ ओ प्यारी हुई ओ अकसर मुतवत्तिनो ने इसी मुरक्कब ज़बान पर राग़िब होकर इस को अख़ज़ कीआ कि अपने ऐसे मुआमलात जिन का इस्तिहकाम मौकूफ तहरीर पर न हो उन मे इसी से कलाम करे।"

"हिंदू भी जो कदरे इमतियाज रखता हो या मुसलमानो से या अंगरेजी कौम से जिस को कुछ ऐलाक है थोडी बहुत हसबिहाल अपने नही हो सकता कि न जाने।"

"अगरचि साहिबि मुहावर हिंदूस्तानी जबान के फरवर नही

---

| | |
|---|---|
| Adverb of Time | ज़र्फ़ी ज़मान |
| Adverb of Place | ज़र्फ़ी मुकान |
| Allegory | मजाज़ |
| Article | हर्फ़, इस्म |
| Case | हालत |
| Compound | मुरक्कब |
| Declinable | मुतसर्रिफ |
| Future | इस्तक़बाल, मुस्तक़बिल |
| Grammar | सर्फ़-ओ-नहो, काइदा-क़वानीन |
| Hyperbole | मुबालग़ा |
| Plural | जमा |

करते कि इस में बहुत नसर की किताबे या तसानीफ़ि इलमी है पर कितने ऐक किस्से खूब ओ गजले मरगूब ओ गैरे नज्म मे मौजूद हैं। दरकिनार यिह कि मुग्रामलति महाजनी ओ लश्करी ओ मुहिम्माति मुल्की ओ गैरे कि तअल्लुक़ नविश्त ख्वाद से रखते है उन्हो मे भी जबानि हिंदी जारी है।"

"ऐक फाऐदा. यिह भी है कि अकसर और जबानों का इक्तिसाब इस की खूब शिनासाई से आसान होता ओ सिर्फ़ यिही जबान वसील. है कि जिस से करार वाकई बेइनसाफी ओ तगल्लुब रैयत से दूर हो जावे।"

और चाहे जो कुछ भी हो उपर्युक्त अवतरणो की भाषा 'हिदुवी', हिद्वी' या आधुनिक हिदी नही है। नागरी लिपि का प्रयोग जरूर किया गया है। वह भी गिल-क्राइस्ट की इच्छा के विरुद्ध। कपनी-सरकार जानती थी कि व्यापारियो से, जो मुडिया, कैथी आदि लिपियो का प्रयोग करते थे, संबध बढ़ाने के लिए देवनागरी लिपि का ज्ञान परमावश्यक था।

अब रह गई 'प्रेमसागर' की बात। सन् १८०० ई० मे फोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना होने पर वेलेजली ने गिलक्राइस्ट को फारसी और हिंदुस्तानी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। उन्हो ने बडी तेजी और मुस्तैदी के साथ पाठ्य-पुस्तके तैयार कराने की व्यवस्था की। इस कार्य के लिए बहुत-से मुंशी उन की अध्यक्षता मे रक्खे गए। परंतु इतना सब कुछ होते हुए भी सिविलियनो को हिंदुस्तानी भाषा सीखने मे बड़ी कठिनाई हुई। क्योकि हिंदुस्तानी (या उर्दू) का प्रासाद 'भाखा' के आधार पर खडा हुआ था। इस लिए कॉलिज के कार्य मे सहायता देने के लिए उन्हे एक 'भाखा-मुशी' की जरूरत हुई। फलस्वरूप सन् १८०० ई० मे लल्लूलाल, जो अपनी आजीविका के लिए कलकत्ता आए हुए थे, कॉलिज में 'भाखा-मुशी' नियुक्त हुए। सन् १८०३-९ ई० मे लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' की रचना की। 'प्रेमसागर' ब्रज-रजित खडीबोली गद्य मे है। आधुनिक खोजों से काफी प्रमाणित हो चुका है कि लल्लूलाल द्वारा खड़ीबोली का प्रयोग कोई नई बात नही थी। उस से पहले भी हिंदी साहित्य मे खड़ीबोली का प्रयोग होता था, यद्यपि साहित्य मे उस को प्रमुख स्थान न मिल सका था जो धीरे-धीरे उन्नीसवी शताब्दी मे मिला। साहित्यिक दृष्टि से 'प्रेमसागर' सडियल रचना है। सदल मिश्र

कृत उस से कही अच्छी रचना है लेकिन कालिज के पाठ्य क्रम में उस की पूरी-पूरी उपेक्षा की गई यदि गिलक्राइस्ट सच्चे हृदय से हिंदी गद्य के शुभ चिंतक होते तो वे जरूर विद्यार्थियों को 'नासिकेतोपाख्यान' पढ़ाते। लेकिन ऐसा कभी नही हुआ।

वास्तव में लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' का प्रयोजन केवल हिंदुस्तानी भाषा के लिए मुहावरो की पूर्ति करना[1] और सिविलियन विद्यार्थियों को भारतीय रहन-सहन और रीति-रस्मों का ज्ञान कराना था। यह तो सर्वमान्य है कि हिंदुस्तानी या उर्दू का प्रासाद 'हिंदुवी' के आधार पर खड़ा हुआ था। लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' ने गारे-चूने का काम दिया। उन की दूसरी प्रमुख रचना 'राजनीति' व्रजभाषा गद्य मे है। उन के 'बैताल-पच्चीसी' और 'सिंहासनबत्तीसी' नामक ग्रंथो की भाषा रेख्ता या हिंदुस्तानी या उर्दू है। गिलक्राइस्ट जिस भाषा के पक्षपाती थे उस का लगभग सामीप्य इन दोनो ग्रंथो की भाषा में पाया जाता है। शहराती मुसलमान और उच्च स्तर के पढे लिखे हिंदू जिन का मुसलमानी दरबार से संबंध था लगभग ऐसी ही भाषा बोलते थे। जन-साधारण की भाषा इस भाषा से दूर थी। शासक-वर्ग उसे बहुत कम समझ पाता था। और फिर 'प्रेमसागर' की भाषा का आनेवाले साहित्य पर कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नही होता। यह है 'प्रेमसागर' के निर्माण की कहानी और उस से गिलक्राइस्ट के संबंध का इतिहास। सन् १८०४ ई० मे वे अपने घर लौट गए।

सच बात तो यह है कि गिलक्राइस्ट ने हिंदुस्तानी या उर्दू गद्य का निर्माण किया[2] न कि हिंदी गद्य का।

क्या अब भी गिलक्राइस्ट हिंदी गद्य के जन्मदाता और उन्नायक समझे जायँगे ?

---

[1] 'कलकत्ता रिव्यू', १८४६ ई०

"..... In Hindi, the Prem Sagar, which has nought to recommend it but idiom, as the subject matter is a wearisome and endless repetition of the amours of Krishna......"

अर्थात् हिंदी में 'प्रेमसागर' का मूल्य केवल उस के मुहावरों के कारण है, जहा तक विषय की बात है उस में कृष्ण की अनेक और थकाने वाली प्रेमक्रीड़ाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

[2] एडवर्ड बालफ़र : 'दि इन्साइक्लोपीडिया आव् इंडिया (१८८५ ई०)', जिल्द १, पृ० १२०३

# कविवर नंददास-कृत 'रासपंचाध्यायी'

[ लेखक—श्रीयुत दीनदयालु गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ]

महाकवि नंददास की प्रौढ़ रचनाओं में से 'रासपंचाध्यायी' का विशेष स्थान है। इस ग्रंथ को गार्सां द तासे, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु, सर जॉर्ज ग्रियर्सन, पंडित रामचंद्र शुक्ल आदि सभी विद्वानों ने नंददास की कृति माना है। पहले-पहल यह ग्रंथ संवत् १८७२ में मथुरा से छपा। इस के बाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने इसे अपनी पत्रिका 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' में सन् १८७८-७९ ई० में प्रकाशित किया, जिस में उन्हों ने मूलपाठ के अतिरिक्त कोई भूमिका नहीं दी थी। उस के बाद अब तक इस ग्रंथ के अनेक संस्करण निकल चुके हैं, जिन का ब्यौरा हम ने एक स्वतंत्र लेख में दिया है।[1] शिवसिंह सेंगर, नागरी-प्रचारिणी सभा की 'खोज-रिपोर्ट' तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इस ग्रंथ का नाम 'पंचाध्यायी' दिया है, और 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' में यह ग्रंथ इसी नाम से छपा है। अन्य प्रकाशित प्रतियां 'रास-पंचाध्यायी' के नाम से ही छपी हैं। विविध स्थानों से प्रकाशित तथा 'रासपंचाध्यायी' की उन हस्तलिखित प्रतियों में जो हमारे देखने में आई हैं, अनेक पाठांतर हैं, और छंद-संख्या में भी असमानता है। इस से विदित होता है कि 'रासपंचाध्यायी' के छंदों में पीछे से लोगों ने बहुत मेल कर दिया। किसी-किसी प्रति में तो इतने प्रक्षिप्त अंश हैं कि मूल ग्रंथ दूने आकार का हो गया है।

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में नंददास[2] के अतिरिक्त छः अन्य कवियों की रासपंचाध्यायियों का उल्लेख है। ये कवि कृष्णदेव,[3]

---

[1] 'नंददास संबंधी आधुनिक लेखों का निरीक्षण'—यह लेख 'हिंदुस्तानी' के किसी आगामी अंक में प्रकाशित होगा।

[2] खोज-रिपोर्ट, १९०१ (नं० ६९), १९०६-८ (नं० २०० ए)।

[3] वही, १९०९-११ (नं० १५९)। इस पंचाध्यायी का लिपि-काल सं० १८८७ है।

दामोदर 'गोपालराय व्यास' (ओरछा निवासी) रामकृष्ण चौबे[७] तथा सुंदरसिंह[७] हैं।

इन के अतिरिक्त अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण की रासलीला के पद गाए हैं। अष्टछाप के भक्तकवि कृष्णदास ने पदों के अतिरिक्त छंदों में भी एक छोटी-सी 'रामलीला' लिखी है, जो वल्लभ-संप्रदाय के 'वर्षोत्सव-कीर्तन',[६] में छपी है।

नंददास की 'रासपंचाध्यायी' की अनेक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियां हमारे देखने में आई हैं। स्वर्गीय पंडित मयाशंकर याज्ञिक अलीगढ़-निवासी के संग्रहालय में हम ने नंददास कृत 'रासपंचाध्यायी' की ९ प्रतियां देखी हैं, जिन में सब से प्राचीन प्रति संवत् १७८० की है। इन प्रतियों में से एक प्रति के अंत में राधावल्लभ-संप्रदायी लिपिकार ने वल्लभ-संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य कृष्णभक्त वैष्णव-संप्रदायों के नाम दिए हैं, जिस से ज्ञात होता है कि नंददास की 'रासपंचाध्यायी' का आदर तथा पठन-पाठन अन्य कृष्णपूजा-संप्रदायों में भी था। यह उल्लेख इस प्रकार है—

"श्री राधावल्लभो जयति—नंददास, कुंभनदास, कृष्णदास, गदाधर भगवानदास, परमानंद, गोविंदप्रभु, सूरदास, चतुर्भुजदास, आसकरन, श्री हरिवंश गुसाईं, श्री हरिदास स्वामी, व्यासस्वामी, छीतस्वामी रसिक।" हिंदी साहित्य के इतिहास से विदित होता है कि ये सभी भक्त नंददास के समकालीन कवि थे।

किसी-किसी प्रति में लिपिकार ने नंददास को 'स्वामी नंददास' कह कर लिखा है, यथा "इति श्री पंचाध्यायी स्वामी नंददास कृत संपूर्ण"। नंददास की जीवनी में हम ने बताया है[७] कि वल्लभ-संप्रदाय के अष्ट सखा कवियों में चार भक्त, सूरस्वामी, परमानंदस्वामी, गोविंदस्वामी और छीतस्वामी स्वामी कहलाते हैं और चार भक्त कृष्ण-

---

[१] खोज-रिपोर्ट, १९१२-१४ (नं० ४६ जी)। रचना-काल सं० १६६६। यह ग्रंथ सवैया छंदों में है। कवि हितहरि-संप्रदाय का था।

[२] वही, १९१२-१४ (पृ० ८६)। ग्रंथ कवित्त छंदों में है।

[३] वही, १९१२-१४। यह रचना त्रिपदी और चौपाई छंदों में है।

[४] वही, १९०६-८ (नं० १०० एफ़)

[५] वही, १९०४ (नं० ७३)। निर्माण-काल १८६९। रचना दोहा-चौपाई छंदों में है।

[६] भाग २, पृ० ३१०-१३ (प्रकाशक, लल्लूभाई छगनलाल, अहमदाबाद)

[७] 'हिंदुस्तानी', जुलाई १९४०

दास, कुंभनदास, नंददास और चतुर्भुजदास दास कहलाते हैं। वल्लभ-संप्रदाय में इस का यह तात्पर्य बताया जाता है कि वल्लभ-संप्रदाय में आने के पहले 'स्वामी' कहलाने वाले चार भक्त अपने शिष्य भी बनाते थे और वे या तो किसी अन्य संप्रदाय की दीक्षा देते थे अथवा, काव्य और गान विद्या के आचार्य होने के कारण कविता और गान विद्या-प्रेमी लोगों को उन विषयों की शिक्षा देते थे। नंददास जी, 'स्वामी' नाम से वल्लभ-संप्रदाय में प्रसिद्ध नहीं हैं। विरक्त भक्त तथा विरक्त साधु-महात्माओं को भी बहुधा 'स्वामी जी' कहा जाता है। संभव है उसी प्रकार नंददास को भी लोगों ने 'स्वामी' लिखा हो।

नंददास की 'रासपंचाध्यायी' के विषय से संबंध रखने वाली उन की एक और रचना 'सिद्धांतपंचाध्यायी' है। 'रासपंचाध्यायी' में कवि की धार्मिक प्रवृत्ति के साथ-साथ काव्यकौशल का विशेष परिचय है। 'सिद्धांतपंचाध्यायी' में गोपीकृष्ण की रास-लीला के केवल धार्मिक पक्ष का उद्घाटन किया गया है।

## 'रासपंचाध्यायी' का विषयतत्व

नंददास की 'रासपंचाध्यायी' में दो विभिन्न भाव-धाराएं प्रवाहित मिलती हैं। एक धारा कवि के आध्यात्मिक भावों की है, और दूसरी लौकिक शृंगार की। लौकिक शृंगार की तह में आध्यात्मिक धारा इतनी प्रच्छन्न चलती है कि नंददास के काव्य को पढ़ने वाला साधारण विद्यार्थी सहज ही में भ्रमित होकर कहने लगता है कि रासपंचाध्यायी एक शृंगारिक काव्य है जिस में लौकिक संयोग-प्रेम का रूप अंकित है। परंतु जिन्हों ने कवि के आंतरिक भावों का मनन किया है और उस के जीवन पर दृष्टि डाली है उन को ज्ञात होगा कि इस ग्रंथ में व्यक्त विषय पर कवि के धार्मिक भावों तथा उन आदर्शों की, जिन को श्री वल्लभाचार्य जी ने सामने रक्खा था, अमिट छाप है। वास्तव में नंददास के काव्य का ध्येय धार्मिक था। जो आदर्श नंददास के समय में सर्वमान्य थे, अब अधिक अंश में परिवर्तित हो चुके हैं। काव्य का आध्यात्मिक ध्येय वर्तमान भौतिकवादी जीवन में अधिक मूल्य का नहीं रहा। हां लौकिक शृंगार के जिस रूपक द्वारा कवि ने अपना ध्येय स्पष्ट किया है उस का हमारे वर्तमान जीवन से घनिष्ट संबंध है। इसी लिए हमें नंददास जैसे कवियों के काव्य का लोक-पक्ष दिखाई देता है, और आध्यात्मिक पक्ष नहीं दीखता।

नंददास ने जिस विचार-पथ को ग्रहण किया, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था। उस समय की प्रवृत्ति भी ऐसी ही थी। इसी लिए उस समय के समस्त काव्य की अभिरुचि मानव क्रिया-कलाप और लौकिक व्यवहार से हटी हुई आत्मिक जगत की ओर अग्रसर दिखाई देती है। उस समय काव्यकला का ध्येय हमारे सामने उन आदर्शों को रखना नहीं था जिन का हमारी सांसारिक वासनाओं से संबंध है, उस का ध्येय था आध्यात्मिक तुष्टि संपादन करना। इस अभिरुचि को महात्मा तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' (बालकांड) में स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है :—

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना,
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।

"लौकिक पुरुषों के गुणगान से सरस्वती दु:खित और अप्रसन्न होती है।"

नंददास के समय में 'सुत वित नारि' के पाने की ईषणा को छोड़ केवल ईश्वर को पाने की ईषणा लोगों में प्रबल हो रही थी। नंददास की जीवनी से और उन के ग्रंथों के सूक्ष्म मनन से ज्ञात होता है कि उन की आत्मा भी लोकरूप के रमण से हट कर उस अनंत और अपार रस-रूप ईश्वर के साथ रमण के लिए विह्वल थी जिस ईश्वर से कवि नंददास के विचारानुसार आत्मा बिछुड़ी हुई है। 'रासपंचाध्यायी' में व्यक्त लौकिक शृंगार के पीछे अन्योक्ति है और वह अन्योक्ति आध्यात्मिक है। अपनी भक्ति-पद्धति में नंददास ने माधुर्य-प्रेम का अनुसरण किया है। लौकिक प्रेम के सब स्वरूपों में स्त्री-पुरुष के प्रेम में बहुत अधिक गहनता और तीव्रता होती है। आध्यात्मिक प्रेमानुभव की गहनता, भक्तों ने, उस से भी अधिक गहन बताई है। और जब भक्तों ने इस प्रेम की अभिव्यंजना की है तो उन्हें यह व्यंजना लोकानुभूत प्रेम के रूपकों द्वारा ही करनी पड़ी है।

निर्गुण पंथ के अनुयायी कबीर, जायसी आदि महात्माओं ने भी अपने आध्यात्मिक अनुभवों को लौकिक शृंगार की अन्योक्तियों में प्रकट किया है। नंददास के काव्य में माधुर्य-भक्ति के कारण शृंगार-भाव का समावेश अधिक मात्रा में हुआ है।

'रासपंचाध्यायी' में लौकिक रति के चित्रों में आध्यात्मिक प्रेम का रहस्य छिपा है।

श्रीमती चंद्रावती त्रिपाठी के शब्दो मे इसे 'शृगारिक रहस्यवाद'[1] अथवा प्रेम का रहस्य-वाद कह सकते हैं। 'रासपंचाध्यायी' के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन नंददास की दूसरी रचना 'सिद्धांतपचाध्यायी' को लेकर विशेषता से हो सकता है।

## 'रासपंचाध्यायी' का कथानक

जैसा कि ग्रंथ के नाम से प्रकट है, 'रासपचाध्यायी' मे पाँच अध्याय है, जिन मे गोपीकृष्ण की रासलीला का वर्णन है। आध्यात्मिक दृष्टि से कृष्ण परब्रह्म परमात्मा है, और गोपिया आत्माए है जो उसी का अश है। भगवान के आनदाश से अलग होकर ये आत्माएं संसार-चक्र के बीच फिर उसी आनदस्वरूप परमात्मा से मिलने को लालायित होती है। इन पाँच अध्यायो मे बिछुडी हुई आत्मा और रसरूप परमात्मा के पुनर्मिलन की आनंदावस्था का वर्णन किया है। ग्रंथ का आरभ श्री शुकदेव जी की वदना से होता है जिन्हों ने श्रीमद्भागवत द्वारा असह्य दुख से पीडित संसार को मोक्ष का मार्ग दिखाया। करुणामूर्ति, परम-भक्त, श्री शुकदेव जी का आकर्षक नखशिख-वर्णन करने के उपरात कवि रासक्रीडा की रम्य घटनास्थली वृंदाविपिन के प्राकृतिक सौंदर्य; और उल्लासपूर्ण शरद ऋतु के वातावरण का मनोरम वर्णन करता है। पेडो की पत्तियो से बनी झिझरियो से चंद्रमा की शीतल चाँदनी छन-छन कर फैल रही है, मानो चंद्रमा छिद्रों से उझक कर कृष्ण-रास को देखने की प्रतीक्षा मे हो। खिली हुई मल्लिका की मनोरम शोभा शरद रात्रि की ज्योत्स्ना से मानो होड़ लगा रही है। सुख से सनी अमृत की फुहारे उछल-उछल कर प्राकृतिक उल्लास में सहयोग दे रही है। एक ओर भ्रमर गुंजार कर रहे है, दूसरी ओर अपना पराग बिखेर कर पुष्प उन का स्वागत कर रहे है। प्रकृति की इस आनंदमयी शोभा के बीच 'कोटि कंदर्पो' को लज्जित करने वाले श्री कृष्ण अपनी 'योगमाया' सी मुरली बजाते है। कृष्ण की मुरली का नाद केवल सगीतमय ही नही है, वरन् उस को कवि ने शब्दब्रह्म का उत्पादक कहा है। इस प्रेरणा-स्वरूप मोहक शब्द को सुन कर गोपियो मे कृष्ण-मिलन की प्रसुप्त आकाक्षा जागृत हो उठती है, और वे घरबार छोड, उन्मत्त की तरह उस शब्द का अनुकरण कर चल पडती है। जिन गोपियो का प्रेम दृढ और परिपक्व

---

[1] 'परिषद्-निबंधावली' भा० १ पृ० १७६ डा० धीरेंद्र वर्मा।

था व कृष्ण के पास पहुच जाती है और जिन की प्रेम साधना अपरिपक्व थी व लोकलज्जा और अपने कुटुंबियो के कान से रुक जाती है जब गोपिया कृष्ण के पास पहुचती है कृष्ण उन्हे स्त्रियों के लौकिक धर्म का उपदेश देते हैं और उन को वापिस घर जाने को कहते हैं। कृष्ण के उपदेश में गोपियां कृष्ण की निष्ठुरता का भाव पाकर दुखित होती है। वे कृष्ण के तर्को का उत्तर देकर वापिस न जाने में अपनी विवशता प्रकट करती हैं। इस में कृष्ण को गोपियो के निर्मल तथा सच्चे प्रेम का परिचय मिल जाता है। कृष्ण गोपियो के साथ, उन के अगाढ प्रेम का उपहार देने को यमुना-तट की सघन कुजो में रास-क्रीडा आरंभ करते हैं। इस स्थान पर कवि ने बताया है कि उस समय रास में कामोद्दीपन की समग्र सामग्री उपस्थित थी और कामदेव गोपियो के चित्त में उत्पन्न भी हुआ, परतु योगिराज कृष्ण के प्रभाव से काम पराजित कर दिया गया। उस समय गोपियो के चित्त में कुछ गर्व का सचार हुआ। भक्त-स्वरूपा गोपियो का अभिमान मिटाने के लिए श्रीकृष्ण थोडी देर के लिए अचानक छिप जाते हैं। 'रासपचाध्यायी' का पहला अध्याय इतनी कथा पर समाप्त हो जाता है।

दूसरे अध्याय में गोपियां कृष्ण की खोज करती हैं। इस स्थल पर गोपियों की विरह-दशा का कवि ने वर्णन किया है। प्रेमोन्मत्त, विरहाकुल गोपिया कृष्ण के पुर्नमिलन को छटपटाती हैं और सजीव और निर्जीव का भेद भूल कर सब वन-वृक्षों से पूछती फिरती है, कहीं किसी ने कृष्ण तो नही देखे। गोपियां कृष्ण को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन की एक विशेष प्यारी गोपी राधा से मिलती हैं और अब सब मिल कर और भी अधिक परिश्रम के साथ कृष्ण को ढूंढने लगती हैं।

तृतीय अध्याय मे कवि ने गोपियो की असहनीय विरह-दशा तथा कृष्ण की खोज मे उन के अनवरत परिश्रम का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। इस अध्याय मे गोपियो का कृष्ण के प्रति प्रेमाधिक्य मे उपालभ भी है। इस के उपरांत कवि ने गोपियों की आत्म विस्मृति का प्रभावशाली वर्णन किया है।

चतुर्थ अध्याय मे कृष्ण प्रकट हो जाते हैं और चिरकाल के बिछुडे प्रेमियो की भाँति उन्मत्त प्रेम की उत्सुकता के साथ गोपिया उन से मिलती है। कृष्ण गोपियो के प्रेम से प्रभावित होते है और उन के अनन्य प्रेम की प्रशंसा करते है। कवि ने इस पुर्नमिलन का बडा हृदयग्राही चित्र अंकित किया है।

पाँचवें अध्याय में कृष्ण और गोपियों की रासक्रीड़ा का वर्णन है। कृष्ण के साथ रास, गोपियों की आंतरिक इच्छाओं का अंतिम फल है। इस अध्याय में कवि ने गोपी-कृष्ण रास में उन के नाचने और गाने का बहुत ही सजीव और कलात्मक वर्णन किया है। नृत्य और गान समाप्त होने के बाद जलक्रीड़ा आरंभ होती है। प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही गोपियां अपने-अपने घर पहुँच जाती हैं। इस संपूर्ण वर्णन में कवि ने अपने आध्यात्मिक ध्येय को पिछड़ने नहीं दिया। आध्यात्मिकता की रक्षा करते हुए कवि ने शृंगार भाव के चित्रण में असाधारण काव्य-पटुता का परिचय दिया है। और काव्यानंद और भक्ति-प्रेमरस की सुखद मंदाकिनी प्रवाहित की है।

## 'रासपंचाध्यायी' का आधार

नंददास की 'रासपंचाध्यायी' का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत है। वल्लभ-संप्रदायी कवियों के काव्य का मुख्य आधार यही ग्रंथ रहा है। इन कवियों ने कृष्ण की रासलीला की कथा तथा कहीं-कहीं भाव भी स्वतंत्रता-पूर्वक इसी ग्रंथ से लिए हैं, परंतु यह कहना अनुदारता होगी कि इन कवियों के भाव श्रीमद्भागवत के संस्कृत श्लोकों के अनुवाद मात्र हैं। सूरदास के सूरसागर में जिस का आधार श्रीमद्भागवत है अनेक स्थल सूर की स्वतंत्र रचनाएं हैं। इसी प्रकार नंददास का काव्य भी भागवत पर अवलंबित होते हुए अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। विषय के प्रतिपादन की रीति, भाषा-सौंदर्य, कवि-कल्पना से युक्त काव्योक्तियां, कथा में स्वतंत्र प्रसंगों का समावेश तथा धार्मिक सिद्धांत इस मौलिकता के विशेष अंग हैं। नंददास की रचनाओं में मौलिकता के उपर्युक्त अंग विद्यमान हैं। श्रीमद्भागवत में, दशम स्कंध के २९वें अध्याय से ३३वें अध्याय तक गोपी-कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। यही पाँच अध्याय नंददास की रचना 'पंचाध्यायी' कहलाते हैं। हरिवंश पुराण में भी गोपी-कृष्ण की रासलीला का 'हल्लीसक्रीडन' नाम से वर्णन है, परंतु कवि ने इस ग्रंथ से 'रासपंचाध्यायी' की कथा और उस में व्यक्त विचारों का आकलन नहीं किया। 'रासपंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय में कवि स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि उस ने भागवत से रासलीला की कथा ली है।

**श्री भागवत सुनाम परम अभिराम परम मति,**
**निगम सार सुकसार बिना गुरु कृपा अगम अति।**

ताही में मणि अति रहस्य यह पचाध्याई
तन में जसे पच प्रान अस सुक मुनि गाई।
परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी,
ताही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी ।।

## 'रासपंचाध्यायी' और 'श्रीमद्भागवत'

हम ने ऊपर कहा है कि नददास की 'रासपन्चाध्यायी' मे, श्रीमद्भागवत का भावानुवाद होते हुए भी विशेष मौलिकता है। 'रासपंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय का आधार भागवत का २९वा अध्याय है। परन्तु शुकदेव जी की बदना, बृंदाबन की शोभा का वर्णन जिस की छटा चद्रमा से अलकृत शरद रात्रि को और भी रमणीय बनाती है, आदि स्वतत्र कल्पनाएं है। श्री शुकदेव जी के नखशिख का वर्णन नददास ने भागवत से लिया है जिस म यह वर्णन प्रथम स्कध के २९वे अध्याय मे आया है। नददास ने शुकदेव जी के नखशिख-वर्णन मे जो उत्प्रेक्षाए दी है वे उन की अपनी है, और वे उन के रास-विषयक आध्यात्मिक भावो की पुष्टि करती है। भागवत में शरद ऋतु तथा चद्रोदय का वर्णन केवल दो श्लोको मे ही दिए गए है परंतु इस स्थल पर नददास ने शरद की शोभा तथा रास के अनुकूल वातावरण के चित्रण मे जिस काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है वह वास्तव मे प्रशंसनीय है। नददास की 'रासपंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय मे अनग के आगमन और उस पर गोपी-कृष्ण द्वारा विजय प्राप्ति का वर्णन है। इस ओर कवि की सूझ बडी निराली और मौलिक है। श्रीमद्भागवत में हमें इस का कोई चित्र नही मिलता। कालिदास की प्रसिद्ध कृति 'कुमारसंभव' मे तो ऐसा प्रसग अवश्य मिलता है। शिव जी अपने नेत्र से उत्पन्न क्रोधाग्नि द्वारा अभागे कामदेव को जला देते है। इस प्रसंग के लाने का नददास का आशय यह दिखाना है कि गोपी-कृष्ण रास में लौकिक कामवासना का कोई समावेश नही है।

दूसरे अध्याय की कथा भागवत दशम स्कध के ३३वे अध्याय के अनुसार है। इस अध्याय के वर्णन मे भी कवि ने नवीन उक्तियो तथा नवीन उत्प्रेक्षाओ द्वारा अपनी उर्वरा कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है। कवि की शक्तिशालिनी वर्णन-शैली, उत्प्रेक्षाओ की अनूठी सूझ और प्रभावपूर्ण मधुर पदावली इस अध्याय की मौलिकता हैं। भागवत का आधार लुप्त होकर कवि की स्वतन्त्र मौलिकता ही स्थायी रूप धारण करती दिखाई

देती है। नंददास ने तीर्थवासियो को कठोर प्रकृति का बताया है,[1] परन्तु भागवत मे तीर्थ-वासियो के प्रति इस प्रकार का कोई कथन नही है। विरहाकुल गोपिया उन्मत्त और पागल की भाँति कृष्ण का पता वृक्षलतादि से पूछती फिरती है। नंददास ने इस स्थान पर बताया है कि विरहप्रेम मे व्याकुल जनों को जड़चेतन का भान नही होता—

**ह्वै गईं बिरह विकल सब पूछति द्रुम बेली बन।**
**को जड़ को चेतन्य कछु न जानत विरहीजन।**

तृतीय अध्याय श्रीमद्भागवत दशम स्कंध के ३१वे अध्याय का भावार्थ है, परन्तु कवि ने अपनी काव्यशक्ति, ललित भाषा, और भावचित्रो मे मौलिकता ला दी है, साथ ही मूल का लेशमात्र भी नाश नही होने दिया।

चौथा अध्याय दशम स्कंध भागवत के ३२वे अध्याय पर अवलंबित है जिस मे कवि ने अपनी मौलिकता की सफलता-पूर्वक रक्षा करते हुए अपनी काव्यचातुरी मे गोपी-कृष्ण पुनर्मिलन का वर्णन किया है। इस मे जितने छंद है उन की प्रथम पंक्तियां भागवत की पंक्तियों के अनुवाद है, और उन की प्रत्येक द्वितीय पंक्ति कवि की मौलिक रचना है। इन पंक्तियो मे कविकल्पना की सुंदर अवतारणाएं देखने को मिलती है। जैसे—

**कोउ नागर नगधर की गहि रहि दोउ कर पटकी,**
**जनु नवघन ते सटकी दामिनि दामन अटकी।**
**दौरि लिपटि गईं ललित लाल सुख कहत न आवे,**
**मीन उछरि ज्यों पुलिन परे पै पानी पावे।**
**कोउ पिय भुज सों लटकि भटकि रहि नारि नवेली,**
**जनु सुंदर शृंगार विटप लपटी छवि बेली॥**

भागवत के इस प्रसंग मे श्रीकृष्ण ने गोपियो की प्रशंसा की है और उन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है परन्तु नंददास ने 'रासपंचाध्यायी' मे इस कृतज्ञता के भाव को बढाते हुए कृष्ण को गोपियो का पूर्ण ऋणी बताया है। भगवान के ऊपर भक्तो की विजय

---

[1] **जमुन निकट के विटप पूछि भईं निपट उदासी,**
**क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथवासी।**

का जो भाव नददास की रचना से सचित होता ह वह भागवत के वणन से नहीं होता

पञ्चम अध्याय श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के ३३वे अध्याय पर अवलबित है। इस अध्याय में नंददास की काव्यकला पूर्ण सफलता की सीमा तक पहुँच गई है। भाव के अनुसार उचित शब्दो का प्रयोग, शब्दों के उच्चारण मे भाव का द्योतन और शब्दचित्रो मे रासलीला का वर्णन नददास की निजी छाप के द्योतक हैं। यहा नंददास के एक भी शब्द को छंद से हटाना उन के पूरे छंद की सुंदरता को नष्ट करना है। इस अध्याग मे 'रासपंचाध्यायी' के सुनने और उस का पाठ करने का महात्म्य भी कवि ने बताया है। यहा कवि की धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान है।

## 'रासपंचाध्यायी' के काव्य की समीक्षा

'रासपंचाध्यायी' में कृष्णलीला के केवल एक प्रसंग, 'रासक्रीडा' का ही वर्णन है। इस मे शृंगार-भाव का चित्रण मुख्य-रूप से है। मानवी शृगारिक भावों को कवि ने आश्चर्यजनक आध्यात्मिक रूप दिया है। रासलीला की सुपरिचित कथा के भीतर कवि की आत्मा की वह महती आकाक्षा, जो असीम से मिल कर अनंत रसमग्न होना चाहती है, छिपी मिलती है। नंददास की यह कृति कथा-प्रधान न होकर वर्णन और भाव-प्रधान है। काव्य की दृष्टि से उन की कला का दर्शन ग्रथ के वर्णन और भावचित्रो मे ही होता है।

प्रबंध-रचनाओ मे काव्य के तीन रूपो का समावेश रहता है—(१) वस्तुकथन, (२) दृश्य और चरित्र-वर्णन, तथा (३) भावो की व्यजना। पूर्ण कथानक मे आने वाले प्रसग, वर्णन की संक्षिप्त शैली मे ही चित्रित हुआ करते हैं, परंतु जब वृहत् कथा के किसी एक प्रसंग को स्वतंत्र काव्य-रूप दिया जाता है, तो कथावस्तु के अभाव में, भाव-चित्रों की विशदता और दृश्यों के विस्तृत वर्णन ही रसात्मकता की कमी की पूर्ति किया करते हैं। पाठक की कथा-श्रवण की जिज्ञासा दब जाती है और उस की मनोवृत्ति कथा से हट कर दृश्य और भावो के चित्रों पर ही टिकने लगती है। साथ ही, जब काव्य में कथा की कमी और दृश्यवर्णन तथा भावाभिव्यक्ति की प्रचुरता होती है तब अलंकृत और चित्ताकर्षक भाषा-शैली तथा भाव को व्यक्त करने वाली उपयुक्त शब्दावलि का चयन भी काव्य-सौंदर्य का महत्वशाली अंग हो जाता है। अतएव जैसा ऊपर कहा है, 'रास-पचाध्यायी' मे कथा की कमी के कारण पाठक का ध्यान कथा की ओर न जाकर भावो

और मनोहर दृश्यवर्णनों की ओर ही आकृष्ट होता है। अब देखना यह है कि कवि ने दृश्य-वर्णन तथा भावव्यंजना में कितनी काव्य-पटुता का परिचय दिया है। साथ ही यह भी प्रश्न उठता है कि 'कवि अपनी भाषा शैली को हृदयग्राही बनाने में कितना सफल हुआ है।' हमें 'रासपंचाध्यायी' को इसी कसौटी पर कसना है।

## 'रासपंचाध्यायी' में वर्णन

काव्य में वर्णन और वस्तुकथन का एक-दूसरे से घनिष्ट संबंध है। स्वतंत्र वर्णनों में भी कथातत्व का कुछ-कुछ समावेश अवश्य रहता है। यात्रा, त्यौहार, आदि के वर्णनों में कथा का अंश कम रहता है परंतु कथातत्व की आवश्यकता दृश्यों के सिलसिला मिलाने में पड़ ही जाती है उधर कथानक में तो वर्णन भिन्न-भिन्न प्रसंगों का अंग ही हुआ करता है। यह आवश्यक है कि कथा-प्रधान काव्य में वस्तुकथन की पटुता अधिक हो, और वर्णन-प्रधान काव्य में वर्णन की रोचकता अधिक हो। वर्णनात्मक काव्य के विषय का क्षेत्र, चाहे वर्णन स्वतंत्र रूप में हो, चाहे कथानक के अंतर्गत उस के अंग रूप में, बहुत विस्तृत है। दृश्यमान जगत, अथवा प्रकृति के समस्त पदार्थ, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि तथा उन का क्रिया-कलाप, मानव-जीवन में घटने वाली समस्त घटनाएं आदि वर्णनात्मक काव्य का विषय बन सकती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जो वस्तु और घटना हमारे भावों का आलंबन अथवा उद्दीपन होती है वे सब वर्णनात्मक काव्य का विषय बन सकती हैं। इस प्रकार कथानक में आने वाले वर्णन के भी दो रूप होते हैं, पहला आलंबन विभाव रूप और दूसरा उद्दीपन विभाव रूप। 'रासपंचाध्यायी' में इन दोनों रूपों में वर्णन का समावेश हुआ है। आलंबन विभाव के अंतर्गत गोपी और कृष्ण का रूप-वर्णन तथा रासक्रीडा-वर्णन हैं। उद्दीपन रूप में, रासक्रीडा की घटनास्थली वृंदावन, रात्रि में शरद ऋतु की शोभा, प्रकृति का रंग-विरंगा शृंगार, तथा मुरली के मनोहर नाद का वर्णन है। वंदना के रूप में श्री शुकदेव जी का नखशिख-वर्णन भी, रास-रस की वृद्धि में सहायक और उस की ओर प्रेरित करने वाला होने के कारण, उद्दीपन रूप ही है।

श्री शुकदेव जी भागवत धर्म के प्रसिद्ध प्रचारक हैं और भगवान की कृपा के विशेष पात्र हैं। कवि ने पहले उन की वंदना करना ही उचित समझा है। इस वंदना

में कवि ने श्री शुकदेव जी के उस रूप का वर्णन किया है जो भक्तिरस में पूर्णतया मग्न है। उन के नेत्र भगवान की निस्सीम कृपा से विभोर हैं, वे हरि की लीला के रस में सदैव मग्न रहते हैं, उन का दैदीप्यमान ललाट सूर्य के समान चमकता हुआ भक्ति के प्रतिबंध रूपी अंधकार को नष्ट करता है। बड़े-बड़े मुनीश्वर उन के चरण कमलों की भ्रमरवत् सेवा करते हैं। उन के वक्षस्थल की शोभा हृदय में स्थित भगवान कृष्ण की रूपराशि का प्रकाशन कर रही है। प्रेमरस-आसव के पान से छके और अलसाए उन के नेत्रों का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

> कृष्ण रंग रस अयन नयन राजत रतनारे,
> कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूमघुमारे।

उद्दीपन रूप वर्णन में कवि ने रास के पूर्व की घटना-स्थली तथा रासानुकूल-वातावरण का चित्र अंकित किया है। वृंदाबन में पुष्प खिला कर, वृक्ष और लतादि प्रफुल्लित हो रहे हैं। लहरों के दृश्य-रूप में स्वच्छ-जल-धारिणी यमुना अठखेलियां करती हुई अल्हड़पन से चल रही है। शरद ऋतु की सुखदायिनी विमल चाँदनी कोमल स्निग्ध पत्तियों में छन-छन कर मल्लिका के पुष्पों की धवलता को परिपूर्ण कर रही है। जल-प्रपात छिटक-छिटक कर शीतल जल की नन्ही नन्ही बूँदों के रूप में सुख की वर्षा कर रहा है। प्रत्येक वस्तु वृंदाबन में, भविष्य में आने वाले आनंद के पूर्वानुभव से अपनी-अपनी रुचि तथा योग्यतानुसार प्रफुल्लता दर्शित कर रही है। कवि के शब्दों में उल्लास पूर्ण वातावरण इस प्रकार है—

> अब सुंदर श्री वृंदाबन को गाय सुनाऊं,
> सकल सिद्धिदायक पै सब ही बिधि सिधि पाऊं।
> देवन में श्री रमारमन नारायण प्रभु-जस,
> कानन में श्री वृंदाबन सब हित शोभित जस।
> अमृत फुही सुख गुहीं सुहीं अति परत रहत नित,
> रास रसिक सुंदर-प्रिय के श्रम दूर करन हित॥
> थलज जलज झलमलत ललित बहु भँवर उड़ावें,
> उड़ि उड़ि परत पराग कछू छवि कहत न आवें।

श्री जमुना जी प्रेम-भरी नित बहत सुगहरी,
मणि मंदिर दोउ तीर उठत छबि अद्भुत लहरी ।
या बन की बर बानक या बन ही बन आवै,
सेस महेस सुरेस गनेसहु पार न पावै ।।

शरद की रात्रि में वृंदावन की शोभा और भी बढ गई है। इतना ही नहीं वरन् चंद्रोदय ने रासरस-पान की उत्सुकता को उन्मत्त बना दिया है—

जदपि सहज माधुरी विपिन सब दिन सुखदाई,
तदपि रँगीली सरद समै मिलि अति छबि छाई ।
छवि सों फूले फूल अवर अस लगी लुनाई,
मनो शरद की छपा छबीली बहसन आई ।
मंद मंद चलि चारु चंद्रमा अस छवि छाई,
उझकत है जनु रमारमन पिय कौतुक आई ।।

उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने बड़ी सुंदर कल्पना के चित्र खींचे हैं। कवि की यह कल्पना कि चंद्रमा वृक्ष की पत्तियों की ओट से झाँक कर गोपी-कृष्ण रास के कौतुक को देखने की प्रतीक्षा में है, रासरस की वृद्धि करने के अतिरिक्त पाठक को काव्यरस से भी मुग्ध करती है। ऐसी अनेक सुखद उत्प्रेक्षाओं से नंददास की काव्य-पटुता का परिचय मिलता है।

कवि ने प्रकृति को रास की घटना-स्थली का रंगमंच बनाया है। गोपी और कृष्ण, रास आरंभ करने के पहले, यमुना के किनारे जाते हैं। वहां की शोभा अपूर्व है। कवि कहता है—

सुभ सरिता के तीर धीर बलबीर गये तहं ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहं ।।
कुसुम धूरि धूंधरी कुंज छवि पुंजन छाई ।
गुंजत मंजु अलिंद बेनु जनु बजत सुहाई ।।
इत महकत मालती चारु चंपक चित चोरत ।
उत घनसार तुसार मिली मंदार झकोरत ।।

इत तुलसी छबि हुलसो लांछत परिमल पूटें
उत कमोद आमोद मोद भरि भरि सुख लूटें ॥

फूलन माल बनाय लाल पहरत पहरावत ।
सुमन सरोज सुधावर ओज मनोज बढ़ावत ॥
उज्वल मृदुल बालुका कोमल सुभग सुहाई ।
श्री जमुना जी नित तरंग करि यह जु बनाई ॥

रास करते-करते कृष्ण थोडी देर के लिए छिप जाते है। गोपिकाएं उन्हें ढूंढती हैं। जब वे उन्हे नही पाती तो वे उन्मत्त हो उठती है। कृष्ण को ढूंढते समय वे वन के वृक्ष लता, पशु पक्षी सभी से पूछती हैं "कही किसी ने कृष्ण तो नही देखे। इस स्थल पर प्रकृति मानव-भावो से आक्रांत दिखाई गई है। भाव को तीव्र करने के लिए प्राय. सभी भाषाओ के कवियो ने प्रकृति को मनुष्य के भावो तथा व्यापारो से आक्रात और उन मे सहयोग देने वाली दिखाया है। नंददास ने इस प्रकृति-संबोधन मे भागवत का आधार लिया है।

कृष्ण समस्त सौंदर्य तथा शोभा की खान है, अस्तु प्रत्येक सुदर वस्तु उन की छाया-मात्र है। इस सबंध के अनुसार प्रत्येक सुंदर वस्तु कृष्ण का कुछ पता अवश्य दे सकती होगी। ऐसी ही अटपटी युक्तियो के आधार पर गोपिया प्रकृति की प्राणहीन वस्तुओ से आशाजनक उत्तर पाने का अनुमान करती है। परतु अंत मे एक-एक कर के सब से निराशा होती चलती है। इस आशा और निराशा के झूले मे झूलती हुई गोपियो का चित्र बडा सुदर बन पडा है।

बिरहाकुल ह्वै गईं सबै पूछत बेली बन ।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरहीजन ॥
हे मालति हे जाति जूथ के सुनि हित दे चित ।
मानहरन मनहरन लाल गिरधरन लखे इत ॥

हे मंदार उदार बीर करबीर महामति ।
देखे कहुं बलबीर धीर मनहरन धीरगति ॥
पूछोरी इन लतन फूलि रहीं फूलन जोई ।
सुंदर पिय के परस बिना अस फूल न होई ॥

हे सखि ये मृग बधू इन्हें किन पूछहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन अबहि कहुं देखे हैं हरि ॥

## प्रकृति-वर्णन

हिंदी के प्राचीन कवियो ने स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन की ओर कम ध्यान दिया है। प्रबंध-काव्यो मे प्रकृति-वर्णन बहुत थोडा है। उद्दीपन विभाव की दृष्टि से, जैसे संयोग अथवा वियोग श्रृंगार के अंतर्गत बारहमासा, षड्ऋतु-वर्णन, कोकिल, मोर, पपीहे का बोलना आदि, अथवा घटना-स्थली के चित्र रूप मे, प्रकृति का वर्णन अवश्य हुआ है, और इस दृष्टि से यह वर्णन हिंदी मे प्रचुर मात्रा मे है। ऐसे वर्णनो मे कवियो की निरीक्षण शक्ति सूक्ष्मदर्शिता का परिचय मिलता है। परंतु कवि के हृदय में अथवा मनुष्य मात्र के हृदय मे रागात्मिका वृत्ति को जाग्रत करने वाला स्वतंत्र वर्णन बहुत न्यून मात्रा मे है। संस्कृत कवियो ने प्रकृति के भिन्न-भिन्न व्यापारो और पदार्थो के बडे सूक्ष्म निरीक्षण के साथ मनोरम चित्र खीचे है। उद्दीपन विभाव रूप मे जो वर्णन हिंदी मे मिलता है, उस की हिंदी काव्य मे एक परंपरा सी बँधी दीखती है। लगभग सभी कवियो ने एक-सी प्राकृतिक वस्तुओ का वर्णन संयोग श्रृंगार अथवा वियोग श्रृगार के भीतर किया है। परंतु इस परंपरा मे जड़ता नहीं है। इसी के भीतर कवियो ने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। नंददास ने भी संस्कृत काव्य से आई प्राकृतिक वस्तुओ का प्रयोग अपने काव्य मे किया है। प्रकृति की वस्तुओं का वर्णन अलंकारो के प्रयोग के साथ अवर्ण्य रूप अथवा उपमान रूप में भी आता है। प्रकृति की वस्तुओ का इस प्रकार का प्रयोग दो दृष्टियो से आता है, एक स्वरूपबोध के लिए और दूसरा भाव तीव्र करने के लिए। नंददास ने प्रकृति का प्रयोग, घटना-स्थली रूप मे, उद्दीपन रूप मे, तथा स्वरूपबोध और भाव तीव्र करने की दृष्टि से अलंकार रूप मे, किया है। कथानक के बीच अथवा पृथक् रूप मे प्रकृति का स्वतंत्र रागात्मक वर्णन नंददास ने भी नहीं किया।

## कृष्ण-गोपी रूपवर्णन

रासलीला के वर्णन मे कवि ने रास को श्रीमद्भागवत की तरह एक आध्यात्मिक रूप दिया है। इस लिए कृष्ण और गोपियो के रूप-सौंदर्य के वर्णन में कवि की धार्मिक

वृत्ति प्रधान है परंतु कृष्ण के जिस रूप का वर्णन यहां कवि ने किया है वह शृंगार प्रधान है, क्योंकि रास ऐसे शृंगारमय व्यापार मे यही रूप संगत है। इस लिए अपने ध्येय को दृष्टि मे रख कर कवि काव्य के बीच मे कृष्ण के लोकोत्तर शृंगार रूप की याद दिलाता चलता है। यह स्पष्ट है कि कवि को भय है कहीं पाठक कृष्ण को साधारण लौकिक नायक समझ कर रासक्रीड़ा को लौकिक शृंगार-लीला न समझने लगें। इस वर्णन मे कृष्ण का पूर्ण नखशिख वर्णन नहीं है। साधारण नायक की दृष्टि मे वर्णन बहुत थोड़ा है। इसी प्रकार गोपिकाओं के वर्णन में भी आध्यात्मिक रूप अधिक विशद है।

## कृष्ण का रूप

अद्भुत सांवल अंग बन्यो अद्भुत पीतांबर,<br>
मुकुट धरे सिंगार, प्रेम अंबर ओढ़ें हरि।<br>
बिलुलित उर बनमाल लाल उर चलत चाल वर,<br>
कोटि मदन की भीर उठत पुनि गिरत चरन पर।<br>
गल मोतिन की माल ललित बनमाल धरें पिय,<br>
मंद मरुत बस पीत बसन फरकत करखत हिय॥

कृष्ण की मुरली का शब्द सुन कर कृष्ण-प्रेम मे उन्मत्त गोपिकाएं कृष्ण-मिलन को उत्सुक हो उठती है। वे घरबार और लोक की लाज छोड़ कर रात्रि मे ही कृष्ण के पास वंशीनाद के सहारे-सहारे चल पड़ती है। उस समय का वर्णन कवि ने बड़ा सजीव किया है।

चलत अधिक छवि फबित स्रवण मनि कुंडल झलकें।<br>
संकित-लोचन चपल ललित जुत बिलुलित अलकें॥<br>
कहुं दिखियति कहुं नाहिं सखी बन बीच बनी यों।<br>
बिजुरिन की सी छटा सघन बन मांझ चली जों॥<br>
आय उमगि सों मिलीं रंगीली गोपबधू अस।<br>
नंद-सुवन सागर-सुंदर सों प्रेमनदी जस॥

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, इस वर्णन मे भी गोपियों के आध्यात्मिक रूप की प्रचुरता है।

## रासवर्णन

काव्य के लिए रास का विषय लेना ही किंचित् साहस की बात है क्योंकि यह विषय अनेक बड़े कवियो ने चुना है। नंददास अपनी कल्पना की उड़ान और शब्दचयन मे किसी से पीछे नही रहे है, उन का शब्द-चयन माधुर्य और प्रसाद गुणो से संपन्न है। गोपी-कृष्ण की रासलीला का वर्णन कवि ने बडा सजीव किया है। रासमंडल मे गोलाकार रूप मे गोपिया हैं, और बीच मे कृष्ण नाचते है। नाचने मे पैरों की 'पटक,' हाथो की 'मटक', और शरीर के मोड-तोड़ मे प्रदर्शित हावभाव के चित्र कवि ने ज्यों के त्यो अंकित कर दिए हैं। नाचने की भिन्न-भिन्न स्थितियों मे जो भाव अनुदित होते है, प्रयुक्त शब्दो का उच्चारण उन्ही भावों तथा ध्वनियो की ओर संकेत करता है। यह संपूर्ण रास-वर्णन एक विशद शब्द चित्र बन गया है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि गोलाकार नाचते हुए गोपी-कृष्ण मानो नव मरकत और कनक मणियो की माला है, जो वृंदावन को पहना दी गई है। निम्न-लिखित अवतरण इस नाच के वर्णन का परिचय देते है—

> नूपुर कंकन किंकिन करतल मंजुल मुरली,
> ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली।
> मृदुल मधुर टंकार ताल झंकार मिली धुनि,
> मधुर जंत्र की तार भंवर गुंजार रली पुनि।
> तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कर तारन की,
> लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की॥
> सांवरे पिय के संग लसत यों ब्रज की बाला,
> जनु घन मंडल मंजुल विलसित दामिनि माला।
> छवि सों निरतन लटकन मटकनि मंडल डोलनि,
> कोटि अमृत सम मुसकनि मंजुल ताथेई बोलनि।

गोपी-कृष्ण इस रास में इतने उन्मत्त है कि एक दूसरे के वस्त्र मे वस्त्र, और आभूषण मे आभूषण उलझ गए है।

हार हार में उरभि उरभि बहिया में बहिया।
नील पीतपट उरभि उरभि बसर नय महिया ।।

कुजो का रास फिर जलक्रीडा मे परिणत हो जाता है। इस जमुनाजल-क्रीड़ा का वर्णन भी कवि ने मनोहर और रसात्मक ढग से किया है।

इहि विधि विविध हास सुख कुज सदन के,
चले जमुन जल क्रीडन क्रीड़न कोटि मदन के।
धाय जमुन जल धंसे लसे छवि परत न बरनी,
बिहरत मनु गजराज संग लिये तरुनी करनी।

छिरकत है छल छैलि जमुन जरा अजुलि भरि भरि।
असन कमल मंडली फाग खेलत रस रंग भरि ।।
चलत दृगंचल चंचल अचल में झलकत अस।
सरस कनक के कंजन खंजन जाल परत जस ।।
जमुना जल में दुरि मुरि कामिनि करत कलोलें।
मानों नव घन मध्य दामिनी दमकत डोलें ।।

भीजि वसन तन लिपटि निपट छवि अंकित है अस,
नैननि के नहि बैन, बैन के नैन नही जस ।।

इन सब वर्णनो को देखने से ज्ञात होता है कि नददास की, वर्णन द्वारा चित्र अकित करने की शक्ति महान है।

## भाव-चित्रण

भाव-चित्रण मे कवि का ध्येय वस्तुओ के बाह्य आकार का रूप अंकित करना नही होता, वरन् वस्तुओं अथवा घटनाओ के ससर्ग से जो भाव कवि के अथवा कथानक मे वर्णित पात्रो के हृदय मे उठते है, उन की अनुभूति का रूप अकित करना होता है। जिन भावो से पाठक का हृदय समानुभूति मे मग्न हो जाता है उन के भावचित्र काव्य की दृष्टि से सफल समझे जाते है। उन्ही चित्रो मे रसानुभूति भी होती है। यह अनुभूति

कवि की अभिव्यक्ति के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार की होती है। वर्णन की तरह भाव-चित्रण भी मुक्तक रूप मे होता है और कथानक के भिन्न-भिन्न भावात्मक स्थलो मे भी। कृष्णभक्त कवियो की रचनाओ मे और विशेष रूप से सूरदास के काव्य मे इन भावचित्रो के आध्यात्मिक और लौकिक दोनो रूप अंकित हुए है। नंददास के भाव-चित्र सूरदास की तरह प्रचुर और विशद तो नही हैं, परन्तु फिर भी उन्हे छोटे-छोटे प्रसंगों के भीतर भाव के प्रभावपूर्ण चित्र खीचने में प्रशंसनीय सफलता मिली है।

'रासपंचाध्यायी' का मुख्य विषय प्रेमरस है, जिस के संयोग और वियोग दोनो पक्षो की कुछ दशाओ का चित्रण है। गोपियो के विरह मे जो गहनता है वह लौकिक काव्य की दृष्टि से प्रसंग की परिस्थिति मे चाहे खटकती हो परंतु भक्ति-भाव और वल्लभ-सिद्धात की दृष्टि से उस मे कोई असंगति नही है। गोपियो के साथ नाचते-नाचते श्रीकृष्ण थोडी देर के लिए छिप जाते है, गोपियो को बस इतनी ही देर मे पूर्ण विरह दशा आ घेरती है, और वे उन्मत्त की तरह प्रलाप करने लगती है।

इस असंगति का समाधान कवि स्वयं 'रासपंचाध्यायी' के द्वितीय अध्याय के आरभ मे करता है कि प्रेम-भक्ति मे जिन गोपियो को अथवा भक्तो को अपने प्रिय से एक पलमात्र का बिछुड़ना कोटि युग के समान लगता है उन का प्रिय यदि घर की, बन की, अथवा कुंज की ओट मे हो जाय तो उन के दुख की गणना नही हो सकती—

**जिन को नैन निमेष ओट कोटिन युग जाहीं,**
**तिन कौं घर, बन, कुंज ओट दुख गनना नांहीं।**

उन के लिए वास्तव में उत्कट विरह दशा मे ही अहंकार की संज्ञा छुटती है, तभी आत्मविस्मृति होती है। श्री वल्लभाचार्य का सिद्धात है कि कृष्ण-संयोग की लालसा इतनी उत्कट हो जाय कि प्रत्येक क्षण मे विरह-दशा की अवस्था बनी रहे और इस विरह-दशा मे पूर्ण आत्म-समर्पण और आत्म-विस्मृति हो जाय तभी भगवान् मिल सकते है। कृष्णभक्त कवियो ने जिस विरह-वेदना का वर्णन किया है वह काव्य-कथानक की परिस्थितियो के बीच देखने की वस्तु नहीं है। वास्तव मे यदि काव्य की दृष्टि से देखा जाय तो पंडित रामचद्र शुक्ल के शब्दों मे "सूर का (सभी कृष्णभक्त कवियों का) वियोग-वर्णन वियोग-वर्णन के लिए ही है, परिस्थिति के अनुरोध से नही।" गोपियो का विरह

लौकिक प्रम का विरह नहीं है उस म विरह है जीवात्मा का परमात्मा से इस लिए भक्तिसाधन की दृष्टि से विरह की परिस्थिति पूर्ण रूप से विद्यमान है। यही दृष्टिकोण श्रीमद्भागवत में भी लिया गया है जो समस्त कृष्णभक्ति के काव्य का मूल-श्रोत है।

नददास ने रास-प्रसंग के छोटे से दायरे में संयोग की उन्मत्तता और वियोग की वेदना का सुदर कवित्वमय वर्णन किया है।

एक ओर गोपिया प्रेमोन्मत्त हो कृष्ण की मुरली के शब्द के सहारे कृष्ण-मिलन को अभिसारिका रूप मे जाती है, दूसरी ओर कृष्ण गोपियों की प्रतीक्षा मे उत्कठित खडे हैं। कवि ने यहा गोपियो के अभिसारिका रूप मे बलवती सयोग इच्छा का तथा कृष्ण के उत्कठित रूप में प्रेमी की अनिश्चित भावनाओं का सफल चित्र खीचा है।

मुरली का मधुर नाद गोपियो को कृष्ण-मिलन के लिए अधीर कर देता है। और वे कल्पना में पहले सयोग सुख का अनुभव करती है।

पुनि रंचक धरि ध्यान पिया परिरंभ दियो जब,  
कोटि स्वर्ग सुख भोग छिनहि मंगल कीनो तब।

गोपियो के अभिसार मे अभिसारिका का वैसा परकीया रूप नहीं है जैसा कि लुक छिप कर जाती हुई अभिसारिका का रूप हिंदी के शृगारिक कवियो ने खीचा है। यहा गोपिकाएं निर्भीक चपलता के साथ सरिता की तरह उमड़ती हुई अपने प्रिय के पास जाती है।

ते पुनि तिहि मग चलीं रँगीली तजि गृह संगम।  
जनु पिंजरन ते छुटे उड़े नव प्रेम विहंगम॥  
चपल अधिक छवि फबित श्रवण मनि कुंडल झलकैं।  
संकित-लोचन चपल ललित जुट बिलुलित अलकैं॥  
आय उमगि सो मिलीं रंगीली गोप बधू जस।  
नंद-सुवन सागर-सुंदर सों प्रेम नदी जस॥

उधर कृष्ण गोपियो की प्रतीक्षा मे खडे है। जब उन्हे गोपियों के नूपुरों का शब्द सुनाई पडता है. तब उन की संपूर्ण इंद्रिय-शक्तिया कानों मे केंद्रीभूत हो जाती है। और

जब वे दिखाई देने लगती है तो कृष्ण का ध्यान सब ओर से छूट कर केवल दृष्टि मे संलग्न हो जाता है। इस 'इंतजारे यार' की स्वाभाविक तल्लीनता का वर्णन कवि ने थोडे से शब्दो में बडा सजीव किया है।

जिन के नूपुर नाद सुनत जब परम सुहाये।
तब हरि के मन नयन सिमिटि सब श्रवनन आए ॥
रुनुक झुनक पुनि भली भांति सों प्रगट भई जब।
प्रिय के अंग अंग सिमट मिले हैं रसिक नयन सब ॥
सब के मुख अवलोकत पिय के नैन बने यों।
स्वच्छ सुंदर ससि मांझ अरबरे ह्वै चकोर यो ॥

परंतु संयोग को सुखद आनंद शीघ्र ही नहीं मिलता। जब गोपियां कृष्ण के पास पहुँच जाती है, उस समय वे उन की प्रेम-परीक्षा लेते हैं और उन से अपने घर मे रह कर स्त्रियो के पातिव्रतधर्म के पालन करने को कहते है। कृष्ण के इस उपेक्षा भाव को पहले गोपियो ने प्रणय-प्रेम का विनोद समझा।

लाल रसाल के बंक बचन सुनि चकित भई यो।
बाल-मृगन की माल सघन बन भूलि परी ज्यों ॥
मंद परस्पर हंसी लसी तिरछी अंखियन अस।
रूप उदधि इतराति रँगीली मीन पांति जस ॥

उपर्युक्त पंक्तियो मे आपस मे एक दूसरे की ओर शंकित भाव से तथा तिरछी आँखो से देखती हुई गोपियो के विनोद के चित्र को 'रूप उदधि इतराति रंगीली' वाली उत्प्रेक्षा ने और भी चमका दिया है। वास्तव मे सफल कविता वही है जो थोडे से चुने हुए शब्दो मे आनंद के उद्रेक के साथ बहुत-सा भाव प्रकट करे। उच्च कोटि के कवियो की वर्णन-शैली मे वह मोहिनी शक्ति होती है जो भाव और उस के आधार आलंबन आदि के सजीव चित्रो द्वारा, तथा बिना किसी क्लिष्ट कल्पना के हृदय मे रस उत्पन्न कर दे। भाव के अनुकूल शब्दो का प्रयोग और शब्दों द्वारा भाव का संकेत नंददास के वर्णन की विशेपता है और वे उपर्युक्त कसौटी पर खरे उतरते है।

जब गोपिकाओं ने कृष्ण की उपेक्षा का बढा हुआ रूप देखा तो उन का प्रणय-विनोद का अनुमान शंका और चिंता में परिणत हो गया। उस समय वे संयोग ही में वियोग का अनुभव करने लगीं।

जब पिय कह्यो घर जाउ अधिक चिंता चित बाढ़ी।
पुलरिन की सी पाँति रह गईं इकटक ठाढ़ी॥
दुख सों दबि छबि सींव ग्रीव नै चली नाल सी।
अलक अलिन के भार अमित जनु कमलमाल सी॥
हिय भरि विरह हुतास उसासन संग आवत झर।
चले कछुक मुरझाय मधुभरे अधर बिंबवर॥
तब बोलीं ब्रजबाल लाल मोहन अनुरागीं।
सुंदर गद गद गिरा गिरधरहिं मधुरी लागीं॥

इन पंक्तियों में स्तंभ, वैवर्ण्य, सुरभंग, आदि सात्विक अनुभावों द्वारा भावी वियोग की आशंका से जनित चिंता, मलिनता, उच्छ्वास और संताप की विरह-दशाओं का चित्रण किया है। गोपियों के दृढ संकल्प को देख कर कृष्ण का हृदय द्रवित हो जाता है और वे गोपियों के साथ प्रेम लीला आरंभ कर देते हैं।

इस संयोग-वर्णन को यदि लौकिक दृष्टि से देखा जाय तो कहना पडता है कि कुछ अश्लीलता अवश्य आ गई है।

परिरंभन मुख चुंबन, कच कुच नीबी परसन।
सरसत प्रेम अनंग रंग नवघन ज्यों बरसन॥

परन्तु इस वर्णन के बाद ही कवि ने इस रति-रूप को आध्यात्मिक पक्ष और धार्मिक पवित्रता की ओर मोड़ दिया है। गोपी-कृष्ण के सम्मुख कामवासना की समग्र सामग्री उपस्थित थी और रति-भाव के वाह्य शारीरिक विकार भी उपस्थित हो गए थे, परन्तु गोपी और कृष्ण ने काम को जीत लिया।

तब आयो वह काम पंचसर कर है जाके।
ब्रह्मादिक को जीति बढ़ि रह्यो अति मद ताके॥

**निरखत ब्रज बधु संग रंग भीने किसोर तन।**
**हरि मन्मथ को मथ्यो उलटि वा मन्मथ को मन ॥**

यह भी गोपियों की एक परीक्षा थी, मानों लौकिक वासना की अग्नि में वे अछूती पार हो गई। 'सिद्धांतपंचाध्यायी' में कवि ने इस शृंगार-वर्णन में लौकिक काम की विद्यमानता पर विचार प्रकट किए हैं।

इस संयोग के बाद रास करते-करते कृष्ण थोड़ी देर के लिए छिप जाते हैं। यह गोपियों की दूसरी प्रेम-परीक्षा थी। थोड़ी देर की विरह-दशा का वर्णन कवि ने बड़े मार्मिक शब्दों में किया है। हम पहले कह आए हैं कि काव्य-दृष्टि से असंगत होते हुए भी यह प्रसंग नंददास के धार्मिक सिद्धांतों का भली-भाँति प्रतिपादन करता है। नंददास की "धार्मिक अनुभूति" में विरह का प्रमुख स्थान था, इसी कारण उन्हों ने अपनी रचना 'विरहमंजरी' में विरह को प्रधानता देते हुए उसे चार प्रकार का बताया है, प्रत्यक्ष विरह, पलकांतर विरह, बनांतर विरह, और देशांतर विरह। ध्यान रहे कि प्रत्येक तत्कालीन श्रेष्ठ कवि की भाँति धार्मिक अनुभूति की पूर्ण अभिव्यंजना ही नंददास की कविता का मुख्य उद्देश्य था।

## 'रासपंचाध्यायी' में वर्णित रस

'रासपंचाध्यायी' में नव रसों में से प्रधान रस शृंगार है जिस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का संक्षेप में वर्णन है। परंतु नंददास जी इस शृंगार कथानक को लौकिक रति का उत्पादक नहीं कहते, वे तो इसे ब्रह्म-प्राप्ति की "परा विद्या" बताते हैं। कवि की दृष्टि से अथवा भक्तों की अध्यात्मिक दृष्टि से 'रासपंचाध्यायी' में आध्यात्मिक शृंगार भाव है, और माधुर्य प्रेमरस है जो अंत में शांत रस का उद्रेक करता है। परंतु लौकिक काव्य-समीक्षा की भाषा में इसे रतिभाव और शृंगार रस ही कहना होगा।

रासलीला गोपी-कृष्ण का विनोद सम्मेलन है, इस लिए इस प्रसंग में हास-परिहास की भी गुंजाइश है। परंतु नंददास ने हास्यरस का चित्रण नहीं किया है। रास-वर्णन में एक स्थान पर कवि कहता है—

**बैठे तहँ सुंदर सुजान सब सुख निधान हरि।**
**बिलसत विविध विलास हास रस हिय हुलास भरि ॥**

इन पंक्तियों में कवि ने कहा है कि गोपी-कृष्ण अनेक प्रकार के विलास कर हास्य रस का आनंद ले रहे हैं। हास्य भाव की पूर्ण व्यंजना उस के आलंबन, उद्दीपन विभाव, उस के अनुभाव तथा संचारी भावों के चित्रण से होती है, तभी पाठक अथवा श्रोता की कल्पना संपूर्ण हास्य दृश्य उपस्थित करती है। इस विशद रूप में हास्य-रस का चित्रण नंददास ने नहीं किया है।

काव्य-रस उत्पन्न करने और उस में मन को रमाने के लिए अद्भुतता का भाव भी आवश्यक है। काव्य में बिना वैचित्र्य के आए पाठक को अपनी वास्तविक लौकिक परिस्थिति का विस्मरण और मन का आकर्षण उस स्थिति में नहीं होता, जिस स्थिति में पहुँच कर वह काव्यानंद का अनुभव करता है। वैचित्र्य-वर्णन काव्य के अद्भुत रस से कुछ भिन्न होता है। इस की विलक्षणता, आनंद का उद्दीपक हेतु बन कर, काव्य-अलंकार की श्रेणी में गिनी जाती है। अद्भुत रस के पूर्ण वर्णन में आश्चर्य से युक्त किसी घटना अथवा व्यापार का चित्रण आलंबन रूप में होना आवश्यक है। वास्तविक अद्भुत घटना का वर्णन स्वतंत्र अद्भुत रस की गणना में किया जाता है। 'रासपंचाध्यायी' में ऐसे अद्भुत रस का वर्णन तो नहीं है परंतु काव्य-चमत्कार और अद्भुत उक्तियां इस वर्णन में बहुत आई हैं। रास-रस इतना अधिक है कि कवि की कल्पना इस रस की सीमा तक नहीं पहुँच सकती। इस रास के आनंद का प्रभाव भी केवल मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है, पशु-पक्षी, वृक्ष और पत्थर सभी इस से प्रभावित हो रहे हैं। पत्थर पिघल कर पानी हो गया और पानी जम कर पत्थर हो गया।

> **अद्भुत रस रह्यो रास गीत धुनि सुनि मोहे मुनि।**
> **सिला सलिल ह्वै चलीं सलिल ह्वै रह्यो सिला पुनि॥**

अंत में कवि इस अद्भुत रस के वर्णन में अपने को असमर्थ पाता है "नैनन के नहिं बैन बैन के नैन नहीं अस।"

'साहित्य-दर्पण' में एक प्रश्न उठाते समय लेखक ने कहा है कि मुनियों ने शांत रस उस रस को कहा है जहां न दुख न सुख, न कोई चिंता है न रागद्वेष है और न कोई इच्छा है। यह अवस्था वास्तव में मुक्त पुरुषों की होती है। मुक्त अवस्था में किसी प्रकार के लौकिक भाव, अनुभाव आदि नहीं होते। तब फिर रस कैसे उत्पन्न हो सकता

है ? शांत भाव में जिस सुख का अभाव बताया गया है वह लौकिक विषय-जन्य सुख है। शांत अथवा शम भाव में यही आध्यामित्क आनंद रस कहलाता है। इस रस का स्थायी भाव लौकिक विषय तथा लौकिक मनोवृत्ति से वैराग्य और भगवान के प्रति प्रेम है तथा तपोवन, वेदशास्त्र का पठन, सत्संग आदि उद्दीपन विभाव है, और स्वयं साक्षात् भगवान इस के आलंबन विभाव है। संसार की अनित्यता, पश्चात्ताप, मन में प्रबोध आदि इस रस के संचारी है। 'रासपंचाध्यायी' में नंददास जी की धार्मिक वृत्ति प्रधान है। कृष्ण लौकिक नायक नहीं है, और न गोपियां लौकिक नायिका है। कृष्ण तो साक्षात् ब्रह्म है, उन के संबंध में जितने भी भाव है, वे सब आध्यात्मिक है। गोपी-कृष्ण के रूप-वर्णन में कवि ने उन के सिद्ध आत्मा और परमात्मा रूप का बोध कराया है। रास के वर्णन में भी कवि की कृष्णभक्ति प्रधान रूप से लक्षित होती है। कवि का हृदय कृष्ण-भक्ति में मग्न परमात्मा के सामीप्य का अनुभव करने लगता है।

> **मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोर मुकुट की।**
> **सदा बसो मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥**

ग्रंथ का माहात्म्य वर्णन करते हुए कवि ने इस रासलीला को नित्य और आध्यात्मिक शांति का देने वाला बताया है। यह रासलीला वास्तव में एक अन्योक्ति है, जिस में कृष्ण परम ब्रह्म परमात्मा है, गोपियां सिद्ध आत्माएं है जो लौकिक विषयों को छोड़ कर परमात्मा के प्रेम की चरम सीमा को पहुँच चुकी है, और रासलीला आत्मा तथा परमात्मा का सामीप्य मिलन है। कवि ने इस भाव को अपने ग्रंथ 'सिद्धांतपंचाध्यायी' में और भी स्पष्ट किया है। 'रासपंचाध्यायी' में भी कवि की अनेक उक्तियां रास की शृंगारिकता को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ रही है।

> **निपट निकट घट में जो अंतर्यामी आहि।**
> **विषय विदूषित इंद्री पकरि सकै नहिं ताहि ॥**

लौकिक विषयों से विदूषित इंद्रियां अंतर्यामी परमात्मा को नहीं पहचान सकीं। कवि के सिद्धांतानुसार यह रास नित्य है।

> **नित्य रास रस मत्त नित्य गोपी जन वल्लभ।**
> **नित्य निगम जो कहत, नित्य नव तन अति दुल्लभ ॥**

जो यह लीला हित सों गावै सुनै सुनावै ।
प्रेम भक्ति सोइ पावै अस सब के जिय भावै ।।

यह उज्ज्वल रस माल कोटि जतनन करि पोई ।
सावधान होइ पहिरो अरु तोरो मत कोई ।।
श्रवन कीरतन ध्यान सार, सुमिरन कोटी पुनि ।
ज्ञान सार, हरि ध्यान सार, श्रुति सार, गुथी सुनि ।।
अघहरनी मनहरनी सुंदर प्रेम-बितरनी ।
नंददास के कंठ बसो नित मंगल-करनी ।।

यह 'रासपंचाध्यायी' 'मनहरनी' है क्योंकि इस में काव्य-रस है और 'अघ-हरनी' है क्योंकि इस मे आध्यात्मिक सुख देने वाला शात रस है । रासलीला के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन 'सिद्धांतपचाध्यायी' में और भी विस्तार से हुआ है ।

## 'रासपंचाध्यायी' में छंद

'रासपचाध्यायी' की रचना रोला छद में हुई है । रोला मात्रिक छंद होता है और उस मे चार चरण होते है । प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएं होती है ११ और १३ मात्राओ के बीच यति होती है । नददास जी गान विद्या मे निपुण थे । उन की छद-रचना मे भी उन के पदो के सगीत का-सा ही माधुर्य है । नददास के रोलाओ मे एक संगीतमयी लय रहती है जो भाव-जनित आनंद को द्विगुणित कर देती है । उन की काव्य-उक्तियो मे तो आनद है ही किन्तु उन की सगीतमयी भाषा और रोला छंद के प्रवाह मे भी कम आनंद नही है । 'रासपंचाध्यायी' का एक-एक शब्द इस प्रकार काव्यपटुता के साथ चुन-चुन कर रोला छद की लडियो मे पिरोया गया है कि जिस प्रकार मूँगे की सुमिरनी पर उँगली फिसलती चलती है उसी प्रकार जिह्वा भी एक शब्द से दूसरे शब्द पर सहज ही-सरकती चलती है । नंददास रोला छद लिखने के लिए प्रसिद्ध है । नंददास के पहले रोला छंद का प्रयोग सूरदास ने भी किया है ।

'रासपचाध्यायी' की छपी तथा कुछ हस्तलिखित प्रतियो में रोला छदों के बीच कुछ दोहे भी मिलते है जैसे प्रथम अध्याय मे नीचे लिखे दोहे है ।

श्री सुक रूप अनूप को क्यों बरनै कवि नंद ।
अब बृंदाबन बरनि हों जहं बृंदावन चंद ।।
श्री वृंदाबन चंद बन कछु छबि बरनि न जाय ।[1]
कृष्ण ललित लीला निमित धारि रह्यो जड़ताय ।।

दोहे प्रथम अध्याय में दो स्थानो पर, दूसरे अध्याय मे दो स्थानो पर और पाँचवे अध्याय मे एक स्थान पर मिलते है । हमारे विचार से ये दोहे प्रक्षिप्त है । इन दोहों का रोलाओ के बीच कोई क्रम नही है । 'रासपंचाध्यायी' के जिस प्रसंग का ये वर्णन करते है उस मे ये पुनुरुक्ति कारक है, उदाहरण-स्वरूप नीचे के दोहे और रोला मे एक ही भाव वर्णित है ।

दोहा — श्री सुक रूप अनूप को क्यों बरनै कवि नंद ।
अब बृंदाबन बरनिहों जहं बृंदाबन चंद ।।

रोला — अब सुंदर श्री बृंदाबन को गाय सुनाऊं ।
सकल सिद्धिदायक पै सब ही सब बिधि पाऊं ।।

'रासपंचाध्यायी' की बहुत सी हस्तलिखित प्रतियो मे ये दोहे नही मिलते । भाषा के विचार से इन दोहों के प्रक्षिप्त होने का अनुमान लगाना कठिन अवश्य है, फिर भी दोहो की भाषा मे वह पद-लालित्य नही है जो रोला छंदों की भाषा में है । इन दोहो मे कुछ दोहे ऐसे भी है जो अन्य कवियो की रचनाओ मे भी मिलते हैं । श्री ब्रजमोहनलाल द्वारा संपादित 'रासपंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय मे निम्नलिखित एक दोहा है—

सो हंसि हंसि एसें कह्यो सुंदर सब को राउ ।
हमरो दरश तुम्हें भयो अपने घर को जाउ ।।

यही दोहा अष्टछाप कवियो मे से एक भक्त कृष्णदास जी की 'रासपंचाध्यायी' मे इस प्रकार दिया है—

---

[1] 'रासपंचाध्यायी', पहला अध्याय, पृष्ठ ३, संपादक, श्री ब्रजमोहनलाल ।

**गोपिन सों हरि हसि कह्यो सुदर सब को राव ।**
**हमरो दरश तुम्ह भयो अपन घर को जाउ ॥[1]**

और भी नददास की 'रासपचाध्यायी' के दूसरे अध्याय मे निम्नलिखित दोहा है—

**पिया संग एकांसत रस बिलसति राधा नारि ।**
**कंध चढन हरि सों कह्यो यातें तजी मुरारि ॥**

यही दोहा कृष्णदास की 'पचाध्यायी' में निम्नलिखित रूप मे मिलता है—

**पिया संग एकांत रस बिलसे राधा नारि ।**
**कंध चढ़न प्रभू सों कह्यो याते तजी मुरारि ॥[2]**

इन कारणों से ज्ञात होता है कि 'रासपचाध्यायी' मे आए हुए दोहे नददास की कृति नही है ।

## 'रासपंचाध्यायी' की भाषा

काव्य-भाषा का सब से बड़ा गुण यह होता है कि भाषा मे भाव प्रकट करने की पूर्ण शक्ति है । यह शक्ति भाव के अनुसार शब्दों के चुनाव पर ही निर्भर रहती है । उपयुक्त शब्दो का प्रयोग भाव को एकदम सीधा पाठक के हृदय तक पहुँचा देता है । नददास की भाषा मे भाव के अनुसार शब्द-चयन का गुण प्रचुर मात्रा में है । रासलीला शृगार भाव पूर्ण है । इस लिए इस में मधुरावृत्ति के शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है । उदाहरण—

**मंद परस्पर हंसी लसी तिरछी अंखियन अस ।**
**रूप उदधि इतराति रँगीली मीन पाँति जस ॥**

इस पद्य मे एक-एक शब्द इस प्रकार चुन-चुन कर रक्खा गया है कि प्रत्येक शब्द

---

[1] वर्षोत्सव के कीर्तन (नित्य कीर्तन) पृष्ठ ३११, (प्रकाशक, लल्लूभाई छगन-लाल, अहमदाबाद) ।

[2] वही, पृ० ३१२

प्रसग के अनुकूल भाव को प्रकट कर रहा है। 'इतराना' शब्द बहुत अर्थगर्भित है। गोपियो के हृदय की संयोग अवस्था मे उमग, कृष्ण के प्रेम की दृढ प्रतीति, और उन की वक्रोक्ति पर अपना विनोद, इस एक शब्द से प्रकट हो रहा है। इस प्रकार के उदाहरण 'रास-पचाध्यायी' मे अनेक स्थलों पर मिलेगे। रास-क्रीड़ा मे भी गायन, वादन और नृत्यभाव के द्योतक शब्दो का प्रयोग हुआ है। जैसे—

> नूपुर कंकन किंकन करतल मंजुल मुरली।
> ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली।।
> तैसिय मृदु पद पटकनि, चटकनि करतारन की।
> लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।।

नंददास की भाषा का दूसरा गुण है मधुर और परिचित शब्दावली का प्रयोग। इस प्रकार के प्रयोग से भाव स्पष्टता का गुण 'रासपचाध्यायी' की भाषा मे निखर उठा है। इसी को काव्य-समीक्षा की भाषा में 'प्रसाद गुण' कहते हैं। प्रेममद से उन्मत्त नैनो के लिए "अलस कछु घूमघुमारे नैन", बनावट और शोभा के लिए "बानक", "लावण्य" के लिए "लुनाई" आदि शब्दों के घरेलू और सरल प्रयोगो ने 'रासपंचाध्यायी' की भाषा को भावपूर्ण प्रसादता का गुण दे दिया है। नंददास ने जिन सस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया है वे भी ब्रजभाषा के ढाँचे में ढले हुए हैं। संस्कृत भाषा से नंददास ने बहुत-सी शब्दावली ली है परंतु उस को ब्रजभाषा के उच्चारण मे रंग दिया है। जैसे "गुण" के स्थान पर "गुन", "योग" के स्थान पर "जोग", "क्षुधित" के लिए "छुदित", "शृंगार" के लिए "सिगार", "सूक्ष्म" के स्थान पर "सुच्छम" आदि। अष्टछाप के सभी कवियो ने ब्रजभाषा को सस्कृत शब्दावली से समृद्ध बनाया है। और उसे ब्रजभाषा का जामा सभी कवियो ने पहनाया है। वैसा ही नंददास ने भी किया है। खड़ीबोली में संस्कृत से ली हुई कुछ क्रियाओ मे 'करना' या 'होना' लगा कर क्रिया का रूप बनाया जाता है, जैसे, 'स्पर्श करना', 'दर्शित होना', 'आकर्षित करना' आदि। इन के स्थान पर नंददास ने सयुक्त क्रियाओ मे से 'करना' 'होना' सहकारी क्रियाओ को हटा कर क्रमश स्वतत्र कियाए बनाई है, यथा—'परस्यौ', 'दरस्यौ' और 'करषत' आदि।

काव्यमयी भाषा का एक गुण और हुआ करता है और वह है भाषा मे प्रवाह,

और भाव तथा नाद सौंदय का समन्वय नददास न म ऐसी ही माषा का प्रयोग किया है। उन की भाषा मे प्रवाह और नाद-सौंदर्य है। अनुप्रास के प्रयोग ने भाषा को और भी मधुर बना दिया है।

नंददास के समय मे कृष्णभक्ति का भारत में दूर-दूर तक प्रचार था। इस से भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग ब्रज मे जाया करते थे। इस से ब्रज के लोगो के विचार और भाषा पर अन्य-प्रातीय प्रभाव भी बहुत हुए। अष्टछाप के कवियों की भाषा पर पूर्वी हिंदी का प्रभाव भी मिलता है। नददास की पंचाध्यायी मे 'है' के स्थान पर 'अहै', 'ऐसो' के स्थान पर 'अस', तुम्हारे के स्थान पर 'तुम्हरे' और 'गउर' आदि पूर्वी हिंदी के प्रयोग आए हैं। इस ग्रथ मे कही-कहीं फारसी शब्दो का भी प्रयोग है, परतु यह प्रयोग बहुत थोडा है, जैसे—'लायक' शब्द।

कूर बचन जनि कहो नाहिं यह तुम्हरे लायक।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम संक्षेप मे कह सकते है कि 'रासपचाध्यायी' की भाषा माधुर्य और प्रसादगुण पूर्ण है। कही भी कर्णकटु शब्दों का प्रयोग नही हुआ। शब्दो को श्रुति-मधुर बनाने के लिए तोड़ा-मरोडा भी गया है परंतु इस तोड़-मरोड मे उन की मधुरता और प्रसादता का ह्रास नही होने पाया है। भाव के अनुकूल ललित भाषा के प्रयोग के आधार पर ही नददास के विषय मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि "और सब गढिया, नददास जडिया"।

## 'रासपंचाध्यायी' में अलंकारों का प्रयोग

अलकार भाषा-शैली के उत्कर्षवर्धक गुण कहे जाते है। वास्तव मे अलंकारो के प्रयोग से हम थोड़े से शब्दो मे बहुत-सा भाव व्यक्त करने मे समर्थ होते है। साथ में जो भाव व्यक्त होता है वह अलंकारिक उक्तियो द्वारा अधिक प्रभावयुक्त बना दिया जाता है। परतु इस का अर्थ यह कभी नहीं है कि भाव की अभिव्यक्ति को भूल कर कवि अलकारो के प्रयोग मे ही रह जाय। अलकार भाव के पीछे चलने वाले उपकरण मात्र है। यह भाषा का अलकार शब्द और अर्थ दो प्रकार का होता है और बहुधा काव्य मे दोनो का सहयोग काव्यानद की वृद्धि करता है। नंददास ने शब्द और अर्थ दोनो प्रकार

के अलंकारो के प्रयोग से अपने काव्य के उत्कर्ष को बढ़ाया है। शब्दालंकारो में 'रास-पचाध्यायी' में अनुप्रास का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। नंददास भाषा के 'जडिया' इसी लिए कहे जाते है कि उन्हो ने श्रुति-मधुर शब्दो का प्रयोग वर्णित भाव के अनुकूल किया है। 'रासपचाध्यायी' का एक भी छंद ऐसा नही है जो इस स्वाभाविक अनुप्रास की मधुरता से रहित हो।

अर्थालकारो में से 'रासपंचाध्यायी' मे उपमा अनन्वोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति का प्रयोग अधिक हुआ है। स्वरूप बोध कराने और भाव तीव्र करने के लिए नददास ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग विशेष रूप से किया है। नंददास की उत्प्रेक्षाओ की कल्पना वडी मार्मिक और प्रभावशाली होती है। उन में बे-सिरपैर की उडान और शब्दो की कलाबाजी नहीं है। अत मे अलंकारो के कुछ उदाहरण 'रासपंचाध्यायी' से उद्धृत करके इस लेख को समाप्त करता हूं।

उपमा : तब लीनी कर कमल योगमाया सी मुरली।
कोऊ प्रिय को रूप नैन भरि उर धरि आवत।
मधुमाखी ज्यों देखि दसों दिसि अति छबि पावत॥

रूपक : लोचन त्रिषित चकोरन के चित चोप बढ़ावत।

अनन्वयोपमा या बन की बर बानक या बन ही बन आवै।

सबधातिशयोक्ति : सेस महेस सुरेस गनेसहु पार न पावै॥

संदेह : जनो घन तैं बिछुरी बिजुरी मानिनि तनु काछें।
किधौं चंद सों ससि चंद्रिका रहि गई पाछें॥

उत्प्रेक्षा और रूपक : सुंदर प्रिय को बदन निरखि के को नहिं भूले।
रूप सरोवर मांझ सरस अंबुज जनु फूले॥

असंगत : जब पशु चारन चलत चरन कोमल धरि बन में।
सिल तृण कंटक अटकत कसकत हमरे मन में॥

विषम : कहं यह हमरी प्रीति कहां तुम्हरी निठुराई।

विभावना ज्यों चदन चद्रमा तपन सब सीतल करहीं ।
पिय विरही जे लोग तिनहि लगि आगि वितरहीं ।।

स्वभावोक्ति : पीत वसन बन माल धरे मंजुल मुरली हथ ।
मंद मधुर मुसिकान निपट मन्मथ के मन्मथ ।।

---

# सिद्ध भुसुकुपा

[ लेखक—श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ]

( १ )

सिद्ध भुसुकुपा की गणना प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में की जाती है और तिब्बत की सिद्ध-चित्रावली मे इन्हे क्रमानुसार ४१वां स्थान दिया गया है। श्री राहुल साकृत्यायन के अनुसार "कहते है इन्हीं का नाम शातिदेव भी था, इन की विचित्र रहन-सहन को देख कर राजा देवपाल ने एक बार 'भुसुकु' कह दिया और तभी से इन का नाम भुसुकु पड़ गया।"[1] और, इस प्रकार, वे 'भुसुकु' शब्द का कोई विशेष अर्थ बतलाते हुए नही जान पडते। परतु एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय मे सुरक्षित १४वीं ईस्वी शताब्दी की एक तीन पन्नों की हस्तलिखित प्रति के अनुसार इन का पूर्व नाम, वास्तव में, अचलसेन था, किंतु नालदा-विश्वविद्यालय में सर्वदा शातभाव से रहने के कारण, ये शातिदेव भी कहलाते थे और, चूंकि, खाते, पीते, सोते अथवा अपनी कुटी मे निवास करते समय, सदा इन का शरीर उज्ज्वल ही उज्ज्वल भासित होता था, इस लिए वहा के लोग उन्हे 'भुसुकु' भी कहने लग गए थे।[2] उक्त सोसाइटी मे ही सुरक्षित और ताड़पत्र पर लिखे गए एक दूसरे ग्रथ 'वर्णन-रत्नाकर' के रचयिता ने, अपने चौरासी सिद्धो की सूची मे ७६वें सिद्ध का नाम 'भुसकुटी' दिया है[3] जो, ऐसे नाम वाले किसी दूसरे सिद्ध के न होने से, उक्त 'भुसुकु' का ही रूपातर वा विकृत रूप सा समझ पड़ता है। जो हो, शातिदेव के नाम से 'तंजूर' की सूची मे[4] जो तीन ग्रंथो के उल्लेख है उन मे से अंतिम दो के रचयिताओ को क्रमश 'महापंडित' व 'योगीश्वर' भी लिखा गया है और इन के उपलब्ध आठ चर्यापदो मे से दो

---

[1] राहुल सांकृत्यायन, 'गंगा' (पुरातत्त्वांक), पृष्ठ २४६
[2] हरप्रसाद शास्त्री, 'बौद्ध गान ओ दोहा' (मुखबंध), पृष्ठ १०
[3] वही, पृष्ठ ३६
[4] वही, ('बौद्ध तांत्रिक ग्रंथकार-सूची' नाम से अंत में उद्धृत है)।

अर्थात् पद ४१ व ४३ म इन के नाम भुसुकु के साथ-साथ 'राउतु' की पदवी भी पाई जाती है। साम्प्रदायिक परपरा के अनुसार भुसुकुपा किसी 'मंजुवज्र' के शिष्य कहे जाते हे, जिन के नाम, उक्त 'तंजूर' मे, तीन ग्रंथो का पता चलता है, किंतु उन का उल्लेख चौरासी सिद्धों के अतर्गत नही पाया जाता। इन के गुरु का एक दूसरा नाम नागबोधि भी मिलता है जो, चौरासी सिद्धो की सूची के अनुसार, एक प्रमुख सिद्ध की भी सज्ञा है। परतु मजुवज्र एवं नागबोधि का एक ही व्यक्ति होना किसी प्रमाण से पुष्ट नही होता, और न इस विषय मे कोई अन्य सामग्री ही उपलब्ध है।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने, एशियाटिक सोसाइटी की ऊपर उल्लिखित हस्तलिखित प्रति के आधार पर, शातिदेव का जीवन-चरित इस प्रकार दिया है[२]—ये किसी राजा के लड़के थे जिस का नाम मंजुवर्मा था। उस के देश का नाम उक्त प्रति मे लिखा हे, किंतु पढा नही जाता। मजुवर्मा ने इन्हे युवराज बनाना चाहा था परतु उस की रानी को यह बात पसद नही आई। उस ने उन्हे समझा दिया कि "देखो, युवराज होने पर तुम फिर किसी दिन राजा भी बनोगे जिस कारण, क्रमशः तुम्हे पाप मे ही डूबते जाना पडेगा। इस लिए, यदि अपना भला चाहते हो तो तुम, यहा से भाग कर, शीघ्र बुद्धो व बोधिसत्वो के देश मे चले जाओ। मजुवज्र के यहा उपदेश ग्रहण करने पर तुम्हारी धर्मोन्नति होगी।" युवक को ये बाते अच्छी जान पड़ी और वह, एक सब्ज़े घोड़े पर सवार हो कर, अपने देश से निकल पडा। उस के कई दिन, इस प्रकार, मार्ग मे घोड़े पर ही, बिना नीद वा भोजन के बीते। अत मे, किसी दिन, एक घने जगल मे किसी सुदरी बालिका ने उस के घोड़े की लगाम पकड ली और, आग्रह-पूर्वक उसे नीचे उतार कर, भोजन कराया। उस की बातचीत से पता चला कि वह मजुवज्र की ही शिष्या है, अतएव, प्रसन्नता-पूर्वक उस के साथ-साथ ये उस महापुरुष के आश्रम पर भी गए, और लगातार बारह वर्षो तक वहा ठहर कर, मंजुश्री के संबध में ज्ञानोपार्जन करते रहे। शिक्षा समाप्त होने पर उक्त गुरु ने इन्हे मध्य प्रदेश की ओर जाने का आदेश दिया जहां पहुँच कर ये मगध के राजा के यहा 'राउत' वा सेनापति बन गए और इन का नाम वहा अचलसेन

---

[१] **प्रबोधचंद्र बागची-संपादित 'चर्यापद', पृष्ठ १४७ व १४९**

[२] **'बौद्धगान ओ दोहा' (मुखबंध), पृष्ठ ९-११**

करके प्रसिद्ध हो चला ।

मगध मे रह कर ये अपने पास एक देवदार लकडी की तलवार रखते थे जिसे और किसी को नही दिखलाते थे। जब ये धीरे-धीरे, कुछ दिनो में, उक्त राजा के प्रिय पात्र बन गए तो अन्य राउत इन से द्वेष करने लगे और, इन्हे नीचा दिखलाने की इच्छा से, उन्हों ने राजा से, इन की निंदा करते हुए, एक दिन स्पष्ट कह दिया कि "अचलसेन के पास निरे काठ की तलवार है, जिस से वह युद्ध नही कर सकता।" राजा ने, यह सुन कर, आज्ञा निकाली कि "सब लोग मुझे, अमुक दिन, अपनी-अपनी तलवारे दिखलावे, मै उन की परीक्षा करना चाहता हू।" तदनुसार सब ने अपनी-अपनी तलवारे दिखलाई, किंतु अचलसेन इस बात पर किसी प्रकार सहमत नही हुए और, राजा के बहुत कुछ जिद करने पर इन्हो ने कह दिया कि "मेरी तलवार के तेज के सामने आप अंधे हो जायँगे, अतएव, यदि देखना ही चाहते हो तो, कृपापूर्वक अपनी एक आँख बंद कर पहले इस बात की परीक्षा कर लीजिए।" राजा ने ऐसा ही किया और उस की एक आँख जाती रही। फिर भी उस ने प्रसन्न हो कर इन की प्रशंसा की, किंतु इन्हे अब राउतगिरी पसद न थी। अपनी उक्त तलवार को इन्हो ने, एक पत्थर पर पटक कर तोड़ डाला और दूसरे भेष मे नालंदा जाकर, भिक्षु बन गए।

नालंदा मे ये किसी एकात स्थान पर कुटी बना कर रहते थे जहां से केवल 'त्रिपिटक' की व्याख्या सुनने जाया करते थे। ये, वहा रह कर, योग की साधना किया करते थे और, सदा शात भाव से रहने के कारण, शांतिदेव कहला कर प्रसिद्ध थे। परतु नालदा में ही इन का एक और नाम भुसुकु भी पड़ गया क्योकि, भोजन, शयन, अथवा कुटी मे वास करते समय भी, ये सदा उज्वल ही उज्वल दीख पड़ते थे। "भुन्जानोऽपि प्रभास्वर: सुप्तोऽपि कुटिंगतोऽपि तदेवेति भुसुकु समाधि समापन्नत्त्वात् भुसुकु नाम ख्याति सड्घेऽपि।"

शातिदेव अथवा भुसुकु को, वहां इसी भाँति रहते हुए, कुछ दिन व्यतीत हो गए। ये किसी से बोलते नही थे। अपना काम किया करते थे। तो भी नवयुवक विद्यार्थी इन से छेड-छाड करने लगे। उन की धारणा थी कि ये कुछ जानते नही, इस लिए किसी दिन इन्हे तंग करना चाहिए। नालंदा मे, नियमानुसार, प्रत्येक ज्येष्ठ की शुक्लाष्टमी को पाठ होता था और उस की व्याख्या की जाती थी। इस के लिए उस विशाल विहार की उत्तर-पूर्व वाली बड़ी धर्मशाला सजाई जाती और सभी विद्वान् वहां उपस्थित होकर

अपना-अपना प्रवचन दिया करते इस प्रकार एक बार सब के वहा पहुच जाने पर लडके शातिदेव से आग्रह करने लगे कि आज आप को भी पाठ पढ कर उस की व्याख्या करनी होगी और, उन के लाख आना-कानी करने पर भी, उन्हो ने इन्हे, बलात्कार-पूर्वक वेदी पर लाकर, बिठा दिया। उन्हो ने सोचा था कि जब ये कुछ भी न कह सकेंगे तो हम लोग हँसेंगे और ताली पीटेंगे। किंतु शातिदेव वहा बैठते ही गभीर मुद्रा के साथ बोले, "किं आर्ष पठामि अर्थार्ष वा" जिसे सुनते ही वहा के सभी पंडित स्तब्ध से हो गए। वे 'आर्ष' का नाम तो सुन चुके थे, किंतु 'अर्थार्ष' शब्द से अपरिचित थे। इस कारण उन्हो ने इन दोनो के बीच 'प्रभेद' वा अतर जानना चाहा। शातिदेव बोले कि "परमार्थ-ज्ञानी लोगो का नाम 'ऋषि' है जो बुद्ध वा जिन हुआ करते हैं और जो कुछ वे कहते हैं वही 'आर्ष' कहलाता है। यदि कहो कि, सुभूति आदि शिष्यो के भी जो उपदेश ग्रथो मे है, वे किस प्रकार आर्ष कहलाते है तो, इस का उत्तर यह है कि---

यदर्थबद्धर्म पदोपसंहितं, त्रिधातु संक्लेश निवर्हणं वचः।
भवे भवेच्छान्त मनुशंसदर्शकं, तद्वत् ऋमार्ष विपरीतमन्यथा॥

अर्थात् आर्ष ग्रंथो से जो कुछ पडित लोग आकर्षण करके ले लेते है वही अर्थार्ष कहलाता है, अतएव सुभूति आदि के जो उपदेश है वे आर्ष है क्योकि स्वयं भगवान् ही उस के अधिष्ठाता है।" पंडितो ने, इस पर कहा, "हम लोगो ने आर्ष तो बहुत सुना है, कुछ अर्थार्ष ही सुनाइए।"

शातिदेव ने इस के पहले 'बोधिचर्यावतार', 'शिक्षा-समुच्चय' एव 'सूत्र-समुच्चय' नामक तीन ग्रथो की रचना कर ली थी। अतएव कुछ काल तक इन्होंने ध्यान किया और फिर 'बोधिचर्यावतार' का पाठ करने लगे। 'बोधिचर्यावतार' की भाषा व उस के भावो की गंभीरता का प्रभाव पंडितो के ऊपर पूर्णरूप से पड़ा और वे मुग्ध होकर उसे श्रवण करने लगे। उपस्थित विद्यार्थीवर्ग तक इन के प्रति भक्ति की भावना से विह्वल हो गया। अत मे जिस समय जम कर पाठ हो रहा था और महायान के गूढ़ तत्वो की व्याख्या चल रही थी तथा शातिदेव अपने मधुर स्वर में----

यदा न भावो नाभावो, मतेः संतिष्ठते पुरः ;
तदान्यगत्यभावेन, निरालम्बः प्रशाम्यति।

श्लोक के स्पष्टीकरण में लगे हुए थे, उसी समय, अकस्मात् स्वर्ग का द्वार खुल गया और, उज्वल वर्ण के विमान पर बैठे तथा दिगदिगंत को आलोकित करते हुए, स्वयं मंजुश्री उतरते हुए दीख पड़े। व्याख्या के समाप्त होते ही उन्हों ने आकर शातिदेव का गाढालिगन किया और इन्हे विमान पर ले कर चले गए। दूसरे दिन पडित लोग इन की कुटी पर गए और 'बोधिचर्यावतार', 'शिक्षासमुच्चय' एवं 'सूत्र-समुच्चय' को वहा से लाकर उन के अध्ययन व प्रचार मे प्रवृत्त हो गए। इन तीनो ग्रथो मे से आज तक प्रथम दो ही उपलब्ध है और उन का प्रकाशन भी हो चुका है। 'सूत्रसमुच्चय' का पता अभी तक नही चल पाया है। संभव है पीछे कभी वह भी मिल जाय।

ऊपर दिए गए लबे अवतरण के अनुसार शांतिदेव एवं भुसुकु, स्पष्टरूप में, एक ही व्यक्ति जान पडते है। परंतु क्या भुसुकुपा भी शातिदेव ही थे ? स्वर्गीय शास्त्री महोदय ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है कि भुसुकुपा के पद सहजयान के है और उक्त ग्रथ महायान से संबंध रखते है तथा, यद्यपि 'शिक्षासमुच्चय' की भूमिका मे वेडल साहब उस के विपय का तांत्रिक होना सिद्ध करते है तथापि इस के, उस के अन्तर्गत, केवल अल्प मात्रा मे ही आने से, इस प्रकार का निर्णय असंदिग्ध नही समझा जा सकता है। परंतु शातिदेव द्वारा लिख गए एक अन्य तान्त्रिक ग्रंथ का पता हमें 'तंजूर' की प्रसिद्ध सूची से भी चल जाता है। इस ग्रंथ का नाम 'श्रीगुह्यसमाज-महायोग-तंत्रबलिविधिनाम' है और उस के रचयिता शांतिदेव की उपाधि 'महापडित' की दी गई है। उक्त 'तंजूर' में, इसी प्रकार, शातिदेव के एक दूसरे ग्रंथ 'सहजगीति' का भी उल्लेख है जो सहजयान का जान पड़ता है। परंतु इस के रचयिता शांतिदेव को 'महापडित' न कह कर 'योगीश्वर' कहा गया है, जिस कारण, दोनो को एक मानने मे कदाचित् कोई आपत्ति की जाय। तो भी, यदि दोनो के केवल विषयो की ही समानता पर विचार किया जाय, तो उन का एक होना बहुत कुछ सभव भी समझा जा सकता है। इस के सिवा एशियाटिक सोसाइटी का जो ४८०१ नं० वाला ग्रंथ है वह अपूर्ण होने पर भी, स्वर्गीय शास्त्री महोदय के ही अनुसार, भुसुकु की रचना एवं सहजयान विषय का प्रमाणित होता है और उस मे तान्त्रिक बौद्धो के कुटी-निर्माण, शयन, भोजनादि की भी व्यवस्था दी गई है। भुसुकुपा की उपलब्ध रचनाओं की भाषा ('बाङ्गाला') के साथ उक्त ग्रंथ की भाषा की समानता का अनुमान

कर वे दोनो के रचयिताओ को भी एक ठहराते हुए जान पडते है [1] अतएव यदि प्रथम शातिदेव भुसुक महायानी होने के साथ-साथ तान्त्रिक भी समझ पडते हैं और दूसरे अर्थात् तान्त्रिक शातिदेव का सहजयानी भी होना असभव नही दीखता तथा, यदि भुसुक की उक्त अपूर्ण रचना भी एक ही साथ तत्र व सहजयान दोनो की कही जा सकती है और भाषा की दृष्टि से दोनो के रचयिताओं का एक होना भी मान लिया जा सकता है, तो कोई कारण नही है कि, हम एक ही व्यक्ति को उक्त सभी रचनाओं का निर्माता न मान ले और ऊपर दिए गए जीवन वृत्त-संबंधी विवरण पर कुछ न कुछ साम्प्रदायिक अत्युक्तियों का आरोप कर, इस विषय में लक्षित होने वाली विषमता का उस व्यक्ति के मानसिक विकास वा परिवर्तन द्वारा परिहार कर डालने का प्रयत्न करे।

परंतु ऐसा करते समय एक दूसरे प्रकार की बाधा, भुसुकुपा के आविर्भाव-काल की दृष्टि से भी, ला खडी की जा सकती है। ऊपर लिखित 'बोधिचर्यावतार' आदि ग्रथो का रचना-काल सन् ६४८ व ८१६ ई० के मध्य मे रक्खा जाता है और उक्त 'श्रीगुह्यसमाज-महायोग-तंत्रवलिविधिनाम' की रचना का भी समय, कदाचित्, सन् ६९५ ई० ही समझा गया है।[2] अतएव उन के रचयिता, एक न होने पर भी, समकालीन समझे जा सकते है। किंतु तिब्बत की सिद्ध-चित्रावली के अनुसार लुईपा आदि सिद्ध माने जाते है और उन का समय सन् ९५० व १०५० ई० के मध्य अथवा सन् ७६९ व ८०९ के आसपास का बतलाया जाता है, इस लिए भुसुकुपा, सर्वसम्मति से, उन के अनतर आने के कारण, उक्त प्रथम वा द्वितीय शातिदेव के साथ एक नही हो सकते। तो भी, प्रोफ़ेसर तुची के अनुसार,[3] लुई विषयक एक उल्लेख शातिरक्षित (जन्म सन् ६५० ई०) के ग्रंथ 'अभिसमयमजरी' में इस प्रकार आया है—

**ततः......द्वयं कृत्वा ज्ञानचक्रविभावनमिति लुयी-पादोक्तेः।**

और इस के आधार पर प्रायः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे, उक्त दोनो ही

---

[1] हरप्रसाद शास्त्री, 'बौद्धगान ओ दोहा' (मुखबंध), पृष्ठ २३

[2] विनयतोष भट्टाचार्य, 'गुह्यसमाजतंत्र' (भूमिका), पृ० ३०

[3] तुची : 'ऑन दि नेम्स मीननाथ ऐंड मत्स्येंद्रनाथ' (जर्नल अव् दि एशियाटिक सोसाइटी अव् बेंगाल)- भाग २६ (१९३० ई०)- पृष्ठ १३४

शांतिदेव, से प्राचीन थे तथा, इस दृष्टि से, उन दोनो का भुसुकुपा के साथ एक होना भी संभव है। सच तो यह है कि, पर्याप्त सामग्रियो के अभाव मे, केवल कतिपय रचनाओ के विषय, काल वा भाषा की ही तुलना के आधार पर, हम इस संबध मे किसी प्रकार का अंतिम निर्णय देने मे असमर्थ है।

( २ )

जीवनवृत्त-संबधी उक्त विवरण देने वाली हस्तलिखित प्रति मे शांतिदेव के मूल निवास-स्थान का भी नाम दिया गया है, किंतु वह पढ़ा नहीं जाता और, इसी प्रकार, 'श्रीगुप्तसमाज-महायोग-तंत्रवलिविधिनाम' के रचयिता के घर का भी किसी 'जाहोर' में होना वतलाया गया है, जिस की भौगोलिक स्थिति अज्ञात है। लामा तारानाथ के अनुसार शांतिदेव सौराष्ट्र देश के निवासी राजपुत्र थे जिसे बेंडल साहब भी स्वीकार करते हुए जान पड़ते है। तो भी, ऊपर लिखित घटनाओ के आधार पर, यह भी स्पष्ट है कि वे मगध एवं नालंदा मे भी बहुत दिनों तक रहे थे जिस कारण उन का पूर्व भारत से भी कुछ कम संबंध नही रहा। सिद्ध भुसुकुपा के संबंध में लिखते हुए स्वर्गीय शास्त्री महोदय ने कहा है कि उन का निवास-स्थान "बंगाल मे था, इस विषय में कोई संदेह नही"[1] और इस के प्रमाण मे वे, उन की उपलब्ध रचनाओं में से एक की पंक्तियां—

**बाज णाव पाडी पँउआ खाले बाहिउ,**
**अदय बङ्गाले क्लेश लुड़िउ ॥**
**आजि भूसु बङ्गाली भइली,**
**णिअ घरिणी चण्डाली लेली ॥**

उद्धृत कर, उन का इस प्रकार अर्थ करते है—"वज्रनौका को मैने पारी देकर पद्मखाल मे छोड़ दिया और अद्वय जो बंगाल देश है वहां पहुँच कर क्लेश लुटा दिया। रे भूसु, तू आज सचमुच बंगाली हो गया जिस कारण अपनी घरणी को चंडाली के रूप मे ग्रहण कर लिया।" परंतु इसी के आगे वे यह भी कहते है कि "सहजयान के मतानुसार 'अवधूती', 'चंडाली' और 'डोम्नी' वा 'बंगाली' नाम से तीन मार्ग प्रसिद्ध है, जिन मे से 'अवधूती'

---

[1] **हरप्रसाद शास्त्री, 'बौद्धगान ओ दोहा' (मुखबंध), पृष्ठ १२**

मे द्वैतज्ञान है 'चंडाली' मे द्वैतज्ञान कहा भी जा सकता है नही भी कहा जा सकता परंतु 'डोम्नी' मे केवल अद्वैतज्ञान है—द्वैत से कोई संबंध नहीं। बंगाल मे अद्वैतमत का अधिक प्रचार है जिस कारण वह अद्वैतज्ञान का आधार-स्वरूप है। यहा पर ग्रंथकार का कहना है कि रे भूसु, जो तेरी अपनी घरिणी अवधूती थी उसे तू ने चंडाली के रूप मे स्वीकार किया था अब की बार तू सचमुच बंगाली वा पूर्ण अद्वैती हो गया।" ओर इस से स्पष्ट है कि यहा पर 'बंगाली' शब्द से अभिप्राय तांत्रिक परिभाषा के अनुसार ही समझना चाहिए। 'आजि भूसु बंगाली भइली' का अर्थ सीधे-सादे शब्दों मे 'आज (मैं) भूसु बंगाली हो गया' न करके उन्हो ने 'रे भूसु, आज तुइ सत्य सत्यइ बांगाली हइले' अर्थात् 'अरे भूसु, तू आज सचमुच बंगाली हो गया' कर डाला है। श्री राहुल साकृत्यायन का तो यह भी कहना है कि उक्त 'भइली' शब्द भी बँगला भाषा मे व्यवहृत नहीं होता और 'वह काशी से मगह तक आज भी बहुत प्रचलित है।'[1] अतएव उन्हो ने भुसुकुपा का 'नालंदा के आसपास के प्रदेश मे' उत्पन्न होना लिखा है।

श्री राहुल सांकृत्यायन भी शातिदेव भुसुक एवं भुसुकुपा के एक ही होने मे संदेह करते हुए नही जान पड़ते। उन्हों ने इन्हे क्षत्रिय वंश मे उत्पन्न और नालंदा के राजा (गौडेश्वर) देवपाल (सन् ८०९-८४९ ई०) का समकालीन होना माना है और, 'तेंजूर' के अनुसार, शातिदेव के दर्शन-संबंधी छ एवं तन्त्र-संबंधी तीन ग्रंथो का होना भी लिखा है। वे यह भी बतलाते है कि भुसुकु के नाम से भी उस मे दो ग्रंथ है जिन में से एक 'चक्र-संवरतंत्र' की टीका है तथा "मागधी हिंदी मे लिखी इन की 'सहजगीति' भोटिया भाषा मे मिलती है।"[2] हमे भुसुकुपा के केवल आठ पद मात्र उपलब्ध है जो इस 'सहजगीति' के ही जान पड़ते है। ये गीतों के ही रूप मे राग 'पटमंजरी', 'वराड़ी', 'बडारी', 'कामोद', 'मल्लारी', 'कदुगुजरी' व 'बंगाल' के अंतर्गत रक्खे गए हैं और इन में से प्रत्येक की किसी न किसी पंक्ति मे, भुसुकुपा का 'भूसु', 'भुसुकु' वा 'भुसुकु राउतु' नाम भी आया है। शास्त्री महोदय द्वारा संपादित 'बौद्धगान ओ दोहा' ग्रंथ मे इन की क्रम-संख्या ६, २१, २३, २७, ३०, ४१, ४३ व ४९ दी गई है और प्रत्येक के

---

[1] राहुल सांकृत्यायन, 'गंगा' (पुरातत्त्वांक), पृष्ठ २५० (टिप्पणी)।
[2] वही पृष्ठ २४९

नीचे एक सस्कृत टीका है जो बहुत कुछ अशुद्ध व अपूर्ण भी जान पड़ती है। उक्त ग्रंथ में प्रकाशित इन गीतो का मूल पाठ भी अधिकतर विकृत और भ्रमात्मक है। डाक्टर बागची ने, किसी तिब्बती अनुवाद के सहारे, इन्हे भी, अन्य पदो की भॉति, यत्रतत्र सुधारने का प्रयत्न किया है, किंतु उस अनुवाद के भी किसी संस्कृत टीका का ही रूपातर मात्र होने के कारण, इन पदो के मूलरूप का ठीक-ठीक पता नही चल पाता और कई स्थलो पर सदेह ज्यों का त्यो बना रह जाता है।

जो हो, सिद्ध भुसुकुपा के उक्त आठों पदो द्वारा उन के सहजयान-संबंधी सिद्धातो के समझने मे बहुत बडी सहायता मिलती है। वे जो कुछ भी कहते है उसे कई उदाहरणो द्वारा अधिक से अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करते है और कभी-कभी उसे हृदयंगम कराने के लिए ऐसे रूपको के प्रयोग भी करने है जिन मे प्राय॰ सर्वसाधारण के दैनिक जीवन की ही वस्तुओ के उल्लेख रहा करते है। जैसे, संसार के वास्तविक रूप का वर्णन करते हुए, उस का परिचय एक पद के द्वारा, इस प्रकार देते है—"यह जगत, वास्तव मे, कभी उत्पन्न नही हुआ और न इस का कोई अस्तित्व ही है, तो भी, भ्राति के कारण, इसे लोग सत्य सा समझते जान पड़ते हैं। परंतु क्या रस्सी मे सर्प का भ्रम करके त्रस्त हो जाने वाले को सर्प सचमुच डसा करता है? आश्चर्य है कि इस साधारण सी बात को भी लोग समझ नही पाते! कम से कम साधको को तो चाहिए कि, ऐसे भ्रमों के कारण, अपने विचारो में कोई विकार न आने दे। यदि जगत के सच्चे रूप का बोध हो जाय तो अपनी सारी वासनाए दूर हो सकती है। जगत का सत्यरूप मरु-मरीचिका, गधर्व-नगर अथवा दर्पण के प्रतिबिब के समान ही नि सार है। यह वातावर्त के कारण दृढ होकर पत्थर वा उपल बन जाने वाले, जल के समान दीख पड़ता है। यह उस वंध्या स्त्री के तुल्य है जो पुत्रवती की भॉति केलि करती वा भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल खेला करती हो, इत्यादि।" (पद ४१)। इसी प्रकार, उक्त भ्राति के ही कारण, सदा अस्थिर होकर दौड़ लगाते फिरने वाले मानवचित्त का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए, उन्हों ने अपने एक पद में, चचल चूहे का रूपक देकर, कहा है—"रात ॲधेरी है और चूहा इधर-उधर चक्कर लगाता घूम रहा है, वह कभी-कभी, तनिक-सा ठहर कर, कुछ अच्छी वस्तु खा भी लेता है किंतु अपना वह स्वभाव नही छोड़ता। हे योगी, वा साधक, तुम उस पवन के समान चचल चूहे को मार कर उस का स्वभाव छुड़ा दो जिस से का भय दूर हो जाय व_

चूहा भवविनाशक (सब कुछ शक्ति रखने के कारण) होता हुआ भी इधर-उधर गर्त वा बिल खोदने में ही लगा रहता है। उस के दोष-गुण आदि पर भली भांति विचार कर लो। उस काले चूहे का, वास्तव में, कोई भी रंग नहीं, वह गगन तक पहुँच कर अमृत पान कर आता है। वह तब तक चंचल व बेचैन है जब तक उसे किसी प्रकार (सद्गुरूप-देशादि द्वारा) निश्चल नहीं कर दिया जाता। तभी उस का घूमना-फिरना बंद होगा और भुसुकु के अनुसार, सारे बंधनों के टूट जाने पर आवागमन से भी मुक्ति मिलेगी।" (पद २१)

बौद्ध सिद्धों की साधना के अंतर्गत अपने चित्त के निःस्वभावीकरण का बहुत बड़ा महत्व है। कारण यह कि, उन के सिद्धांतानुसार, चित्त ही, वास्तव में, संसार-स्वरूप है और वही निर्वाण-रूप भी है—विविध संकल्प-विकल्पादि से ओतप्रोत रहने के कारण उसे प्रथम रूप मिलता है और उन से रहित हो कर शून्यवत् निर्मल बनते ही वह अपने द्वितीय रूप में आ जाता है। जब तक वह अपने प्रथम रूप में है तभी तक चंचल है, संकल्प-विकल्पादि के दूर होते ही वह 'अमन' हो कर निश्चल बन जाता है, और उसी स्थिति में, उसे द्वितीय रूप की भी उपलब्धि होती है। शांतिदेव ने अपने उक्त 'बोधिचर्यावतार' ग्रंथ में इस निःस्वभावीकरण की क्रिया को, शिकार में मार कर लाए गए हिरण के क्रमशः चमड़ा, मांस, हड्डी आदि अलग करने के, एक रूपक द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।[1] भुसुकु के नाम से उपलब्ध उक्त पदों में भी वे चित्त को, दो स्थलों[2] पर, शिकार के हिरण का ही रूपक देते हुए दीख पड़ते हैं। उदाहरण के लिए पद ६ में वे इस प्रकार कहते हैं—"भला किस बात के लिए यह सारा झमेला लगा है और चारों ओर से चिल्लाहट के शब्द भी आ रहे हैं? जान पड़ता है, हिरन, अपने मांस के कारण, अपना ही शत्रु बन गया है और क्षण भर के लिए भी इस का साथ अहेरियों से नहीं छूट पाता। न तो

---

[1] इमं चर्मपुटं तावत्स्वबुद्धचैव पृथक् कुरु।
अस्थिपञ्जरतो मांसं प्रज्ञाशस्त्रेण मोचय॥
अस्थीन्यपि पृथक् कृत्वा पश्य ज्ञानमनंततः।
किमत्रसारमस्तीति स्वयमेव विचारय॥

—बोधिचर्यावतार।

[2] पद ६ व २३

यह तृण खाता है न जल ही पीता है। इसे अपनी हरिणी का निवास-स्थल तक ज्ञात नही।
हरिणी तो कहती है कि इस वन को छोड कर शून्य स्थान को चले चलो, किंतु यह इस प्रकार भागा फिरता है कि इस के खुर तक नही दीख पडते, इस के हृदय मे उस के उपदेश कहा तक प्रवेश कर पाएगे!" इसी प्रकार उक्त २३वे अपूर्ण पद द्वारा वे इस हिरण के जाल आदि का भी वर्णन करते जान पड़ते है।

सहजयान के मंतव्यानुसार सहजावस्था के निमित्त की जाने वाली साधना का कुछ वर्णन उन्हो ने निम्नलिखित पद के द्वारा किया है जिस की प्रथम चार पक्तियो को एक बार ऊपर भी उद्धृत किया जा चुका है—

**बाज[1] नाव पाड़ी पँउआ खाले वाहिउ।**
**अदय बङ्गाले क्लेश लुड़िउ॥**
**आजि भूसु बङ्गाली भइली।**
**णिअ घरिणी चण्डाली लेली॥**
**डहि जो पञ्चपाटण इंदि बिसआ णठा।**
**णजानमि चिअ मोर कहिं गइ पइठा॥**
**सोणत रूअ मोर किम्पि ण थाकिउ।**
**निअ परिवारे महासुहे थाकिउ॥**
**चउकोड़ि भाण्डार मोर लइआ सेस।**
**जीवन्ते मइलें नाहि विशेष॥—पद ४९**

अर्थात् वज्रनौका वा वज्रयान की नाव को पद्महृद मे डाल कर चला दिया (अथवा सद्गुरुचरणो की कृपा द्वारा 'प्रज्ञारविंद कुहर' मे प्रवेश हो गया) और अद्वय वंगप्रदेश मे पहुँचते ही मेरे सारे दु ख भी दूर हो गए। आज मैं भुसुकुपा, अंतर्युद्ध मे पराजित हो जाने के कारण, बंगाली बन गया[2] और, अपनी गृहिणी के लिए, मैं ने चांडाली स्वीकार

---

[1] डाक्टर बागची ने 'वाज' की जगह, तिब्बती अनुवाद के सहारे, 'राज' शब्द का रखना अधिक उपयुक्त माना है।

[2] इस पर टिप्पणी करते हुए डाक्टर बागची कहते है—'दि पीपुल अव् बंगाल कंट्री हैड प्रोबैब्ली नट मच मिलिटरी रेपुटेशन' अर्थात् बंगाल-निवासियो की कदाचित् युद्ध के विषय में अधिक ख्याति नहीं थी।

कर ली। इस समय पाँचो नगरो के जल जान (अथवा रूप, वदना, संज्ञा, सस्कार व विज्ञान नामक पंचस्कंधों के आश्रित अहंकारादि के दग्ध हो जाने) के कारण, मेरे इद्रिय विषय भी नष्ट हो गए और मेरा चित्त भी, न जाने कहा जाकर, प्रविष्ट हो गया। मेरे पास अब सोना-चाँदी (अथवा भावाभाव में से कोई भी एक) नहीं रह गया, और मैं अब, अपने परिवार में ही रहता हुआ, महासुख मे निमग्न हू। उस अद्वय की भावना ने मेरे चतुष्कोटि भांडार वा संकल्प विकल्पादि के वृहत् कोष को नि शेष कर दिया और अब मेरे जीवन व मरण में भी कोई भेद शेष नही रह गया। भुसुकुपा ने, एक दूसरे पद (२७) मे, उक्त साधना द्वारा आधी रात (अथवा प्रज्ञोपाय-मिलन की चतुर्थी सध्या) के समय विकसित हो उठने वाले उष्णीश कमल तथा उस के साथ-साथ आनंद-मग्न हो जाने वाली ३२ नाड़ियो का भी वर्णन किया है और बतलाया है कि किस प्रकार, बोधि-चित्त को अवधूती मार्ग से प्रभास्वर तक पहुँचा कर, उसे सहजसिद्धि का अनुभवी बना दिया जाता है। बोधिचित्त जब निर्वाण की दशा तक इस प्रकार पहुँच जाता है और नैरात्मा महासुखसागर की ओर प्रवाहित होने लगती है उस समय एक ऐसे अनिर्वचनीय किंतु विशुद्ध विरमानद की उपलब्धि होती है जिसे कोई बुद्ध ही जान सकता है। वे कहते है कि प्रज्ञोपाय मिलन की सहायता से, मैं ने उस सहजानद को सरलता पूर्वक ही जान लिया है।

सहजयानियो के अभीष्ट सहज का परिचय देते हुए उन्हों ने, इसी प्रकार, अपने ३० वे पद मे कहा है कि इस त्रैलोक्य के अतर्गत, वास्तव में, वही एकमात्र सार है। उस के कारण विषयों की विशुद्धि हो जाने पर सभी प्रकार के अधकार दूर हो जाते है और हमे, साक्षात् चद्रोदय के अवसर पर उपलब्ध होने वाला, आनद भी मिलने लगता है। अतएव वे चंद्रोदय के रूपक मे ही बतलाते है कि उक्त सहज, अपनी किरणो के विस्फुरण द्वारा करुणा के बादलों मे सर्वत्र व्याप्त होकर, तथा भावाभाव के द्वद्वत्व को नष्ट कर, जब गगनागण मे एक अद्भुत रूप धारण करता हुआ प्रकट होता है तो सारे इद्रिय-जाल (वा इद्रजाल) आप से आप तिरोहित हो जाते है और अपने मन मे एक प्रकार के विचित्र उल्लास का संचार यो ही होने लगता है।

भुसुकुपा ने अपने सहजयान संबधी मुख्य सिद्धांतो को संक्षेप में इस प्रकार बत-लाया है

सहज महातरु फरिअए तेलोए।
खसम सभावे रे बाँधणत मुका कोए ॥
जिम जले पाणिया टलिआ भेउ न जाअ।
तिम मण-रअणा समर से गअण समाअ ॥
जासु नाहि अप्पा तासु परेला काहि।
आइ-अणुअणा रे जाअ मरण भाव नाहि ॥
भुसुकु भणइ कट राउतु भणइ कट सअला एह सहाव।
जाइ न आवइ रे ण तहिं भावाभाव ॥—पद ४३

अर्थात् सहज, वास्तव मे, महावृक्ष स्वरूप होकर त्रैलोक्य भर में सर्वत्र फैला हुआ है वा व्याप्त है, खसम (ख=शून्य+सम=समान) के स्वभाव अथवा शून्यभाव के बंधन से कोई भी मुक्त नही है, जल मे, जल के ही मिलने पर, जैसे कोई भेद नही दिखाई देता वैसे ही मनोरत्न भी गगन (शून्य) में प्रवेश कर जाता है; फिर तो जहा अपने आप का भी बोध नही, वहा पराए की बात क्या कही जा सकती है ! उस (सहज) का न तो आदि है न अत है और न, इसी कारण, वहा जन्म व मरण का ही कोई प्रश्न है। अतएव भुसुकु राउत का कहना है कि, आश्चर्य तो यह है कि सब का ही यह स्वभाव है, (सहज की दृष्टि से विचार करने पर) आवागमन वा भावाभाव की कोई भी संभावना नही।

# नाजर आनंदराम और उन की रची हुई दो गद्य टीकाएं

[ लेखक—श्रीयुत अगरचंद नाहटा ]

हिंदी के प्राचीन गद्य-साहित्य में मौलिक रचनाओं का प्राय: अभाव है। जो कई प्राचीन गद्य-ग्रंथ प्राप्त हुए हैं वे बहुधा संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद मात्र हैं। इस लेख में विवेच्य दो ग्रंथ भी इसी कोटि के, अर्थात् अनुवादित ग्रंथ हैं। इन में से एक भगवद्गीता की भाषा टीका है और दूसरा गीता माहात्म्य की भाषा टीका।

इन ग्रंथों का उल्लेख खोज-शोध की रिपोर्टों अथवा पुस्तकालयों और ज्ञान-भंडारों की सूचियों में तो मिलता है, लेकिन जहां तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में उन का नाम-निर्देश तक नहीं हुआ है। इस का कारण यह हो सकता है कि विद्वानों ने उन्हें पद्यमय मान कर विशेष महत्व का न समझा हो, या उन्हें इन के गद्य के अंशों की उपलब्धि न हुई हो। इस दृष्टि से कि हिंदी भाषा के प्राचीन गद्य-ग्रंथ बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं, इन ग्रंथों का विशेष महत्व हो जाता है।

"हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण"[1] में आनंदराम के दो (?) ग्रंथों का उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है—

**आनंदराम :** सं० १७६१ के लगभग वर्तमान। भगवद्गीता भाषा, दे० (ख-८४) (छ-१२७)। परमानंदप्रबोध, दे० (छ-१२७)

जैसा हम देखेंगे यह दोनों ग्रंथ एक ही हैं। पहले ग्रंथ का ही नाम कवि ने 'परमानंद-प्रबोध' रक्खा है।

अब नाजर जी के उभय ग्रंथों का परिचय संक्षेप में नीचे दिया जाता है—

---

[1] पृष्ठ १२

# १. भगवद्गीता भाषा टीका

आदि :

हर गौरीश गनेश गुरु, प्रनवौं सीस नवाय।
गीता भाषारथ करौं, दोहा सहित बनाय ॥१॥
सुथिर राज विक्रम नगर, नृपमनि नृपति अनूप।
थिर थाप्यौ परधान यह, राजसभा को रूप ॥२॥
नाजर आणंदराम कै, यह उपज्यौ चित चाउ।
गीता की टीका करौं, सुनि श्रीधर के भाउ ॥३॥
गीता ज्ञान गंभीर लखि, रचि जुं आणंदराम।
कृष्णचरन चित लगि रह्यौ, मन मैं अति अभिराम ॥४॥
आनंद मन उच्छ भयौ, हरि गीता अवरेखि।
दोहारथ भाषा करी, बांनी महा बिसेख ॥५॥

बीच की गद्य भाषा .

प्रथम श्रीकृष्ण जू नै विचारी किया अर्जुन कौ देह अरु आत्मा के बिवेक तैं शोक उपज्यौ ऐसे जोनि कै ज्ञानोपदेश कै निमित्त श्री भगवान कहत हैं। हे अर्जुन जा वस्तु कौ शोक कर्यो ना चाहीयै ता वस्तु कौ तूं शोक करत है। अरु तूं बुद्धिवंत के सो वचन कहत हैं पै विनु समुझ्यो हठ करैं हैं। तातै जे बुद्धिवंत विवेकी हैं ते मुए अरु जीवते को शोक नांही करत काहे तै जनम मरन दोनों मिथ्या है।

अंत के आवश्यक दो दोहे .

परमानंद प्रबोध यह, कीनौ आणंदराम।
पढ़ै गुनै याको सुनै, सो पावै प्रभु धाम ॥१०॥

. . . . . . . . . . . . . .

ससि[१] रस[६] उदधि[४] रासमित[१], कातिक ऊजल मास।
रवि पांच्यौ पूरन भयौ, यह गीता परकास ॥१४॥

इति श्री भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भाषाटीकाया दोहा सहित नाजर कृत प्रबोधे

उपर्युक्त ग्रथ बहुत प्रसिद्ध ग्रथ है और बीकानेर राजकीय पुस्तकालय तथा जैन ज्ञानभडारो मे इस की अनेक प्रतिया उपलब्ध है। इस की रचना स० १७६१ मे हुई।

## २. गीता महात्म भाषा टीका

आदि :

मुकटि लटकि कटकी लचकि, लसत हियै बनमाल।
पीत बसन मुरली धरन, बिपति हरन गोपाल ॥१॥
नम्र करिकै गिरधरन कै, चरन कमल सुखधाम।
गीता महातम करत, भाषा आनंदराम ॥२॥
मनमोहन मन मैं बस्यौ, तब उपज्यौ चित आइ।
गीता महातमै करौ, भाषा सरस बनाइ ॥३॥
कमधबंस अवतंस मनि, सकल भूप कुल रूप।
राज करत विक्रम नगर, अवनी इंद्र अनूप ॥४॥
तिहां थाप्यौ परधान थिर, नाजर आनंदराम।
गीता महातम करत उर धर गिरधर नाम ॥५॥
जाको जस सब जगत मैं, है भूपति अनुरूप।
नाजर आनंदराम को, थाप्यौ नृपति अनूप ॥६॥
नाजर आनंदराम को, कीरति चंद प्रकाश।
आखंडलक लोक लगि, परगट भयो उजास ॥७॥
धर्यौ चित्त हरि भक्ति मैं, कर्यौ कृष्ण परनाम।
गीता महातम रच्यौ, भाषा आनंदराम ॥८॥
है यह बेद पुरान अरु, सकल शास्त्र कौ सार।
गीता महातम कर्यौ, कृष्ण ध्यान उर धार ॥९॥

गद्य :

एक समै सदाशिव कृपा करिकै गीता महातम पार्वती सुं कहतु है ॥ ईश्वरोवाच : पार्वती सुनौ मैं गीता कौ महातम कहतु हो।

अब नवमाध्याय की महिमा पावती भो प सुनौ। नर्मदा के तीर एक माहष्मती रम्य नगरी तहा एक माधव एस नाव ब्राह्मन बस। अपन धर्म म सावधान स्यौ वद शास्त्र को वेला अतिथि को पूजक तिहि एक बड़ो जग्य को आरंभ कर्यो। एक तब जग्य निमित्त मोटो नीको बकरा आन्यौ तब वह बकरा बध करबे रानै हस गै अचरज री बानी बोल्यो हे ब्राह्मनो एसे बिधि पूर्बक कीनै जग्य को कहा फल है तातै बिनिस्यमान है अरु जरा जन्म मरन इन तै मिटै नहीं, एसे जग्य न करतु है मै पसु जोनि पाई एसै बकरा की बानी सुन कै ब्राह्मन को और ऊच्चा (?) जाय मंड (प) मै आन मिलै तिनि सब कौ परम अचिरज भयो।

अंत :

> गीता महातम सकल, बरन्यो आनंदराम।
> सुनत पाप नव ही नसै, बहुरि होय अभिराम ॥१३॥
> लखि परमारथ जगत को, कर्यौ ग्रंथ परकास।
> बरन्यौ आणंदराम नै, यह आणंद बिलास ॥१४॥
> धारा धरणि इंदु रवि, धरणि धरण समीर।
> गीता महातम कह्यो, तां लगि सुधर सुधीर ॥१५॥
> १ ६ ७ १
> धरनि रस नीरधि मथक, संमत अगहन मास।
> कृष्ण पक्ष तिथ त्र्योदशी, वार भोम परकास ॥१६॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखंडे उमामाहेश्वर संवादे नाजर आणंदराम कृतौ गीता महातम अष्टादशोध्याय ॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस तरह गीता की टीका का नाम आनदराम ने 'परमानंद-प्रबोध' रक्खा था, गीता-माहात्म्य की टीका का नाम 'आनदविलास' रक्खा। यह टीका पद्मपुराण के उत्तरखंड के एक अंश का अनुवाद है, और इस की रचना का काल भी वही स० १७६१ ही है। टीका जैसा कि बीच के अश के उद्धरण से प्रकट है गद्य में है।

इस टीका की एक प्रति बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय मे है और इस की दो प्रतियां लेखक के निजी संग्रह में है।

इस लेख में परिचय दिए हुए दो ग्रंथो के अतिरिक्त नाजर जी रचित एक 'मौन एकादशी व्रतकथा' का भी उल्लेख हमारे नोटो में है। इस कथा का रचनाकाल स० १७७२ आषाढ कृष्ण १० है, लेकिन उस के न मिल सकने के कारण यहा उस का परिचय

नहीं दिया जा सका है।

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा के बीकानेर राज्य के इतिहास[1] में नाजर आनंदराम के विषय में इस प्रकार लिखा है —

"महाराजा अनूपसिंह के आश्रय में ही उस के कार्यकर्ता नाजर आनंदराम ने श्रीधर की टीका के आधार पर गीता का गद्य और पद्य दोनों में अनुवाद किया।"

फुटनोट में लिखा है कि "नाजर आनंदराम महाराजा अनूपसिंह का मुसाहिब था। उस के पीछे वह महाराजा स्वरूपसिंह तथा महाराजा सुजानसिंह की सेवा में रहा, जिस के समय में वि० सं० १७८९, चैत्र वदी ८ (ई० १७३३, ता० २६ फ़रवरी) को वह मारा गया।"

बीकानेर के राजा सुजानसिंह भी आनंदराम को बड़े आदर की दृष्टि से देखते है जैसा कि ओझा जी लिखित बीकानेर के इतिहास[2] के उल्लेखों से प्रमाणित है। वे उल्लेख इस प्रकार है—

१. "जब क़ाफ़िले वालों ने महाराजा सुजानसिंह के दरबार में आकर शिकायत की तो प्रधान नाजिर आनंदराम आदि की सलाह से महाराजा ने अपनी सेना के साथ प्रयाण कर बरसलपुर को जा घेरा।"

२. "फिर भी दिल्ली के बादशाह से संबंध बनाए रखने के लिए उस ने खवास आनंदराम और मूधड़ा जसरूप को कुछ सेना के साथ दिल्ली और मेहता पृथ्वीसिंह को अजमेर की चौकी पर भेज दिया।"

३. "सुजानसिंह के एक मुसाहिब खवास आनंदराम तथा जोरावरसिंह के वैमनस्य होने के कारण वह (जोरावरसिंह) उस को मरवा कर उस के स्थान पर अपने प्रीतिपात्र मेहता फतेहसिंह के पुत्र बखतावरसिंह को रखवाना चाहता था। अपनी यह अभिलाषा उस ने पिता के सामने प्रकट भी की, पर जब उधर से उसे प्रोत्साहन न मिला तो वह नोहर में जाकर रहने लगा, जहां अवसर पाकर उस ने वि० सं० १७८९ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३, ता० २६ फ़रवरी) को आधीरात के समय खवास आनंदराम को

---

[1] भाग १, पृष्ठ २८४-८५

[2] भाग १ पृष्ठ २९७ २९९ व ३००

मरवा डाला जब सुजानसिह को इस अपकृत्य की सूचना मिली तो वह अपने पत्र से अप्रसन्न रहने लगा

इसी इतिहास[1] मे आनंदराम जी के पुत्र अजबसिह का नाम भी आया है, अत उन के पुत्र को भी राज्य मे अच्छा स्थान प्राप्त था, ऐसा प्रतीत होता है।

उपर्युक्त अवतरणो से विदित होता है कि नाजर आनदराम जी का महाराजा अनूपसिह जी और सुजानसिह जी से बहुत अच्छा सबध था और वे उन्हे अपना विश्वास-पात्र खास व्यक्ति मानते थे और प्रधान के पद पर उन्हे नियुक्त भी किया था। इस अतिम बात का वर्णन गीता की टीका मे नाजर जी ने स्वय किया है।

अपने ग्रथों से आनदराम जी एक अच्छे कवि और कुशल टीकाकार सिद्ध होते है। गीता एव श्रीकृष्ण पर उन की दृढ आस्था थी। स्वय कवि एव विद्वान थे ही अतएव अन्य सुकवियों एव विद्वान जैनाचार्यो का भी वह बहुत आदर करते थे। बीकानेर की खरतरगच्छीय गद्दी के श्रीपूज्यो एव उन के आज्ञानुवर्ती जैन यतियो के आप परम भक्त थे। तत्कालीन खरतरगच्छाचार्य श्री जिनसुखसूरि जी[2] को दिए हुए चार, और उन के पट्टधर श्री जिनभक्तिसूरि जी[2] को दिया हुआ एक, कुल पाँच पत्र हमारे सग्रह मे है, जिन मे से दो पत्र तो महाराजा सुजानसिह जी की ओर से लिखे हुए हैं और उन में खवास आनदराम जी ने अपनी वदना निवेदन की है। अवशेष तीन पत्र उन्हो ने अपनी ओर से लिखे है। उन मे से एक संस्कृत मे है, एक राजस्थानी मे और तीसरा मिश्रित रूप मे है, क्योंकि संस्कृत मे होते हुए भी बीच मे थोड़ा-सा भाग राजस्थानी मे है। ऊपर बताए हुए पाँच पत्रो मे से तीन तो स० १७७९ वि० के है, एक मे सवत् नही दिया है केवल तिथि दी गई है और पाँचवा सं० १८०० का है, और इस मे तिथि फाल्गुन वदि १० दी गई है। इस अत के पत्र से ओझा जी का स० १७८९ मे इन के स्वर्गवासी हो जाने का उल्लेख विचारणीय हो जाता है।

पहले पत्र मे लिखा है—

..... **खरतरतपोभूरिषु श्रीजिनसुखसूरिषु प्रकृत्याभिरामाणां खवास श्री-**

---

[1] पृष्ठ ३१३

[2] **बाबू पूर्णचंद नाहर द्वारा प्रकाशित "—————————ी-संग्रह" देखिए।**

मदानंदरामाणां सविनय प्रणतयः सविशेषा संतु ।

दूसरे मे—

......खवासःसुपद्येन चानंदरामोऽलिखत्संनति संनत...

तीसरे में—

खवास आनंदराम को नमस्कार वाचिज्यौ ।

चौथे मे—

सकलगुणगणग्रामाभिरामेषु सौजन्यसिंधुषु निरुपराधिबंधुषु श्रीमज्जिनसुखसूरि भट्टारकेषु खवास मदानंदरामाणां वंदनापूर्वक प्रणति —॥

पाँचवा पत्र विशेष महत्व का है और राजस्थानी भाषा मे है। उस की नकल ज्यो की त्यों नीचे दे दी जाती है—

॥ श्री राम जी ॥ स्वस्ति श्री सरब ओपमा लायक । परम सुखदायक सर्वगच्छंत सिरनायक संतां सेवकां मनभायक । अनेक ओपमां विराजमांन पूज्य श्री पूज्य जी श्री श्री श्री श्री श्री जिनभक्तिसूरि जी चरण कुंमलान आज्ञाकारी सदा सेवग नाजर आणंदरांम लिखतुं आदेश वनणा घणे मांन अवधारज्यो जी ॥ अठारा समाचार श्री पूज्य जी की कृपा सुं भला छै। श्री पूज्य जी रा सदा आरोग्य चाहीजै ॥ अप्रंच श्री पूज्य जी बड़ा छौ पूज्य छौ म्हांरै श्री पूज्य जी उप्रांत और कोई बात न छै सेवग आ परौ जांण सदा कृपा भाव राखौ छौ तिण सुं विशेष राखज्यौ जी ॥ अप्रंच कृपापत्र १ आपरौ मा सुदि १३ रीमित्त रौ आयौ वाचीयां सुं आपरै दरसण कीयां रो सा सुख हूवो जी। अप्रंच आप लिखियौ जु जप जाप सुमरण वेला म्हे थां तु याद करां छां सू आप आपरो सेवग जांण म्हासूं कृपा राखो छौ सू आप बड़ा छौ आपनूं आहीज चाहीजै जी ॥ और अबर कै चौमासै रो आप किसी ठौडरौ विचार राखो छा तैरो व्यौरो लिख मेल्हजौ ज्युं म्हांई खबर पडै अर म्हांनै तो आप सदा आपरी सेवा हीज मै जांणता रहिस्यौ जी अठै सरिखौ कां मकान हुसै सु घणो लिखता रहिज्यौ म्हांनु आप कागद पतर लिखायौ सू पाधरी भाषा होज मै लिखाया करज्यौ संस्कृत मै मतां लिखावज्यो जी बाह उतारा कागद सदा देज्यो जी ॥ संवत् १८०० वर्षे मिति फागुण वदि १० दिने ।

उपर्युक्त विवेचन से नाजर आनदराम जी की खरतरगच्छ के आचार्यो के प्रति भक्ति सस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान राजस्थानी भाषा के प्रति प्रेम एव लबी आयु कम

६

से कम ६० ६५ वष) ज्ञात होते हैं

सुप्रसिद्ध जैन कवि धर्मवर्द्धन जी[१] (धर्मसिंह) के भी आप भक्त थे। उन को पहले पत्र मे इन शब्दों में वंदना भी लिखी है—

**विविधविद्याविशारदयोः श्री श्री पूज्यानुकं पाधिगत महोपाध्याय पदयोः श्री-धर्मसिंह राजसागर गण्यो वंदनं आवेदनीयम् ॥**

कविवर धर्मवर्द्धन को नाजर आनंदराम जी ने एक समस्या दी थी, वह हमारे संग्रह मे विद्यमान है। कविवर ने आनंदराम जी के गुणवर्णन मे एक सवैया भी रचा है, जिसे उद्धृत कर इस लेख को समाप्त करता हूं—

**ज्ञायक गुण अगाह न्याय को करे निबाह**
**आलोची बड़ो अथाह धीरज को धाम जू।**
**सज्जन फल्यो उमाह दुज्जनां के हिये दाह**
**पुण्य को सदा प्रवाह जाको शुभ नाम जू॥**
**चित्त में धरत चाह नित्य ही उडीके राह**
**पूज्यो इष्ट देवताह कीनो इष्ट काम जू।**
**सब ही करै सराह वाह वाह वाह वाह**
**आयो तौ भयौ उछाह श्री आनंदराम जू॥**

---

[१] 'राजस्थान', वर्ष २, अंक २ में 'राजस्थानी साहित्य और जैन कवि धर्मवर्द्धन' शीर्षक मेरा लेख देखिए।

# भोजपुरी मुहावरे

**[ संकलन-कर्ता श्रीयुत उदयनारायण तिवारी, एम्० ए० ]**

( अप्रैल के अंक से संबद्ध )

**कंजड़ भइल**—कंजड=जाति विशेष। यह लोग अपना घरबार लिए हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते है। कंजूस होना, दरिद्र स्वभाव का होना। प्र०—उन्हन के का ले ले बाड (अ), उ वॉड़ा कंजड हउए सँ।

**कँटहर फोरल**—कटहल फोडना। पका कटहल स्वादिष्ट होता है। फोड़ते समय उस का दूध हाथ मे चिपक जाता है अतएव यह कार्य बहुत सावधानी से करना पडता है। मुहावरे का अर्थ होता है 'अत्यंत आवश्यक कार्य करना'। प्र०—एइ जूँ काहे नइख (अ) रहत; घरवॉ का 'कँटहर फोरे के बा'।

**कंठ खुलल**—आवाज निकलना। प्र०—अब उन्हिकर 'कंठ खुलि' गइल।

**कंठागर कइल**—कंठस्थ करना। प्र०—ए के तूँ कंठागर कइल (अ)।

**कंठी लीहल**—बैरागी होना। प्र०—अब बुझाता कि इ 'कंठी लीहें'।

**कॉखि दिहल**—परेशान होना। प्र०—तनिकिए काम मे आजु उ 'कॉखि दिहले' हा।

**किकुरी मारल**—सिकुड़ जाना, हतोत्साह होना। प्र०—का 'किकुरी मरले' बाड (अ), उठ (अ) चली जॉ।

**कुँआॅ में डालल**—सत्यानाश कर देना। प्र०—उहवॉ बिआह कइके उ ऑपॉना लइकी के 'कुँआॅ मे डालि' दिहले।

**कुँआँ में बोलल**—कुँएं मे बोलने से ध्वनि गूँज जाती है अतएव स्पष्ट शब्द सुनाई नही देते। 'अस्पष्टता' के लिए इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। प्र०—तोहार त बोलिए नइखे बुझात, जॉनाता जे 'कुँआँ में बोल (अ) तार (अ)'।

**कुआँ म भाँग घोराइल**—किसी वर्ग या गाँव के सब लोगों का मतिभ्रष्ट हो जाना। प्र०—इ कुल्हि एके खानी बतियावतारे मनि, बुझाता जे 'कुएँ में भाँग घोराइल बा'।

**कुँइआँ में गिरल**—आचरण-भ्रष्ट होना, पतनोन्मुख होना। प्र०—इ मए गाँव 'कुँइआँ में गिरल' जाता।

**कुंड परल**—नदी के बहाव मे किसी स्थान का अत्यंत गहरा गड जाना, झगड़ा बढ़ जाना। प्र०—जाँहाँ उ गइले कि 'कुंड परल'।

**कुंडा अइसन मुँह कइल या फुलावल**—'नाराज होना'। प्र०—का 'कुंडा अइसन मुँह कइले' बाड (अ)। 'कुंडा अइसन मुँहवा फुलावे' गैला बुमनी।

**कुंडा ले के आइल**—जब एक संबंधी किसी दूसरे संबंधी के घर जाता है तो अपने साथ कूँड़े मे मिठाई या खाजा आदि भर कर ले जाता है। मुहावरे का अर्थ है 'सौगात मे कोई चीज लाना'। प्र०—उन्करा के हम का पूछीं, उ का कवनो 'कुंडा ले के आइल' बाड़े।

**कुँड़ेसरि राजा भइल**—लोगों का विश्वास है कि भविष्य मे एक ऐसा युग आएगा जब मनुष्य अँगूठे के बराबर लंबे होंगे। उस युग मे जिस मनुष्य के पास एक 'कूँड़ा' अन्न होगा, वह सब से बडा धनी समझा जायगा और उस की 'कुँडेसरि राजा' की पदवी होगी। इस मुहावरे का प्रयोग व्यंग्य मे उस गरीब के लिए होता है जिस की आर्थिक स्थिति सुधर रही हो। प्र०—इ आजु काल्हि 'कुँडेसरि राजा भइल' बा।

**केंचुलि बदलल**—पोशाक बदलना। प्र०—आजु इ 'केंचुलि बदलि' के बाहर निकलल बाडे।

**केंवारी ढाँकाँचावल**—किवाड खुलवाने के लिए उस की कुंडी हिलाना या उस पर आघात करना। प्र०—का केवारी ढाँकाँचाव (अ) तार (अ) हम त (अ) अवते बानी।

**केंवारी लागावल**—किवाड बंद करना। प्र०—का केवारी लगवले बाड (अ) हो।

**क (अ) र कुर कइल**—करवट लेना, आराम करना। प्र०—तनी 'क (अ)र कुर कइ' लेईं।

**कउआ उचरल**—कौए का घर पर आकर बार-बार काँव काँव शब्द उच्चारण करना, आगंतुक अतिथि की सूचना मिलना। प्र०—आजु 'कउआ उचर (अ) ता' जरूर केहू आई।

**कउआ कान ले गइल**—केवल सुनी सुनाई बात पर बिना किसी जाँच पड़ताल के विश्वास कर लेना। प्र०—तूँ त अइसन बतिआव (अ) तार (अ) जइसे 'कउआ कान ले गइल'।

**कउआ हँकनी भइल**—मूर्ख होना। प्र०—ओकरा का किछु आवेला, उ 'कउआ हँकनी हवे'।

**कउड़ी के तीनि भइल**—तुच्छ होना। प्र०—सार (अ) उ कवनो अदिमी हवे' कउडी के तीनि हवे।

**ककन छोड़ावल**—ककन = कंकण। खूब पीटना। प्र०—मारि के 'ककन छोड़ा' देबि।

**कगरियाइल या कगरिया गइल**—एक तरफ हट जाना, टल जाना। प्र०—पिटाए के बात सुनि के उ 'कगरियाइ गइलनि'।

**कचउड़ी निकालल**—खूब पीटना। प्र०—हम मारि के तोहार 'कचउडी निकालि देबि'।

**कचरकूट कइल या भइल**—इच्छापूर्ण भोजन करना, अत्यधिक भोग-विलास करना। प्र०—का पूछ (अ) तानी, राति ए लोकाँ खूब 'कचरकूट भइल' हा।

**कजिया भइल**—'कजिया'—स० कार्य, प्रा० कज्ज शब्द से बना है। इस का अर्थ है 'मृतक के अंतिम संस्कार' का दिन। मुहावरे का अर्थ है 'परेशान हो जाना'। प्र०—कटा पर ऊखि तउलावे गइला पर त (अ) 'कजिया हो जातिआ'।

**कटकटाइ के चढ़ि बइठल**—अत्यंत क्रोधित होकर चढ बैठना, आक्रमण करना। प्र०—उनुक आँवते उ कुकुर नियर 'कटकटाइ के चढि बइठले'।

**कटोरा चॉलावल**—मंत्र-बल से चोर वा माल का पता लगाने के लिए कटोरा खटकाना। प्र०—उ बाबा जी 'कटोरा चॉलावे' के हालि जाने ले।

**कनइठी दीहल**—कान ऐंठना, सजा देना। प्र०—आजु तोहरा के 'कनइठी दीहल' जाई

**कनखियावल**—इशारा करना प्र०—का र (अ) अब का जो इ भागि के गइलनि त इन्कर खूब मरम्मति कर (अ) वि।

**कबड्डी खेलल**—बेकाम फिरना। प्र०—कहाँ 'कबड्डी खेले गइल' रह (अ) ल (अ) हा।

**कमखोट भइल**—कजूस होना। प्र०—इ बॉडा 'कमखोट' आदिमी ह (अ)।

**कमर कसल**—तैयार होना। प्र०—कब से 'कमर कसले' बाड़ (अ) हो।

**कंपा लगावल**—चिड़िया फँसाने के लिए 'कंपा' लगाया जाता है। व्यंग्य से किसी मनुष्य को 'फँसाने' के लिए भी इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। प्र०—तूँ अपने काम खातिर 'कंपा लगाव (अ) तार (अ)'।

**करउँस मूस भइल**—करउँस मूस=चूहा विशेष, जिस की पूछ में पानी लगते ही वह बिल छोड़ कर तुरत भाग जाता है। अत्यंत सावधान होना। प्र०—ओके धइल मस्किल बा, उ 'करउँस मूस हवे'।

**करकच कइल**—वितंडाबाद करना, शोरगुल करते हुए झगड़ना। प्र०—आजु उ विहाने से 'करकच कइले' बाड़े सँ।

**करकर कइल**—शोर करना, झगड़ा करना। प्र०—इ राति दिन 'करकर कइले' रहेले।

**करकर लागल**—झगड़ा होना। प्र०—इन्का घरे राति दिन 'करकर लागल' रहेला।

**करज उतारल**—उधार बेबाक करना। प्र०—हम 'करज उतार दिहली।

**करम फूटल**—भाग्य मंद होना। प्र०—हॉमॉर 'करम फूटि गइल'।

**करम भोगल**—अपने किए का फल पाना। प्र०—अपने 'करम भोगल' जाला।

**करियवा बादरि भइल**—लाभ होना। प्र०—इन्हिका पइआ मति समुझ ल इनही के छअल 'करियवा बादरि होई'।

**करेजा धकधक कइल**—भयभीत हो जाना। प्र०—हॉमॉर करेजा 'धकधक कर (अ) ता'।

**करेजा भइल**—प्यारा होना, हिम्मत होना। प्र०—उ हॉमॉर 'करेजा हउए'। **अइसन काम करे खातिर 'करेजा चाही'**

**कर्रा कइल**—शोर मचाना, कोलाहल करना। प्र०—का सबेर ही से 'कर्रा कइले' बाड़ (अ)।

**कर्रा नाधल**—कोलाहल करना। प्र०—का सवेरही से आजु 'कर्रा नधले' बाड़ (अ)।

**कलई खुलल**—भेद खुलना, वास्तविक बात मालूम पड़ जाना। प्र०—उन्हिकर 'कलई खुलि गइल'।

**कल ना लेबे दिहल**—कल न लेने देना, चैन न लेने देना। प्र०—जियत जिनगी तोहके 'कल ना लेबे देबि'।

**कवर उठावल**—पातक लगे हुए व्यक्ति की शुद्धि के लिए भोजन करने को 'कवर उठाना' कहते है। प्र०—आजु उन्हिकरा घरे के 'कवर उठावल' हा।

**कस के भइल**—अधीन होना। प्र०—उ हॉमॉर 'कस के हवे'।

**कस में कइल**—वश मे करना। प्र०—तॉहॉरा 'कस मे कइला' से ना हो खी।

**कसरि आह भइल**—सामूली तबीयत खराब होना। प्र०—उन्हिकर जीव आजु 'कसरि आइल बा'।

**कसरि निकालल**—बदला लेना। प्र०—कवनो ना कवनो दिन हम एकर 'कसरि निकालवि'।

**कॉचवावध मारि भइल**—खूब जोर से लड़ाई होना। प्र०—काल्हु 'काचवावध मारि भइल' रहे।

**कॉटारी मारल**—कटाक्ष करना। प्र०—उ त आजु 'कॉटारी मार(अ)तिआ'।

**कॉपार खाइल**—सिर खाना, तंग करना। प्र०—तूँ हॉमॉर 'कॉपार जनि खा'।

**कॉपार ठोकि के काम कइल**—एक बार भाग्य के भरोसे कोई काम करना। प्र०—हम 'कॉपार ठोकि के इ काम कइली'।

**कॉपार धइल**—चिंतित होना; चिंता का कारण होना। प्र०—का कॉपार धइले बाड़ (अ)। अब इ लइकी 'कॉपार धइलसि'।

**कॉपार भारी भइल**—सिर दर्द होना। प्र०—आजु हॉमॉर 'कॉपार भारी भइल' बा।

**कॉपारें खुन चढ़ल**—अत्यंत क्रोधित होना। प्र०—इन्करा से जनि बोल (अ) लोग इन्का कापार आज सून चढल बा'

**कापार सुन सवार भइल**—देखो कापार सुन चढ़ल

**कॉपारे पर बरम्ह चढ़ल**—बरम्ह = ब्रह्म। अकाल मृत्यु से मरा हुआ ब्राह्मण 'ब्रह्म' कहलाता है। मुहावरे का अर्थ है अत्यंत क्रोधित होना'। प्र०—आजु तोहरा 'कॉपारे पर बरम्ह चढ़ल' बाड़े का ?

**कॉपारे सनीचर चढ़ल**—अभागा होना। प्र०—आजु काल्हि इन्का 'कॉपारे सनीचर चढल' बा।

**कॉरॉटहा भइल**—कॉरॉटहा = महाब्राह्मण। व्यंग्य में खाने-पीने में सब्र न रखने वाले व्यक्ति पर इस मुहावरे का प्रयोग होता है। प्र०—का तूँ 'कॉरॉटहा भइल' बाड (अ)।

**कॉवॉरा दिहल**—वह खाना जो कुत्ते आदि को दिया जाता है। प्र०—कुकुरा के 'कॉवॉरा दिग्राइल' हा कि ना।

**कॉवॉरा लागल**—किसी बात को चुपचाप सुनने के लिए द्वार के कोने पर छिप कर खडा होना। प्र०—उ इ बात 'कॉवॉरा लागि' के सुनत होई।

**कॉसाई का खूँटा बान्हल**—निष्ठुर के पाले पड़ना। प्र०—तूँ त (अ) ऑपॉना लइकनियॉ के 'कसाई का खूँटा बान्हि ग्राइल' बाड़ (अ)।

**कॉसाई भइल**—दुष्ट प्रकृति का होना। प्र०—इ त 'कासाई ह (अ)'।

**कॉहाक भइल**—चतुर वक्ता होना। प्र०—उ बाड़ा 'भारी कॉहाक ह'।

**कॉहॉल सुनाला में आइल**—किसी की बनावटी बातों पर विश्वास करके उस के अनुसार कार्य करना। प्र०—ए घरी उ उन्हिका 'कॉहॉला सुनाला मे आइल बाड़े'।

**कागद के घर भइल**—शीघ्र नष्ट होने वाला होना। प्र०—बरियाति 'कागद के घर हो ले'।

**कागद की नाव भइल**—काग़ज की नाव होना, शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तु होना। प्र०—इनकर ई रोजिगार 'कागद के नाव बा'।

**काटे दउरल**—चिडचिड़े मिजाज का होना। प्र०—ओजी गइला पर उ 'काटे दउरें' ला।

**कातिक लागल**—बहुत भीड़ पडना। प्र०—उन्हिका 'कातिक लागल' बा।

**काथा उठल**—कथा का बंद होना प्र०—का हो 'काथा उठल' कि ना

**काथा बइठल**—कथा का प्रारंभ होना। प्र० कब से 'काथा बइठल' बा।

**कादर भइल**—आलसी होना। प्र० हम कादर ना हउईं।

**कान अँइठल**—सजा देना। प्र० बे 'कान अँइठले' तू ना मनब (अ)।

**कान ओड़ल**—ध्यान-पूर्वक किसी बात को सुनना। प्र० इ बराबर 'कान ओड़ले' रहेला।

**कान काटल**—बढ कर होना। प्र० इ त ओकरो 'कान कटले' बा।

**कान के पातर भइल**—पातर=पतला। कान का कच्चा होना, सुनी सुनाई बात पर विश्वास करने वाला होना। प्र० राजा 'कान के पातर हउअनि'।

**कान पकड़ल**—कान पकड़ना, निषेधात्मक प्रतिज्ञा करना। प्र० हम 'कान पकड़तानी' जे अब अइसन काम ना करबि।

**कान फुँकवावल**—शिष्य होना। प्र० ऐ बबुआ तूँ हूँ ए बावा जी से 'कान फुंकवा ल (अ)'।

**कान भरल**—किसी के विरुद्ध किसी के मन मे कोई बात बैठा देना। प्र० उ वाड़ा 'कान भरेला'।

**कान में ठेपी लॉगावल**—न सुनना। प्र० का तूँ 'कान में ठेपी लगवले' रहल (अ) हा।

**कान में रुई डालल**—अनसुनी कर देना, बिल्कुल ध्यान न देना। प्र० हम कतनो कह (अ) तानी बाकी उ 'कान मे रुई डलले' बाड़े।

**कान रोपल**—ध्यान पूर्वक किसी बात को सुनना। प्रयोग के लिए देखो 'कान ओड़ल'।

**काना फूँसी कइल**—छिपे-छिपे आलोचना करना। प्र० कल्हुए इ बात भइल, आजु 'काना फुँसी लोग करे लागल'।

**काना सानी भइल**—इशारा करना। प्र० का 'काना सानी कइले' बाड़ (अ) लोग।

**काने लागल**—कान लगना, वहकाना। प्र० इ 'काने लागि' के हॉमॉर काम खराब कइले हा।

**कान्ह** देना प्र० चल (अ) तनी तूँ हूँ कान्ह लाग

दीह (अ)

**काह्वावरि दिहल** पीला वस्त्र जो समधिया को दिया जाता है। प्र० उहिका के 'कान्हावरि दे' के भेजिह (अ) लोग।

**काम आइल**—व्यवहार में आना। प्र० गाँव के मजूरो 'काम आवे' ला।

**काम कइल**—मतलब निकालना। प्र० आपन 'काम कइ ल (अ)' त कही जइह (अ)।

**काम टुकटुकाइल**—आर्थिक लाभ होना, उन्नति होना। प्र० अब एकर 'काम त (अ) नी टुकटुकाइल' बा।

**काम ठकुठकाइल**—आर्थिक हानि होना। प्र० आजु काल्हि एकर 'काम ठकुठकाइल' बा।

**काम बनल**—बात बनना। प्र० हॅमॉर काम 'बनि गइल'।

**काम में नाधल**—काम मे लगाना। प्र० तनी एहु के आपाना 'काम मे नधले' जा।

**काम में नाधाइल**—काम मे लगना। प्र० दिन राति काम मे नाधाइल रह (अ) तॉवाँना पर त (अ) इ हालि बा।

**कामाइल धामाइल**—उद्यम व्यापार करना। प्र० अब उ 'कामाए धामाए' लगले।

**कारकुन भइल**—कारकुन=(फा०) प्रबंधकर्ता। भोजपुरी मे इस का अर्थ 'होशियार' होता है। प्र० उ बडा भारी 'कारकुन भइल' बा।

**काला कइल**—झूठमूठ रोना। प्र० 'इ काला कइले' बा।

**काली का हवंकल में परल**—काली की हवा मे पडना, 'विपत्ति मे फँसना'। प्र० इ आजु काल्हि 'काली का हवकल मे परल' बाडे।

**कासी का साहु के चमकउआ कइल**—काशी के साहु (श्रेष्ठिन्) अपने ठाट-बाट के लिए प्रसिद्ध है। इस मुहावरे का प्रयोग व्यंग्य मे किसी के 'ठाट-बाट' पर किया जाता है। प्र० ए बिआह मे 'इ कासी का साहु के चमकउआ कइले' बा।

**किछु कइ दिहल**—जादू टोना कर देना। प्र० बुझाता जे ओकरा लइकवा के 'किछु कइ देले' बाड़ी सँ (अ)।

**किछु हो गइल**—कुछ रोग या भूत प्रेत की बाधा हो जाना किसी योग्य पद

को प्राप्त कर लेना। प्र० ठीक पाँता त नइखे चलल, बाकी ओकरा 'किछु हो गइल' बा। ओकर बात का पुछले बाड (अ), अब उ 'किछु हो गइल' बा की।

**किराया पर लिहल**—दूसरे की वस्तु का कुछ दाम देकर व्यवहार करना। प्र० इ त (अ) मू 'किराया पर लिहल' बा।

**किरिनि फुटल**—सूर्योदय होना। प्र० उठ (अ) हो 'किरिनि फुटि' गइल।

**कुकुर काटल**—पागल होना। प्र० ओकरा से बोल (अ) लोगें मति, ओकरा के 'कुकुर कटले' बा।

**कुकुरहो कइल**—कुत्तो सा झगड़ा करना, व्यर्थ के लिए लड़ना। प्र० का 'कुकुरहो कइले' बाड।

**कुकुरो बिलारि ना पूछल**—कुत्ता बिल्ली का भी न पूछना, व्यर्थ होना। प्र० भादो के भात 'कुकुरो बिलारी ना पूछे'।

**कुचुराई कइल**—निंदा करना। प्र० उन्हि हॉमार 'कुचुराई कइले' बाडे, हम वे मर्ले ना छोड़वि।

**कुजाति काढ़ल**—जाति से बहिष्कृत करना। प्र० उ 'कुजाति काढल' बाड़े।

**कुठॉवे मारल**—मर्म-स्थान पर मारना। प्र० उ ओकरा के 'कुठॉवे मर्ले' बा, देखीं उ बाँचेला की नाही।

**कुठेठि कइल**—हठ करना। प्र० का 'कुठेठि कइले' बाडे रे।

**कुदुकल गइल**—प्रसन्नता से दौड़ते जाना। प्र० का 'कुदुकल गइल (अ) हा।

**कुनमुनाइल**—भीतर ही भीतर नाराज़ होना। प्र० तूँ ओकरा किहाँ जइह (अ) मति, उ बॉडा 'कुनमुनाला'।

**कुप्पा नियर मुँह कइल**—कुप्पा=चमडे का बर्तन जिस मे तेल रक्खा जाता है। मुँह फुलाना, नाराज होना। प्र० का 'कुप्पा नियर मुँह कइले' बाड़ (अ)।

**कुफुत कइल या नाधल**—आफत करना। प्र० उ राति दिन 'कुफुत कइले' (नधले) रह (अ) तारे।

**कुफुत में घुलल**—अफ़सोस मे घुलना। प्र० आजु काल्हि उ 'कुफुत मे घुल (अ) तारें'।

**कुफुत में डालल** म डालना प्र० उ हामारा के कुफुत में डलले

बाड

**कुफुत म परल** आफत म पड़ना प्र० आजु कालिह् हम कुफ्त म परल बानी

**कुर्छाही कइल**—दुष्टता करना। प्र० का 'कुर्छाही कइले' बाड (अ)।

**कुल मुँड़नि भइल**—खेत की बुआई का समाप्त होना। प्र० आजु 'कुल मुडनि भइल' हा।

**कुल्हा उतरल**—गिरने अथवा किसी प्रकार के आघात लगने से कूल्हे का अपने स्थान से हट जाना। प्र० आजु कुस्ती मे उन्हिकर 'कुल्हा उतरि गइल' हा।

**कुस्ती खाइल**—कुश्ती में हार जाना। प्र० आजु दंगल मे उ 'कुस्ती खा गइल' हा।

**कुस्ती मारल**—कुश्ती मारना। प्र० आजु दंगल मे उ बॉड़ा भारी 'कुस्ती मरलसि' हा।

**कुकुर हो गइल**—कुत्ता हो जाना, चटोर हो जाना, मार पडने पर भी अपनी आदत न छोडना, दर दर घूमना। प्र० ऊ अब 'कूकुर हो गइल' बाटे।

**कूटि कइल**—मूर्ख बनाना। प्र० राति तूँ उन्करा से बॉड़ा 'कूटि' करत रहुअ (अ)।

**कोइरी के देवता**—कोइरी=जाति विशेष। उन्हे काछी या मुराव भी कहते है। अत्यंत शान्त प्रकृति का होना। प्र० उ भॉला भॉगॉरा के हाल का जानसु, उ त 'कोइरी के देवता हउए'।

**कोठा बिगड़ल**—अपच होना। प्र० आजु उन्हुकर 'कोठा बिगड़ल बा'।

**कोठा साफ भइल**—साफ दस्त होने के बाद पेट का हलका हो जाना। प्र० आजु हॉमार 'कोठा साफ भइल' बा।

**कोदो देके पढ़ल**—कोदो (एक प्रकार का निम्न श्रेणी का अन्न) गुरु को देकर पढना। मुफ्त में पढना। प्र० का हम 'कोदो दे के पढले' बानी।

**कोरा का कुकुरे सिकार कइल**—गोद मे चलने वाले कुत्ते से शिकार करना। बिना परिश्रम के ही सफलता चाहना। प्र० उहॉ कॉ 'कोरा का कुकुरे सिकार करे' चाह (अ) तानी।

**कोरो सॉंसल** करना प्र० ढर खि बाड अ त हामार

कोरो खीचि लीह (अ)'।

**कोल्हु के बयल भइल**—बहुत कठिन परिश्रम करने वाला होना। प्र० उ 'कोल्हु के बयल' हउए।

**कोल्हु काटि के मुँगरा बनावल**—कोल्हू काट कर मुग्दर बनाना। आवश्यक स्तु को नष्ट करके अनावश्यक का निर्माण करना। प्र० ओकर का लेले बाड़ (अ), उ 'कोल्हु काटि के मुँगरा बनावेला'।

**खँड़लिचि देखल**—खँडलिचि=खजन पक्षी, जिस का दर्शन चित्रा नक्षत्र मे मगल-सूचक तथा लाभप्रद समझा जाता है। इस मुहावरे का प्रयोग उस समय किया जाता है, जब किसी व्यक्ति को कुछ लाभ होता है। प्र० आजु तूँ 'खँड़लिचि देखि' के उठल रहल (अ) हा।

**खसी चाँढ़ावल**—बकरे को बलिदान चढ़ाना। प्र० उ काली जी के आजु 'खसी चढवले' हा।

**खाँचड़ भइल**—मूर्ख होना। प्र० इ त 'खाँचड़ भइल' जाता।

**खूँटी निकालल**—दाढ़ी को इस प्रकार मूँड़ना कि बालो की जड़ तक साफ हो जाय। प्र० उ खूब 'खूँटी निकाले' जाने ला।

**खोंइछा भरल**—अंचल के कोने मे चावल, मिठाई, हल्दी आदि मंगल द्रव्य डालना। प्र० जा उन्हुकर 'खोइछा भरि आव (अ)'।

**खोंखि खाँखारि के बात कइल**—स्पष्ट बातें करना। प्र० 'खोखि खाँखारि के बात कइल' नीमन हवे।

**खइला नहइला के देहि भइल**—स्वस्थ तथा मोटा ताजा शरीर होना। प्र० भाँला 'खइला नहइला के देहि' कहीं छिपेला।

**खउदा भइल**—मोटा होकर आलसी हो जाना। प्र० उ आजु कालिह मोटाइ के 'खउदा भइल' बा।

**खउर भइल**—खउर=क्षौर। मृतक-सस्कार मे ग्यारहवें दिन को 'खउर' कहते हैं। इसी दिन महाब्राह्मण आता है तथा कुटुंब के दूसरे लोग सिर मुँडाते है। कभी कभी स्त्रियाँ अभिशाप देते हुए कहती है—'तोहार खउर होखो'। प्र० आजु उन्हुकर 'खउर भइल' हा

**खखुआ के चढ़ि बइठल**—क्रुद्ध होकर टूट पड़ना। प्र० हमरा के देखते ऊ 'खखुआ के चढि बइठले'।

**खटकर्मी भइल**—खटकर्मी=षट्कर्मी, इस का प्रयोग व्यंग्य में होता है, वाह्या-डंबर करने वाला होना। प्र० इहाँ कों बाँड़ा 'खटकर्मी' हउर्इं।

**खटकल या खरकल**—अनबन होना, शत्रुता होना। प्र० आजु काल्हि ए लोगनि कों अपुसे में 'खटकल बा'।

**खट पर भइल**—अत्यधिक रुग्ण हो जाना, अत्यधिक वृद्ध हो जाना। प्र० अब उ 'खट पर हो गइल' बाड़े।

**खटराग कइल**—झंझट करना। प्र० हाँमरों 'खटराग कइल' नीक ना लागे।

**खटराग लगावल या बढ़ावल**—झंझट लगाना या बढ़ाना। प्र० का 'खट-राग बढ़वले बाड़ (अ)'।

**खटिआ तूरल**—निश्चित हो कर आराम करना। प्र० आजु काहि उ 'खटिआ तूर (अ) तारें'।

**खटिआ पर परल**—दिन रात सोते रहना, काम धधा न करना। प्र० इन्कर कवनो लच्छन नइख बुझात, आजु काल्हि इ 'खटिए पर परल' रह (अ) तारें।

**खड़मंडल कइल**—उपद्रव करना। प्र० इ आजु काल्हि 'खड़मंडल कइले' बा।

**खड़मंडल भइल**—घर मे उपद्रव होना। प्र० आजु काल्हि इन्करा घर मे 'खड़मंडल भइल' बा।

**खद गोबर भइल**—गदा होना। प्र० उ 'खद गोबर ह (अ)'।

**खनखनाइल**—आमदनी होना; जुआ खेलना। प्र० तोहाँरा आजु काल्हि बाँडा 'खनखनाता'। अमावस का दिने राति भर 'खनखनाइल' हा।

**खपर जार भइल**—ईख के रस से गुड बनने का प्रारंभ होना। प्र० आजु खपरजार भइल' हा।

**खबरि लिहल**—समाचार जानना, दीन दशा पर ध्यान देना। प्र० बाम्हन के 'खबरि ल (अ)' हे लछिमी!

**खरजिउतिया कइल**—जिउतिया=जिवपुत्रिकाव्रत जिसे स्त्रियां अपने पुत्र की मंगल-कामना के लिए निर्जल तथा निराहार रह कर करती हैं कठिन व्रत या तपस्या

करना। प्र० तोहार मॉतारी 'खर जउतिया कइले रहलि' हा, तबे तोहार जान ग्रॉचल हा।

**खर्‌ह भरि के टहल ना कइल**—तिनके के बराबर भी काम न करना, साधारण श्रम वाला कार्य भी न करना। प्र० उ 'खर्‌ह भरि के टहल ना करेले'।

**खर्‌ह भरि के लाज ना कइल**—खर्‌ह=तिनका। तिनके के बराबर भी लज्जा न करना, तनिक भी लज्जा न करना। प्र० तोहरा 'खर्‌ह भरि के लाज नइखे'।

**खरमेटाव कइल**—जलपान करना। प्र० तनि 'खरमेटाव कइ लीं' तब चली।

**खर सेबर भइल**—ठीक समय पर जलपान तथा भोजनादि न करने से बीमार पड जाना। प्र० ग्राजु उन्करा 'खर सेवर भइल' बा।

**खरवा खात पनियाँ पीयत चलल**—धीरे धीरे (गाय सा) चलना, जो घास चरती तथा पानी पीती चलती है। प्र० हमनी का 'खरवा खात पनिया पीयत चलि चले' के।

**खरिहान लॉगावल**—कटी हुई फसल का ढेर लगाना। प्र० उ बगइचा मे 'खरिहान लगवले' बाड़े।

**खरुग्रा के थइली सिग्रावल**—खरुग्रा=लाल रग का मोटा ग्रौर मजबूत कपडा। इस मुहावरे का प्रयोग व्यग्य मे उस समय होता है जब कोई व्यक्ति ग्रथवा व्यापारी ग्रपनी चीजों का बहुत ग्रधिक दाम मॉगता है। प्र० ग्रॉतना रुपया कहाँ धॉराई, एगो 'खरुग्रा के थइली सिग्राव (ग्र)'।

**खर्राटा लिहल**—प्रगाढ़ निद्रा में सोना। प्र० इ ग्राजु बॉड़ा 'खर्राटा लेत' बाडे।

**खॉखाइल**—बे-सब्र होना। प्र० इ दिन रानि 'खॉखाइले' रह (ग्र)तारे।

**खॉटॉई में डालल**—दुविधा मे डालना। प्र० इ कुल्हि काम 'खॉटॉई मे डलले' बाडे।

**खॉटॉई में परल**—दुविधा में पडना। प्र० इन्हिकरा मारे हॉमार काम 'खॉटॉई में परल' बा।

**खॉरा ग्रदिमी भइल**—व्यवहार में सच्चा ग्रौर ईमानदार होना। प्र० उ बॉडा 'खॉरा ग्रदिमी हउए'।

**खाराई मारल**—सबेरे ग्रधिक देर तक या भोजन ग्रादि न मिलने के

कारण प्रकृति में कुछ गड़बड़ी होना प्र० बभान बा जे हामारा के खाराइ मारि देल बा

**खॉराब पर चढ़ल**—परीक्षा पर चढ़ना। प्र० अब इ 'खॉराद पर चढ़ल' बाड़े।

**खॉराब अदिमी भइल**—बदचलन होना। प्र० उ बॉड़ा 'खॉराब अदिमी हवे'।

**खाइल कॉमाइल**—काम धंधा करके गुजर करना। प्र० उ मजे में 'खाले कमाले'।

**खा घालल**—मार डालना। प्र० आजु जो उ तोहॉरा के पाई त 'खा घाली'।

**खाड़ा भइल**—चलने को तैयार होना। प्र० तोहरे खातिर कबे से 'खाड़ा भइल' वानी जा।

**खाली बइठल**—बेरोजगार रहना। प्र० आजु काल्हि उ 'खाली बइठल' बाड़े।

**खिआल आइल**—याद आना। प्र० 'खिआल आ जाई त लेले आइबि'।

**खिआल कइल**—याद करना; तमाशा करना। प्र० 'खिआल कइ' के ले ले जइ ह (अ)। बॉनॉरा बॉड़ा 'खिआल करत रहे'।

**खिआल परल**—याद आना। प्र० 'खिआल परल' रहल हा, बाकी उ भेंटइबे ना कइल हा।

**खिआल रहल**—याद रहना। प्र० इ बतिया तोहार 'खिआल रही' की ना।

**खिआल से उतरल**—विस्मृत हो जाना। प्र० तोहार बात त 'खिआल से उतरि गइल हा'।

**खिलल**—प्रसन्न होना। प्र० आजु तूँ बॉड़ा 'खिलल' बाड़ (अ) हो।

**खिलाल कइल**—मात करना। प्र० आजु तोहरा के हम तास में 'खिलाल कइ देबि'।

**खिसि निकालल**—बदला लेना। प्र० अब उ तोहरा से 'खिसि निकाली'।

**खीसा खतम भइल**—झगड़ा मिटना। प्र० चल (अ) 'खीसा खतम भइल'।

**खुदुकावल**—धीरे से इशारा करना। प्र० हम कहही के रहुई जे उ 'खुदुकउअनि'।

**खुधुकावल**—उत्तेजित करना। प्र० हमेसा 'खुधुकावल' नीक ना हवे।

**खुनसाइल**—नाराज होना। प्र० तूँ हॉमॉरा ऊपर काहे 'खुनसाइल' बाड़ (अ)।

**खुरखार कइल**—सर्वदा कुछ न कुछ काम करते रहना, चंचलता करना। प्र० तूँ हमेसा 'खुरखार करते रहेल (अ)'। ए बबुआ, चुपचाप बइठ (अ) ना, का 'खुरखार कइले बाड़ (अ)'।

**खुरि आइल**—गाय या भैंस का बच्चा पैदा होना। प्र० अब गइया 'खुरि आइलि बा'।

**खून खउलल**—अत्यंत क्रोधित होना। प्र० इन्का के देखि के हॉमार 'खून खउले लागेला'।

**खून सूखल**—अत्यंत भयभीत हो जाना। प्र० ओंकरा के देखि के हॉमार 'खूने सूखि गउए'।

**खेख पढ़ल**—खेख=अभिषेक। विवाह के अंत मे पुरोहित तथा ब्राह्मण वर की मंगल-कामना के लिए श्लोक पढते हैं इसे खेख पढना कहते है। मुहावरे का अर्थ विवाह समाप्त होना भी होता है। प्र० का जी 'खेख पाढाइल'।

**खेढ़ी गाड़ल**—खेढी=एक प्रकार की झोली जिस में बच्चे गर्भावस्था मे रहते है और जो बच्चों के पैदा होने पर गर्भ से निकल जाती है। उसे प्रसूतिका के घर में ही गाड देते हैं। बार-बार मना करने पर भी किसी व्यक्ति के किसी स्थान विशेष मे जाने पर इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। प्र० तू रोज रोज उहाँ काहे जाल (अ), का उहाँ तोहार 'खेढी गाड़लि' बा।

**खेत कॉमाइल**—खाद आदि डाल कर खेत को उपजाऊ बनाना। प्र० कोइरिए नु 'खेत कॉमॉले स (अ)'।

**खेत पेट बराबर भइल**—खेत पेट बराबर होना, कुछ भी नफा अथवा नुकसान न होना। प्र० ए रोजिगार से का फैदा जवना मे 'खेत पेट बराबर होखे'।

**खेत राखल**—खेत की रखवाली करना। प्र० आजु काल्हि दिन भरि 'खेत राखे के पड़(अ)ता'।

**खेती मॉराइल**—फसल नष्ट होना। प्र० असो खेती 'मॉरा गइलि' हा।

**खेदा खेदी कइल**—पीछा करना। प्र० लइकवा का सादी खातिर इ बॉड़ा 'खेदा खेदी कइले' बाड़े सनि।

**खेलत खाइल**—[illegible] से दिन बिताना' काम क्रीठा करना। प्र० इहे त

अ खल खाए के उभिरि ह

**खलि कइल**—किसी काम को या तुच्छ समझ कर हंसी म उड़ाना प्र०—तूँ 'खेलि कइले' बाड़ (अ) त एकर माजा बुझाई।

**खेलि खेलावल**—बहुत तंग करना। प्र० अब हीं हन इन्हिकरा के 'खेल खेलाव (अ) तानी'।

**खेलि बिगाड़ल**—काम खराब करना, रंग मे भंग डालना। प्र० उ हमार 'खेलि बिगाडि दिहलसि'।

**खेलि बूझल**—साधारण या तुच्छ समझना। प्र० का एके 'खेलि बूझ (अ)' तार (अ)।

**खोदा खोदी कइल**—छिप कर धीरे-धीरे झगड़ा करना। प्र० का 'खोदा खोदी कइले' बाड़ (अ) स रे।

**खोदि खोदि के पुछल**—अच्छी तरह से पूछना। प्र० बाडा 'खोदि खोदि के पुछत' रहला हा।

**खोट कइल**—अप्रतिष्ठित बना देना। प्र० भरल साँभा में इ हॅमारा के 'खोट कइलसि'।

**खोट भइल**—अप्रतिष्ठित हो जाना। प्र० एकरा मारे हम 'खोट भइल' बानी।

**खोटहाई कइल**—बुराई करना; कमी करना। प्र० तोहॅरा 'खोटहाई करे' के चाही।

**खोरि खाइल**—परेशान कर देना। प्र० तूँ त (अ) हॅमॅरा के 'खोरि खइल (अ)'।

**गँगाजल उठावल**—गंगा की कसम खाना। प्र० चलि के 'गँगाजल उठाव(अ)' तब हम मानबि।

**गंगा पिअल**—असत्य भाषण करना। प्र० का 'गगा पिअतार (अ)'?

**गंगालाभ भइल**—मृत्यु को प्राप्त हो जाना। प्र० उ 'गगालाभ' हो गइले।

**गँगुआसोहाइत कइल**—प्रसिद्ध है कि गाँगू और सोहाइत नाम के दो भाई थे। ऊपर से तो वे दोनो आपस में लड़ते दिखलाई देते थे किंतु भीतर से वे दोनो मिले रहते थे इस प्रकार वे व्यक्तियो को अवसर पा कर ठगते थ जब दो मिल हुए

व्यक्तियों में से एक एक पक्ष तथा दूसरा दूसरे पक्ष की बातें करके किसी तीसरे व्यक्ति को फँसाने का उद्योग करता है तो इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। प्र० तोहन लोग के 'गँगुआ सोहाइत कइल' हम चिन्ह (अ) तानी।

**गँठि जोराव कइल**—विवाह करना। प्र० तू आँपाँना लइकनिया के 'गँठि जोराव कइ घाल (अ)'।

**गँठि जोराव भइल**—विवाह होना। प्र० तोंहाँर 'गँठि जोराव भइल' बा किना।

**गँठियावल या गेंठियावल**—बाँधना, ब्रह्म भोज में पतल लेना। प्र० उ खइबो कइले आ गँठियाइयो (गेठियाइयो) लिहले।

**गँव से कइल**—युक्ति करना। प्र० काम 'गँव से करब (अ)' त होई।

**गँव से कहल**—धीरे से कहना। प्र० उहाँ जाइ के ई बात तनी 'गँव से कहिह (अ)'।

**गेंठरी मारल**—अनुचित रूप में किसी का रुपया ले लेना। प्र० तूँ जानत नइख (अ) उ 'गेठरी मार ह (अ)'।

**गोंइठा कर्सी भइल**—सर्दी-गर्मी सहने वाला होना। प्र० इन्कर का ले ले बाड (अ), इ त 'गोइठा कर्सी' हउए।

**गोंयड़ा के गेहूँ काटल**—बहुत नुकसान पहुँचाना। गोयडा (=गाँव के आस पास) के खेत बहुत उपजाऊ होते हैं। यहा गेहू खूब उपजता है। जब कोई व्यक्ति नाराज होकर किसी को धमकाता है तो वह उसके जवाब में इसे व्यंग्य में कहता है। प्र० जा बहुत खिसियाइल बाड (अ) त हॉमॉरा 'गोयड़ा के गोहूं काटि ली ह'।

**गोहूँ बेंचल**—जब कोई व्यक्ति किसी से कुछ माँगता है और वह नहीं देता और इस पर भी यदि वह बार-बार माँगे तो न देने वाला व्यक्ति कुछ नाराज होकर यह मुहावरा कहता है। प्र० तूँ का बेर बेर आव (अ) तार (अ), का कदनो 'गोहूँ बेचलें' बाड़ (अ)।

**गइल घर भइल**—दुर्दशा प्राप्त होना। प्र० 'गइला घर' के कवन ठेकाना।

**गउद भइल**—मूर्ख होना। प्र० इ बॉडा भारी 'गउद' ह (अ)।

**गजट कॉराअल**—किसी प्रकार की सूचना आदि को गजट में प्रकाशित करना। प्र० इ बात 'गजट कारावल' बा मुँह जाबानिए नइख

**गजट भइल**—किसी बात का बहुत अधिक प्रसिद्ध होना । प्र० इ बात त (अ) ढेर दिन से 'गजट भइल' बा ।

**गटई फँसल**—गला फँसना; विपत्ति में फँसना । प्र० अब त 'गटई फँसिए गइल' बा, देखी का होला ?

**गटकावल**—भोजन करना । प्र० तबे से का 'गटकावतार(अ)' ।

**गटकि गइल**—निगल जाना । प्र० हॉमॉर कुल्ही खाया इ 'गटकि गइले' ।

**गड़ल मुरुदा उखारल**—गई बीती बात को उभाड़ना । प्र० का 'गडल मुरुदा उखरले' बाड(अ) ।

**गड़ही के कमल भइल**—निकृष्ट स्थान में उत्तम वस्तु का पैदा होना । प्र० ओह खॉन्दान में सभे खॉराब हवे, एगो उहे 'गडही के कमल बाडे' ।

**गति बनल**—दुर्दशा होना । प्र० आजु 'गति बनि गइल' हा ।

**गति बानावल**—आकृति बिगाड़ना; दुर्दशा करना । प्र० ओकर खूब 'गति बानावल' गइल हा ।

**गद भइल**—किसी चीज का पेट में आकर न पचना । प्र० आजु 'गद भइल' बा ।

**गदहन जव चरावल**—गदहों से जौ चराना; अयोग्य तथा कुपात्रों को दान देना । प्र० का 'गदहन जव चराव(अ) तार (अ)' ?

**गधभेरि भइल**—गोधूली होना । प्र० आजु तूँ 'गधबेरि' खाँ अइल (अ)हा ।

**गप उड़ल**—झूठी खबर फैलना । प्र० उन्हिकारा बारे से इ का 'गप उडल' रहल हा ।

**गपचि घालल**—निगल जाना । प्र० बाप रे दादा हुग्गिा हॉमॉरा रुपया गपचें के 'गपचि घललसि' अब देत नइखे ।

**गप सड़ाका कइल**—गप शप करना । प्र० का 'गप सड़ाका कर (अ) तार(अ)' लोग हो ।

**गभड़ू भइल**—कम उम्र का तथा अनुभव शून्य होना । प्र० उ 'गभड़ू ह(अ)', उ का इ सब जाने ।

**गर के नस तुरल**—गर=गर्दन । बहुत चिल्लाना; पस्त हिम्मत करना । प्र० तन्किए मरि म तूँ लागेल (अ) गर के नस तुरें हम तोहरा 'गर के नस तुरि' देबि

**गरगट धइल**—बुरा लगना। प्र० भात देखते इन्का 'गरगट धर (अ) ता'।

**गरगद्द कइल**—गला फाड कर चिल्लाना; शोर करना। प्र० का 'गरगद्द कइले' बाड (अ)।

**गरद उड़ल**—धूल मे मिलाना; बर्बाद करना। प्र० राति भर अनेरिआ गरू खेत के 'गरद उडा' दे तारे स (अ)।

**गरदनि टीपल**—गला दबा कर मार डालना। प्र० उ 'गरदनि टीपे' के हालि जाने ले।

**गरदनियावल**—बाहर निकाल देना। प्र० इनिका के 'गरदनियाव' इ मनिहें ना।

**गरदनि रेतल**—अहित करना। प्र० का 'गनरदनि रेतले' बाड (अ)।

**गरद फाँकल**—व्यर्थ घूमना। प्र० उ आजु कालिह् 'गरद फाॅक (अ)' तारे।

**गर दाबाइल**—आपत्ति में पडना। प्र० ए घरी हॉमार 'गर दाबाइल' बा।

**गर पकड़ल**—आफत मे डालना। प्र० इ मुकदिमा 'गर पकड़ले' बा।

**गर फँसल**—आपत्ति मे फँसना। प्र० 'गर फँसल' बा त जवन कह (अ)।

**गरम (अ) सल**—गर्मी पडना। वर्षा-ऋतु मे वृष्टि के पहले जब गर्मी पडती है तब कहते है 'आज बडी गर्मी है, वृष्टि जरूर होगी'। प्र० आजु बॉडा 'गरम (अ) सल' बा, बुझाना जे पानी बरिमि।

**गरह कटल**—अरिष्ट दूर होना। प्र० हॉमार 'गरह कटल' हा।

**गरे ढोल बान्हल**—झंझट लिए रहना। प्र० का 'गरे ढोल बन्हले बाड़ (अ)'।

**गरे फँसरी लॉगावल**—विपत्ति मे डालना, आफ़त मे फँसाना। प्र० इ हॉमार 'गरे फँसरी लगवले' बाड़े।

**गर्द उड़ा दिहल**—धूल उडा देना, नष्ट कर देना। प्र० गोरू खेत के 'गर्द उडा दिहले' सनि।

**गली गली मारल फिरल**—जीविका के लिए इधर-उधर भटकना। प्र० उ 'गली गली मारल फिर (अ) तारे'।

**गल चउमस आ गलसट्का कइल**—बेकार बैठे हुए दुनिया भर की बातें करना। प्र० आजु त **दिन भरि रउआँ सभ 'गल चउमसे कइली हॉ**

**मुलाइल**—मूर्खों के सामन बकवाद करन वाला व्यक्ति जब किसी पडित के सामने आकर चुप हो जाता है तो इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। प्र० उन्का सामने त तोहार 'गलमट्का भुला' गउए।

**गहकल**—खूब जमना। प्र० नाच खूब 'गहकल' बा।

**गहिर आसामी भइल**—बड़ा आदमी होना। प्र० एगो 'गहिर आसामी' के लिआ ले आव (अ) जे रुपया मिले।

**गहिर हाथ मारल**—हथियार का भरपूर वार करना, भारी माल उड़ाना। प्र० इ 'गहिर हाथ मरले' त रहल हा, बाकी का करो ओकार करम नीमन रहल हा।

**गाँदाँहा पर चाँढ़ावल**—बहुत बेइज्जत और बदनाम करना। प्र० खूब त (अ) उन्हिका के 'गाँदाँहा पर चढवल (अ) हो।

**गाँनाइल**—कुछ महत्व का समझा जाना। प्र० उ बड़े बड़े लोगन में 'गानाले'।

**गाँराँमाइल**—क्रोधित होना। प्र० का 'गाँराँमाइल' बानी जी।

**गाइ भइल**—दीन होना। प्र० इ 'गाइ ह'।

**गाजल**—अत्यंत प्रसन्न होना। प्र० ए साइत खूब 'गाज(अ)तार (अ)'।

**गजारा मुरई बुझल**—तुच्छ समझना। प्र० का तूँ 'गाजारा मुरई बुझले' बाड़ (अ)।

**गाँठि काटल**—जेब कतरना, ठगना। प्र० मेला से उन्हिकर गाँठि काटि लिहले हा स (अ)। ओकारा कीहाँ ना कीने के उ 'गाँठि काटि ले ला'।

**गाँज लागावल**—ढेर करना। प्र० बाड़ा 'गाँज लगवले' बाड़।

**गाँउज माँउज कइल**—स्पष्ट काम न करना। प्र० का 'गाँउज माँउज कइले' बाड (अ)।

**गाँती बान्हल**—चद्दर या अँगोछा लपेटने का एक ढंग जिस में उसे शरीर के चारो ओर लपेट कर गले मे बाँधते है। प्र० जा आपना माइ मे 'गाँती बान्हवा' आव (अ)।

**गाँव उपर भइल**—गाँव के ऊपर होना। समाज अथवा गाँव के नियमो के विरुद्ध चलने वाले व्यक्ति के लिए व्यग्य मे इस मुहावरे का प्रयोग होता है। प्र० इन्कर का ले ले बाड (अ) इ 'गाँव उपर हउए'

**गाँव खड़बड़ाइल**—किसी अनिष्ट की आशंका से गाँव के लोगो का भयभीत हो जाना। प्र० पिलेक का वोजह से गॉव 'खड़बड़ाइल' बा।

**गॉव ना बसल**—सब के लिए दुष्ट प्रकृति का होना। प्र० तोहरा मारे 'गॉव ना बसी'।

**गाँसा से पानी ना गिरल**—दो उँगलियो के बीच के भाग को 'गॉसा' कहते है। हाथ मे पानी लेने से 'गॉसा' से गिर पड़ता है। मुहावरे का अर्थ है—अत्यंत कंजूस होना। प्र० ओकरा 'गॉसा से पानी ना गिरेला'।

**गाफा बाबा भइल**—गोरखपुर के पयहारी जी स्वयं भोजन करने के पूर्व अपनी जमात के एक विशेष ब्राह्मण को पकवान आदि सुदर भोजन खिलाते है। भोजन करने वाले महात्मा मोटे-ताजे और प्राय खाने वाले होते है। इन्हे गाफा बाबा कहते है। मुहावरे का अर्थ है खूब खाने वाला होना। प्र० आरे यहाँ का 'गाफा बाबा हई'। अतने से ना पेट भरी।

**गाफा मारल**—खूब खाना। प्र० का बडे 'गाफा मार (अ) तार (अ)'।

**गारद बइठल**—पहरा बैठना। प्र० आजु होइजा 'गारद बइठल' बा।

**गारद बइठावल**—पहरा बैठाना। प्र० उ ऑपॉना दुआर पर 'गारद बइठावे' के रहले हा।

**गारद में कइल**—हवालात मे बंद करना। प्र० उन्हिका के धइ के 'गारद में कइले' बा।

**गारद में डालल**—हवालात मे देना। प्र० दरोगा जी ओकारा के 'गारद मे डालि' दिहले।

**गारी परल, या लागल**—कलंक लगना। प्र० उ कह (अ) तारे कि हॉमॉरा ऊपर 'गारी परल या लागल' बा हम ना ओजुग जाइबि।

**गारह में परल**—संकट में पड़ना। प्र० आजु कालिह उ बाड़ा भारी 'गारह मे परल' बाड़े।

**गाल फारल**—गाल फाडना; कडी चोट पहुँचाना। प्र० अधिका बोलब (अ) त (अ) हम तोहार 'गाल फारि' घालबि।

**गाल** [illegible] होना प्र० का गाल फुलवले बाड़ [illegible]

**गिटिपिट कइल**—टूटी फूटी या साधारण अंगरेजी भाषा बोलना प्र० का 'गिटिपिट कइल' बाड़ (अ) लो।

**गीति गावल**—प्रशंसा करना। प्र० तू दिन भर से उनही के 'गीति गावत बाड (अ)'।

**गीधा गॉडज कइल**—खाने की सब चीजो को मिला कर उसे खराब करके खाना। प्र० का 'गीधा गाउज' क के खा तार (अ)।

**गुज़रि गइल**—मर जाना। प्र० उन्हि त जाडॉवा में 'गुजरि गइले' हा।

**गुन गावल**—प्रशंसा करना। प्र० बाड़ा उन्हिकर 'गुन गाव (अ) तार (अ)'।

**गुर गोबर भइल**—गुड का गोबर होना; अच्छी चीज का बर्बाद हो जाना। प्र० मए 'गुर गोबर हो गइल'।

**गुर्दा तुरल**—घमंड तोडना। प्र० हम तोहार 'गुर्दा तूरि देवि'।

**गुर्‌ही आह भइल**—गुर्‌ही =बोझ बाँधने के लिए कृषक हरी घास, अरहर, या कपास आदि के डंठल को ऐंठ कर 'गुर्‌ही' बनाते हैं। इस मुहावरे का अर्थ है, पेट में ऐंठन रखने वाला। प्र० इ बाँड़ा 'गुर्‌ही आह हवे'।

**गुलरी के फूल परल**—लोगो का विश्वास है कि यदि किसी वस्तु मे गूलर का फूल पड जाय तो वह वस्तु कभी नही घटेगी अपितु बढती ही जायगी। प्र० बुझाता जे ए मे 'गुलरी के फूल परल' बा।

**गुलरी के फूल भइल**—गुलर का फूल कभी दिखलाई नही देता। प्रयत्न करने पर भी किसी व्यक्ति के न दिखलाई देने पर इस मुहावरे का प्रयोग होता है। प्र० आजु काल्हि त तूँ 'गुलरी के फूल भइल बाड़ (अ)'।

**गुल गपाड़ा कइल**—शोरगुल करना। प्र० का 'गुल गपाड़ा कइले' बाड़ (अ) लोग।

**गुह उठावल**—तुच्छ से तुच्छ सेवा करना। प्र० ना मनब (अ) त (अ)जा 'गुह उठाव (अ) ग (अ)'।

**गुह खाइल**—बहुत अनुचित और भ्रष्ट कार्य करना। प्र० ताहार 'गुह खाइल' ना छूटी।

**गुह में ढेला फेंकल**—बुरे आदमी से छेड़-छाड़ करना प्र० गुह में ढेला

फेकाला' पर इहे हाल होला ।

**गेठि बंधन भइल**—विवाह होना। प्र० इन्हिकर अब ही 'गेठिबधन भइलवा कि ना' ?

**गोईना लागल**—जासूस लगना। प्र० उनुका पाछा ओकर 'गोइना लागल' बाड़न स ।

**गोटी बइठल**—आमदनी की सूरत होना। प्र० अब त (अ) ताहार 'गोटी बइठल' बा ।

**गोड़ के धुरियो बरोबरि नाहीं समुझल**—पैर की धूल के बराबर भी नही समझना, किसी व्यक्ति को अत्यंत तुच्छ समझना। प्र० हम इन्करा के 'गोड के धुरियो बरोवरि नाही समुझीले' ।

**गोड़ छूटल**—भयभीत होकर भाग जाना। प्र० ओकरा के देखते उहाँ से उन्हुकर 'गोड़ छूटल' ।

**गोड़ तूरि के बइठाल**—अकर्मण्य होकर वैठना। प्र० का तूँ आजु काल्हि 'गोड़ तूरि के बइठल' वाड़ (अ) ।

**गोड़ धोवल**—भोजन करना। प्र० का उनिका घरे 'गोड़ धोअले' बानी ।

**गोड़ के धोवन भइल**—अत्यत तुच्छ होना। प्र० तूँ ओकारा 'गोड़ को धोअन होख ब (अ)' ।

**गोड़ पसुर कइल**—पैर पसारना, थकावट मिटाना। प्र० तनी रउआँ 'गोड़ पसुर क (अ) लेईं' ।

**गोड़ भारी भइल**—पैर भारी होना, गर्भवती होना। प्र० एकर 'गोड़ भारी' बा ।

**गोड़ लागल**—इस का वास्तविक अर्थ है 'पैर छकर प्रणाम करना' किंतु भोजपुरी में इस का अर्थ होता है 'प्रणाम करना'। प्र० जब बाबा जी अउँअनि त उ 'गोड़ लगले' ।

**गोतरउचार कइल**—वर तथा कन्या पक्ष के ब्राह्मण विवाह के समय उन के पिता, पितामह, प्रपितामह आदि का नाम तथा गोत्रादि का उच्चारण करते है उसे गोतरुचार कहते हैं। मुहावरे का एक अर्थ विवाह होना, दूसरा गाली-गलौज करना भी होता है। प्र० का हो उन्हिकर गोतर उचार भइल' की बाकी बा इ कबे से गोतर उचार कइलें'

वा मानत नइख

**गोता खाइल** धोख म आना प्र० उ त ्अ, कात ना हाग गोता खइल बाकी तबो नइखन मानत।

**गोधन कुटाइल**—खूब पीटा जाना। प्र० आजु उन्हुकर खूब 'गोधन कुटाइल हा'।

**गोहारि लगावल**—चिल्ला कर सहायता के लिए बुलाना। प्र० उ कबे से 'गोहारि लगवले' बाडे, जात काहे नइख (अ) लोग।

**गोल बान्हल**—मडली या झुड बनाना। प्र० ए घरी इ 'गोल बन्हले' बा लो।

**गोली मारल**—त्याग देना। प्र० 'गोली मार (अ)' अइसाना काम के।

**घंट बान्हल**—मृत्यु के दूसरे दिन दाहसस्कार करने वाला व्यक्ति अपने सबधियों के साथ गाँव के बाहर के किसी पीपल के पेड़ में मिट्टी का एक घट बाधता है। उसे घंट बाँधना कहते हैं। मुहावरे का अर्थ है मृतक के दूसरे दिन का संस्कार। आक्रोश मे इस का अर्थ होता है मृत्यु को प्राप्त होना। प्र० उन्हिकर 'घंट बान्हा गइल'। तोर 'घंट बान्हाउ'।

**घंट में प्रान आइल**—मरणासन्न होना। प्र० अब इ ना बचि हें, इन्का 'घट में प्रान आइल' बा।

**घॉख भइल**—चालाक होना। प्र० इ कुल्हि बात समुझेला, इ लम्बरी 'घॉख ह (अ)'।

**घाँटी बइठलि**—गले की घटी की सूजन को दबा कर मिटाना। प्र० अब इन्हिकर 'घाँटी बइठलि' हा।

**घूँचा अइसन मुँह कइल**—घूँचा=मिट्टी का वर्तन जिस मे दूध दुहा जाता है। अप्रसन्न होना। प्र० हर दम 'घूँचा अइसन मुँह काहे कइले' रहेल (अ)।

**घोंघा भइल**—बेवकूफ होना। प्र० इ चारु ओर 'घोंघा भइल' फिर (अ)ता।

**घघोटल**—उद्दंडता-पूर्वक किसी का जबाब देना। प्र० इ जेही का नों सेही के 'घघोटि देला'।

**घटती के पाँहॉरा चढ़ल**—अवनति के दिन आना। प्र० आजु कालिह 'घटती के पाहॉरा चढ़ल' बा

**घति में बइठल**—आक्रमण करने या मारने के लिए छिप कर बैठना। प्र० जानत नइख (अ) उ हमरे 'घति में बइठल बा, आ जाइ त (अ) जान ना छोडी।

**घति लागल**—सुयोग मिलना। प्र० हमारा त (अ) आजु खूब नु 'घति' लागल रहल हा।

**घमक्का खाइल**—मुक्के से पीटा जाना। प्र० अब इ 'घमक्का' खइहे।

**घर उजरल**—परिवार की दशा बिगडना। प्र० ए मुकदिमा से उन्हिकर 'घर उजरि गइल' हा।

**घर कइल**—विशेष अधिकार करना। प्र० अब इ तोहार बेमारी 'घर कइ ले ले बा'।

**घरकच्च में फँसल**—माया-मोह में पड़ना। प्र० ए घरी हम 'घरकच्च में फँसल' बानी।

**घर के बोझा उठावल**—घर का प्रबंध करना। प्र० 'घर के बोझा उठावे लाएक इ होइ गइले।

**घर खोभारि भइल**—खोभारि=सूअर के रहने का वाडा जो बहुत गंदा होता है। मुहावरे का अर्थ है घर का बहुत गंदा होना। प्र० तनि एके झार (अ) ना, तोहार 'घरवा खोभारि भइल' बा।

**घर घाट जानल**—रंग ढंग मालूम होना। प्र० तूँ ही जा काहें से कि तूँ ही उन्हिकर घर-घाट जाने ल (अ)।

**घर घुमनी भइल**—अपने घर न बैठने वाली होना। प्र० इ 'घर घुमनी ह'।

**घर घुसना भइल**—मेहरा होना। प्र० हम त जानत रहली हॉ जे इ नीमन होई बाकी इ त 'घर घुसना' हो गइल।

**घर चलल**—गृहस्थी का निर्वाह होना। प्र० आजु काल्हि कइसे 'घर चल' (अ) ता।

**घर फोरल**—परिवार में झगड़ा लगाना। प्र० का उन्हिकर 'घर फोरले' बाड़ (अ)।

**घर बइठल**—नौकरी छोडना, बिना परिश्रम के मिलना; अधिक वर्षा से मकान गिरना प्र० थोर ही दिन से 'घर बइठल बानी' उन्हिका घर बइठल' सइ रुपया

महीना मिल (अ) ता, असो का बरिसाति मे हॉमॉर 'घर बइठि जाई' ।

**घर बसल**—निवाह होना, लडका होना । प्र० कवनो ठेकान ना रहल हा बाकी उन्हिकर 'घर बसि गइल' ।

**घर बॉसावल**—परिवार की दशा सुधारना । प्र० तूँ ही त (अ) हामार 'घर बसवल (अ) ह (आ)' ।

**घर बिगारल**—घर मे फूट फैलाना । प्र० केहु के 'घर बिगारल' नीमन ना ह ।

**घर भरल**—घर में धन इकट्ठा करना । प्र० थान से त (अ) इन्हिकर 'घर भरल' वा ।

**घर भरि खड़बड़ा गइल**—घर भर के लोगो का उत्तेजित हो जाना । प्र० इ बात सुनि के 'घर भरि खडबडा गइल' ।

**घर में मुसरी डंड कइल**—मुसरी=चुहिया । घर में खाने-पीने का सामान न होना । प्र० आजु काल्हि इन्करा 'घर मे मुसरी डड कर (अ) निआ' ।

**घर लुटल**—घर का माल चोरी जाना । प्र० राति ओकर 'घर लुटि लिहले' हा स (अ) ।

**घर संभारल**—कुटुब का पालन-पोषण करना । प्र० अब त (अ) इ 'घर संभारे' लाएक हो गइल बाडे ।

**घर से दिहल**—अपने पास से देना । प्र० ओकर संती हम 'घर से दहली' हा ।

**घर सेबल**—घर मे पड़े रहना । प्र० का 'घर सेवले' बाड (अ) निकल (अ) ना ।

**घरिआर भइल**—धूर्त होना । प्र० इ बाड़ा भारी 'घरिआर ह' ।

**घरी घंट बाजल**—ईश्वर की, या देवताओ की पूजा का होना । प्र० सिवाला पर कब 'घरी घट बाजल' ह हो ।

**घरी जोहल**—किसी मरणोन्मुख व्यक्ति की मृत्यु की प्रतीक्षा करना । प्र० अब इन्कर 'घरिए जोहातिआ' ।

**घरी निगिचाइल**—विपत्ति आना । प्र० अब इन्कर 'घरी निगिचाइल' आव (अ) तिआ ।

**घसिकट्टा** घसिकट्टा घास काटने वाला मूर्ख मुहावरे का अर्थ है

मूर्ख होना। प्र० हम का कवनों 'घसिकट्टा हउईं' ?

**घाटा लागल**—बादलों का घिरना, हानि पहुँचना। प्र० आजु 'घाटा लागल बा', गहूँ में त (अ) हमारा सोरहो आना 'घाटा लागल' हा।

**घाठा परल**—अभ्यास पड़ना। प्र० इन्हिकारा एकर 'घाठा परल' बा।

**घाड़ारी परल**—गहरा चिह्न पड़ना। प्र० इ कइसे 'घाड़ारी परल' हा हो।

**घाम खाइल**—गरमी के लिए धूप में रहना। प्र० 'घाम खाइ के' तब जाइबि।

**घाव भॉराइल**—घाव का प्राय अच्छा होना। प्र० अब ताहार 'घाव भॉराइ गइल'।

**घासि काटल**—तुच्छ काम करना, व्यर्थ काम करला। प्र० ना पढ ब (अ) त (अ) का 'घासि कट व (अ)'।

**घासि छिलल**—खुरपे से घास को जड के पास से काटना। प्र० जा 'घासि छिलि ले आव (अ)'।

**घिघिआइल**—विनय करना। प्र० रउआँ किहाँ त आजु उ बड़े 'घिघिआत' रहुअनि।

**घिनघिनावनि बरलि**—घृणा होना। प्र० उ देखते हामारा 'घिनघिनावनि बरुए'।

**घिसिनी काटल**—मिट्टी से आबदस्त लेना, अत्यंत कंजूसी करना। प्र० ए मर्दे एह मोका पर त किछु खरच कर (अ), का 'घिसिनी काट (अ) तार (अ)'।

**घीव कॉरकॉरावल**—साफ और सोधा करने के लिए घी को तपाना। प्र० तनि 'घीव कॉरकॉरा दीह (अ)'।

**घीव के दिआ जरल**—कामना पूरी होना; सुख-सौभाग्य की दशा होना। प्र० उन्हि का घरे 'घीव के दिआ जर (अ)' ता।

**घीव के दिआ जॉरावल**—उत्सव मनाना, बड़े सुख-चैन से रहना। प्र० उ त (अ) ए घरी 'घीव के दिआ जॉराव (अ) तारे।

**घुघुआइल**—चेहरे पर सूजन आ जाना। प्र० इन्कर मुँह 'घुघुआइल बा' अब इ ना बचिहे।

**घुघ काढ़ल** घुघ घूँघट लज्जित होना प्र० आव अ सम का सामन

कह (अ), 'घुच कॉढ़ला' से काम ना चली ।

**घुड़की दीहल**—डराने का प्रयत्न करना । प्र० इ 'घुड़की दीहल' काहाँ से सीखल (अ) हा ।

**घुरहू कतवारू कइल**—निम्न कोटि का मनुष्य समझना । प्र० तू त हॅमारा के 'घुरहू कतवारू कइले' बाड (अ) ।

**घुँचिआह भइल**—धूर्त होना । प्र० उन्करा कि हा मति जगइ (अ), उ 'घुँचि आह ह (अ)' ।

**घुर्चो काटल**—चालाकी करना, धूर्तता करना । प्र० तोहार 'घुर्चो काटल' हम चिन्हतानी ।

**घूमि परल**—बिगड़ पड़ना । प्र० ओ ही राहे जात रहले तले साँप उन्हिका पर 'घूमि परल' ।

**घोड़ा कसल**—घोड़े पर सवारी के लिए जीन या चारजामा कसना । प्र० बाबू जी 'घोड़ा कसल' वा आईं ।

**घोड़ा छोड़ल**—घोड़े को द्रुतगति से दौड़ाना । प्र० जब साँझि भइल त उ खुब जोर से 'घोडा छोड़ले सनि' ।

**घोड़ा फेरल**—घोड़े को सिखा कर सवारी के योग्य बनाना । प्र० उ बाड़ा नीमन 'घोडा फेरे' ले ।

**चंग पर चढ़ल**—बढावे में आना । प्र० आजु काल्हि उ 'चग पर चढल' वा ।

**चंडूल फँसल**—मूर्ख बनना । प्र० इ भारी 'चडूल फँसल' वा ।

**चॉड़ लागल या लगावल**—चॉड=चड । सख्ती करना । प्र० बाबू साहेब अपना पोत खातिर आजु काल्हि बांडा 'चॉड लगवले' बाड़े ।

**चॉपल**—अच्छा भोजन इच्छापूर्वक खाना । प्र० उन्का घरे उ आजु 'खूब चँपले' हा ।

**चिउटी के चाल चलल**—बहुत धीरे-धीरे चलना । प्र० इ 'चिउटी के चाल चलेले' । 'चिउटी के चाल मोर सरवन चले' ।

**चिउटी के चालल भइल**—नीरस होना । प्र० इ 'चिउटी के चालल' फेड़ ह

**चेउँ बोलल या बोलावल**—नम्रता स्वीकार करना, नम्रता स्वीकार कराना। प्र० बाँडा अपना के उ मरद लॉगावेले, बाकी आजु 'चेउँ बोलि दिहले' हा; आजु उन्करा के हम 'चेउँ बोला दिहली' हाँ।

**चेऊँ मेऊँ मचावल**—शोर करना। प्र० का 'चेऊँ मेऊँ मचवले' वाड़(अ) स।

**चोंकरल**—भैंस के चिल्लाने को भोजपुरी मे 'चोंकरल' कहते है। व्यंग्य मे मनुष्य के 'चिल्लाने' के लिए भी इस का प्रयोग होता है। प्र० का कबे से 'चोंकरत रहल (अ)' हा हो।

**चोंका पियल**—लडको को गाय या भैस के थन के पास ले जाकर उन के मुँह मे दूध दुहते है। इसे चोंका पीना' कहते हैं। 'चोंका पीने' से लडके मोटे-ताजे हो जाते है। दूध ताजा और मीठा होने से लडके उसे बहुत पसद करते है। इस का प्रयोग व्यंग्य मे होता है। प्र० उहाँ का दउरल चलव (अ) का उहाँ 'चोंका पिए' के वा।

**चइत लागल**—चैत्र के महीने में कृषक फसल काटने मे व्यस्त रहते है। मुहावरे का अर्थ है—अत्यत व्यस्त रहना। प्र० आजु काल्हि इन्करा 'चइत लागल' वा, तनि-कियो फुरसति नइखे।

**चइती चलल**—चैत्र मास मे फ़सल काटी जाती है। मुहावरे का अर्थ है, खूब अन्न होना। अधिक लाभ होने पर भी इस का प्रयोग होता है। प्र० असो इन्कर 'चइती खूब चलल' वा।

**चउक चन्नन भइल**—मृतक-सस्कार की अतिम क्रिया के दिन पुरोहित को मंडप के नीचे बैठा कर शय्यादान आदि देते है। इस समय जाति बिरादरी के और लोग भी उपस्थित रहते है। इसे 'चउक चन्नन होना' कहते है। प्र० 'चउक चन्नन खतम हो गइल', एकरा बादि अब बरम्ह भोज होई।

**चउकठ लाँघल**—घर से बाहर जाना। प्र० ओकारा घर के मेहरारू चउकठ लाँघे' के हालि ना जान (अ) स (अ)।

**चउका पर राँड़ि भइल**—विवाह-मडप ही मे विधवा हो जाना। प्र० 'उ चउके पर राँड़ि हो गइली'।

**चउका बइठल**—विवाह तथा कथा आदि में स्त्री पुरुष ग्रथिबधन करके 'चौके' मडप के नीचे बैठते ह इसे 'चौका बठना' कहते हैं कभी-कभी यह पूछने के लिए

कि तुम्हार घर कथा कब होगी इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं प्र० तोहन लोग कब चउका बइठब (अ) हो ?

**चउका बरतन कइल**—बरतन माँजने और रसोई का घर लीपने-पोतने का काम करना। प्र० अब ही 'चउका बरतन करे' के बा।

**चउकी दिहल**—निगरानी करना। प्र० बे 'चउकी दिहले' खेत ना बाँची।

**चउथी के चाँन देखल**—निर्दोष मनुष्य पर कलंक आरोप होने या करने पर इस मुहावरे का प्रयोग होता है। प्र० बुझा ता जे हम असों 'चउथी के चान देखले' बानी, जे नासे हमरे के अछरंग लॉगावता।

**चउरा पुजल या बान्हल**—हत्या किए हुए पुरुष के लिए स्थान बनाना, तथा उस की पूजा करना, हत्या करना। किसी व्यक्ति की हत्या के पश्चात् उसे प्रसन्न करने के लिए एक स्थान बना कर उस की पूजा करते हैं। इसे 'चौरा बाधना' कहते हैं। यह प्रथा बहुत प्राचीन है। पाली 'निकायों' में भी कई स्थानों पर 'चोरा पूजने' की चर्चा आती है। प्र० बुझाता जे इन्का घरे अब 'चउरा पुजाई या बन्हाई'।

**चउलि कइल**—हँसी-दिल्लगी करना; मजाक करना। प्र० हॉमॉरा केहु के 'चउलि कइल' ना रुचे।

**चकचोन्हर भइल**—मूर्ख होना। प्र० इ 'चकचोन्हरे भइ गइले'।

**चकर पकर कइल**—अनधिकार हस्तक्षेप करना। प्र० जब तूँ जानत नइख (अ) त का 'चकर पकर कइले' बाड (अ)।

**चटक मटक भइल**—स्वादिष्ट भोजन बनना। प्र० आजु इन्का घरे 'चटक मटक भइल' बा।

**चटकार भइल**—रोशन होना। प्र० दिया बॉड़ा 'चटकार' जर (अ) ता; अच्छरि बॉड़ा 'चटकार भइलि' बा।

**चढ़ल भँड़ेहरि उतरल**—निश्चित विवाह का न होना, अप्रतिष्ठा होना। प्र० उन्हुकर 'चढ़ल भँडेहरि उतरि गइल'।

**चढ़ि आइल**—आक्रमण या चढ़ाई के लिए किसी का दल-बल सहित आना। प्र० देखल हा ना मारे खातिर उ हॉमॉरा दुआर पर 'चढि आइल' रहले हा।

**चढ़ि मढ़ि के पूजा लिहल** — सम्मान कराना प्र० इहाँ काँ 'चढ़ि

मढ़ि के पूजा लिहीलें'।

**चतुर चल्हाँक भइल**—चल्हाक=चालाक। धूर्त होना, चालबाज होना। प्र० आजु कालि्ह उ बाँडा 'चतुर चल्हाक भइल' बा।

**चमइनी से पेट छोंपावल**—जानने वाले से कोई बात छिपाना। प्र० भाला 'चमइनी से पेट छपे ला'।

**चमकल**—तिनकना; रुष्ट होना। प्र० हम तोहार 'चमकल' छोड़ा देबि; अब का 'चमक (अ) तारऽ', तुहीं नु अइसन कइले रहलू।

**चमगादुर भइल**—दोनों पक्ष में होना। प्र० इ दुनो प(अ)छ में रहेला, इ 'चमगादुर ह(अ)'।

**चमरई कइल**—नीचता करना। प्र० अब इ 'चमरई कर(अ)'ता।

**चमर बान्ह बान्हल**—चमार जूते को खूब मजबूत सीते हैं। इसी से इस मुहावरे की उत्पत्ति हुई है। इस का अर्थ है 'खूब कस कर बाँधना।' प्र० बाँड़ा 'चमर बान्ह बान्हले बाड(अ)' हो।

**चमरहो कइल**—नीचतापूर्ण झगड़ा करना। प्र० का अपुसे में 'चमरहो कइले बाड(अ)' से।

**चमार सियार भइल**—नीच प्रवृत्ति का होना। प्र० उन्हनी के का ले ले बाड़ (अ), उ 'चमार सियार हउअनि' स(अ)।

**चम्मुख पर गोटी बइठलि**—जब चम्मुख (बीच) में गोटी आ जाती है, तो वह अपने चारो तरफ़ की गोटियो को मारती है। खेल की दृष्टि से 'चम्मुख' लाभ स्थान है। इस मुहावरे का अर्थ है लाभ होना। प्र० आजु कालि्ह तोहार 'चम्मुख पर गोटी बइ-ठलि' बा।

**चरपर भइल**—तेज़ होना। प्र० आजु तरकारी बाँडा 'चरपर' भइलि बा; इ लइकवा बाँडा 'चरपर' ह(अ)।

**चरबी चढ़ल**—मोटा होना। प्र० ए घरी इन्हिका 'चरबी चढ़ल' बा।

**चलनी से पानी भरल**—व्यर्थ काम करना। प्र० इ 'चलनी से पानी भर(अ) तारें', ए से भाँला काम चली।

**चलबीधर भइल** —— अथवा तेज़ होना। प्र० उनिकर इ लइकवा बाँडा

'चलबीघर' बा।

**चलल**—उन्नति होना, मृत्यु को प्राप्त होना। प्र० आजु काल्हि इन्कर 'चलल' बा; बुझाता जे अब इ 'चलिहे'।

**चलि बसल**—मर जाना। प्र० उ त(अ) कहिअने 'चलि बसले'।

**चहेटल**—पीछा करना। प्र० उ हाँमाँरा के 'चहेटले' फिर (अ)ता।

**चाँढ़ा उपरी कइल**—होड लगाना। प्र० तहूँ लो त(अ) 'चाढ़ा उपरी क के' दाम बिगाड़ दिहल (अ) हा।

**चाँनाइमिरित लीहल**—चानाइमिरित--चरणामृत। बहुत ही थोडी मात्रा में कोई तरल पदार्थ पीना। प्र० तनी 'चानाइमिरित ले ली'।

**चाँपाट भइल**—मूर्ख होना। प्र० इ बाड़ा 'चापाट ह'।

**चाँमाँड़ा सिझावल**—चमडे को बबूल की छाल, सज्जी, नमक आदि के पानी में डाल कर मुलायम करना, अत्यंत परिश्रम करना। प्र० ऊखि बोअला पर चाँमाड़ा सिझावे के परेला।

**चाँरावल**—धोखा देना। प्र० उ अइसन ह की ताँहाँरा के 'चारावल' ओकारा खातिर भारी नइखे।

**चाँलाँता भइल**—व्यवहार-कुशल होना। प्र० ए घरी उ बाड़ा 'चाँलाँता भइल' बा।

**चानी कटल**—खर्च करना। प्र० ए घरी त(अ)खुब नू 'चानी कट(अ)' ता।

**चाभुरि कूटल**—नाराज होकर होठ चबाना। प्र० का 'चाभुरि कूट (अ) तारें' रे।

**चाल मिलल**—आहट मिलना। प्र० अब ही त ना 'चाल मिलल' हा।

**चालु चलल**—धूर्तता से कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना। प्र० इ हमरे से 'चालु चल (अ)' तारे।

**चालु सुधारल**—आचरण ठीक करना। प्र० उ आपन 'चालु सुधारि' लिहल सि।

**चाहा नियर चितवल** चाहा—पक्षी विशेष जो अयत व्यग्रता से मछली की

ओर देखता है। अत्यत व्यग्रता से किसी की ओर देखना। प्र० का चारु ओर 'चाहा नियर चितवत बाड़(अ)'।

**चिकस निकालल**—खूब पीटना। प्र० हम मारि के तोहार 'चिकस निकालि' देबि।

**चित कइल**—कुश्ती मे पटकना। प्र० उ 'चित कइ दिहलसि' हा।

**चिरकुट लपेटल**—फटे-पुराने कपड़े पहनना। प्र० का 'चिरकुट लपेटले बाड़(अ)'।

**चिरुआ भरि पानी में डूबि मरल**—चुल्लू भर पानी मे डूब मरना, अत्यंत लज्जित होना। प्र० तोरा त 'चिरुआ भरि पानी मे डूबि मरे' के चाही।

**चिर्लें रकत ना भइल**—अत्यत भयभीत होना। प्र० जब हम उ देखली त अइसन बुझाइल जे 'चिर्लें रकते नइखें'।

**चिल पोंइ कइल**—शोर करना। प्र० इन्हनी का दिन राति 'चिल पोंइ कइले' रहे ले स(अ)।

**चिलमि चाँढ़ावल**—गुलामी करना। प्र० जा त(अ) तुहूँ 'चिलमि चाँढाव (अ)'।

**चिहुकल**—भयभीत होना, सावधान होना, सतर्क होना। प्र० सपने मे उ 'चिहुकले'; उन्का से तूँ 'चिहुकले' रहि ह(अ)।

**चीलिह के जनम भइल**—चील का जन्म होना। प्र० दिआरी में जे जुआ ना खेले ओकर चीलिह के जनम होला।

**चीलही के जनम छूटल**—चील के जन्म से छुटकारा पाना, भविष्य में निकृष्ट जन्म से बचना। प्र० आजु ले गेना ना खेलले रहल (अ) हा, चल (अ) आजु खेलि ल (अ) जे मे 'चीलही के जनम छूटि जाउ'।

**चुपुकी साधल**—सन्नाटे मे रहना। प्र० तुँ का 'चुपुकी सधले' बाड़(अ)।

**चुमल चाटल**—प्यार करना। प्र० कतनो 'चुम(अ) चाट (अ)' आगे चलि के इ तोहार ना होई।

**चुमावनि कइल**—यज्ञोपवीत तथा विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ अपने दोनो हाथा म जौ ल कर लड़के के पर घुटना तथा दोनो कधा को स्पर्श करती ह इसे चुमावनि

करना कहते हैं प्र० अब चमावनि होखे वे चाही

**चुरुना काटल**—बहुत बुरा लगना । प्र० का तोंहाँर 'चुरुना कटले' बा ।

**चुल्ही में लॉंगावल**—चूल्हे मे लगाना, जला कर नष्ट कर देना । स्त्रियाँ अभिशाप मे इस मुहावरे का प्रयोग करती है । प्र० आव(अ) तोहरा के हम 'चुल्ही मे लॉंगाईं' ।

**चुहुल उड़ावल या कइल**—आनंद करना । प्र० आजु कान्हि त तूँ बड़े 'चुहुल उड़ावतार(अ)' हो ।

**चूचीं पिअल**—नासमझ होना । प्र० उ अब ले 'चूची पिअ' तारे ।

**चूना फेरल**—दीवारो पर चूने की सफेदी लगाना । प्र० आजु 'चूना फेरल' जाई ।

**चूरी पहिरल**—स्त्री बनना । प्र० तोंहोंरा मन करे त (अ) 'चूरी पहिरि' के बइठि रह(अ) बाकी हम ना मानबि ।

**चूरी फुटल**—विधवा होना । प्र० आजु ओकर 'चूरी फूटि गइल' ।

**चेट गॉंरॉंमाइल**—पास में रुपया-पैसा आना । प्र० ए घरी इन्हिकर 'चेट गॉंरॉंमाइल' बा ।

**चेट गॉंरॉंमावल**—रिश्वत देना । प्र० बे 'चेट गरमवले' इ काम ना होई ।

**चेट पड़ल**—गाँठ पडना, चारपाई बुनते समय रस्सी का इधर-उधर हो जाना । प्र० बुझाता कि कतहुँ चेट परल बा ।

**चेट में बान्हल**—कमर में धोती के तहो मे बाँध कर रखना । प्र० उ रुपाया 'चेट में बान्हि' के ले गइले हा ।

**चेलहाई कइल**—भेंट और पूजा आदि संग्रह के लिए चेलों मे घूमना । प्र० बाबा जी 'चेलहाई' मे गइल बाड़े ।

**चेला मुँड़ल**—शिष्य बनाना; अपना निकटवर्ती बनाना । प्र० अइसन जनाता जे इन्करा के तूँ 'चेला मुँडले' बाड़(अ) ।

**चोन्हा कइल**—नखरा करना । प्र० हॉंमॉंरा तोहार 'चोन्हा कइल' नीक नइखे लागत ।

**छूछ** [illegible] पर किसी वस्तु को देने से इन्कार करना या उस का अभाव

बतलाना । प्र० राम-नाम का बेरा 'छुँछ देखवलु' ।

**छुँछ हाथ रहल**—द्रव्य से खाली हाथ होना; बिना हथियार का हाथ होना । प्र० हॉमॉर कबो 'छूँछ हाथ ना भइल रहल' हा, छूँछे हाथे खेते ना जाए के ।

**छउकल फिरल**—कूदते रहना । प्र० बडे 'छउकल फिरल(अ)' हा ।

**छक्के तउल उड़ावल**—ठूँस-ठूँस कर खाना, तौल से बाहर खाना । प्र० आज् बाबा जी लोग खुब 'छक्के तउल पूरी तरकारी उडावल हा' ।

**छटकल फिरल**—भागते फिरना । प्र० कहाँ आजु काल्हि 'छटकल फिर(अ) तार (अ)' ।

**छठवें छमास आइल**—कभी-कभी आना । प्र० रउवाँ त 'छठवे छमास आईं' ले ।

**छठवें छमास गइल**—कभी-कभी जाना । प्र० ओ जी 'छठवे छमास त(अ)' जाए के परे ला ।

**छठिआर खाइल**—बालक पैदा होने के बारहे दिन षष्ठी माता की पूजा होती है और बंधु-बाधवों को भोजन कराया जाता है । इसे 'छठिआर' कहते हैं । इस मुहावरे का प्रयोग उस समय होता है जब किसी व्यक्ति का विशेष परिचय पूछा जाता है । उत्तर देने वाला व्यंग मे कहता है । प्र० उन्के हम का जान (अ) तानी, का हम उन्कर 'छठिआर खइले' बानी ।

**छनकाह भइल**—संदेह करने वाला होना । प्र० उ बाड़ा भारी 'छनकाह' ह ।

**छपनो कोटि बॉरॉखा भइल**—बॉरॉखा=वर्षा । घोर वर्षा होना । प्र० ओ साल हथिया मे 'छपनो कोटि बॉरॉखा भइल' रहे ।

**छयल चिकनिया बनल फिरल**—छैला बने फिरना, अपने को खूब सजा-बजा कर प्रदर्शित करना । प्र० का 'छयल चिकनिया भइल फिर(अ) तार(अ)' ।

**छरिआइल**—खूब रोना; क्रोधित होना । प्र० आजु बबुआ खूब 'छरिआइल' रहल हा, तूँ का 'छरिआइल' बाड(अ), तोहरा से हॉमार किछु होखी ।

**छह उड़ल**—गर्द उड़ना; बर्बाद करना । प्र० तोहँ लोकिहाँ त (अ) अन के 'छह उड़ल' बा ।

**छापाका सलल**—पानी के छीटों का देह पर पड़ना प्र० उ 'छॉपाका

ललल हा

**छाक चढ़ावल**—देवी देवता को छाक से पूजना। प्र० हॉमॉरा घरे त (अ) आजु 'छाक चढावल जाई'।

**छाका छूटल या छुड़ावल**—हिम्मत टूट जाना, हिम्मत तोड़ देना। प्र० उहाँ जात जात हॉमार 'छाका छूटि गइल'; हम तोहार 'छाका छोडाइ देबि'।

**छाती जुड़ावल**—चित्त शांत करना। प्र० त(अ) अब 'छाती जुडाव(अ)' ना, उत(अ) आ गइले।

**छाती पर कोदो दरल**—किसी को दिखला कर कोई ऐसा काम करना जिस से उसे ईर्ष्या या ताप हो। प्र० इ हॉमॉरा 'छाती पर कोदो दर(अ) तारे'।

**छाती पीटल**—अफसोस करना। प्र० जब उ इ बात सुनले त 'छाती पीटे लगलें'।

**छान पगहा तुरावल**—नाराज होना। प्र० उ इ बात सुनि के 'छान पगहा तुरावे लगले'।

**छापा परल**—डाका पडना। प्र० उन्हिका घरे 'छापा परल' रहल हा।

**छिछिआइल फिरल**—मारा-मारा फिरना। प्र० उ आजु काल्हि 'छिछिआइल फिर(अ) तारे'।

**छि मानुक कइल**—मानुक=मनुष्य। मनुष्य से घृणा करना। प्र० तब दानवा छि मानक 'छिमानुक करत अइले' स(अ)।

**छिलिबिल कइल**—पानी फैला देना। प्र० का एही जाँ 'छिलिबिल कइले बाड़(अ)'।

**छीपा बाजल**—जिस समय लड़का पैदा होता है उस समय एक स्त्री थाली बजाती है उसे 'छीपा बजाना' कहते हैं। मुहावरे का अर्थ है लडका पैदा होना। प्र० आजु उन्हिकरा घरे 'छीपा बाजल' हा।

**छुटमछूट खाइल**—खूब खाना। प्र० उ 'छुटमछूट खइले' बाड़े।

**छूरी चलल**—लड़ाई होना। प्र० आपुसे में 'छुरी चललि' रहलि हा।

**छूह उड़ल**—बहुत बिक्री होना। प्र० आजु त बजार मे कँटहर के 'छूह उडि गइल' हा

**छेड़ निकालल**—दोष निकालना । प्र० तुँ कुल्हि काम मे 'छेड़ निकालते' रहे ल(अ) ।

**छोह कइल**—प्रेम करना । प्र० उ हॉमार बाडा 'छोह् करे ले' ।

**जंगल गइल**—पाखाने जाना । प्र० उ 'जंगल गइल बाडे' ।

**जंगल में मंगल भइल**—सुनसान मे चहल-पहल का होना । प्र० उन्हिका साथे 'जगल मे मगल होई' ।

**जाँगर चलावल**—शारीरिक परिश्रम करके धन कमाना । प्र० उन्कर रुपया 'जॉगर चॉलाइ' के बटोरल ह् (अ) ।

**जाँगर ठेठावल**—घोर शारीरिक परिश्रम करना । प्र० आँताना 'जॉगर ठेठवली' बाकी तबो ना किछु मिलल ।

**जाँगर लगावल**—घोर शारीरिक परिश्रम करना । प्र० विना 'जॉगर लगावल' इ काम ना होई ।

**जग जीतल**—ससार जीतना, महत्वपूर्ण कार्य करना । इस का प्रयोग व्यंग्य में होता है । प्र० इ कइल (अ) त कवन 'जग जीतल(अ)' ।

**जट बॉन्हाइल**—बालों का परस्पर उलझ या चिपट जाना । प्र० एकारा 'जट बॉन्हाइल' बा ।

**जर उतरल**—बुखार दूर होना । प्र० अब 'जर उतरि गइल' ।

जर चढ़ल—ज्वर आना । प्र० ए बेरा 'चर चढल' बा, कुछ खाए के मति दिह(अ)लो ।

**जरि आइल**—जड़ पकड़ना, घर कर लेना । प्र० दॉवा कर (अ) ना त(अ) तोहार बेमारी 'जरि आइल' जा तिआ ।

**जरि खोदल**—विनाश करना । प्र० का ओकर 'जरि खोदले बाड(अ)' ।

**जरीं धिकाइ के पानी दिहल**—समूल नष्ट करने का प्रयत्न करना । प्र० इ हॉमॉरा 'जरी धिकाइ के पानी दे तारें' ।

**जरीं लागल**—हानि पहुँचाना । प्र० इ हॉमॉरा 'जरीं लागल बाड़े' ।

**जलंधर भइल**—अत्यत वृद्ध होना । प्र० उ जलधर हो गइल बाड़े ।

**बहर के घरिया भइल** घरिया मिट्टी का एक छोटा सा पात्र अत्यत दुष्ट

प्रकृति का होना प्र० इ जहर के घरिया हउअनि'

**जहर के पुड़िया भइल**—अत्यंत दुष्ट प्रकृति का होना। प्र० देख ही कें इहाँ का हतीमुकी बानी, इहा कों 'जहर के पुरिया हउई'।

**जाँगजाँगाइल**—उन्नति होना। प्र० ए घरी दन्हिकर काम खूब 'जांगजाँगा-इल' बा।

**जाँगाँता भइल**—जागृत होना, तेजस्वी होना। प्र० ह्रसू बरम्ह 'बाँडा जाँगाँता हउअनि'।

**जाँनमार भइल**—अत्यत सुदर होना। प्र० इ तोहार कुरुतवा त बाडा 'जाँन-मार' बा हो।

**जाँपाट भइल**—मूर्ख होना। प्र० इ बड़ भारी जाँपाट बा।

**जाँब जाँबाह भइल**—अस्पष्ट होना। प्र० उ बाड़ा भारी 'जाब जावा ह'।

**जाँबान हारल**—वचन देना। प्र० हम त(अ) 'जाबान हारि' गइल बानी।

**जाँबाब दे दिहल**—साफ इन्कार करना, नौकरी से हटा देना। प्र० आँताँना दिन से आस धरवले रहले हा, बाकी उ आजु 'जाँवाब दे दिहले' हा; आजु उ आँपाँना नोकर के 'जाँबाब दे दिहले'।

**जाँमाँल के जोड़ी भइल**—किसी के समक्ष अवस्था मे उस से बहुत छोटा होना। प्र० तूँ उन्का के का रिगाव(अ) तार (अ), उन्का 'जाँमाँला के जोडी होइ ब(अ)'।

**जाँमावड़ा कइल**—लोगो को एकत्रित करके बिना अपने काम धंधा की परवा किए हुए गपशप करना। प्र० तूँ इहाँ का 'जाँमावड़ा कइले' बाड़(अ), का तोहराँ कवनो काम धंदा नइखे।

**जाँमावड़ा भइल**—भीड होना। प्र० आजु मेला में पाँहाँलवानन के बाँड़ा 'जाँमावडा होई'।

**जाँमा हल कइल**—सपूर्ण संपत्ति हड़प जाना। प्र० उ हाँमार 'जाँमा हल क(अ) घलले'।

**जाँमा हल भइल**—अत्यधिक हानि होना। प्र० बयल मरि गइला से हाँमार 'जाँमा हल हो गइल'।

**जाति में मिलल**—बिरादरी में शामिल होना। प्र० अब उ 'जाति मे मिलले' हा।

**जान छोड़ावल**—प्राण बचाना। प्र० एह 'जान छोड़ावला' से छुटे के बा।

**जान जोखिम में परल**—आपत्ति में पड़ना। प्र० आजु कान्हि उन्हिकर 'जान जोखिम में परल' बा।

**जान दिहल**—अत्यंत प्यार करना। प्र० इ त ओकरा पर 'जान दे तारें'।

**जान बाँचावल**—जी चुराना। प्र० काहें 'जान बाचाव(अ) तार(अ)'।

**जान मारल**—परेशान करना। प्र० तूँ का हॉमार 'जान मरले बाड़ (अ)'।

**जामा थउसल**—पूँजी नष्ट हो जाना। प्र० आजु हॉमॉर 'जामा थउसि' गइल।

**जामा से बाहर भइल**—अत्यंत क्रोध करना। प्र० का 'जामा से बाहर भइल' बाड़(अ)।

**जाल फइलावल या बिछावल**—किसी को फँसाने के लिए युक्ति करना। प्र० एह 'जाल फइलावला' से कुछ होखे के बा।

**जाला फुँकल**—जाला=ज्वाला। शरीर में दाह उत्पन्न करना। प्र० आजु 'जाला फुँकले' बा।

**जिआँका लॉगावल**—भरण-पोषण का प्रबंध कराना। प्र० रउवाँ हमरो कही 'जिआका लागा दीहीं'।

**जिआँका लागल**—भरण-पोषण का उपाय होना। प्र० आजु कान्हि दउरलो पर 'जिआका लागे' के कवनो ठेकान नइखे।

**जीअत माँछी घोंटल**—सरासर बेईमानी करना। प्र० अइसे 'जीअत माँछी घोट(अ) व(अ)'।

**जीन कसल**—तैयार रहना। प्र० इन्हिकर जीन 'कसइले रहे' ला।

**जीभि निकालल**—जीभ उखाड़ लेना। प्र० ढेर बोलब (अ) त(अ) 'जीभि निकालि लेबि'।

**जीभि सोंटाका मारल**—चुगली करना। प्र० तूँ बाड़ा 'जीभि साटाका मारे ल(अ)'।

**जीभी में से पानी गिरल**—जीभ में से पानी गिरना, लालच हो आना। प्र० मिठाई देखि के उन्करा 'जीभी मे से पानी गिरे लागल'।

**जीमा कइल**—किसी के संरक्षण में करना। प्र० केकारा 'जीमा कइल (अ)' हा।

**जीमा भइल**—सुपुर्द करना। प्र० केकारा 'जीमा भइल' हा।

**जीव अकुताइल**—चित्त न लगना। प्र० अब 'जीव अकुता गइल' बा।

**जीव के गाँहक भइल**—प्राण लेने पर उतारू होना। प्र० उन्हि हाँमाँरा 'जीव के गाँहक भइल' बाड़े।

**जीव खपरी में परल**—खपरी=टूटा हुआ मिट्टी का बर्तन जिस में भडभूजा गर्म बालू डाल कर चबेना भूनता है। प्राण संकट में पड़ना। प्र० तोहाँरा मार हाँमार 'जीव खपरी मे परल' रह(अ)ता'।

**जीव गार्हे परल**—प्राण संकट में पड़ना। प्र० आजु हाँमार 'जीव गार्हे परल रहल' हा।

**जीव चलल**—इच्छा होना। प्र० हाँमाँरा चिउरा खाए के 'जीव चलल' बा।

**जीव चोरावल**—किसी काम से भागना। प्र० का एही उमिरि में काम से 'जीव चोरावे लगल (अ)'।

**जीव छोड़ल**—निराश होना, साहस गँवाना। प्र० का 'जीव छोड़ले' बाड (अ) एसे कुछु होखे के बा।

**जीव दीहल**—प्राण देना। प्र० का जीव देले बाड (अ)।

**जीव नीमन भइल**—निरोग होना। प्र० थोरे दिन से 'जीव नीमन भइल' बा।

**जीव भारी भइल**—तबीयत अच्छी न होना। प्र० एह बेरा 'जीव भारी भइल' बा।

**जीव में जीव परल**—जीवन की आशा बँधना। प्र० जब हम उन्हिकरा के देखली त 'जीव मे जीव परल'।

**जीव सँकेता परल**—प्राण संकट में पड़ना। प्र० आजु हाँमार 'जीव बाँडा सँकेता परल' रहल हा।

**जीव सन्न भइल**—होश उड़ जाना। प्र० हामारा जीव सन्न हो गइल हा।

**जीव साँसति में परल**—प्राण संकट में पड़ना। प्र० आजु कालिह हाँमार 'जीव साँसति मे परल' बा।

**जुता** करना प्र० अब ही इ का कर अ तार अ तूँ

त उन्हि कर 'जुता उठइब(अ)'।

**जुता के अदिमी भइल**—ऐसा आदमी जो बिना जूता खाए ठीक काम न करे। प्र० ई 'जुता के अदिमी' ह।

**जुता खाइल**—बुरा-भला सुनना। प्र० का 'जुता खा तार(अ)' तबो परल बाड़(अ)।

**जुता चलउअलि कइल**—झगड़ा करना। प्र० का 'जुता चलउअलि' कइले बाड़(अ) रारे।

**जुता मारल**—मुंह तोड़ जवाब देना। प्र० ओ जी खुब तूँ निठाहे 'जुता मरल'(अ) हा।

**जुता लॉगावल**—जूते से मारना। प्र० बे 'जुता लॉगावल' ना फरिआइ।

**जूझल**—मृत्यु को प्राप्त हो जाना। प्र० खेत पर उ 'जूझि गइले'।

**जूठन गिरावल**—भोजन करना। प्र० रउआँ आजु कहाँ 'जूठन गिरवली' हॉं।

**जेल काटल**—जेल में रह कर दंड भोगना। प्र० ए घरी उ 'जेल काट (अ) तारे (अ)'।

**जेवनहरी बइठल**—अतिथियों का भोजन करने बैठना। प्र० चुप रहु रे 'जेवनहरी बइठल' बा।

**जेहन खुलल**—बुद्धि का विकास होना। प्र० अब त एकर 'जेहन खुलि गइल हो'।

**जोखिम उठावल, सहल**—ऐसा काम करना, जिस में अनिष्ट की आशंका हो। प्र० आगे ए काम में चलि के तूँ 'जोखिम उठइब(अ)'।

**जोखिम में परल**—जोखिम उठाना। प्र० आजु काल्हि उ 'जोखिम मे परल' बा।

**जोड़ उखरल**—किसी अवयव के मूल का अपने स्थान से हट जाना। प्र० उन्हिकर 'जोड़ उखरि' गइल बा।

**जोड़ जुगुत भइल**—उपयुक्त होना। प्र० इ बर 'जोड़ जुगत बा'।

**जोड़ तोड़ लागल**—समान शक्ति का होना। प्र० इन्हने लोग में 'जोड़ तोड़ लागल' रहल हा।

**जोड़ बइठल** स्थान से हट हुए अवयव के मूल का अपन स्थान पर आ

जाना। प्र० अब इ 'जोड बइठि गइल'।

**जोड़ा पारी भइल**—समवयस्क होना। प्र० उ हाँमाँरा 'जोडा पारी के हउए'।

**जोड़ीदार भइल**—साथी होना, समवयस्क होना। प्र० इ होंमार 'जोडीदार हउए'।

**जोर कइल**—तकाजा करना, कुश्ती लड़ना। प्र० आजु कालिह रुपया खातिर उ बाँडा 'जोर कइले' बाड़े, आजु कालिह उ रोज आंखाडा में 'जोर कर(अ)तारे'।

**झंझटि आह भइल**—झगडालू होना। प्र० इ बाड़ा 'झंझटि आह' हउए।

**झंझटी भइल**—झगडालू होना। प्र० इ बाड़ा 'झंझटी हउअनि'।

**झिकाँटा बुझल**—कुछ न समझना। प्र० हम उन्हिका रुपया के 'झिकाटा बुझी ले'।

**झुँस दिहल**—उबली हुई दाल का पानी पिलाना। प्र० आजु उन्हिका के 'झुँस दिह(अ)'।

**झोंके में परल**—क्रोधाग्नि में पडना; विपत्ति में पड़ना। प्र० जहिए तूँ हाँमाँरा 'झोक मे परब(अ)' तोहार बानि छुटि जाई; आजु कालिह इ बाँडा 'झोक मे परल' बाड़े।

**झोंटा से झोंटा भिरावल**—झगडा लगाना। प्र० तूँ 'झोटा से झोंटा भिड़ावे' मे बाँड़ा फरहर हउ(अ)।

**झटकारल**—चुराना। प्र० ए के तूँ काहाँ 'झटकारल (अ)' हा।

**झपकी आइल**—नींद आना। प्र० ओ घरी हाँमाँरा 'झपकी आइल' रहे।

**झमकावल**—प्रदर्शित करना। प्र० मँगनी के नथिआ मँड़उआ 'झमकउए रे'।

**झरिआवल**—डाँट फटकार बतलाना। प्र० का लड़कवा के 'झरिअवले बाड(अ)'।

**झाँपास भइल**—झूठ बोल कर किसी को ठगने वाला। प्र० इ बाड़ा भारी 'झापास भइल' बा।

**झाका झुमरि भइल**—झगड़ा होना। प्र० उन्का से हाँमाँरा बाँडा 'झाका झुमरि भइल'।

**झार फूक भइल**—मंत्र-तंत्र से प्रेतादि बाधा दूर कराना । प्र० आजु उन्हुकर बाड़ा झार फूक भइल हा ।

**झारल झोंपारल गइल**—मंत्र-तंत्र से प्रेतादि बाधा दूर करना । प्र० आजु उ 'झारल झोंपारल गइल' हा ।

**झुझुवावन बरल**—बुरा लगना । प्र० उन्का दुसरा जात हॉमॉरा 'झुझुवावन बर(अ)ता' ।

**झुझुवावन लागल**—त्रास मालूम होना । प्र० इ ऑनॉज 'झुझुवावन लाग(अ)ता' बुझाता जे इ किछु निकालि ले ले बा ।

**झूरी गॉड़ाइल**—सीमा निर्धारित करना । प्र० आजु उन्हुकरा हॉमॉरा खेत का बीच मे 'झूरी गॉडाइ गइल' ।

**झोरी भरल**—साधु को भरपूर भिक्षा देना । प्र० कह(अ) साधु बाबा 'झोरी भरल' कि ना ।

**टंट घंट कइल**—प्रबंध करना । प्र० रसोई के 'टट घंट कर(अ)'तानी ।

**टंटा बेसहल**—झगड़ा मोल लेना । प्र० तूँ रोज 'टंटा बेसहत रहेल' (अ) ।

**टॉक चॉलावल**—सीने के लिए कपड़े आदि में सुई डालना । प्र० तनी हेहु पर टॉक चाला दीह(अ)' ।

**टॉक मारल**—सिलाई करना । प्र० तनी हे कुरतवा पर 'टॉक मारि द(अ)' ।

**टॉग छितरावल**—टांगो को बगल या पार्श्व की ओर फैलाना । प्र० का 'टॉग छितरवले' बाड(अ) ।

**टॉग तुरल**—पगभग करना । प्र० रह(अ) तॉहॉर 'टॉग तुरी ले' ।

**टॉग पॉसारि के सुतल**—निश्चिन्त होकर सोना । प्र० ए घरी इ खूब 'टॉग पासारि के सुत(अ)तारे' ।

**टॉचि दीहल**—दबा देना । प्र० ए ममिला में हम उन्हुकरा के 'टॉचि देबि' ।

**टॉठ भइल**—अपेक्षाकृत स्वस्थ होना, मजबूत दिल का होना । प्र० आजु तानि उ 'टॉठ भइल' बाड़े । उ बॉड़ा 'टॉठ अदिमी हउए' ।

**टॉठ रहल**—हिम्मत से रहना । प्र० विपति परला पर 'टॉठ रहे के चाही' ।

**टपरा गावल**—भूखा रहना। प्र० आजु दिन भरि उ 'टपरा गावत रहले हा'।

**टरकावल**—बहाना करना। प्र० ए 'टरकावला' में काम ना चली।

**टर्टर् कइल**—चिल्लाना, शोर गुल मचाना। प्र० का 'टर् टर् कइले' बाड़ (अ)।

**टस से मस ना भइल**—जरा भी इधर से उधर न होना। प्र० सभ बात सुनि लिहलसि तवनो पर 'टस से मस ना भइल'।

**टाट उलटल**—दिवाला निकालना। प्र० का 'टाट उलटले बाड़(अ)'।

**टाट से बाहर भइल**—जाति से बहिष्कृत होना। प्र० आजु काल्हि इ 'टाट से बाहर भइल बाड़े'।

**टाटी का आड़ में सिकार कइल**—टट्टी की ओट मे शिकार करना, छिप कर घात करना। प्र० आजु काल्हि उ 'टाटी का आड़ में सिकार कर(अ)ता'।

**टापत रहल**—भूखे रहना। प्र० आजु उ दिन भरि 'टापत रहले हा।

**टापि गइल**—आगे निकल जाना। प्र० एके 'टापि गइल' कवन भारी बा।

**टाल मटोल कइल**—बहाना करना। प्र० उ कुल्ही काम में बाँड़ा 'टाल मटोल' करेला।

**टाल लाँगावल**—ढेर लगाना। प्र० जनेरा के बड़े 'टाल लागवले बाड़(अ)' हो।

**टिकस लागल**—कर नियत होना। प्र० हामारा उपर त(अ) पाँच रुपाया 'टिकस लागल' बा।

**टिकि आइल**—विवाह कर आना। प्र० उ 'टिकि अइले'।

**टिप टाप भइल**—जहाँ-तहाँ होना। प्र० आजु बाँगँवा 'टिप टाप भइल' हा।

**टिप टिप गिरल**—बूँद-बूँद गिरना। प्र० पानी आजु 'टिप टिप गिर(अ)ता'।

**टबोली बोलल**—व्यंग्य बोलना। प्र० का 'टिबोली बोल(अ) तार (अ)'।

**टिमटाम बढ़ावल या राखल**—ठाट-बाट रखना। प्र० उ आजु काल्हि बाँड़ा 'टिमटाम बढ़वले या रखले' बाड़े।

**टिमाक बढ़ावल**—वाह्याडम्बर करना। प्र० आज काल्हि इ बाँड़ा 'टिमाक बढवले बाड़े'।

**टिमाक से बोलल**—घमण्ड से बोलना। प्र० आज त इ बाड़ा टिमाक से बोलत रहल हा

**टिमाक से रहल**—ठाट-बाट से रहना। प्र० इ बाँड़ा 'टिमाक से रहेला'।

**टुकटुकाइल**—स्वस्थ होना। प्र० तोहार लइकवा आजु काल्हि तनी 'टुक-टुकाइल' बा।

**टुकाँरा दिहल**—भिखमंगे को रोटी या खाना देना। प्र० ओकारा के 'टुकारा दिआइल' हा।

**टुकाँरा माँगल**—भीख माँगना। प्र० ना मनब (अ) त (अ) 'टुकारा माँगे' के परी।

**टेकुआ नियर सोझ कइल**—मार-पीट कर दुरुस्त करना। प्र० हम तोहरा के 'टेकुआ नियर सोझ क (अ) देबि'।

**टेटिहा मचावल**—जिद करना। प्र० का 'टेटिहा मचवले' बाड (अ)।

**टेड़ुआइल**—नाराज होना। प्र० उ आजु हाँमाँरा पर 'टेड़ुआइल' बाड़े।

**टोकारी पारल**—शुभ मुहूर्त पर यात्रा करने वाले व्यक्ति को टोकना। प्र० जब उ बाहर जाए लगुअनि त इ 'टोकारी परुए'।

**टोह मिलल**—पता लगना। प्र० उन्हुकर 'टोह मिलाँलाँ त (अ) ढेर दिन भइल।

**टोह में रहल**—बदला लेने के लिए समय ढूँढना। प्र० हम तोहरे 'टोह में बानी'।

**टोह राखल**—देखभाल रखना। प्र० तनी एनियों 'टोह रखिह(अ)'।

**टोह लॉगावल या लिहल**—पता लगाना। प्र० तनी उन्हिकर 'टोह लगइ ह या लिह (अ)'।

**ठाँव कुठाँव लागल**—मर्म स्थल में चोट पहुँचना। प्र० देखि ह (अ) 'ठाँव कुठाँव लागे' मति पावे।

**ठकठेनि कइल**—हठ करना। प्र० तें का एही बेराँ 'ठकठेनि कइले' बाड़े।

**ठकुरई देखावल**—शान दिखलाना। प्र० इ हाँमाँरा के 'ठकुरई देखाव (अ) तारे'।

**ठटरी भइल**—बहुत दुबला होना। प्र० एह बेमारी से त तूँ 'ठटरी हो गइल'

(अ) हा।

**ठटरी लागल**—बहुत दुर्बल होना। प्र० ताहार त 'ठटरी लागि गइल' हा।

**ठटल रहल**—सामना करने या कठिनाई झेलने के लिए खड़ा रहना। प्र० उ बाडा बीहड़ मरद ह, हरदम उ 'ठटल रहे ला'।

**ठटि के खाइल**—खूब पेट भर खाना। प्र० आजु त तूं 'ठटि के खइले' होखब (अ)।

**ठठेरा के बिलारि भइल**—ऐसा मनुष्य जो खटके की बात देख कर भी न चौंके या घबराए। प्र० इ पुरहर 'ठठेरा के बिलारि' ह।

**ठठेरे ठठेरे बदलई कइल या भइल**—जैसे का तैसा व्यवहार करना। प्र० 'ठठेरे ठठेरे बदलई ना होखे'।

**ठनकावल**—रुपया वसूल करना। प्र० तिलक में खूब त 'ठनकवल (अ)' अब का चाही।

**ठन् ठन् गोपाल भइल**—कुछ भी पास न होना। प्र० आजु उन्का घरे 'ठन ठन गोपाल' बा।

**ठप भइल**—बंद हो जाना, समाप्त हो जाना। प्र० आजु काल्हि उन्हकर काम 'ठप हो गइल' बा।

**ठहर दिहल**—चौका लगाना। प्र० एह बेरां ले 'ठहर दिहल' बाकिए बा।

**ठाट कइल**—ढाँचा तैयार करना। प्र० तोंहार 'ठाट कइल' ना सँपरल।

**ठाट भइल**—ढाँचा तैयार होना। प्र० आजु हमरो 'ठाट भइल' हा।

**ठाड़ा भइल**—खडा होना; प्रतिनिधित्व के लिए पर्चा दाखिल करना। प्र० रउवाँ के 'ठाड़ा भइल' लोग जानी त केहु दोसॅरा के थोरे ओट मिली।

**ठाढ़ाँ कइल**—ठंडा करना, शांत करना। प्र० उ बाँड़ा गरमाइल बाड़े, जा तनी उन्का के 'ठाढ़ाँ कर (अ)'।

**ठीक उतरल**—जितना चाहिए उतना ही होना। प्र० इ हे कुरुता 'ठीक उतरल' बा।

**ठीक कइल**—दुरुस्त करना, दुर्दशा करना। प्र० आपन काम 'ठीक कइल' **म** त जानी ना मन ब अ त अ तहरो के 'ठीक करबि'

**ठीक लागल**—भला जान पड़ना। प्र० अब इ 'ठीक लाग' (अ) ता।

**ठेकान कइल**—स्थान निश्चित करना, जीविका ढूँढना। प्र० पहिले रहे के 'ठेकान कइल' जरूरी बा, जा तूँ आपाना के 'ठेकान कर (अ) गे'।

**ठेकान लागल**—प्रबंध होना; ठीक स्थान पर पहुँचना। प्र० का हो तॉहार 'ठेकान लागल' कि ना। अब हमहूँ 'ठेकाने लागि' गइली।

**ठेकाना लॉगावल**—नौकरी या काम धंधा ठीक करना। प्र० इन्हिकर कहीं 'ठेकाना ना लॉगावल' जाई त (अ) उ कइसे रहिहें।

**ठेकाने आइल**—नियत या वांछित स्थान पर वास होना। प्र० हॉमॉरा 'ठेकाने आइल' थोरहुँ देर ना बितल कि उ आ गइले।

**ठेस लागल**—हानि होना; चोट पहुँचना। प्र० अब इहे इन्हिका 'ठेस लागल' हा, तूँ अइसन मति कर (अ) हॉमॉरा त (अ) एक 'ठेस लागि चुकल' बा।

**ठेहुनि आइल**—डटना। प्र० उ 'ठेहुनिआइल' बाड़े, अब इ काम क(अ) के उठिहें।

**ठोकच बइठल**—दुबला हो जाना। प्र० आजु काल्हि उन्हुकर 'ठोकच बइठल' बा।

**ठोकर खाइल**—लात सहना। प्र० ताहार 'ठोकर खाइल' छुटे के नइखे।

**ठोकारी पारल**—उत्तेजित करना। प्र० तनी 'ठोकारी पारत रह(अ)' जेमे बयलवा हाली हाली चल (अ) स (अ)।

**ठोठ मलल**—नीचा दिखलाना। प्र० बे 'ठोठ मलले' तुँ ना मन ब(अ)।

**ठोप से भेंट भइल**—किसी अच्छी वस्तु के अभाव में उस की चर्चा चलने पर लोग इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं। प्र० अब तोहरॉ ओ 'ठोप से भेंट ना होई'।

**डंका डालल**—दिन दहाड़े लुटना। प्र० 'डंका डालल' खेलवाड़ बुझ(अ) तारे।

**डंका बाजल**—किसी की चलती होना। प्र० ओ गॉव में उन्हिकर 'डंका बाजल' बा।

**डंका बाजावल**—सब पर प्रकट करना। प्र० उ 'डंका बाजाइ' के कहि अइले हा।

**डंटा खाइल**—डंडे की मार सहना प्र० ओकरा डंटा खाए' के आदति

परि गइल बा।

**डंटा चॉलावल**—डंडे से प्रहार करना। प्र० उ बाडा चोटाह 'ठटा चॉलावे ला'।

**डटा डुंटी भइल**—मारपीट होना। प्र० आजु काल्हि ओ लोगनि का अपुसे मे 'डटा डुटी भइल' बा।

**डडी मारल**—सौदा देने मे चालाकी से कम तौलना। प्र० उ वाडा 'डंडी मारे ला'।

**डरें सीट भइल**—डर कर चुप होना। प्र० उ 'डरें सीट हो गइल' बा।

**डाँक डाँक कइल**—चिल्लाना; शोर करना। प्र० का 'डाँक डाँक कइले' रहले हा रे।

**डाँड़ टूटल**—निराश होना। प्र० लइका का मुअते उन्हिकर 'डाड़ टूटि गइल'।

**डाँड़ परल**—नुक़सान होना। प्र० हामारा त(अ) ए मे 'डाँड परल' हा।

**डाँड़ लागल**—डाँड=दंड। विशेष कर प्रायश्चित्त रूप मे जो दंड लगता है, उसे डाँड़ लगाना कहते है। प्र० भाई लोग उन्हिका उपर 'डाँड़ लागावल' हा।

**डाँड़ सोझ कइल**—लेट कर थकावट मिटाना। प्र० तनी 'डाँड़ सोझ कइ के' ताँहॉर काम कइ दे तानी।

**डाँफि दिहल**—डरा देना। प्र० तनि इन्हिकरा के 'डाँफि त द(अ)', इ वॉडा बदमास भइल बाड़े।

**डींग मारल**—शेखी बघारना। प्र० अब ही ले इन्हिकर 'डींग मारल' न छुटल।

**डगडगाइल फिरल**—मारा मारा फिरना। प्र० उ चारु ओर 'डगडगाइल फिरेला'।

**डंफ भइल**—उफन जाना। प्र० इ खाइ के 'डंफ भइल' बाड़े।

**डहर धइल**—चल देना। प्र० एकरा बाद उ आपन 'डहर धइले'।

**डहरि बातावल**—रास्ता दिखलाना; उपाय बताना। प्र० जा इन्हिका डहरि बाता आव अ रउवाँ कवनो एगो डहरि बाताईं'

**डाढ़ा फूँकल**—दाह उत्पन्न करना। प्र० आजु देही मे 'डाढा फूँकले' बा।

**डायर भइल**—दाखिल हुआ। प्र० मोकदिमा 'डायर भइल' हा।

**डाली लॉगावल**—डलिया में मेवे आदि सजा कर भेजना। प्र० उ डिपिटी साहेब के 'डाली लागावे लें'।

**डिठि लागावल**—किसी अच्छी वस्तु पर अपनी दृष्टि का बुरा प्रभाव डालना। प्र० घर ही रखिह् (अ) ना त (अ) 'केहू डिठि लागा दी'।

**डिम-डाम से रहल**—ठाट-बाट से रहना। प्र० आजु कालिह् उ बॉड़ा 'डिम-डाम से रह्(अ)' तारे।

**डीह जागल**—अभिवृद्धि होना। प्र० ए गाँव के आजु कालिह् 'डीह जागल' बा।

**डीह परल**—उजड़ जाना। प्र० इ गाँव 'डीह परि गइल'।

**डीह सुतल**—अवनति होना। प्र० ए गाँव के आजु कालिह् 'डीह सुतल' बा।

**डुगडुगी पिटवावल**—खबर जनाना। प्र० का 'डुगडुगी पिटाइलि' हा हो।

**डुगुरत चलल**—छम-छम चलना। प्र० लइकवा त अब 'डुगुरत चल(अ)' ता।

**डुबल उतराइल**—सोच में पड़ जाना। प्र० का 'डुबल उतराइल' बाड(अ)।

**डुबुकी मारल**—गायब होना। प्र० काहाँ 'डुबुकी मरले' रह ल(अ) हो।

**डेरा डालल**—ठहरना। प्र० काहाँ 'डेरा डलले' बाडे हो।

**डेरा परल**—छावनी पड़ना। प्र० ओ ही बगइचवा में डिपिटी साहेब के 'डेरा परल' बा।

**डेवढ़ी खुलल**—आने-जाने की आज्ञा मिलना। प्र० ताहारा खातिर त(अ) राजा साहेब के 'डेवढ़ी खुलले' बा।

**डेवढ़ी बन भइल**—आने-जाने का निषेध होना। प्र० एह बेरा 'डेवढी बन होइ' काल्हु जाइबि।

**डेवढ़ी लागल**—द्वार पर द्वारपाल का बैठना। प्र० थोरे दिन इन्हि को 'डेवढ़ी लागत' रहे।

**डोम भइल**—अपवित्र होना, दुष्ट होना। प्र० उ भारी 'डोम ह(अ)'।

**डोम हाउजि कइल**—शोर करते हुए झगड़ा करना। प्र० तोहना काँ का डोम हाउजि कइले बाड अ स म

**ढोरा फकल** भ्रम में फँसाना प्र० ए ढोरा फकाला में कुछ् बा

**डोल डाल कइल**—शौच होना। प्र० उ 'डोल डाल करे' गइल बाड़े।

**डोला काढ़ल**—कितने लोग अपनी लड़की को वर के घर पहुँचाते हैं और वही पर उस की शादी होती है इसी को डोला काढना कहते हैं। प्र० उन्हिकर बिम्राह 'डोला काढि' के भइल हा।

**डोला निकालल**—दुलहिन की बिदाई करना। प्र० कब 'डोला निकली हो'।

**ढिंढोरा पीटल**—चारों ओर घोषित करना। प्र० का 'ढिंढोरा पिटले' बाड(अ)।

**ढींढ़ गिरल**—गर्भपात होना। प्र० ना जाने कइसे ओकर 'ढींढ़ गिरल' हा।

**ढींढ़ निकलल**—पेट निकलना। प्र० तोहार त अब 'ढींढ निकलि' गइल।

**ढींढ़ मँड़ावल**—गर्भपात कराना। प्र० आन्कर 'ढींढ़ रहल हा त मँड़वा दिहलसि हा'।

**ढींढ़ मिसावल**—गर्भपात कराना। प्र० उ चमइनी से 'ढींढ मिसअवलसि हा'।

**ढींढ़ रहल**—गर्भ रहना। प्र० ओकरा त 'ढींढ़ रहि गइल बा'।

**ढेंकार न निकलल**—चुपचाप हजम कर जाना। प्र० हातानां रुपाया गपचि घल ल(अ) ह (अ) 'ढेकारो ना निकलल' हा।

**ढेंसराइ के बोलल**—अस्पष्ट बोलना। प्र० का 'ढेंसराइ के बोल(अ) तार(अ)' जे कहे के होखे साफ कह(अ)।

**ढकचत रहल**—वमन करना। प्र० तुँ त(अ) बिखिए 'ढकचत रहे ल (अ)'।

**ढपोर संख भइल**—मूर्ख होना; असत्यभाषी होना। प्र० इन्का का किछु आवेला जाला, इ पूरा 'ढपोर सख हउए' इ 'ढपोर संख हउए' इन्का बात के कवनो ठेकाना बा।

**ढब धाराइल**—आदत पड़ जाना। प्र० ए घरी इहे 'ढब धाराइल' बा।

**ढब पर चढ़ल**—अभिप्राय-साधन के अनुकूल होना प्र० उ 'ढब पर चढ़े' त ले लिह(अ)।

**ढब पर ले आइल**—अभिप्राय-साधन के अनुकूल करना। प्र० ए घरी 'ढब पर ले अइत (अ)' त (अ) ढेर काम होइत।

**ढम ढम कइल** कुछ बजाना प्र० का ढम ढम कइल' बाड अ

**ढरका दीहल**—एक बास की छोटी नली से पशुओ को खली आदि पिलाई जाती है। इसे 'ढरका देना' कहते है। व्यग्य मे मनुष्य के लिए भी इस मुहावरे का प्रयोग होता है और इसका अर्थ होता है 'जबरदस्ती खिलाना'। प्र० जब इन्का रूचत नइखे त का 'ढरका दे ले बाड़(अ)'।

**ढाठी दिहल**—डंडा नीचे ऊपर करके गला दबा देना। निर्दयता पूर्वक जान मार डालना। प्र० उ गाद के 'ढाठी दे के मारि घल्ले'।

**ढिमिलात फिरल**—गिरते फिरना, व्यग्य मे किसी के सौंदर्य को देख कर मोहित हो जाना। प्र० का पुछले बाड(अ) ए त जाँहाँ नाँ ताँहाँ 'ढिमिलात फिर(अ) तारे'।

**ढिमिलिआ खाइल**—सिर के बल उलट कर गिर पडना; ठोकर खाना। प्र० तोहरा अइसन ना जाने कॅतॉना लोग 'ढिमिलिआ खात फिर(अ) तारे'।

**ढिलहाइ कइल**—ध्यान न देना। प्र० का 'ढिलहाइ कइले' बाड (अ)।

**ढुका लागल**—छिप कर देखना। प्र० हम 'ढुका लागल' रहली, ऐसे इन्हिकर कुल्हि ताॅमाॅसा देखि लिहली।

(अपूर्ण)

ॐ ॐ

# हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

१९४०

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, १९४०

संपादक—रामचंद्र टंडन

---



---

## लेख-सूची

# नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की नवीन प्रकाशित पुस्तकें

## भारतीय मूर्तिकला

**( लेखक—श्री राय कृष्णदास )**

इस पुस्तक में मोहनजोदड़ो के समय से लेकर आज तक की भारतीय मूर्तिकला का वर्णन बड़ी सरल भाषा में किया गया है। साथ ही इस कला के सौंदर्य की विशेषताएँ एवं तात्त्विक व्याख्या भी दी गई है। अपने ढंग की हिंदी ही में नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में पहली पुस्तक है। पृष्ठसंख्या २३६+१३, ३६ चित्र तथा मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १), विशिष्ट संस्करण १।)

## भारत की चित्रकला

**( लेखक—श्री राय कृष्णदास )**

यह तथा भारतीय मूर्तिकला सबद्ध प्रकाशन है, इसमें अपनी महान् चित्रकला का अथ से इति तक का इतिहास, सौंदर्य-निरीक्षण, एवं उसके मर्म की बातें तो हैं ही, साथ ही लेखक ने लगभग ३० बरस के अपने गंभीर अध्ययन का सारांश भी दिया है जिससे भारतीय चित्रकला के इतिहास-विषयक कई महत्त्वपूर्ण नई बातों का उद्‌घाटन हुआ है और नया प्रकाश पड़ा है। यह भी अपने ढंग की हिंदी ही में नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं में पहली पुस्तक है। पृष्ठसंख्या १८०+१६, चित्रसंख्या २७ (सादे) +१ (रंगीन) मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १≈), विशिष्ट संस्करण १।≈)

## मआसिरुलउमरा ( दूसरा भाग )

**( अनुवादक—बाबू ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल० बी० )**

मूल ग्रंथ फारसी भाषा में है और उसमें मुगल-शासन-कालीन सरदारों और अमीरों की जीवनियाँ दी गई हैं। मुगल-कालीन इतिहास के अध्ययन के लिये ग्रंथ बहुत उपयोगी है। इसका पहला भाग पहले ही प्रकाशित हो चुका है। इस भाग में लगभग ६०० से ऊपर पृष्ठ हैं और कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के चित्र भी दिए गए हैं। पृष्ठसंख्या ६०० से ऊपर। मूल्य ४)

## बाल-मनोविज्ञान

**( लेखक—प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी० )**

आजकल बालकों की शिक्षा और सुधार के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान कितना आवश्यक है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। ठोंक-पीटकर बालकों को पढ़ाने और दुरुस्त करने का समय अब बहुत पीछे चला गया। अब सभी बुद्धिमान् लोग समझने लगे हैं कि बालकों को ठोंकने-पीटने के बदले हमें उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का पता लगाना चाहिए। उन्हीं प्रवृत्तियों का अनुसरण कर के हम उन्हें बड़े से बड़ा आदमी

बना सकते हैं बाल-मनोविज्ञान में बड़ी सरल और सुबोध भाषा में लेखक ने बालकों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर के उन्हें समझाया है। पृष्ठसंख्या २६०, मूल्य १।)

## बिहार में हिंदुस्तानी

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार आजकल बड़े जोरों से किया जा रहा है। हिंदुस्तानी के समर्थक उसे सब के समझने योग्य सरल भाषा बतलाते हैं, पर वस्तुतः इस नाम की आड में कहीं तो शुद्ध उर्दू का प्रचार करते हैं और कहीं हिंदी का अत्यंत विकृत रूप उपस्थित करते हैं। बिहार प्रांत में हिंदुस्तानी का प्रचार किस ढंग से करने का उद्योग किया गया है इसी की छान-बीन इस पुस्तक में की गई है। पृष्ठसंख्या ६१, मूल्य ।)

## कचहरी की भाषा और लिपि

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

कचहरियों में इतिहास के भिन्न-भिन्न कालों में किस प्रकार की लिपि और भाषा का प्रचार रहा है तथा इस समय वस्तुतः कचहरी की भाषा और लिपि कौन सी होनी चाहिए, इसी का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक अवश्य पठनीय है। पृष्ठसंख्या १७६, मूल्य ।।।)

## भाषा का प्रश्न

( लेखक—पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए० )

आजकल हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के झगडे के कारण भाषा की समस्या बहुत ही जटिल हो गई है। किंतु लेखक ने कई लेख लिखकर इस पुस्तक में इस प्रश्न को बहुत अच्छी तरह सुलझाया है। पृष्ठसंख्या १८८, मूल्य ।।।)

## संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर

( संपादक—बा० रामचंद्र वर्मा )

हिंदी का यही एक छोटा सस्ता, और सब से अच्छा शब्दकोष है। यह बृहद् हिंदी शब्दसागर का ही संक्षिप्त रूप है। नया संस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसंख्या १२००, मूल्य ४)

## कबीर-वचनावली

( संपादक—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" )

इस पुस्तक का खूब प्रचार हो चुका है। कबीर की रचनाओं का बहुत सुंदर संग्रह है और भूमिका बहुत विद्वत्ता-पूर्ण है। आठवाँ संस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसंख्या ३०० से ऊपर, मूल्य १।)

**मिलने का पता—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी**

# हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास (दूसरा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२-२३) भारतीय इतिहास की रूपरेखा ( २ भाग )—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्य-कृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१ ३३) हिंदी कवि और काव्य ३ भाग श्रीयुत

द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य प्रथम भाग ४।ǀ); द्वितीय भाग ३।ǀ); तृतीय भाग ३।ǀ)

(३४) जीववृत्ति-विज्ञान—लेखक, प्रोफ़ेसर महाजोत सहाय। मूल्य १)

(३५) न्याय—जॉन गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २ǀ)

(३६) चाँदी की डिबिया—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य १।ǀ)

(३७) धोखाधड़ी—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०। मूल्य १।ǀ)

(३८) हड़ताल—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २)

(३९) भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष—मूल-लेखक सर सी० वाई० चिंतामणि। अनुवादक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा। मूल्य १)

(४०) हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी, एम० ए०। मूल्य २।ǀ)

(४१) विज्ञान-हस्तामलक—लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए०। मूल्य ६)

(४२) यूरोप की सरकारें—लेखक, श्रीयुत चंद्रभाल जौहरी। मूल्य ३।ǀ)

(४३) हिंदी भाषा और लिपि (चौथा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ।ǀ)

(४४) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६।ǀ)

(४५) दर्शन का प्रयोजन—लेखक, डाक्टर भगवान्दास। मूल्य २)

(४६) अर्थशास्त्र के मूल सिद्धांत—लेखक श्रीयुत भगवानदास अवस्थी, एम० ए०। मूल्य १।ǀ)

(४७) उर्दू काव्य की एक नई धारा—लेखक, श्रीयुत उपेंद्रनाथ अश्क। मूल्य १)

(४८) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफ़ेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य १)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

---

# सौर-परिवार

[ लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० ]

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

( जिन में ११ रंगीन हैं )

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमी जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय ोचक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना ाप्त किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I · seen, lacking in precision. * * I congratulate you on excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

नी एकेडेमी,

# हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता देकर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

श्री अमर प्रेस, इलाहाबाद